

REFERENCE



श्री मदाचार्य चाणक्य प्रणीत
कौटलीय अर्थशास्त्र

(मूल संस्कृत और हिन्दी अनुवाद सहित)

अनुवादकः—

श्री पण्डित गङ्गाप्रसाद जी शास्त्री

भूमिका लेखकः—

राय बहादुर श्रीमान् ठाकुर साहिब श्री नरेन्द्रसिंह जी जोवनेर नरेश
शिक्षा सचिव, जयपुर राज्य

प्रकाशकः—

चतुरसेन गुप्त

महाभारत कार्यालय

मालीवाड़ा, दिल्ली

[सर्वाधिकार सुरक्षित]

प्रथम बार

१०००

१९६७ विक्रमी

मूल्य ६)

प्रकाशकः—

चतुरसेन गुप्त,

प्रबन्धकः—

महाभारत कार्यालय
दिल्ली ।

॥ राजधर्म ॥

प्रजामुखे मुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्

नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्

अर्थ—प्रजा के मुख में मुख और प्रजा के हित में ही राजा को अपना हित समझना चाहिए । बात तो यह है, कि राजा का अपना प्रिय और हितकारी कोई कार्य पृथक् नहीं है । प्रजा प्रिय और हितकारी कार्य ही राजा का प्रिय और हितकर कार्य है ।

(कौटिलीय अर्थशास्त्र १८-१६-३६)

मुद्रकः—

डा० प्यारेलाल गुप्त

L. M. P. I.

वैदिक प्रेस, शामली, यू० पी०

REFERENCE

BOOK



भूमिका

राजपूताने के प्रसिद्ध विद्या प्रेमी रईस

श्रीमान् रावबहादुर ठा० नरेन्द्रसिंह जी
जोबनेर नरेश एवं शिक्षा सचिव जयपुर राज्य

नीति का सूर्य, भारतीय संस्कृति का ध्रुव तारा, परम प्रतापी, नन्दवंश वन कृशान और गुप्त साम्राज्य नौका का पतवार परम पुरुष विष्णुगुप्त चाणक्य जो भारतीय रङ्गमञ्च पर इस और कई नामों और कौटल्यादि कई उपदंठ से सम्बोधित किये जाते हैं। उस महा पुरुष का यह अर्थशास्त्र ग्रन्थ एक जीता जागता नमूना है, और आज भी पूर्वीय और पाश्चात्य संसार में इसकी टकर का जाज्वल्यमान रत्न कोई नहीं है, उस ग्रन्थ को सर्व साधारण के हाथों उपलब्ध होने को महाभारत कार्यालय मुद्रण करा रहा है यह महर्घ प्रयास बड़ा आदरणीय है।



नरेन्द्रसिंह (रावबहादुर)

शिक्षा सचिव, जयपुर राज्य

प्राक्कथन

ईसवी सन् से ३२७ वर्ष पूर्व, ग्रीक विजेता, महान् सिकन्दर, एशिया माइनर, मिश्र, फारस, अफगानिस्तान और अस्सकनियों की राजधानी मस्साग को जीतना हुआ एक लाख बीस हजार सेना लिए हुए हिन्दूकुश के मार्ग से भारतवर्ष में आ चुका तक्षिला का राजा आम्बीपोरस (पुरु) से ईर्ष्या रखता था, इससे यह सिकन्दर से मिल गया। दोनोंने पोरस पर आक्रमण किया। यद्यपि पोरस इस युद्ध में पराजित हो गया, पर उसकी वीरता की छाप यूनानियों के इतिहास में स्वर्णचरों से लग गई।

इस समय भारत का सब से बड़ा शक्तिशाली राजा मछामन्नन्द था, जिस राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) थी। सिकन्दर की इस पर आक्रमण करने की हिम्मत हुई और यह मैसिडोनिया का शक्तिशाली शासक, अपनी महत्वाकांक्षाओं को अपने नाले लेकर पञ्जाब के छोटे २ राज्यों से युद्ध करता हुआ सिन्ध नदी से पार होकर भारतवर्ष बाहर निकल गया। इन छोटे २ राज्यों के साथ युद्ध करते समय सिकन्दर एक स्थान भ्रष्टाचारी तरह फँस गया। उसके बहुत से घाव आए। ये घाव अभी अच्छे भी नहीं हो पाये थे, कि यह यूरोपीय विजेता तेतीस वर्ष की अवस्था में ही मेसिलोनिया में मर गया।

जिस समय सिकन्दर का यह आक्रमण हुआ, ठीक उसी समय तक्षिला के विश्व विद्यालय में आचार्य विष्णुगुप्त (चाणक्य) अध्यापन का कार्य करते थे और भावी मौये सम्राट् चन्द्रगुप्त, इनके छात्रों में एक सुयोग्य छात्र थे। यद्यपि सिकन्दर भारतवर्ष से लौट गया, तो भी आचार्य चाणक्य ने अपनी तीव्र दृष्टि से यह देख लिया, कि यह यूनानी विजेता, फिर भारतवर्ष पर वेग के साथ चढ़ाई किये बिना न रहेगा, भारत में फूट का साम्राज्य है। छोटे २ गणराज्य यूनानियों के आक्रमण रोकने में असमर्थ हैं। यह विचार कर इसने अपने योग्य शिष्य वीर केशरी चन्द्रगुप्त पर हाथ रखा और इस समय इसे तक्षिला के सहित सारे पञ्जाब का शासक बना दिया।

नन्दवंश के उद्वेग शासकों से भारतीय प्रजा तंग आ रही थी। चाणक्य ने देखा कि राजा और प्रजा के इस असहयोग में यूनानियों का मुकाबिला कौन कर सकता है। इसने नन्दवंश को समाप्त किया, और मगध के विशाल साम्राज्य पर अपने शिष्य महान् चन्द्रगुप्त को स्थापित कर दिया।

सिकन्दर के देहान्त के बाद उसका सेनापति सैल्यूकस, मैसिडोनियन^{पणि} का सम्राट बना। इसने ईसवी सन् से ३०६ वर्ष पूर्व, मगध सम्राज्य पर आ^{क्र} किया। यूनानी सम्राट, सैल्यूकस पराजित हुआ। इसने सिन्धु नदी के पार का सारा प्रख चन्द्रगुप्त को भेंट कर दिया और अपनी पुत्री कार्नेवालिया (हेलेन) का विवाह मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के साथ कर दिया।

इस समय सारे संसार पर यूनानी जाति की धाक थी। यह विजेता जाति, जो को सबसे अधिक सभ्य मानती थी, परन्तु इनके भी विजय कर लेने से भारत का महिमा^{ति}लय की तरह आज तक बड़े गर्व के साथ ऊंचा उठा हुआ है, जिसका सारा श्रेय, अर्थशास्त्र के रचयिता महाविद्वान् मन्त्री चाणक्य को है, इसमें किसी को मत एक नहीं है।

पाश्चात्य देशों को अपनी प्रचालित शासन प्रणाली पर बड़ा गर्व है। वे सम^{ति} कि राजा, मन्त्री, दूत, भूमि कर (माल) चुंगीकर, पुलिस, गुप्तचर विभाग (खुज्गूहे पुलिस) व्यापार, जहाज जंगलात, खान, शराब, वेश्या, कम्पनी, चौर डकैतों के प^{ति} के उपाय, दायभाग, जुआ, जालीसिक्के, सेना, व्यूह निर्माण, शत्रु के घात प्रयोगों रक्षा के उपाय आदि के नियम जैसे-इनको ज्ञात है, वैसे आज तक किसी को नहीं मा^{ति} हुआ, परन्तु ज्यों ही उन्होंने इस अर्थशास्त्र को देखा, वे मुंह में अंगुली दवा कर भीच^{ति} देखते रह गए। महाभारत का यह दावा, कि “यदिहास्तितदन्यत्रयन्नेहास्तिनतत्का^{ति} अर्थात् जो महाभारत में है, वही सब जगह मिलता है और जो इसमें नहीं वह क^{ति} नहीं मिल सकता है। ठीक यही दावा-राज्य व्यवस्था के विषय में इस कौटिलीय अर्थ^{ति} नामक का होना चाहिए। आश्चर्य तो यह है, कि आज कल की सी दुनियां आज से ढाई^{ति} वर्ष पूर्व भी ऐसी की ऐसी विद्यमान थी। यह जब की बात है, जब भारत से अति^{ति} अन्य देश बिल्कुल अन्धकार के गड्ढे में पड़े थे।

हमारा साम्राज्य क्या था। भारत किस प्रकार अपनी स्वतन्त्रता के सुख का उप^{ति} कर रहा था। यद्यपि आज यह सब कुछ स्वप्न सा हो गया-तो भी इस अर्थशास्त्र ने^{ति} इस गुलामी में भी हमारे मस्तक को संसार में ऊंचा उठा दिया है। बात तो सच यह^{ति} कि साम्राज्य से कोई जाति की प्रतिष्ठा या रक्षा नहीं हो सकती। जाति की प्रतिष्ठा^{ति} रक्षा का साधन तो केवल साहित्य ही है। इसी सचाई के आधार पर एक बार लार्ड^{ति} ने कहा था, कि “यदि ब्रिटिश साम्राज्य और शेक्सपियर में से मुझे एक लेना^{ति} मैं निःसङ्कोच साम्राज्य को तिलाञ्जलि देने को प्रस्तुत हूंगा”। हमारे पास भी^{ति} हमारा साम्राज्य नहीं है, परन्तु हमारी जाति की प्रतिष्ठा और मान के बचाने को

उपम साहित्य रत्न बचे हुए हैं, जिनमें यह अर्थशास्त्र एक चमकता हुआ

रत्न

जिस जाति को नष्ट करना होता है, उसका साहित्य नष्ट किया जाता है। हिन्दू को नष्ट करने वालों ने भी इनके साहित्य भण्डार से वर्षों हम्माम गर्म करवाये। हजार वर्ष पूर्व के प्राचीन हिन्दू साम्राज्य के चित्र उपस्थित करने वाला यह बहुमूल्य, भी नष्ट हो चुका था। यह हमारे कोई सोभाग्य की बात थी, कि बहुत खोज करने इच्छिण में सन् १६०६ में एक कापी इस अर्थशास्त्र की मिलगई, जो आज आपके हाथमें रही है।

साहित्य पर जाति के जीवनकी आधारशिला किस प्रकार रखी हुई है-इस बात आज हमारी परतन्त्र जाति भूल गई। साहित्य का मूल्य लार्ड कर्जन के उपर्युक्त गण भर्रा है। बात तो सच यह है, कि पाश्चात्य देशवासियों ने उन्नति ही एक इस से की है, कि वे अपने साहित्य का मूल्य जानते हैं। मिल्टन के पुस्तक लिखने की डी को आज भी सब लोग आदर की दृष्टि से देखते हैं, परन्तु कौन भारतीय बता पा है, कि चाणक्य ने किस झोंपड़ी में बैठकर इस अर्थशास्त्र को लिखा था।

यूरोप में आज घमसान युद्ध जारी है। इसमें अनुपम अस्त्र शस्त्रों के अतिरिक्त धुंआ (गैस) का प्रयोग होता है, जिससे किसी को अन्धा बना दिया जाता है, को सुला दिया जाता है, किसी को मार दिया जाता है और कहीं पर आग लगादी है। चाणक्य कहते हैं।

कृतकण्डलकृकलास गृहगोलिकान्धाहिक धूमो नेत्रवधमुन्मादं च करोति
अर्थशास्त्र १४१-२६)

अर्थात्—कृत कण्डल, गिरगट, छिपकली, और दुमई सांप के अर्क का धुंआ, अंधा पागल बना देता है।

शतकर्मोचिदिङ्गकरवीर कटुतुम्बीमत्स्य धूमो.....यावच्चरतितावन्मारयति
अर्थ १४-१-१०)

अर्थात्—शतावरी आदि के योग से बनाये हुए नुसखे का धुंआ जितनी दूर-उतनी दूर तक मारता चला जावेगा।

विद्युत प्रदग्धोऽङ्गारो.....निष्प्रतीकारोदहति (अर्थ १४-१-३६)

अर्थात्—विजली के जले हुए वृक्ष के कोयले से जो आग लगाई जाती है, वह नहीं जा सकती है।

एकाम्स्तकं वराहाक्षि खद्योतः कालशारिवा एतेनाभ्यक्तनयनो रात्रौरूपणि
पश्यति (अर्थ० १४-३-३)

अर्थात्—एक बड़हल सूअर की आंख, जुगनू, काला शारिवा को मिलाकर आंख
में आंजे-तो मनुष्य रात में भी देख सकता है।

एकां गुलिकामभिमन्त्रयित्वा यत्रैतेन मन्त्रेणक्षिपति—तत्सर्वं प्रस्वापयति
(अर्थ० १४-३-३१)

अर्थात्—इस गोली को जहां डाले वहां सब सो जाते हैं। इस प्रकार के मन्त्रों
प्रयोग हैं। आज हम परतन्त्र होने से उनके परीक्षण करने में भी असमर्थ हैं, परन्तु एक
समय था, जब हम इन सबको अच्छी तरह जानते थे। इनमें कहीं २ मन्त्रों का प्रयोग
आचार्य चाणक्य की आस्तिकता को सूचित कर रहा है।

महाभारत में शकट व्यूह, वज्रव्यूह, चक्रव्यूह, सूची मुख व्यूह आदि अनेक व्यूहों
का वर्णन है, परन्तु उनके निर्माण का क्रम आप इसी अर्थशास्त्र में देख सकोगे।

भारतवर्ष का सबसे पहला यही अर्थशास्त्र नहीं है। इससे पूर्व भी पिशुनाचार्य
उद्धव, वृहस्पति, उशनस, भारद्वाज आदि के अनेक अर्थशास्त्र थे, जिनका उल्लेख इसी
अर्थशास्त्र में स्थान २ पर आता है आज वे लुप्त हो चुके। केवल यही अर्थशास्त्र जैसे
तैसे मिला है। इस अर्थशास्त्र को पढ़कर श्री पं० जवाहरलाल जी नेहरू नैनी जेल में मुग्ध
उठे थे। उन्होंने सन् १९३१ में जेल से ही अपनी पुत्री इन्दिरा के नाम दो पत्र इस अर्थ-
शास्त्र के गौरव के प्रकट करने को लिखे हैं, जो विश्व इतिहास की भूलक नामक
ग्रन्थ में प्रकाशित हैं।

पाश्चात्य देश में मैकियावेली कूटनीति का आचार्य माना जाता है। इसका मत है,
कि जहां तक हो सके—ऊपर से साधु वेश बनाये रहो और समय पर धर्म-अधर्म कुछ न
देखकर फौरन दूसरे को दबोच दो। सदा मखमली दस्ताने में फौलाद का पञ्जा रखो—इत्यादि
ढंग का इसका मत है। बहुत से लोगों ने चाणक्य को भी भारत का मैकियावेली बताया
है। हमारी सम्मति में यह चाणक्य के साथ अन्याय है। आचार्य चाणक्य धर्मात्मा
व्यक्ति हैं, वे बलवान् दुष्ट शत्रु के साथ ही कूटनीति का प्रयोग करके अपने देश की
स्वतन्त्रता की रक्षा करना चाहते हैं। वे साधु पुरुष के साथ कूटनीति के प्रयोग को पा
मानते हैं। ये सम्राट-निर्माता होकर भी त्यागी ब्राह्मण की भांति कुटिया में रहते और
चावल तथा सत्तू से भूख मिटाकर विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। वे कहते हैं—

तरमात्स्वधर्मं भूतानां राजा न व्यभिचारयेत् स्वधर्मं । सन्दन्यानोहि प्रेत्य
जिस जाति है व नन्दति (अर्थ० १-३-१६)

को नष्ट कर अर्थान्—राजा-प्रजा को अपने धर्म से च्युत न होने दे । राजा भी अपने धर्म का
हजार वर्ष पृथ्वावरण करे । जो राजा, अपने धर्म का इस भांति आवरण करेगा—वह इस लोक और
भी नष्ट हो परलोक में सुखी रहेगा ।

विद्याविनीतो राजा हि प्रजानां विनयेतः अनन्यां पृथिवीं भुङ्क्ते सर्वभूत
रही है । हितैरतः (अर्थ० १-५-१८)

साहित्य पर अर्थान्—सुशिक्षित राजा-प्रजा को सुशिक्षित बनाना हुआ और प्रत्येक के हित में
प्राज हमार तत्पर हुआ राज्य का उपभोग करे । इस प्रकार कार्य करने वाला राजा शत्रु रहित होकर
गम भरा है विशाल पृथ्वी के उपभोग करने में समर्थ होता है । एक स्थान पर तो आचार्य लिखते हैं—
स की है, विशाल पृथ्वी के उपभोग करने में समर्थ होता है । एक स्थान पर तो आचार्य लिखते हैं—

एवं दूष्येष्वधार्मिकेषु वर्तते तरेषु (अर्थ० ५-२-८०-८१)

अर्थान्—यह सब कुछ दृष्टनीति, अधार्मिक लोगों के साथ वर्तनी चाहिए, सज्जनों
ता है, कि जो अर्थान्—यह सब कुछ दृष्टनीति, अधार्मिक लोगों के साथ वर्तनी चाहिए, सज्जनों
यूरोप में के ऊपर इसका कभी प्रयोग न करे, परन्तु मैकियावेली-सज्जन दुर्जन, धार्मिक अधार्मिक
की धुआ (मैसी को नहीं जानता, वह सबके साथ दृष्टनीति का प्रयोग करके ऐश्वर्यशाली बनता
को सुला जानता है । उसे चाणक्य की सी कुटी पसन्द नहीं आ सकती । इन सब बातों के देखने
है । चाणक्य हमारी सम्मति में तो चाणक्य और मैकियावेली के सिद्धान्तों में आकाश पाताल का
कृतकाल तरे हैं ।

प्रशास्त्र हमने इस कठिन ग्रन्थ की सुलियां खोलने का ययाशक्ति प्रयास किया, परन्तु
अर्थान्—साधन न होने से हम उसमें पूर्ण सफल नहीं हो सके तो भी बहुत सी त्रुटियां हमने नहीं
र पागल बन होने दी हैं । यह ग्रन्थ हमारे परोक्ष में दूसरे नगर में छपा है— इस से प्रकृ आदि की
शतक कुछ अशुद्धि हों तो पाठक क्षमा करके हमें अनुगृहीत करेंगे ।

अर्थ० १४-१ आवरण पूर्णिमा
अर्थान्—
१६६७ विक्रमी
उत्तनी दू
विद्युत
अर्थान्—
नहीं जा



गङ्गाप्रसाद शास्त्री
दिल्ली ।

कौटलीय अर्थशास्त्र की विषयानुक्रमणिका

विनयाधिकारिक

अध्याय	विषय	पृष्ठ	अध्याय	विषय	पृष्ठ
१	राजवृत्ति	१	२	विद्या समुद्देश	६
३	त्रयी स्थापना	१०	४	कृषि पशुपालन और व्यापार	१२
५	वृद्ध संयोग	१४	६	काम आदि ६ शत्रुओंका त्याग	१६
७	राजर्षि का व्यवहार	१८	८	अमात्यों की नियुक्ति	१६
९	मन्त्री और पुरोहितों की नियुक्ति	२२	१०	अमात्योंके हृदयगत सरल और कुटिल भावोंको गुप्तरोतिसे जाननेके प्रकार	२४
११	गुप्तचरों (C. I. D) की स्थापना	२८	१३-१४	शत्रुके वहकावेमें न आने के उपाय	३४
१२	गुप्तचरों की कार्यों पर नियुक्ति	३१	१६	राजदूतों की नियुक्ति	४८
१५	मन्त्राधिकार	४२	१८	राजकुमार के कर्तव्य	५८
१७	राजपुत्रों से राजा की रक्षा	५३	२०	राजभवन-निर्माण	६५
१९	राज प्रणिधि	६१			
२१	आत्म रक्षा	६६			

अध्यक्ष प्रचार

१	जन-पद-निवेश	७५	२	वंजर भूमिका उपयोग	८०
३-४	दुर्ग (किले) बनाने का विधान	८३	५	राजकीय वस्तु	८३
६	समाहर्ता (कलक्टर) के कार्य	८६	७-८	आय-व्यय का स्थान	१००
९	छोटे २ कर्मचारियों पर अध्यक्ष	१११	१०	शासनाधिकार	११५
११	कोशमें प्रवेशकरने योग्य रत्नोंकी परीक्षा	१२१	१२	खानों का वर्णन	१३१
१३	सुवर्णाध्यक्ष का कार्य	१३७	१४	सराफे के बाजार का प्रबंध	१४३
१५	कोष्ठागाराध्यक्ष (धान्य आदि)	१४६	१६	पण्याध्यक्ष (वेचने और खरीदने)	१५६
१७	कुप्याध्यक्ष [चंदनकी लकड़ी आदि]	१५६	१८	आयुधागाराध्यक्ष [शस्त्र भंडार]	१६१
१९	तोल माप का संशोधन पौतवाध्यक्ष	१६४	२०	देश और काल का परिमाण	१६१
२१-२२	शुल्काध्यक्ष [चुंगीका अपसर]	१७६	२३	सूत्राध्यक्ष [रेशम, ऊन और सूत का महकमा]	१७७
२४	सीताध्यक्ष [हल से उत्पन्न वस्तु]	१८१	२५	सुराध्यक्ष	१८८

विषय	पृष्ठ	अध्याय	विषय	पृष्ठ
सूनाध्यक्ष	१६१	२७	गणिकाध्यक्ष	१६२
नावाध्यक्ष	१६७	२६	गोऽध्यक्ष	२०१
अश्वाध्यक्ष	२०७	३१	हस्त्यध्यक्ष	२१३
रथ, पैदल सेनाध्यक्ष	२१६	३४	मुद्राध्यक्ष [मुहर लगाने]	२२१
समाहर्ता [कलक्टर]	२२२	३६	नागरिक [नगर का प्रबन्धक]	२२५

धर्मस्थीय

दीवानी और फौजदारी	२-३-४	विवाह कानून	२३८	
मुकदमे संबंधी विचार	२३२	५-८	दायभाग (घटवारा)	२५१
वस्तु विक्रय	२६३	१०	पशुओं के चारागाह आदि	२६७
कर्ज लेना और देना	२७१	१२	धरोहर	२७७
मजदूरों का विषय	२८२	१५-१६	वेचने और नहीं वेचने सम्बन्धी	
डकैती	२६७		वाद विवाद	२६१
गाली गलौज	२६६	१६	मारपीट	३०१
जुआ तथा अन्य अपराधों				
का वर्णन	३०५			

कंटक शोधन

कारुक रक्षणम् अर्थात् धोवी	२	व्यापारियों से प्रजा की रक्षा	३१५
रंगरेज, सुतार, वैद्य तथा	३	दैवी आर्पातियों से प्रजा की रक्षा	
नट आदि सम्बन्धी नियम ३०६		करने के उपाय	३१८
प्रजा पीडकों से रक्षा	६	चोरों की पहिचान आदि	३२७
करने के नियम, गुप्तचरों का	७	आशुमृतक परीक्षा (कतल)	३३२
साधु ज्योतिषी आदि के भेष	८	अपराधी और गवाहों का वर्णन	३३६
बनाना ३२२	९	राजकर्मचारियों के स्थानोंकी पढ़ताल	३३६
अपराधी को अङ्ग छेदन	११	लड़ाई भगाड़ों का वर्णन	३४८
की सजा ३४४	१२	कन्या सम्बन्धी अपराधों का वर्णन	३५०
अभक्ष्य भक्षण के संबंध			
में राज नियम ३५४			

अध्याय	विषय	पृष्ठ	अध्याय	विषय	पृष्ठ
योग वृत्त					
१	राज कर्मचारियों का कंटक पन	३६०	२	राज्यकोश बढ़ाने का उपाय	३६६
४-५	मन्त्री आदि का राजा के प्रति व्यवहार	३७८	३	भृत्यों के भरण पोषण की विधि	३७३
			६	राजा पर आने वाली विपत्ति और उनका प्रतिकार	३८४

मण्डल योनि:

१	राजा के मन्त्री आदि के गुणों का वर्णन	३६०	२-३	शांति और उद्योग की विधि	३६२
---	---------------------------------------	-----	-----	-------------------------	-----

षाड गुण्य

१-२	वृद्धि और क्षय का वर्णन	३६८	३-६	शत्रु के साथ युद्ध और सन्धि	४०५
१०-११	भूमि सन्धि का वर्णन	४३४	१२	कर्म सन्धि	४६३
१३	आक्रमणकारी राजा का कर्तव्य	४५७	१४	अपनी हीन शक्ति को पूरा करने का उपाय	४५७
१५	दुर्बल राजा और बलवान राजा	४६८	१६	पराजित राजा के साथ व्यवहार	४७३
			१७-१८	सन्धि विषयक वर्णन	४७७

न्यसनाधिकारिक

१	राजा पर आने वाली विपत्तियों का वर्णन	४६०	२	राज्य पर आने वाले संकट	४६६
४	राष्ट्र की पीड़ा-राज्य कोश का वर्णन	५०५	३	पुरुषों पर विपत्तियाँ	४६६
			५	अपनी सेना और मित्रों पर आने वाला संकट	५१२

अभियास्यत्कर्म

१	बल और निर्बलता का वर्णन	५२०	२	सेना की तय्यारी	५२५
४	सेना का नाश, धन धान्य की हानि	५३६	३	विजय यात्रा के लिए चढ़ाई	५३०
७	संशय	५५१	५	बाहरी और भीतरी आपत्तियाँ	५४०
			६	दुष्ट प्रजाजन और शत्रुओं का प्रतिकार	५४८

सांग्रामिकं

१	सेना की छावनी	५६१	२	सेना का प्रस्थान	५६८
---	---------------	-----	---	------------------	-----

विषय	पृष्ठ	अध्याय	विषय	पृष्ठ
सेना को प्रोत्साहन	५६७	४-५	युद्ध के योग्य भूमि, हाथी, अश्व	
दण्ड व्यूहों एवं प्रति व्यूहों			रथ आदि के कार्यों का वर्णन	५७१
का वर्णन	५८४			

संघ वृत्त

भेद के प्रयोग और गुप-चुप मारण के उपायों का वर्णन	५८७
--	-----

आवलीयसं

राजदूत के कर्मों का वर्णन	५९४	२	बुद्धिमत्ता से युद्ध करने के उपाय	
शत्रु के सेनापतियों के वध		५	शत्रु सेना को अनेक उपायों से	
का दण्ड	६०१		वश में करना	६०६

दुर्गलिम्भोपाय

शत्रु के दुर्गों को प्राप्त		२	शत्रु को कपट द्वारा दुर्ग से बाहर	
करने का उपाय	६१५		निकालना	६१६
गुप्तचरों (C. I. D.) को		४	शत्रु के दुर्ग पर अधिकार करना	६२०
शत्रु के देश में रखने का		५	जीते हुए प्रान्तों में शांति स्थापना	
वर्णन	६२४		करना	६३८

औपनिषदिक

शत्रु के मारण लिए औष-		२	औषधियों से भूख प्यास नष्ट करने	
धियों के प्रयोगों का वर्णन	६४१		आकृति बदलने या आकृति परिवर्तन	
अद्भुत औषधियों और			द्वारा, शत्रु को भूल भुलैया में डालने	
मन्त्रों का वर्णन	६५४		का वर्णन	६५८
शत्रु द्वारा किये गए आघा-				
तों का प्रतीकार	६६४			

तन्त्र युक्ति

अर्थ शास्त्र के शब्दों की परिभाषा	६६७
-----------------------------------	-----

चाणक्य प्रणीत सूत्रम्

६७४ से ६६६ तक

* इति *



कौटलीय अर्थशास्त्र

✽ विनयाधिकारिक-प्रथम अधिकरण ✽

पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्तावितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम् ॥ १ ॥ तस्येयं प्रकरणाधिकरण-समुद्देशः ॥ २ ॥

प्राचीन आचार्यों ने पृथिवी के जीतने और पालन के उपायों से परिपूर्ण जितने अर्थशास्त्र (नीति शास्त्र) लिखे हैं, प्रायः उन सबका सार लेकर इस एक अर्थशास्त्र का निर्माण किया जाता है। अब हम सब से प्रथम इस अर्थशास्त्र के प्रकरणों को गिनाते हैं ॥१-२॥

विद्यासमुद्देशः ॥३॥ वृद्धसंयोगः ॥ ४ ॥ इन्द्रियजयः ॥ ५ ॥ अमात्योत्पत्तिः ॥ ६ ॥ मन्त्रिपुरोहितोत्पत्तिः ॥ ७ ॥ उपधाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानाम् ॥ ८ ॥ गूढपुरुषोत्पत्तिः ॥ ९ ॥ गूढपुरुषप्रणिधिः ॥ १० ॥ स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणम् ॥ ११ ॥ परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः ॥ १२ ॥ मन्त्राधिकारः ॥ १३ ॥ दूतप्रणिधिः ॥ १४ ॥ राजपुत्ररक्षणम् ॥ १५ ॥ अवरुद्धवृत्तम् ॥ १६ ॥ अवरुद्धे च वृत्तिः ॥ १७ ॥ राजप्रणिधिः ॥ १८ ॥ निशान्तप्रणिधिः ॥ १९ ॥ आत्मरक्षितकम् ॥ २० ॥ इति विनयाधिकारिकं प्रथममधिकरणम् ॥ २१ ॥

इस शास्त्र के प्रथम अधिकरण का नाम विनयाधिकारिक है। विशेष (खास २) नीति का आश्रय लेकर - जिस प्रकरण में शिक्षा के महत्व का आरम्भ किया गया हो, उसे विनयाधिकारिक कहते हैं। इसमें बीस प्रकरण हैं। प्रथम प्रकरण का नाम विद्या समुद्देश

है। इसमें जितनी विद्या हैं, उन सब का संक्षेप में विचार किया गया है। दूसरा बृद्ध संयोग नाम का प्रकरण है। इसमें विद्वान् पुरुषों की संगति के लाभ का विवेचन है। तीसरे में ब्राह्मणों के विजय, चतुर्थ में अमात्या (राज्य प्रबन्धकों) का वर्णन, पांचवें में मन्त्री और पुरोहितों का विवेचन, छठे में अमात्या के हृदय के भावों का छुपकर पता लगाना, सातवें में गुप्तचरों की स्थापना का प्रकार, आठवें में गुप्तचरों के काय का विवेचन, नवें में अपने देश के शत्रु के वश में आने और नहीं आने वाले पुरुषों की दशा, दशवें में शत्रु पक्ष के ऐसे ही पुरुषों का तोड़ना फोड़ना, ग्यारहवें में मन्त्रणा, बारहवें में दूत विवेचन, तेरहवें में राजपुत्रों से राजा की रक्षा, चौदहवें में अवरुद्ध (कैद में, डाले हुए) कुमारों के वृत्तान्त, पन्द्रहवें में उनके साथ व्यवहार, सोलहवें में राजा के कर्तव्य, सत्रहवें में राज भवन के मन्वन्ध में राजा के कर्तव्य, अठारहवें में अन्य पुरुषों में राजा की रक्षा के प्रकारों का वर्णन किया है। इस प्रकार प्रथम विनयाधिकारिक नामक अधिकरण का विचार है ॥३८॥

जनपदविनिवेशः ॥ २२ ॥ भूमिच्छिद्रविधानम् ॥ २३ ॥ दुर्गविधानम् ॥ २४ ॥ दुर्गविनिवेशः २५ ॥ संनिधाननिचयकर्म ॥ २६ ॥ समारहर्तृ समुदयप्रस्थापनम् ॥ २७ ॥ अक्षपटले गणनिक्याधिकारः ॥ २८ ॥ समुदयस्य युक्तापहतस्य प्रत्यानयनम् ॥ २९ ॥ उपयुक्तपरीक्षा ॥ ३० ॥ शाननाधिकारः ॥ ३१ ॥ कोशप्रवेश्यरत्नपरीक्षा ॥ ३२ ॥ आकृतकर्मान्प्रवर्तनम् ॥ ३३ ॥ अक्षशालायां सुवर्णाध्यक्षः ॥ ३४ ॥ विशिखायां मैथिलिकप्रचारः ॥ ३५ ॥ कोष्ठागाराध्यक्षः ॥ ३६ ॥ पण्याध्यक्षः ॥ ३७ ॥ कुप्याध्यक्षः ॥ ३८ ॥ आयुधागाराध्यक्षः ॥ ३९ ॥ तुलामानपौनवम् ॥ ४० ॥ देशकालमानम् ॥ ४१ ॥ शुल्काध्यक्षः ॥ ४२ ॥ सूत्राध्यक्षः ॥ ४३ ॥ रीताध्यक्षः ॥ ४४ ॥ सुराध्यक्षः ॥ ४५ ॥ मृत्नाध्यक्षः ॥ ४६ ॥ गणिकाध्यक्षः ॥ ४७ ॥ नावध्यक्षः ॥ ४८ ॥ गोऽध्यक्षः ॥ ४९ ॥ अर्थाध्यक्षः ॥ ५० ॥ हस्त्यध्यक्षः ॥ ५१ ॥ रथाध्यक्षः ॥ ५२ ॥ पत्न्यध्यक्षः ॥ ५३ ॥ सेनापतिप्रचारः ॥ ५४ ॥ मृद्राध्यक्षः ॥ ५५ ॥ विवीताध्यक्षः ॥ ५६ ॥ समारहर्तृप्रचारः ॥ ५७ ॥ गृहपतिवैदेहकनापसच्यञ्जनाः प्रणिधयः ॥ ५८ ॥ नागरिकप्रणिधिः ॥ ५९ ॥ इत्यध्यक्षप्रचारा द्वितीयमधिकरणम् ॥ ६० ॥

दूसरा अध्यक्ष प्रचार नामका अधिकरण है। जिसमें अध्यक्षों (अकसरों) के कर्तव्यों का विवेचन है। इसमें अड़तीस प्रकरण हैं। पहला देशों के बसाने, दूसरा-उपर भूमि के उपजाऊ बनाने, तीसरा-दुर्ग (किले) बनाने, चौथा-दुर्ग में भवन रचना का प्रकरण है पांचवें में कोशाध्यक्ष

(खजानची) के कर्म, छठे में कर वसूल करने वाले अध्यक्ष (कलक्टर) का वर्णन है। सातवें में हिसाबके दफ्तरका विवेचन है। आठवें में कोश (खजाने) की पड़ताल, नवें-में छोटे मोटे अधिकारियों की परीक्षा, दशवें में-शासन के अधिकार, ग्यारहवें-में कोश में प्रविष्ट करने योग्य रत्नों का परीक्षण, बारहवें में आकर (खानों) के कार्यों का सञ्चालन, तेरहवें में धातुओं के गलाने शोधने के कार्यालय का विचार, चौदहवें में सराफे के बाजार का निरूपण, पन्द्रहवें में अन्न आदि खाद्य पदार्थों के संग्रह का विचार, और सोलहवें प्रकरण में बेचने खरीदने की वस्तुओं के अध्यक्ष का विवेचन है। सत्रहवें प्रकरण में लकड़ी के अद्वारहवें में शस्त्रों के अध्यक्ष का वर्णन है। उन्नीसवें में नाप-तोल के कार्यालयाध्यक्ष का वर्णन, बीसवें में देशकाल के भान का विवेचन, इक्कीसवें में चुंगी आदि टैक्सों का वर्णन, बाइसवें में सूत, तेईसवें में कृषि, चौबीसवें में सुरा, (शराब) पच्चीसवें में फांसी, छव्वीसवें में वेश्या, सत्ताईसवें में नौका के अध्यक्ष का निरूपण है। अठ्ठाईसवें में गौ, उनतीसवें में अश्व, तीसवें में हाथी, इक्तीसवें में रथ, बत्तीसवें में पैदल सैनिक, तैंतीसवें में सेनापति, चौँतीसवें में टकसाल, पैंतीसवें में पशुओं के चरने को छोड़ने की भूमि के अध्यक्ष का वर्णन है। छत्तीसवें में सारी आयव्यय के अध्यक्ष, सैतीसवें में गृहपति साधु आदि के वेश में रहने वाले गुप्तचर, और अड़तीसवें प्रकरण में नगर की रक्षा में नियुक्त अध्यक्ष (मजिस्ट्रेट) का वर्णन है। इस प्रकार यह अध्यक्ष प्रचार नाम का दूसरा अधिकरण है ॥२२-६०॥

व्यवहारस्थापना विवादपदनिबन्धः ॥ ६१ ॥ विवाहसंयुक्तम् ॥ ६२ ॥
 दायविभागः ॥ ६३ ॥ वास्तुकम् ॥ ६४ ॥ समयस्यानपाकर्म ॥ ६५ ॥
 ऋणादानम् ॥ ६६ ॥ औपनिधिकम् ॥ ६७ ॥ दासकर्मकरकल्पः ॥ ६८ ॥
 संभूयसमुत्थानम् ॥ ६९ ॥ विक्रीतक्रीतानुशयः ॥ ७० ॥ दत्तस्यानपाकर्म
 ॥ ७१ ॥ अस्वामिविक्रयः ॥ ७२ ॥ स्वस्वामिसंबन्धः ॥ ७३ ॥ साहसम्
 ॥ ७४ ॥ वावपारुष्यम् ॥ ७५ ॥ दण्डपारुष्यम् ॥ ७६ ॥ द्यूतसमाह्वयम्
 ॥ ७७ ॥ प्रकीर्णकानि ॥ ७८ ॥ इति धर्मस्थीयं तृतीयमधिकरणम् ॥ ७९ ॥

तीसरा धर्मस्थीय अधिकरण है। धर्मस्थानाम न्यायाधीशों (जजों) का है। इनके अधिकारों की इसमें व्यवस्था है। प्रथम प्रकरण में व्यवहारों (मुकदमों) की स्थापना और विवाद (झगड़ों) का निर्णय है। दूसरे प्रकरण में विवाह के धर्म और स्त्री धन के विषय का विवेचन है। तीसरे में दाय भाग (वटवारा) है। चौथे में जमीन बाग आदि के व्यवहारों का वर्णन है। पांचवे में अपनी २ प्रतिज्ञा के विषय में निर्णय है।

छठे में ऋण (कर्जा) लेना, सातवें में धरोहर, आठवें में दासप्रथा का निषेध, नवें में ठेकेदारी, दशवें में क्रयविक्रय के नियम, ग्यारहवें में प्रतिष्ठा किये हुए धन का न देना बारहवें में स्वामी न होने पर भी वस्तु के बेच देने का वर्णन है। तेरहवें में स्वस्वामि सम्बन्ध अर्थात् कब्जे का निरूपण है। चौदहवें में साहस (हाका) का पन्द्रहवें में गालीगलौच के अभियोग, सोलहवें में मारपीट, सत्रहवें में मृत (जुआ) अट्ठारहवें में फुटकर विषय हैं। इस प्रकार यह अधिकरण समाप्त होता है ॥६१-७६॥

कारुकरक्षणम् ॥ ८० ॥ वैदेहकरक्षणम् ॥ ८१ ॥ उपनिपातप्रतिकारः ॥ ८२ ॥ गूढाजीविनां रक्षा ॥ ८३ ॥ सिद्धव्यञ्जनैर्मणिप्रकाशनम् ॥ ८४ ॥ शङ्कारूपकर्माभिग्रहः ॥ ८५ ॥ आशुमृतकपरीक्षा ॥ ८६ ॥ वाक्यकर्मानुयोगः ॥ ८७ ॥ सर्वाधिकरणरक्षणम् ॥ ८८ ॥ एकाङ्गवधनिष्क्रयः ॥ ८९ ॥ शुद्धधिः त्रश्च दण्डकल्पः ॥ ९० ॥ कन्याप्रकर्म ॥ ९१ ॥ अतिचारदण्डः ॥ ९२ ॥ इति कण्टकशोधनं चतुर्थमधिकरणम् ॥ ९३ ॥

चौथे अधिकरण का नाम कण्टक शोधन अधिकरण है। प्रजा को पीड़ा पहुंचाने वाले दुष्टों का नाम कण्टक है। उनका निवारण कण्टक शोधन कहा जाता है। इसके पहले प्रकरण में शिलियों से प्रजा की रक्षा का विधान है। दूसरे में व्यापारियों से प्रजा की रक्षा का वर्णन है। तीसरे में दैवी आपत्तियों का उपाय, चौथे में छुपे हुए प्रजा पीड़कों का प्रतीकार पांचवें में सिद्ध पुरुषों के वेष में रह कर दुष्टों का प्रकाशन, छठे में चोरों के ऊपर सन्देह आदि का निरूपण है। सातवें में आशुमृतक (मृतक शरीर की परीक्षा) का, आठवें में अपराधी के वयान आदि लेने का विचार है। नवें में सारे अधिकारियों की देख भाल, दशवें में चोर जारों के एक अङ्ग काटने की व्यवस्था, ग्यारहवें में लड़ाई भगड़े में मार डालने वाले के वध (फांसी) आदि का निर्णय, बारहवें में कन्या के दूषित करने के दण्ड की व्यवस्था, तेरहवें में अभक्ष्यादि वस्तु खिलाने के दण्ड का विचार है। इस प्रकार इस चौथे अधिकरण की समाप्ति की गई है ॥८०-९३॥

दाण्डकर्मिकम् ॥ ९४ ॥ कोशाभिसंहरणम् ॥ ९५ ॥ भृत्याभरणायम् ॥ ९६ ॥ अनुजीविवृत्तम् ॥ ९७ ॥ सामयाचारिकम् ॥ ९८ ॥ राज्यप्रतिसंधान-मेकैश्वर्यम् ॥ ९९ ॥ इति योगवृत्तं पञ्चममधिकरणम् ॥ १०० ॥

पांचवें अधिकरण का नाम योगवृत्त है। राजा के आराधन के प्रकार या उपाय का योग कहते हैं, इसमें राजा के अपराधियों के दण्ड का विधान है। इसके पहले प्रकरण

में राजा और उसके राज्य के कण्टकों के दण्ड का प्रयोग है । दूसरे में कौश संप्रह, तीसरे में भृत्यों (नौकरों) के भरण पोषण की व्यवस्था, चौथे में मन्त्री आदि राज्य कर्मचारियों का आचार, पांचवें में राज्य शासन का पालन, छठे में राज्य के ऐश्वर्य की वृद्धि और आपत्ति के प्रतीकार का वर्णन है । इस तरह इस अधिकरण को समाप्त किया है ॥६४-१००॥

प्रकृतिसंपदः ॥ १०१ ॥ शमव्यायामिकम् ॥ १०२ ॥ इति मण्डलयोनिः
षष्ठमधिकरणम् ॥ १०३ ॥

इसके अनन्तर मण्डलयोनि नामक अधिकरण है । राज्य के सभासदों को मण्डल कहते हैं । इनके गुणों का इस अधिकरण में वर्णन है । इसके प्रथम प्रकरण में अमात्य आदि प्रकृतियों के गुण तथा दूसरे में शान्ति और उद्योग का वर्णन है । इस तरह यह मण्डल योनि नाम का अधिकरण समाप्त होता है ॥१०१-१०३॥

पाङ्गुण्यसमुद्देशः क्षयस्थानवृद्धिनिश्चयः ॥ १०४ ॥ संश्रयवृत्तिः ॥ १०५ ॥
समहीनज्यायसांगुणाभिनिवेशः हीनसंधयः ॥ १०६ ॥ विगृह्यासनम् संधायासनम्
विगृह्य यानम् संधाय यानम् संभूय प्रयाणम् ॥ १०७ ॥ यातव्या मित्रयोरभिग्रहचिन्ता
क्षयलोभविरागहेतवः प्रकृतीनां सामवायिकविपरिमर्शः ॥ १०८ ॥ संहितप्रयाणिकम्
परिपणितापरिपणितापसृताश्च संधयः ॥ १०९ ॥ द्वैधीभाविकाः संधिविक्रमाः
॥ ११० ॥ यातव्यवृत्तिः अनुग्राह्यमित्रविशेषाः ॥ १११ ॥ मित्रहिरण्यभूमिकर्म-
संधयः ॥ ११२ ॥ पार्ष्णिग्राहचिन्ता ॥ ११३ ॥ हीनशक्तिपूरणम् ॥ ११४ ॥
बलवता विगृह्योपरोधहेतवः दण्डोपनतवृत्तम् ॥ ११५ ॥ दण्डोपनायिवृत्तम्
॥ ११६ ॥ संधिकर्म संधिमोक्षः ॥ ११७ ॥ मध्यमचरितम् उदासीन चरितम्
मण्डलचरितम् ॥ ११८ ॥ इति पाङ्गुण्यं सप्तममधिकरणम् ॥ ११९ ॥

सातवां अधिकरण पाङ्गुण्य नामक है । सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधी भाव का इसमें वर्णन है, इससे इस अधिकरण का पाङ्गुण्य नाम रखा है । इसके पहले प्रकरण में छः गुणों का उद्देश क्षय, स्थान और वृद्धि का निश्चय है । दूसरे में अन्य राजा का आश्रय, तीसरे में समहीन और अधिक बलशाली शत्रु के साथ व्यवहार, चौथे में आसन और यान का वर्णन, पांचवें में यान विषयक विचार, प्रकृति (अमात्य आदि) के क्षय, लोभ, और विराग के हेतु तथा विजेता अनुचरों का विवेचन है । छठे में एक साथ चढ़ाई और देश आदि के विचार की शर्त के साथ की जाने वाली सन्धियों का विवेचन है । सातवें में द्वैधीभाव-शत्रु की तोड़ फोड़ और सन्धि-विक्रम का वर्णन किया गया है ।

आठवें में जिस पर चढ़ाई की जाने वाली है, उसके साथ व्यवहार तथा अनुग्रह के योग्य मित्रों के व्यवहार का उल्लेख है। नवें में मित्र, सुवर्ण, भूमि और दुर्ग आदि के विषय की सन्धि का वर्णन है। दशवें में अपने पृष्ठ स्थित शत्रु का वर्णन है। ग्यारहवें में हीन हुई शक्ति का पूर्ण करना, बारहवें में प्रबल शत्रु के साथ विरोध होने पर कर्तव्य, तेरहवें में विजित शत्रु के साथ व्यवहार, चौदहवें में सन्धि रखने तोड़ने का वर्णन है। पन्द्रहवें में मध्यम, उदासीन और अन्य राज मण्डल के साथ किये जाने वाले व्यवहार की विवेचना है। इस प्रकार यह सातवां अधिकरण समाप्त होता है ॥१०४-११६॥

प्रकृतिव्यसनवर्गः ॥ १२० ॥ राजराज्ययोर्व्यसनचिन्ता ॥ १२१ ॥
पुरुषव्यसनवर्गः पीडनवर्गः स्तम्भनवर्गः कोशसंगवर्गः ॥ १२२ ॥ बलव्यसनवर्गः
मित्रव्यसनवर्गः ॥ १२३ ॥ इति व्यसनाधिकारिकमष्टममधिकरणम् ॥१२४ ॥

आठवें अधिकरण का नाम व्यसनाधिकारिक है। इसमें सब प्रकार के व्यसनो (संकटों) का वर्णन है। इसके प्रथम प्रकरण में प्रकृति (अमात्यादि) के व्यसन, दूसरे में राजा और राज्य विषयक चिन्ता, तीसरे में पुरुषों के व्यसन, पीडन वर्ग, (द्वेषी आदि आपत्ति) कर द्रव्य का राजा तक और कोश तक न पहुंचने देने का वर्णन है। चौथे में सेना के संकट, मित्रों के संकटों का विचार है। इस प्रकार इस अधिकरण की समाप्ति हो जाती है ॥१२०-१२४॥

शक्तिदेशकालबलावलज्ञानम् यात्राकालाः ॥ १२५ ॥ बलोपादानकालाः
संनाहगुणाः प्रतिबलकर्म ॥ १२६ ॥ पश्चात्कोपचिन्ता बाह्याभ्यन्तरप्रकृतिकोप-
प्रतीकारः ॥ १२७ ॥ क्षयव्ययलाभविपरिमर्शः ॥ १२८ ॥ बाह्याभ्यन्तराश्वापदः
॥ १२९ ॥ दूष्यशत्रुसंयुक्ता ॥ १३० ॥ अर्थानर्थसंशययुक्ताः तासामुपाय
विकल्पजाः सिद्धयः ॥ १३२ ॥ इत्यभियास्यत्कर्म नवममधिकरणम् ॥ १३२ ॥

इसके अनन्तर अभियास्यत्कर्म नाम का नौवां अधिकरण है। दूसरे देश पर आक्रमण करने की अभियास्यत्कर्म कहते हैं। इसके पहिले प्रकरण में उत्साह आदि शक्ति देश काल आदि के बलावल का विचार है। दूसरे में सेना की तय्यारी, उद्योग और शत्रु सेना के अनुकूल शक्ति प्राप्त करने के उपायों का वर्णन है। तीसरे में आक्रमण के अनन्तर पीछे रह जाने वाले शत्रुओं के कोप, तथा बाह्य और अन्तर प्रकृति (अमात्य) आदि के प्रतीकार का विवेचन है। चौथे में हानि, व्यय और लाभ का विचार है। पांचवें में बाहर भीतर की आपत्ति, छठे में अपने ही दूषित मनुष्य और शत्रु द्वारा उत्पन्न होने वाली आपत्तियों का विचार है। सातवें में हिरण्य भूमि शरीर के नाश की आपत्तियां

के प्रतीकार में साम आदि उपायों द्वारा होने वाली सिद्धियों का वर्णन है। इस तरह यह सातवां अधिकरण पूरा हुआ ॥१२५-१३२॥

स्कन्धावारनिवेशः ॥ १३३ ॥ स्कन्धावारप्रयाणम् ॥ १३४ ॥ बलव्यस-
नावस्कन्दकालरक्षणम् ॥ १३५ ॥ कूटयुद्धविकल्पाः ॥ १३६ ॥ स्वसैन्योत्साहनम्
॥ १३७ ॥ स्वबलान्यबलव्यायोगः ॥ १३८ ॥ युद्धभूमयः पन्थश्चरथहस्तिकर्माणि
॥ १३९ ॥ पक्षकक्षोरस्यानां बलाग्रतो व्यूहविभागः सारफाल्गुबलविभागः पन्थ-
श्चरथहस्तियुद्धानि ॥ १४० ॥ दण्डभोगमण्डलासंहतव्यूहव्यूहनम् तस्य प्रतिव्यूह-
स्थानम् ॥ १४१ ॥ इति सांग्रामिकं दशममधिकरणम् ॥ १४२ ॥

दशवें अधिकरण का नाम सांग्रामिक है। इसमें संग्राम का विषय है, इसके पहले प्रकरण में सिविर (छावनी) डालने के ढंग, दूसरे में सेना के सञ्चालन, और तीसरे में सेना को कष्टों से बचाने के उपायों तथा घेरा डालने के समय का वर्णन है। चौथे में कूट (छल) युद्ध का वर्णन, पांचवें में अपनी सेना को उत्साहित करने के ढंग, छठे में अपनी और शत्रु की सेना की व्यूह रचना का विवेचन है। सातवें में युद्ध भूमि और पैदल सैनिक, अश्व, रथ और हाथियों के कार्यों का विवेचन है। आठवें प्रकरण में पक्ष कक्ष आदि व्यूह (दुर्ग रचना) शक्तिशाली और शक्ति हीन सेना का विभाग, पैदल, हाथी रथ और अश्वों के युद्ध की प्रक्रिया का वर्णन है। नवें में दण्डादि व्यूह तथा इनके प्रतिपक्ष के व्यूहों का वर्णन है। इस तरह यह सांग्रामिक दशवां अधिकरण समाप्त होता है ॥१३३-१४२॥

भेदोपादानानि उपांशुदण्डः ॥ १४३ ॥ इति सङ्घवृत्तमेकादशमधि-
करणम् ॥ १४४ ॥

ग्यारहवें अधिकरण का नाम सङ्घवृत्त है। सेना की टुकड़ी बनाकर संगठित रहने को सङ्घ कहा जाता है। इसी से इसका नाम सङ्घवृत्त है। इसके पहले प्रकरण में सङ्घ के टुकड़े करने तथा छुपकर मारने के उपायों का निरूपण किया है। इस तरह यह ग्यारहवां अधिकरण यहीं समाप्त हो जाता है ॥१४३-१४४॥

दूतकर्म ॥ १४५ ॥ मन्त्रयुद्धम् ॥ १४६ ॥ सेनामुख्यवधः मण्डल-
ग्रोत्साहनम् ॥ १४७ ॥ शस्त्राग्निरसप्रणिधयः वीवधासार प्रसारवधः ॥ १४८ ॥
योगातिसंधानम् दण्डातिसंधानम् एकविजयः ॥ १४९ ॥ इत्यावलीयसं द्वादशम-
धिकरणम् ॥ १५० ॥

इसके अनन्तर आवलीयस नामक बारहवां अधिकरण है। बलवान् शत्रु के आक्रमण करने को आवलीयस कहते हैं इसी आधार पर इस अधिकरण का यह नाम है। इसके पहले प्रकरण में दूत के कर्म, दूसरे में बुद्धि पूर्वक युद्ध, तीसरे में सेनापतियों के वध और अपने मित्र राजाओं के मण्डल प्रोत्साहन का वर्णन है। चौथे में शस्त्र, अग्नि, विष आदि के प्रयोग, धान्य आदि की प्राप्ति, मित्र सेना की सहायता तथा लकड़ी घास आदि के पहुँचाने के प्रकार का वर्णन है। पाँचवें में शत्रु के कपट से जीतने के उपाय, दूसरे में सेनाओं के वश में करने तथा अकेले विजेता को किस ढंग से चलाना चाहिए इत्यादि बातों का वर्णन है। इस तरह यह बारहवां अधिकरण समाप्त होता है ॥१४५-१५०॥

उपजापः ॥ १५१ ॥ योगवामनम् ॥ १५२ ॥ अपसर्पप्रणिधिः ॥ १५३ ॥
पयुपासनकर्म अवमर्दः ॥ १५४ ॥ लब्धप्रशमनम् ॥ १५५ ॥ इति दुर्गलम्भो-
पायस्त्रयोदशमधिकरणम् ॥ १५६ ॥

तेरहवें अधिकरण का नाम दुर्गलम्भोपाय है। शत्रु के दुर्गों (किलों) को कैसे हथियाया जावे-यही इस अधिकरण में वर्णित है। इसके प्रथम प्रकरण में फूट डालने के उपायों का उल्लेख है। दूसरे में कपट से शत्रु को दुर्ग से बाहर कर देना, तीसरे में, गुप्तचरों का शत्रु के देश में रखना, चौथे में घेरा डालने के अनन्तर के कर्तव्य, तथा शत्रु के दुर्ग पर अधिकार करने के समय का निरूपण है। पाँचवें प्रकरण में जीते हुए देश में कैसे शान्ति स्थापन करे-इस विषय का विवेचन किया गया है। इस प्रकार यह तेरहवां दुर्ग लम्भोपाय नामक अधिकरण समाप्त होता है ॥१५१-१५६॥

परघातप्रयोगः ॥ १५७ ॥ प्रलम्भनम् ॥ १५८ ॥ स्ववलोपघातप्रतीकारः
॥ १५९ ॥ इत्यौपनिषदिकं चतुर्दशमधिकरणम् ॥ १६० ॥

चौदहवें अधिकरण का नाम औपनिषदिक अधिकरण है। इस अधिकरण में औषध और मन्त्रों के रहस्यों का वर्णन है। इसके प्रथम प्रकरण में औषध द्वारा शत्रु के प्रवञ्चन तथा तीसरे में शत्रु द्वारा किये गए मारण प्रयोगों के प्रतीकार का वर्णन है। इस प्रकार यह अधिकरण भी समाप्त हो जाता है ॥१५७-१६०॥

तन्त्रयुक्तयः ॥ १६१ ॥ इति तन्त्रयुक्तिः पञ्चदशमधिकरणम् ॥ १६२ ॥

इसके अनन्तर पन्द्रहवां अधिकरण तन्त्र युक्ति नाम का है। तन्त्र नाम शास्त्र का है। इसमें अर्थशास्त्र के निर्णय की उपयोगी युक्तियों का विवेचन है। इसमें एक ही तन्त्र युक्ति नाम का प्रकरण है। इस तरह यह अधिकरण समाप्त होता है ॥१६१-१६२॥

शास्त्रसमुद्देशः पञ्चदशाधिकरणानि सपञ्चाशदध्यायशतं साशीति प्रकरणशतं
षट्श्लोकसहस्राणीति ॥ १६३ ॥

इस प्रकार अर्थशास्त्र की संख्या का निर्णय किया जावे, तो इसमें पन्द्रह अधिकरण एकसौ पचास अध्याय, एकसौ अस्सी प्रकरण और छः सहस्र श्लोक हैं। अक्षरों की गणना से श्लोक संख्या का निर्णय किया है ॥१६३॥

सुखग्रहणविज्ञेयं तत्त्वार्थपदनिश्चितम्

कौटिल्येन कृतं शास्त्रं विमुक्तग्रन्थविस्तरम् ॥ १६४ ॥

यह अर्थशास्त्र बड़ा ही सरल और सुख से समझा जा सकता है। इसमें तत्व वस्तु के वर्णनों को नहीं छोड़ा गया है और न व्यर्थ का विस्तार ही किया गया है। इस अर्थशास्त्र को कौटिल्य (चाणक्य) ने बना कर विद्वानों के अध्ययन के लिए प्रस्तुत किया है ॥

इति श्रीकौटिलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में राजवृत्तिनाम

का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ।



दूसरा अध्याय

पहला प्रकरण

विद्या-समुद्देश

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः ॥ १ ॥ त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति मानवाः ॥ २ ॥ त्रयीविशेषो ह्यान्वीक्षिकीति ॥ ३ ॥

(आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति ये चार विद्या हैं) इनकी परिभाषा अभी आगे चलकर की गई है। (मनुजी के मत के मानने वाले, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति ये तीन ही विद्या मानते हैं। इन्होंने आन्वीक्षिकी विद्या को त्रयी विद्या के अन्तर्गत माना है ॥१-३॥)

वार्ता दण्डनीतिश्चेति बार्हस्पत्याः ॥ ४ ॥ संवरणमात्रं हि त्रयीलोकयात्रा विद इति ॥ ५ ॥ दण्डनीतिरेका विद्यत्यौशनसाः ॥ ६ ॥ तस्यां हि सर्वविद्यारम्भाः प्रतिबद्धा इति ॥ ७ ॥

(बृहस्पति आचार्य के मत में वार्ता और दण्ड नीति दो ही विद्या है। ये आचार्य चार्वाक मतानुयायी हैं) लोक मात्र की यात्रा के मानने वाले लौकायतिक त्रयी (वेद) विद्या को केवल आडम्बर मानते हैं। (शुक्राचार्य के अनुगामी केवल दण्ड नीति को ही विद्या मानते हैं) उन्होंने उपर्युक्त चारों विद्याओं का केवल दण्डनीति में ही अन्तर्भाव कर लिया है। राज्य व्यवस्था के शान्ति से चलने पर ही सारी विद्याओं के व्यवहार की सिद्धि है, इसी से केवल दण्ड नीति विद्या है ऐसा माना है ॥४-७॥

चतस्र एव विद्या इति कौटल्यः ॥ ८ ॥ तामिधर्मार्थौ यद्विद्यात्तद्विद्यानां
विद्यात्वम् ॥ ९ ॥ सांख्यं योगो लोकायतं चेत्यान्वीक्षकी ॥ १० ॥

आचार्य चाणक्य तो पूर्वोक्त आन्वीक्षकी आदि चारों विद्याओं को मानते हैं। जिससे धर्म और अधर्म का ज्ञान हो उसे विद्या कहते हैं। इन चारों विद्याओं के बिना लोक और परलोक की उन्नति के साधनों का ज्ञान नहीं हो सकता है, इसी से चार ही विद्या माननी उचित हैं। सांख्य अर्थात् सारे दर्शन शास्त्र, योग अर्थात् उपासना शास्त्र और लोकायत अर्थात् नास्तिक दर्शन ये सब आन्वीक्षकी विद्या के अन्तर्गत हैं ॥८-१०॥

धर्माधर्मौ त्रय्यामर्थानिधौ वार्तायां नयापनयौ दण्डनीत्याम् ॥ ११ ॥

त्रयीविद्या-वेदविद्या को कहते हैं, इसमें धर्म अधर्म की व्यवस्था है। वार्ता में कृषि आदि का कथन है। इसमें धन और धनभाव के साधनों की चर्चा है। दण्ड नीति में राजनीति और दुर्नीति का वर्णन है ॥११॥

बलावले चैतासां हेतुभिरन्वीक्षमाणा लोकस्योपकरोतिव्यसनेऽभ्युदये च
बुद्धिमवस्थापयति प्रज्ञावाक्यक्रियावैशारद्यं च करोति ॥ १२ ॥

इन विद्याओं की सार्थक निर्यक्ता की हेतु बाधों से सिद्धि करके संसार का उपकार करना, विपत्ति और सम्पत्ति में बुद्धि को ठीक २ रखना, बुद्धिमत्ता, वाक्चतुरी क्रिया कुशलता आदि सम्पादन करना आन्वीक्षकी विद्या का कार्य है।

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम् ।

आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षकी मता ॥ १२ ॥

यह आन्वीक्षको (विज्ञान शास्त्र) विद्या, सब विद्याओं की दीपक, सब कार्यों की साधन और सब धर्मों की सर्वदा आश्रय भूत मानी जाती है ॥१२॥

इति श्रीकौटिलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक प्रथममधिकरण में दूसरा
अध्याय समाप्त हुआ ।

तीसरा अध्याय

त्रयी स्थापना

सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी ॥ १ ॥ अथर्ववेदेतिहासवेदौ च वेदाः ॥ २ ॥ शिक्षा
कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दोविचितिज्योतिषमिति चाङ्गानि ॥ ३ ॥

साम, ऋक् और यजुर्वेद इन तीन वेदों को त्रयी विद्या कहते हैं। अथर्ववेद और इतिहासवेद की वेदसंज्ञा है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त छन्दशास्त्र और ज्योतिष ये वेद के अङ्ग हैं। वेद के उच्चारण की प्रक्रिया को शिक्षा कहते हैं। इसके रचने वाले पाणिनी आदि मुनि हैं। वैदिक यज्ञ याग की विधि के बताने वाले ग्रन्थ कल्प कहाते हैं, जिनके रचयिता कात्यायन आदि हैं, वैदिक कोष की निरुक्ति करने वाले निरुक्त ग्रन्थ के कर्ता यास्कमुनि थे। छन्दशास्त्र के पिङ्गल और ज्योतिष के भास्कराचार्य आदि हैं ॥१-३॥

एष त्रयीधर्मश्चतुर्णां वर्णानामाश्रमाणां च स्वधर्मस्थापनादौपकारिकः
॥ ४ ॥ स्वधर्मो ब्राह्मणस्याध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति ॥५॥
क्षत्रियस्याध्ययनं यजनं दानं शस्त्राजीवो भूतरक्षणं च ॥ ६ ॥ वैश्यस्या-
ध्ययनं यजनं दानं कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च ॥ ७ ॥ शूद्रस्य द्विजातिशुश्रूषा
वार्ता कारुकुंशीलवकर्म च ॥ ८ ॥

यह वेदत्रयी का धर्म चारों वर्ण और आश्रमों को अपने २ धर्म की व्यवस्था बतलाने के उपयोगी है। ब्राह्मण का अपना धर्म अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान देना और लेना है। क्षत्रिय का धर्म अध्ययन, यजन, दान, शस्त्र से जीविका करना और प्रजा की रक्षा करना है। वैश्य का धर्म अध्ययन, यजन, दान, कृषि, पशु पालन और वाणिज्य है। शूद्र का द्विजाति सेवा, कृषि पशु पालन आदि, तथा शिल्प और नट भाट का कार्य है ॥४-८॥

गृहस्थस्य स्वकर्मजीवस्तुल्यैरसमानर्पिभिर्वैवाह्यमृतुगामित्वं देवपित्रतिथि-
भृत्येषु त्यागः शेषभोजनं च ॥ ९ ॥ ब्रह्मचारिणः स्वाध्यायोऽग्निकार्याभिषेकौ
भेक्षत्रतत्वमाचार्ये प्राणान्तिकी वृत्तिस्तदभावे गुरुपुत्रे सव्रह्मचारिणि वा ॥१०॥
वानप्रस्थस्य ब्रह्मचर्यं भूमौ शय्या जटाजिनधारणमग्निहोत्राभिषेकौ देवतापित्रति-
थिपूजा वन्यश्वाहारः ॥ ११ ॥ परिव्राजकस्य संयतेन्द्रियत्वमनारम्भो निष्किंचनत्वं
सङ्गत्यागोभैक्ष मनैकत्रारण्ये वासो बाह्यमाभ्यन्तरं च शौचम् ॥ १२ ॥ सर्वेषाम-
हिंसा सत्यं शौचमनसूयानृशंस्यं क्षमा च ॥ १३ ॥

गृहस्थ का कार्य अपने २ धर्मके अनुसार जीविका करना, तुल्य तथा भिन्नगोत्र वाले ऋषि सन्तानों के साथ विवाह सम्बन्ध की स्थापना, तथा ऋतुकाल में स्त्री के साथ संगम करना, देव, पितृ, अतिथि और भृत्यों को देकर पीछे भोजन करना कर्तव्य है। स्वाध्याय हवन, स्नान, भिक्षावृत्ति, नैष्ठिक ब्रह्मचारी का आचार्य के पास आजीवन निवास, गुरु के न रहने पर गुरुपुत्र या साथी ब्रह्मचारी के पास रहना ब्रह्मचारी का कर्तव्य है। वानप्रस्थ का कर्तव्य ब्रह्मचर्य, भूमि में शयन, जटा और मृगचर्म धारण, अग्निहोत्र, स्नान, देवपितर और

अतिथि-पूजा तथा वन के अन्न का आहार है। इन्द्रियों को जीतना, किसी कर्म के फल में वासना न रखना, संग्रह न करना, स्त्रीसंग का त्याग, भिक्षा, अनेक स्थानों या वन में निवास और शरीर तथा मन की शुद्धि ये सन्यासी के कर्तव्य हैं। सन्यासी को किसी की हिंसा नहीं करनी चाहिए। सत्य शौच, ईर्ष्या, द्वेष और नीच विचार का त्याग तथा क्षमा करना चाहिए ॥६-१३॥

स्वधर्मः स्वर्गायानन्त्याय च ॥ १४ ॥ तस्यातिक्रमे लोकः संकरादुच्छिद्येत ॥ १५ ॥

अपने २ धर्म का पालन स्वर्ग और मोक्ष के लिए होता है। यदि कर्मों का लोप किया गया-तो वर्णसंकरता होकर संसार में उथल, पुथल मच जावेगी ॥१४-१५॥

तस्मात्स्वधर्मं भूतानां राजा न व्यभिचारयेत् ।

स्वधर्मं संदधानो हि प्रेत्य चेह च नन्दति ॥ १६ ॥

प्रत्येक मनुष्य को अपना कर्तव्य निभाना चाहिए, इससे राजा को प्रत्येक मनुष्य के धर्म निभाने की सततन्त्रता देनी चाहिए। राजा कभी वर्ण संकरता न होने दे। जो अपने कर्तव्य कर्म का निर्वाह करता है वह इस लोक और परलोक में सुखी होता है ॥१६॥

व्यवस्थितार्यमर्यादः कृतवर्णाश्रमस्थितिः ।

त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदति न सीदति ॥ १७ ॥

राजा द्वारा जब मर्यादा की स्थापना करदी गई और वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था करदी-तो इस प्रकार वैदिक धर्म द्वारा सुरक्षित होकर जगत् प्रसन्न रहता है, कभी पीड़ित नहीं होता ॥१७॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में त्रयी

स्थापन का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ।

चौथा अध्याय

वार्ता और दण्डनीति की स्थापना

कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता ॥ १ ॥ धान्यपशुहिरण्यकुप्यविष्टि प्रदानादौपकारिकी ॥२॥ तथा स्वपक्षं परपक्षं च वशीकरोति कोशदण्डाभ्याम् ॥३॥

कृषि, पशु पालन और व्यापार ये वार्ता कहाते हैं। धान्य, पशु, सुवर्ण, ताम्रादि अन्य धातु तथा सेवकों की प्राप्ति कराने के कारण वार्ता संसार का बड़ा उपकार करने वाली है। राजा भी इस वार्ता विद्या से उपार्जन किये हुए धन से कर आदि के द्वारा कोश

भरता है या दण्ड (जुर्माना) देने में समर्थ होता है । इस तरह राजा अपने और शत्रु पक्ष के लोगों के वश में रखने में समर्थ हो सकता है ॥१-३॥

आन्वीक्षिकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः ॥ ४ ॥ तस्य नीतिर्दण्ड नीतिः ॥ ५ ॥ अलब्धलाभार्था लब्धपरिरक्षणी रक्षितविवर्धनी वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी च ॥ ६ ॥

आन्वीक्षिकी, (न्याय विद्या) त्रयी (वेद विद्या) और वार्ता (व्यापार) इनके सुचारु रूप में सञ्चालन करने में दण्ड ही समर्थ है । दण्ड देने की विधि को दण्डनीति कहा गया है । यह दण्डनीति ही नहीं प्राप्त हुए धन को प्राप्त कराने वाली, प्राप्त हुए धन की रक्षा कराने में तत्पर और रक्षित के बढ़ाने वाली तथा बढ़ी हुई को वृद्ध पूज्यों की सेवा में व्यय कराने में समर्थ है ॥४-६॥

तस्याभायत्ता लोकयात्रा ॥ ७ तस्माल्लोकयात्रार्थी नित्यमुद्यतदण्डः स्यात् ॥ ८ ॥ न ह्येवंविधं वशोपनयनमस्ति भूतानां यथा दण्ड इत्याचार्यः ॥ ९ ॥

इस दण्डनीति के अधीन ही सारी संसार यात्रा है । अतः जो राजा अपनी उत्तम लोकयात्रा चलाना चाहे-उसे कभी अपनी दण्डनीति शिथिल नहीं करनी चाहिए । लोक में कोई ऐसी उत्तम वस्तु वश में करने वाली नहीं है जैसी यह दण्डनीति है । ऐसा विद्वानों का मत है ॥७-९॥

नेति कौटल्यः ॥ १० ॥ तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनीयः ॥ ११ ॥ मृदुदण्डः परिभूयते ॥ १२ ॥ यथार्हदण्डः पूज्यः ॥ १३ ॥ सुविज्ञातप्रणीतो हि दण्डः प्रजा धर्मार्थकामैर्योजयति ॥ १४ ॥

चाणक्य का मत इसके विरुद्ध है । वह कहते हैं, कि तीक्ष्ण दण्ड देने से प्रजा खड़ जाती है । जो राजा थोड़ा या नर्म दण्ड देता है लोग उसका तिरस्कार करने लग जाते हैं । इससे राजा को उचित है, कि वह ठीक २ दण्ड का प्रयोग करे । यदि समझ वृक्त कर दण्ड का प्रयोग किया जावेगा तो वह प्रजा को धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि प्रदान करता है ॥१०-१४॥

दुष्प्रणीतः कामक्रोधोभ्यामज्ञानाद्धानप्रस्थपरिव्राजकानपि कोपयति किमङ्ग पुनर्गृहस्थान् ॥ १५ ॥ अप्रणीतो हि मात्स्यन्यायमुद्धावयति ॥ १६ ॥

(काम क्रोध (राग द्वेष) और अज्ञान से दण्ड का व्यवहार करना, वानप्रस्थ और परिव्राजकों को भी कुपित कर देता है । यदि दण्ड का उत्तम प्रयोग नहीं होगा-तो छोटी मछली को जैसे बड़ी मछली खा जाती है उसी तरह बलवान् मनुष्य निर्बल को खा डालेगा ॥१५-१६॥)

बलीयानवलं हि प्रसते दण्डधराभावे ॥ १७ ॥ तेन गुप्तः प्रभवतीति ॥ १८ ॥

जब संसार में उचित दण्ड देने वाला राजा नहीं होगा, तो बलवान् दुर्बल को खा जाता है। दण्ड के द्वारा सुरक्षित हुए दुर्बल पुरुष भी शक्तिशाली होते हैं ॥ १७-१८ ॥

चतुर्वर्णाश्रमो लोको राजा दण्डेन पालितः ।

स्वधर्मकर्माभिरतो वर्तते स्वेषु वर्त्मसु ॥ १९ ॥

दण्ड द्वारा राजा से सुरक्षित हुए चारों वर्ण और आश्रम, अपने २ धर्म और कर्म में लगे रहते हैं तथा अपने २ मार्ग पर चलते हैं ॥ १९ ॥

दिन्याधिकारिक प्रथम अधिकारण में चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवा अध्याय

प्रकरण २

वृद्ध संयोग

तस्मादण्डमूलास्तिस्रो विद्याः ॥ १ ॥ विनयमूलो दण्डः प्राणभृतां योग-
क्षेमावहः ॥ २ ॥ कृतकः स्वाभाविकश्च विनयः ॥ ३ ॥

आन्वीक्षिकी त्रयी (वेदविद्या) और वार्ता ये तीनों विद्या-दण्ड के अधीन ही मानी गई हैं। विनय (ढंग) के अनुसार दण्ड प्रयोग मनुष्यों के कल्याण के लिए होता है। विनय वनावटी और स्वाभाविक भेद से दो प्रकार का होता है ॥ १-३ ॥

क्रिया हि द्रव्यं विनयनि नाद्रव्यम् ॥ ४ ॥ शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणविज्ञानो-
हापाहेतत्त्वाभिनिविष्टबुद्धिं विद्या विनयति ने तरम् ॥ ५ ॥

कोई भी क्रिया की जावे, वह तदनुकूल व्यक्ति को उसके योग्य बना सकती है, पर जिसमें योग्यता ही नहीं उस पर कितना ही परिश्रम किया जावे वह अद्रव्य (अयोग्य या अपात्र) कभी भी उस शिक्षा के ग्रहण करने में समर्थ नहीं हो सकता है। शुश्रूषा (शास्त्र सुनने की इच्छा) फिर शान्ति से सुन लेना, उसका ग्रहण करना, ग्रहण के अनन्तर उसका धारण, उस पर उद्घापोह (तर्कवितर्क) करना तथा तत्त्व का पूर्ण रीति से ज्ञान इन गुणों से सम्पन्न शिष्य को ही विद्या कुछ ढंग में ला सकती है। अन्य उद्दण्ड विद्यार्थी को विद्या कोई लाभ नहीं पहुंचा सकती ॥ ४-५ ॥

विद्यानां तु यथास्वमाचार्यप्रामाण्याद्विनयो नियमश्च ॥ ६ ॥ वृत्तचौल-
कर्मा लिपिं संख्यानं चोपयुञ्जीत ॥ ७ ॥ वृत्तोपनयनस्त्रयीमान्वीक्षिकीं च
शिष्टेभ्यो वार्तामध्यक्षेभ्यो दण्डनीतिं वक्तृप्रयोक्तृभ्यः ॥ ८ ॥

भिन्न २ विद्याओं का उनके आचार्यों की आज्ञानुसार ही शिक्षण और उसके नियमों का निश्चय होता है। अर्थात् आचार्य जिस विद्या को जैसे पढ़ावे और पढ़ने के जो नियम बनावे-उसी पर छात्र को चलना उचित है। जब बालक का मुण्डन संस्कार हो चुके-तब उसे अक्षर अभ्यास और गिनती सिखानी चाहिए। इसके अनन्तर यज्ञोपवीत संस्कार करावे और फिर वेद विद्या, आन्वीक्षिकी विद्याको उच्चकोटि के विद्वान्, वार्ता (कृषि आदि) को उनके अव्यक्त (राजकर्मचारी) तथा दण्डनीति को प्रयोक्ता राजनियम (कानून) के चलाने वाले जज या मजिस्ट्रेट तथा वक्ता (वकील) आदि से सीखे ॥ ६-८॥

ब्रह्मचर्यं चापोडशाद्वर्षात् ॥ ९ ॥ अतो गोदानं दारकर्मचास्य ॥ १० ॥

नित्यश्च विद्या वृद्धसंयोगो विनयवद्वयर्थं तनमूलत्वाद् विनयस्य ॥ ११ ॥

कम से कम सोलह वर्ष तक विद्यार्थी ब्रह्मचर्य का पालन करे। फिर समावर्तन और केशान्तसंस्कार कराके विवाह कराले। इसके अनन्तर मनुष्य, नित्य विद्या में वृद्ध पुरुषों की संगति करे, क्योंकि किसी विद्या की प्राप्ति में उसके अनुभवी विद्वानों का सहवास बहुत ही उपयोगी है ॥ ९-११ ॥

पूर्वमहर्भागं हस्त्यश्वरथप्रहरणविद्यासु विनयं गच्छेत् ॥ १२ ॥ पश्चिम-
मितिहास श्रवणे ॥ १३ ॥ पुराणमिति वृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं
चेतीतिहासः ॥ १४ ॥

विद्यार्थी दिन के पूर्ण भाग में हाथी, अश्व, रथ और शस्त्र चलाने की विद्या का अभ्यास करे। दिन के पिछले भाग को इतिहास आदि के श्रवण में बितावे। पुराने समाचार, आख्यायिका (कहानी) उदाहरण धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि शास्त्रों को इतिहास के ही अन्तर्गत समझना चाहिये। १२-१४ ॥

शेषमहोरात्रभागमपूर्वग्रहणं गृहीतपरिचयं च कुर्यात् ॥ १५ ॥ अगृहीतानामा-
भीक्ष्ण्यश्रवणं च ॥ १६ ॥ श्रुताद्वि प्रज्ञोपजायते प्रज्ञया योगो योगोदात्मवत्तेति
दिशासामर्थ्यम् ॥ १७ ॥

यदि फिर भी दिन का कोई भाग सायंकाल में बचा रहे और सोने से पूर्ण रात का भाग शेष है ही-इस अहोरात्र में नवीन विषय की शिक्षा और सीखे हुए को दुहरा लेवे। जिस पदार्थ को विद्यार्थी समझ न सका हो-उसे बार २ समझने की चेष्टा करे। जब मनुष्य सुनेगा-तो उसे तद्विषयक ज्ञान होगा। ज्ञान से उस कर्म के करने में कुशलता, कर्म की कुशलता से ही कार्य के करने की अपने में शक्ति का विश्वास होता है। यही विद्या की शक्ति मानी गई है। १५-१७ ॥

विद्याविनीतो राजा हि प्रजानां विनये रतः ।

अनन्यां पृथिवीं भुङ्क्ते सर्वभूतहिते रतः ॥१८॥

विद्या से समन्वित राजा हो प्रजा को सुशिक्षित बना सकता है । जो राजा अपनी प्रजा के हित में तत्पर है, वही शत्रु रहित इस पृथिवी का आनन्द से भोग करता है । १८ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत विनाधिकारिक नामक प्रथम अधिकरण में वृद्ध संयोग नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

छठा अध्याय

तोसरा प्रकरण

इन्द्रियजय । (काम आदि छः शत्रुओं का त्याग)

विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजयः कामक्रोधलोभमानमदहर्षत्यागात्कार्यः ॥१॥

कर्णत्वगन्निजिह्वाघ्राणेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेष्वविपत्तिरिन्द्रियजयः ॥ २ ॥

इन्द्रियों का जीतना ही विद्या और विनय का हेतु होता है । काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष आदि वृत्तियों के त्याग करने से ही इसकी सिद्धि होती है ॥ १-२॥

शास्त्रार्थानुष्ठानं वा ॥ ३ ॥ कृत्स्नं हि शास्त्रमिदमिन्द्रियजयः ॥ ४ ॥

तद्विरुद्धवृत्तिवश्येन्द्रियश्चातुरन्तोऽपि राजा सद्यो विनश्यति ॥ ५ ॥

शास्त्रानुसार कर्मों के अनुष्ठान से भी इन्द्रियों का विजय होता है । सारे शास्त्र इन्द्रियविजयका ही उपदेश देते हैं । यदि राजा शास्त्र के विरुद्ध चल पड़ा और काम क्रोधादि के वश में हो गया तो वह चारों समुद्र पर्यन्त फैली हुई पृथिवी का शासक होने पर भी एक दिन अवश्य नष्ट हो जावेगा ॥ ३-५ ॥

यथा दाण्डक्यो नाम भोजः कामाद्ब्राह्मणकन्यामभिमन्यमानः सवन्धुराप्तो विननाश ॥ ६ ॥ करालश्च वैदेहः ॥ ७ ॥ कोपाज्जनमेजयो ब्राह्मणेषु विकान्त-स्तालजङ्घश्च भृगुषु ॥ ८ ॥

भोजवंसोद्धव राजा दाण्डक्य काम के वश में होकर ब्राह्मण कन्या के वश में पड़ गया और वह शीघ्र ही वन्धु वान्धवों के सहित मारा गया । विदेह देश के अधिपति कराल नामक राजा की भी यही दशा हुई । राजा जनमेजय ने ब्राह्मणों पर और तालजङ्घ ने भृगुवंश ब्राह्मणों पर क्रोध किया, जिसके कारण उनका शीघ्र नाश हो गया । ६-८

लोभादैलश्चातुर्वर्ण्यमत्याहारयमाणः सौवीरश्चाजविन्दुः ॥ ९ ॥ मानाद्रावणः परदारानप्रयच्छन् ॥ १० ॥ दुर्योधनो राज्यादंशं च ॥ ११ ॥

इलाके पुत्र पुल्लवा ने चारों वरों से लोभ पूर्वक धन खींचना आरम्भ किया और सौवीर (गुजरात के स्वामी) राजा अजविन्दु ने भी ऐसा ही किया ये दोनों शीघ्र ही नष्ट हो गए । अभिमान में चूर हुए रावण ने राम की भार्या सीता को नहीं लौटाया और राजा दुर्योधन ने पाण्डवों को उनके राज्य का अंश प्रदान नहीं किया, जिससे शीघ्र ही दोनों का विनाश हुआ ॥ ६-११ ॥

मदाङ्गुम्भोद्भवो भूतावमानी हैहयश्चार्जुनः ॥ १२ ॥ हर्षाद्वातापिरागस्त्य-
मत्यासादयन्वृष्णिसङ्घश्च द्वैपायनमिति ॥ १३ ॥

मद से राजा डम्भोद्भव मारा गया । इसने मद में चूर होकर प्रजा का तिरस्कार किया और यह नर नारायण से युद्ध करके वदरिकाश्रम में मारा गया-यह कथा महाभारत की है । हैहय वंशोद्भव सहस्रबाहु या कर्तवीर्यार्जुन ने भी मदोन्मत्त होकर जमदग्नि का अपमान किया, जिसके कारण उसकी परशुराम के हाथ से मृत्यु हुई । वातापि असुरों ने हर्षोद्रेक से अगस्त्य ऋषि के साथ और यादवों ने वेदव्यास के साथ छल या उपहास किया, जिससे शीघ्र ही उनका नाश हुआ । यह कथा भी महाभारत की है ॥ १२-१३ ॥

एते चान्ये च बहवः शत्रुपङ्क्त्यामाश्रिताः ।

सवन्धुराष्ट्रा राजानो विनेशुरजितेन्द्रियाः ॥ १४ ॥

उपर्युक्त राजा तथा अन्य बहुत से राजा अजितेन्द्रिय काम क्रोध आदि पङ्क्त्या संज्ञक शत्रुओं के पंजे में फंस कर बन्धु बान्धवों के सहित नष्ट हो चुके हैं ॥ १४ ॥

शत्रुपङ्क्त्यामुत्सृज्य जामदग्न्यो जितेन्द्रियः ।

अम्बरीषश्च नाभागो बुभुजाते चिरं महीम् ॥ १५ ॥

इति विनयाधिकारके प्रथमे ऽधिकरणे इन्द्रियजये अरिपङ्क्त्या त्यागः पष्ठो
ऽध्यायः ॥ ६ ॥

इन कामादि पङ्क्त्या से बचकर जितेन्द्रिय जमदग्नि पुत्र परशुराम, नाभाग और अम्बरीष ने चिरकाल तक पृथिवी का उपभोग किया ॥ १५ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में कामादि
शत्रुओं के विजय का सातवां अध्याय समाप्त हुआ ।

सातवां अध्याय

(राजर्षिका व्यवहार)

तस्मादरिषड्वर्गत्यागेनेन्द्रियजयं कुर्वीत । १ ॥ वृद्धसंयोगेन प्रज्ञां चारेण चक्षुरुत्थानेन योगक्षेमसाधनं कार्यानुशासनेन स्वधर्मस्थापनं विनयं विद्योपदेशेन लोकप्रियत्वमर्थसंयोगेन हितेन वृत्तिम् ॥ २ ॥

इन सब बातों को विचार कर राजा को कामादि षड्वर्ग का विजय करके इन्द्रियजय करना चाहिए । राजा को विद्या वृद्धों के सहवास से बुद्धि, गुप्तचरों के चक्षु उद्योग से योगक्षेम (कल्याण) के साधनों की प्राप्ति, अपने २ कार्य में प्रजा को लगाकर उनके धर्मों में उनकी स्थिति, विद्या के प्रचार से शिक्षा तथा उचित दान-उपहार आदि देकर प्रजा की प्रियता एवं हितकारी कार्यों द्वारा अपने व्यवहार को चलाते रहना चाहिए ॥ १-२ ॥

एवं वश्येन्द्रियः परस्त्रीद्रव्यहिंसाश्च वजयेत् ॥ ३ ॥ स्वप्नलौल्यमनृतमुद्ध तवेपत्वमनर्थसंयोगं च ॥ ४ ॥ अधर्मसंयुक्तं चानर्थसंयुक्तं च व्यवहारम् ॥ ५ ॥

इसप्रकार जितेन्द्रिय होकर राजा परायी स्त्री, पर धन और व्यर्थ हिंसा से बचा रहे । अधिक शयन, लालच, मिथ्याव्यवहार, उद्धतवेप तथा अनर्थ के अन्य कार्यों का राजा को परित्यागकर देना चाहिए । राजा को अधर्म पूर्ण और अनर्थ उत्पादन करने वाले व्यवहार के पास भी नहीं जाना उचित है ॥ ३-५ ॥

धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत ॥ ६ ॥ न निःसुखः स्यात् ॥ ७ ॥ समं वा त्रिवर्गमन्योन्यं नुबन्धम् ॥ ८ ॥ एको ह्यत्यासेवितो धर्मार्थकामानामात्मानमितरौ च पीडयति ॥ ९ ॥

धर्म और नीति के अनुसार ही काम का सेवन करे । सुखको छोड़ कर गँवारपने से भी राजा को नहीं रहना चाहिए । एक दूसरे से बँधे हुए अर्थ, धर्म और काम का समय पर अवश्य सेवन करे । यदि अज्ञान से इन तीनों में से एक का भी अनुचित सेवन कर लिया तो वह राजा अपना तथा धर्म आदि में से किसी अन्य एक का नाश कर लेता है ॥ ६-९ ॥

अर्थ एव प्रधान इति कौटल्यः ॥ १० ॥ अर्थमूलौ हि धर्मकामादिति ॥ ११ ॥

कौटल्याचार्य का तो मत ही यह है, कि संसार में धन ही मुख्य वस्तु है । धन के अधीन ही धर्म और काम है ॥ १०-११ ॥

मर्यादां स्थापयेदाचार्यान्मात्यान्वा ॥ १२ ॥ य एनमपायस्थानेभ्यो
वारयेयुः ॥ १३ ॥ छायानालिकाप्रतोदेन वा रहसि प्रमाद्यन्तमभितुदेयुः ॥ १४ ॥

राजा सब ही मर्यादा तथा आचार्य और अमात्य की उचित रीति से स्थापना करे।
ये आचार्य अमात्य आदि ही राजा को विपत्ति से बचाते हैं। ये ही लोग समय विभाग की
चावुक से एकान्त रनिवास आदि में प्रमाद पूर्वक समय बिताते हुए राजा को सचेत
करते हैं। ॥ १२-१४ ॥

सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते ।

कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च शृणुयान्मतम् ॥ १५ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे इन्द्रियजये राजर्षिवृत्तं सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इन्द्रियजयः समाप्तः ।

राज्य का रथ अकेले राजा के एक पहिए से नहीं चला करता। इसको अमात्यादिरूपी
दूसरे चक्र की आवश्यकता है। यह सब बात सोच कर राजा को सचिव अवश्य रखने चाहिए
और उनकी सम्मति का ध्यान रखना योग्य है ॥ १५ ॥

इति श्री कौटलीयार्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में राजाओं के
व्यवहार का सातवां अध्याय समाप्त हुआ ।



आठवां अध्याय

चौथा प्रकरण

अमात्यों की नियुक्ति

सहाध्यायिनोऽमात्यान्कुर्वीत दृष्टशौचसामर्थ्यत्वादिति भरद्वाजः ॥ १ ॥

ते ह्यस्य विश्वास्या भवन्तीति ॥ २ ॥

भरद्वाज मुनि का मत है कि राजा अपने साथ पढ़ने वालों में से अमात्य बनावें,
क्योंकि वह उसको अपने अध्ययन काल में अच्छी तरह देख लेता है। अध्ययन काल के
मित्र पर विश्वास करना उचित ही है ॥ १-२ ॥

नेति विशालाक्षः ॥ ३ ॥ सहक्रीडितत्वात्परिभवन्त्येनम् ॥ ४ ॥ ये ह्यस्य

गुह्यसधर्माणस्तानमात्यान्कुर्वीत समानशीलव्यसनत्वात् ॥ ५ ॥ ते ह्यस्य मर्मज्ञत्व-

भयान्नापराध्यन्तीति ॥ ६ ॥ साधारण एष दोष इति पराशरः ॥ ७ ॥ तेषामपि

मर्मज्ञत्वभयात्कृताकृतान्यनुवर्तते ॥ ८ ॥

विशालाक्ष विद्वान् इस मत को ठीक नहीं बताता है । उसकी युक्ति यही है, कि साथी मित्र-राजा की आज्ञा की अवहेलना कर जाता है । जो राजा की इच्छा के अनुकूल हों उनको ही अमात्य बनावें, चाहे-वे साथ पड़े या न पड़े हों । समान गुणधारी व्यक्ति ही राजा का विपत्ति में साथ दे सकते हैं । वे ही राजा के मर्म (आन्तरिक इच्छा) के जानने और राजा से भय मानने वाले होते हैं । इससे वे राजा के विरुद्ध होकर राजा का कुछ अपराध नहीं करते । पराशर मुनि का मत है, कि विशालाक्ष की यह युक्ति ठीक नहीं है, क्योंकि राजा भी अपने इन अमात्यों के मर्मज्ञ होने से भयभीत रहेगा, इससे अमात्य लोग, जो कुछ करेंगे-राजा को उनका अनुसरण करना पड़ेगा ॥३-॥

यावद्भयो गुह्यमाचष्टे जनेभ्यः पुरुषाधिपः ।

अवशः कर्मणा तेन वश्यो भवति तावताम् ॥ ६ ॥

शास्त्रों में कहा है कि—

राजा जितना गुप्त रहस्य अपने अमात्य आदि पुरुषों से कह देता है-उन रहस्यों के कारण बलात् वह अपने अमात्यादि के अधीन हो जाता है ॥६॥

य एनमापत्सु प्राणाबाधयुक्तास्वनुगृह्णीयुस्तानमात्यान्कुर्वीत ॥ १० ॥
दृष्टानुरागत्वादिति ॥ ११ ॥

इस कारण पराशर का मत है, कि जिसने राजा की प्राण संकट के समय विपत्ति में सहायता की है उनको ही राजा को अपना अमात्य बनाना चाहिए, क्योंकि वे अपनी भक्ति का परिचय दे चुके ॥१०-११॥

नेति पिशुनः ॥ १२ ॥ भक्तिरेषा न बुद्धिगुणः ॥ १३ ॥ संख्यातार्थेषु कर्मसु नियुक्ता ये यथादिष्टमर्थं सविशेषं वा कुर्युस्तान मात्यान्कुर्वीत ॥ १४ ॥
दृष्टगुणत्वादिति ॥ १५ ॥

पिशुन (नारदमुनि) इस मत को भी नहीं मानते-उनका अभिप्राय है, कि प्राणों पर खेलकर राजा की रक्षा करना स्वामि भक्ति है । जिसमें भक्ति की उद्भेदता होगी साधारण बुद्धि वाला भी इस समय राजा के प्राणों की रक्षा कर देगा, परन्तु यह कार्य बुद्धि की विलक्षणता पर अवलम्बित नहीं है । और अमात्य आदि राज्याधिकारी बुद्धिमान होने चाहिए जो बनाये हुए अपने कर्तव्य को ज्यों का त्यों या कुछ बढ़ा कर पूरा करदे, क्योंकि अमात्य तो वही उत्तम है जिसको अपने कर्तव्य का पूर्ण अनुभव हो ॥१२-१५॥

नेति कौणपदन्तः ॥ १६ ॥ अन्यैरमात्यगुणैर्युक्ता ह्येते ॥ १७ ॥ पितृ-
पैतामहानमात्यान्कुर्वीत ॥ १८ ॥ दृष्टापदानत्वात् ॥ १९ ॥

आचार्य कौण्डिन्य नारद जी के इस पक्ष को भी नहीं मानते । उनका मत है, कि जिस कार्य पर लगाने पर उसे उत्तम रीति से कर देने पर भी अन्य विषयों का ज्ञान होना आवश्यक है । सम्भव है कि एक विषय में कुशल पुरुष, दूसरे विषयों में अनुभवी न हो । इससे पिता-पितामह आदि अनुक्रम से आने वाले पुरुषों को ही अमात्य बनावे । वे ही अपने पिता आदि से सारे अनुभवों का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं ॥१६-१६॥

ते ह्येनमपचरन्तमपि न त्यजन्ति सगन्धत्यात् ॥ २० ॥ अमानुषेष्वपि
चैतद्दृश्यते ॥ २१ ॥ गावो ह्यसगन्धं गोगणमतिक्रम्य सगन्धेष्वेवावतिष्ठन्त
इति ॥ २२ ॥

कुल क्रमागत आने वाले अमात्य-अपने राजा को दूषित कर्म (अपराध) करने पर भी नहीं छोड़ते हैं, क्योंकि उनका भी राजा के स्वार्थ में ही स्वार्थ रहता है । मनुष्यों के अतिरिक्त पशुओं में भी अपने सहचर परिचितों के साथ उपर्युक्त व्यवहार देखा जाता है । गायें-अपने साथ में नहीं रहने वाले-गो समूह को छोड़कर अपने साथी गो समूह में ही स्थित होती हैं ॥२०-२२॥

नेति वातव्याधिः ॥ २३ ॥ ते ह्यस्य सर्वमपगृह्य स्वामित्रप्रचरन्तीति ॥
२४ ॥ तस्मान्नीतिविदो नवानमात्यान्कुर्वीत ॥ २५ ॥ नवास्तु यमस्थाने दण्ड-
धरं मन्यमाना नापराध्यन्तीति ॥ २६ ॥

आचार्य वातव्याधि इस बात को भी नहीं मानते । ये अमात्य, राजा के सब कुछ पर अधिकार करके अपना समझ बैठते हैं । इन सब बातों को सोचकर राजा को नवीन नीति के जानने वाले अमात्य बनाने चाहिए । नवीन अमात्य-दण्डधारी राजा से यमराज की तरह डरते हैं और जहां तक उनसे वनता है, वे अपराध नहीं करते हैं ॥२३-२६॥

नेति बाहुदन्तीपुत्रः ॥ २७ ॥ शास्त्रविददृष्टकर्मा कर्मसु विषादं गच्छेत् ।
॥ २८ ॥ अभिजनप्रज्ञाशौचशौर्यानुरागयुक्तानमात्यान्कुर्वीत ॥ २९ ॥ गुण-
प्राधान्यादिति ॥ ३० ॥

बाहुदन्ती-पुत्र नामक आचार्य इस मत का भी खण्डन करते हैं । नीति के जानने वाले पुरुष भी जब तक अमात्यपद के अनुभव से हीन होते हैं-तब तक वे उस कार्य को आनन्द के साथ नहीं चला सकते । उनको बड़ा ही क्लेश उठाना पड़ता है । इन सब बातों को सोच कर कुलीन, बुद्धिमान, पवित्र हृदय, शूरीरता, अनुराग से युक्त अमात्य बनावे क्योंकि अमात्य तो-गुणों में जो प्रधान हो उसे ही बनाना चाहिए ॥२७-३०॥

सर्वमुपपन्नमिति कौटल्यः ॥ ३१ ॥ कार्यसामर्थ्याद्विपुरुषसामर्थ्यं कल्प्यते
सामर्थ्यतश्च ॥ ३२ ॥

कौटल्य (चाणक्य) आचार्य के मत में ये सारी बातें ही ठीक हैं। कार्य के उपस्थित होने पर देश कालानुसार जैसा उचित हो-पुरुष को अधिकार देने चाहिए क्योंकि अमात्य के बनाने में समयानुसार योग्यता की ही मुख्यता है ॥३१-३२॥

विभज्यामात्यविभवं देशकालौ च कर्म च ।

अमात्याः सर्व एवैते कार्याः स्युर्न तु मन्त्रिणः ॥ ३३ ॥

राजा इस प्रकार अमात्योचित गुण, देश काल और कार्योचित व्यवस्था देख कर उपर्युक्त योग्यता सम्पन्न किसी भी पुरुषों को अमात्य (राज्य प्रबन्धकारी) बना सकता है, परन्तु सहसा मन्त्री पद पर किसी को नियुक्त न करे ॥३३॥

इति श्रीकौटलीयार्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिकप्रथमअधिकरण में अमात्य
बनाने का आठवां अध्याय समाप्त हुआ ।

नौवां अध्याय

पांचवां प्रकरण

मन्त्रो और पुरोहितों की नियुक्ति

जानपदोऽभिजातः स्वग्रहः कृतशिल्पश्चक्षुष्मान्प्राज्ञो धारयिष्णुर्दक्षो
वाग्मी प्रगल्भः प्रतिपत्तिमानुत्साहप्रभावयुक्तः क्लेशसहः शुचिर्मेत्रो दृढभक्तिः
शीलबलारोग्यसत्त्वसंयुक्तः स्तम्भचापल्यवर्जितः संप्रियो वैराणामकर्तेत्यमात्य
संपत् ॥ १ ॥

राजा को किन २ गुणों से युक्त मन्त्री और पुरोहित बनाने चाहिए इस बात के विवेचन के लिए इस प्रकरण का आरम्भ किया जाता है। अपने देश और उत्तम कुल में उत्पन्न, समय पर अच्छी तरह अपने अनुकूल चलाये जाने या उत्तम २ बन्धुबान्धवों से योग्य, शिल्प विद्या में कुशल, गम्भीरता से देखने वाला, विद्वान्, स्मृति आदि गुणों से सम्पन्न, कार्य कुशल, बोलने वाला, तीव्र भाषण देने वाला, भटपट प्रबन्ध की योग्यता से समन्वित, उत्साह और प्रभाव शाली, क्लेश सहने में समर्थ, पवित्र आचरण-धारी, स्नेह करने वाला, दृढ़ भक्ति से युक्त, शील, बल, आरोग्य तथा मानसिक शक्ति से सम्पन्न, जड़ता, और चपलता से शून्य, सबका प्रिय और व्यर्थ किसी से वैर मोल नहीं लेने वाला मन्त्री बनाना चाहिए। ऐसा उत्तम मन्त्री-योग्य राजा के महत्व का सूचक है ॥१॥

अतः पादार्धगुणहोनौ मध्यमाचरौ ॥ २ ॥ तेषां जनपदमवग्रहं चाप्ततः
परीक्षेत ॥ ३ ॥ समानविद्येभ्यः शिल्पं शास्त्रचक्षुष्मतां च ॥ ४ ॥

जिस मन्त्री में तीन भाग के ये गुण हो और एक भाग की न्यूनता हो-तो वह मध्यम और जिसमें आधे गुण हों-वह क्षुद्र मन्त्री होता है। इस प्रकार के मन्त्री की आज्ञा (विश्वासी) पुरुषों द्वारा परीक्षा करावे कि यह अपने ही देश का है और इसके बान्धव उत्साह सम्पन्न हैं। इसके साथ पढ़ने वाले पुरुषों से इसके शिल्प (कारीगरी या हाथी आदि की सवारी) तथा शास्त्रज्ञान की परीक्षा करे ॥२-४॥

कर्मरम्भेषु प्रज्ञां धारयिष्णुतां दाक्ष्यं च ॥ ५ ॥ कथायोगेषु वाग्वित्त्वं
प्रागल्भ्यं प्रतिभानवर्च्यं च ॥ ६ ॥ आपद्युत्साहप्रभावौ क्लेशसहत्वं च ॥ ७ ॥
संव्यवहाराच्छौचं मैत्रतां दृढभक्तित्वं च ॥ ८ ॥ संवासिभ्यः शीलबलारोग्यसत्त्व-
योगमस्तम्भमचापल्यं च ॥ ९ ॥ प्रत्यक्षतः संप्रियत्वमवैरित्वं च ॥ १० ॥

राजा कामों का आरम्भ करा कर उसकी बुद्धि, स्मरण शक्ति और चतुराई की परीक्षा ले। शास्त्र चर्चा चलवाकर उसके बोलने, व्याख्यान करने और शीघ्र उत्तर देने की शक्ति की पड़ताल करे। आपत्ति के समय उत्साह, प्रभाव और सहन शक्ति का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। उसके साथ व्यवहार करके हृदय की पवित्रता, मित्रता और दृढ़ भक्ति की परीक्षा लेवे। साथ रहने वाले पुरुषों से मन्त्री बनाने योग्य व्यक्ति के शील, बल, आरोग्य, धैर्य, ज्ञान और गम्भीरता की राजा जांच करे, सुन्दर आकृति, सब से प्रेम और किसी से वैर नहीं करने की अपने सन्मुख बुला कर राजा को देख भाल कर लेनी चाहिए ॥५-१०॥

प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया हि राजवृत्तिः ॥ ११ ॥ स्वयंदृष्टं प्रत्यक्षं परोपदिष्टं
परोक्षम् ॥ १२ ॥

राजा की पड़ताल प्रत्यक्ष (सन्मुख) परोक्ष (पीछे) और अनुमान द्वारा होती है। जो बात स्वयं देखी जावे-वह प्रत्यक्ष और जो दूसरे के द्वारा देखी जावे-वह परोक्ष कहाती है ॥११-१२॥

कर्मसु कृतेनाकृतावेक्षणमनुमेयम् ॥ १३ ॥ अयौगपद्यात्तु कर्मणामने-
कत्वादनेकस्थत्वाच्च देशकालात्ययो मा भूदिति परोक्षममात्यैः कारयेदित्यमात्य-
कर्म ॥ १४ ॥

किसी काम के किये हुए भाग से नहीं किये हुए काम का भी समझ लेना अनुमेय कहलाता है। कार्य बहुत से होते हैं, वे एक साथ पूरे नहीं किये जा सकते। उनकी स्थिति

भी भिन्न २ स्थानों में होती है । उचित देश और काल की किसी प्रकार त्रुटि न होने पावे, इससे राजा अपने पीछे से मन्त्रियों द्वारा कार्य सम्पादन करावे । इसीलिए अमात्य (मन्त्री) आदि की नियुक्ति की जाती है ॥१३-१४॥

पुरोहितमुदितोदितकुलशीलं पठङ्गे वेदे दैवे निमित्ते दण्डनीत्यां चाभि-
विनीतमापदां दैवमानुषाणामथर्वभिरुपायैश्च प्रतिकर्तारं कुर्वीत ॥ १५ ॥ तमा-
चार्यं शिष्यः पितरं पुत्रो भृत्यः स्वामिनामिव चानुवर्तेत ॥ १६ ॥

उन्नत से उन्नत कुल में उत्पन्न, शील और आचार से सम्पन्न, वेद और व्याकरणादि छःओं वेदों के अङ्गों के ज्ञाता, दैवी विपत्ति और शत्रुन शास्त्र का ज्ञाता, दण्डनीति कुशल, दैवी और मानुषी विपत्तियों को अथर्व वेद के मन्त्रों द्वारा दण्ड देने के उपाय जानने वाला, पुरोहित बनाना योग्य है । आचार्य को शिष्य, पिता को पुत्र, और त्वागी को सेवक जिस तरह मानता है, राजा भी इस पुरोहित को इसी प्रकार पूज्य माने ॥१५-१६॥

ब्राह्मणेनैधितं चतुर् मन्त्रिमन्त्राभिमन्त्रितम् ।

जयत्यजितमत्यन्तं शास्त्रानुगतशस्त्रिणम् ॥ १७ ॥

इस प्रकार पुरोहित द्वारा बढ़ाया हुआ और मन्त्रियों की मन्त्रणा से युक्त, राजवंश सर्वदा विजयी रहता है । इसका शास्त्रानुसार कर्म ही शास्त्र होना चाहिए । इस राजवंश को कोई भी पराजित नहीं कर सकता है ॥१७॥

इति श्रीकौटिलीयार्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिकप्रथमअधिकरण में मन्त्री और पुरोहित के बनाने का नौवां अध्याय समाप्त हुआ ।

दसवां अध्याय

छठा प्रकरण

अमात्यों के हृदयगत सरल और कुटिल भावों के गुप्त रीति से जानने के प्रकार ।

मन्त्रिपुरोहितसखः सामान्येष्वधिकरणेषु स्थापयित्वा मान्यानुपधाभिः
शोधयेत् ॥ १ ॥ पुरोहितमयाज्ययाजनाध्यापने नियुक्तममृत्युमाणं राजावक्षि-
पेत् ॥ २ ॥

प्रथम अमात्यों (अधिकारी वर्ग) को साधारण पदों पर नियुक्त करके गुप्त रीति से मन्त्री और पुरोहितों के साथ राजा उनकी परीक्षा करे । परीक्षा प्रकार इस ढंग का होना चाहिए, राजा गुप्तचर में पुरोहित को यज्ञ और वेदाध्ययन के अयोग्य चण्डाल आदि

व्यक्ति को यज्ञ कराने या वेदाध्ययन के लिए नियुक्त करे और फिर स्वयं ही राजा उस पुरोहित को फटकार कर क्रोधित पुरोहित को पद से च्युत करदे ॥१-२॥

सत्त्रिभिः शपथपूर्वमेकैकमात्यमुपजापयेत् ॥ ३ ॥ अधार्मिकोऽयं राजा साधुधार्मिकमन्यमस्य तत्कुलीनमवरुद्धं कुल्यमेकग्रहं सामन्तमाटविकमौषपादिकं वा प्रतिपादयामः ॥ ४ ॥ सर्वेषामेतद्रोचते कथं वा तवेति ॥ ५ ॥ प्रत्याख्याने शुचिरिति धर्मोपधा ॥६॥

अब पुरोहित, गुप्तचरों की सहायता से अमात्यों (अधिकारियों) के समीप पहुंचे और शपथ खा २ कर उनको राजा से विरुद्ध करने (फोड़ने) की चेष्टा करे, पुरोहित इन कर्मचारियों को इस प्रकार वहकावे कि यह राजा बड़ा अधार्मिक है। इसी वंश में जो धार्मिक साधु प्रकृति, सर्व गुण सम्पन्न अन्य व्यक्ति हों उसको राजपद पर बैठा देना चाहिए या किसी समीपवर्ती अन्य सामन्त, वन के स्वामी तथा जो कोई निश्चित हो जावे उसको राजपद पर नियुक्त करना योग्य है, यह राजा तो राज्य सिंहासन पर रहने योग्य नहीं है। मैंने जिन २ व्यक्तियों से इसकी चर्चा की, वे सब स्वीकार कर चुके हैं, कहिए आपकी क्या सम्मति है। इस प्रकार पुरोहित के कहने पर यदि राज्याधिकारी (अफसर) पुरोहित को फटकार दे-तो यह धर्म मार्ग की परीक्षा का उपाय माना गया है ॥ ३-६ ॥

सेनापतिरसत्प्रतिग्रहणावक्षिप्तः सत्त्रिभिरेकैकमात्यमुपजापयेत्लोभनीयेनार्थेन राजविनाशाय ॥ ७ ॥ सर्वेषामेतद्रोचते कथं वा तवेति ॥ ८ ॥ प्रत्याख्याने शुचिरित्यर्थोपधा ॥ ९ ॥

इसी प्रकार राजा सेनापति से गुप्त रीति से पड़यन्त्र करे। किसी अयोग्य व्यक्ति के सेनापति के पद पर रख लेने से सेनापति को राजा फटकारे-वह भी अपने गुप्तचरों द्वारा प्रत्येक अमात्य (अधिकारी) की परीक्षा करे। या धनका लोभ देकर उनको राजा के नाश करने के निमित्त छल से इस प्रकार बात करे, कि सवने हमारी इस बात को मान लिया है, अब तो तुम्हारी सम्मति की ही कसर है। यदि वह सेनापति की बात का निषेध कर दे-तो उसे पवित्र समझना चाहिए, यह धन के लोभ द्वारा परीक्षोपाय कहाता है ॥७-९॥

परित्राजिका लब्धविश्वासान्तःपुरे कृतसत्कारा महामात्रमेकैकमुपजापेत् ॥ १० ॥ राजमहिषी त्वां कामयते कृतसमागमोपाया महानर्थश्च ते भविष्यतीति ॥ ११ ॥ प्रत्याख्याने शुचिरिति कामोपधा ॥ १२ ॥

राजा, किसी कपायवस्त्रधारिणी परित्राजिका (साधनी) को सत्कार पूर्वक रनिवास में रखे। सबको ज्ञात रहे, कि यह रानियों की बड़ी विश्वास पात्र है। यह प्रत्येक अधिकारी

को राजा के विरुद्ध प्रोत्साहित करे, कि राजमहिषी (रानी) तुम से सम्भोग कराना चाहती है। यदि तुमने उनकी समागम की प्रार्थना को ठुकरा दिया-तो तुम्हारा बड़ा अनर्थ होगा। यदि अधिकारी इस की बात को सुनकर इसे फटकार दे-तो उसे पवित्र समझना चाहिए। इस ढंग की प्रक्रियाएँ कामोपधा कहाती हैं ॥१०-१२॥

प्रवहणनिमित्तिमेकोऽमात्यः सर्वानमात्यानावाहयेत् ॥ १३ ॥ तेनोद्वेगेन राजा तानवरुन्ध्यात् ॥ १४ ॥ कापटिकच्छात्रः पूर्वविरुद्धस्तेषामर्थमानावक्षिप्तमेकैकममात्यमुपजपेत् ॥ १५ ॥ असत्प्रवृत्तोऽयं राजा ॥ १६ ॥ सहसैनं हत्वान्यं प्रतिपादयामः ॥ १७ ॥ सर्वेषामेतद्रोचते कथं वा तवेति ॥ १८ ॥ प्रत्याख्यानं शुचिरिति भयोपधा ॥ १९ ॥

राजा गुप-चुप किसी एक अमात्य द्वारा अन्य सारे अमात्य (अफसरों) को नौका द्वारा सैर करने को बुलावे। फिर आप इस काम पर रुष्ट होकर उन सारे अमात्यों को धन दण्ड द्वारा अपमानित करदे। अब पूर्व में अपमान पाया हुआ कोई धूर्त छात्र, धन दण्ड (जुरमाना) से क्रोधित इन अमात्यों को राजा के विरुद्ध उकसावे, कि यह राजा बड़ा ही अयोग्य है-जो अयोग्य पुरुषों को पसन्द करता है। अब तो एक दम इसको मारकर अन्य को राजा बना देना चाहिए। अन्य सारे अधिकारी इसके विरुद्ध हो चुके हैं तुम्हारी क्या सम्मति है। यदि अमात्य इसके इतना कहने पर भी इस के साथ सहमत न हो-तो इस अमात्य को पवित्र हृदय समझना चाहिए। यह भयोपधा कहाती है ॥१३-१९॥

तत्र धर्मोपधाशुद्धान्धर्मस्थीयकण्टकशोधनेषु स्थापयेत् ॥ २० ॥ अर्थोपधाशुद्धान्समाहर्तृसंनिधातृनिचयकर्मसु ॥ २१ ॥ कामोपधाशुद्धान्वाह्याभ्यन्तर-विहाररक्षासु ॥ २२ ॥ भयोपधाशुद्धानासन्नकार्येषु राज्ञः ॥ २३ ॥ सर्वोपधाशुद्धान्मन्त्रिणः कुर्यात् ॥ २४ ॥ सर्वत्राशुचीन्वनिद्रव्यहस्तिवनकर्मन्तेषूपयोजयेत् ॥ २५ ॥

त्रिवर्गभयसंशुद्धानमात्यान्स्वेषु कर्मसु ।

अधिकुर्याद्यथाशौचमित्याचार्या व्यवस्थिताः ॥ २६ ॥

इस प्रकार धर्मोपधा (पुरोहित आदि) द्वारा अन्य सारे अमात्य (अफसरों) को नौका शत्रु शोधन पर नियुक्त करे। जो अमात्य अर्थोपधा (धन के लोभ में फंसाने के ढंगों) द्वारा परीक्षित हुआ है, उसको कर वसूल करना, कोष रक्षण और वृद्धि करने के स्थानों पर अधिकारी बनाये रखे। इसी प्रकार कामोपधा द्वारा जिनकी परीक्षा की गई है, उनको रनिवास के बाहर भीतर जाने की अधिकार देदें, तथा क्रीड़ा के स्थलों का अध्यक्ष बनाया

जावे । भयोपधा द्वारा परीक्षित अमात्यों को विश्वास के योग्य समझकर राजा अपने समीप में रखे । जिन अधिकारियों की उपर्युक्त सारे ढंगों से परीक्षा करली है, उनको मन्त्री बनावे । इन परीक्षाओं में जो पूरा न उतरा हो-उन्हें खान, हाथी और वन के कार्यालयों (कान, फील खाना और जंगलात के महकमों) पर लगा दे । धर्म, अर्थ, क.म और भय के अनेक ढंगों द्वारा जिन व्यक्तियों की अच्छी तरह परीक्षा करली है, उनको उनके योग्य पदों पर राजा नियुक्त करे-यह पूर्व राजनीति के परिदृष्टों की व्यवस्था है ॥२०-२६॥

न त्वेव कुर्यादात्मानं देवीं वा लक्ष्मीश्वरः ।

शौचहेतोरमात्यानामेतत्कौटल्यदर्शनम् ॥ २७ ॥

चाणक्य कहते हैं, कि मेरी सम्मति में तो राजा अपने आपको और महारानी को / अमात्यों की परीक्षा के ढंगों में न डाले-यही सुन्दर बात है ॥२७॥

न दूषणमदुष्टस्य विप्रेणोवाम्भसंश्चरेत् ।

कदाचिद्विप्रदुष्टस्य नाधिगम्येत भेषजम् ॥ २८ ॥

दोष रहित अमात्य की इस प्रकार परीक्षा करने में पानी मिले हुए विष की तरह बड़ा बुरा फल निकल पड़ता है । जो अमात्य दूषित नहीं है, वह भी इन ढंगों से वृथा लालच में आकर दूषित हो सकता है-जैसे पानी के धोखे में विष पी लिया जाता है । ऐसी दशा में बिगाड़े हुए किसी २ अमात्य का कभी २ प्रतीकार नहीं हो पाता है, और वह सचमुच राजा को उलट पलट कर देता है । ॥२८॥

कृता च कलुषा बुद्धिरुपधाभिश्चतुर्विधा ।

नागतत्वान्तर्निवर्तेत स्थिता सत्त्वतां धृतौ ॥ २९ ॥

इस प्रकार नाहक इन चारों छलों से बिगाड़े हुए अमात्य की बुद्धि, राजा को सिंहासनसे उतार कर ही शान्त होती है, क्योंकि उनको व्यर्थ ही राजा के विरुद्ध करके अपने स्थान से च्युत किया गया है ॥२९॥

तस्माद्वाह्यमधिष्ठानं कृत्वा कार्ये चतुर्विधे ।

शौचाशौचममात्यानां राजा मार्गेत सत्त्रिभिः ॥ ३० ॥

इस प्रकार की चारों उपधाओं से तो राजा, किसी बहिरङ्ग व्यक्ति की ही परीक्षा करे । अमात्यों की इस ढंग से परीक्षा करना उचित नहीं है । अपने आन्तरिक अमात्यों का तो राजा अपने गुप्तचरों-से बिना उनको लालच दिए ही उनकी परीक्षा करता रहे ॥३०॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे उपधाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानां दशमो-

ध्यायः ॥ १० ॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिकप्रथमअधिकरण में धर्मोपधा
आदि ढंगों से अमात्यों के शुचि-अशुची होने की परीक्षा
का दशवां अध्याय समाप्त हुआ ।

ग्यारहवां अध्याय

सातवां प्रकरण

गुप्तचरों की स्थापना

उपधाभिः शुद्धामात्यवर्गो गूढपुरुषानुत्पादयेत् ॥ १ ॥ कापटिकोदास्थित-
गृहपतिवैदेहकतापसव्यञ्जनान्सत्त्रितीक्ष्णरसदभिक्षुकीश्च ॥ २ ॥

राजा धर्मोपधा आदि किसी भी ढंग से अपने अमात्यों की परीक्षा करके गुप्तचरों
की स्थापना करे । कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक, तापस, सत्री, तीक्ष्ण, रसद और
भिक्षुकी आदि गुप्तचरों के अनेक भेद हैं । ॥१-२॥

परमर्मज्ञः प्रगल्भः छात्रः कापटिकः ॥ ३ ॥ तमर्थमानाभ्यामुत्साह्य मन्त्री
ब्रूयात् ॥ ४ ॥ राजानं मां च प्रमाणं कृत्वायस्य यदकुशलं पश्यसि तत्तदानी-
मेव प्रत्यादिशेति ॥ ५ ॥

शत्रु आदि अन्य व्यक्ति के मर्म का पता लगाने वाला वाचाल, कपट वेपधारी
छात्र, (नवीन परिद्धत) कापटिक चर कहाता है । इस छात्र को धन और मान से
उत्साहित करके मन्त्री इस से कहे, कि तुम राजा और मुझे प्रधान मानकर हम दोनों में
जिसकी कुछ भी हानि देखो अर्थात् जिसको हमारे विरुद्ध पड़्यन्त्र करता पाओ-तो उसी
समय फौरन हमको सूचित करो ॥३-५॥

प्रव्रज्याप्रत्यवसितः प्रज्ञाशौचयुक्त उदास्थितः ॥ ६ ॥ सवार्ताकर्मप्रदि-
ष्टायां भूमौ प्रभूतहिरण्यान्तेवासी कर्म कारयेत् ॥ ७ ॥

बुद्धिमान, शुद्धहृदय, सन्यास वेपधारी व्यक्ति उदास्थित गुप्तचर होता है ।
कृषि, वाणिज्य, पशुपालन आदि कर्मों के लिए निश्चित क्षेत्र में पहुंच कर बहुत सा धन
और विद्यार्थी लेकर यह उदास्थित गुप्तचर वहां अपना काम करे । ॥६-७॥

कर्मफलाच्च सर्वप्रव्रजितानां प्रासाच्छादनावस्थानप्रतिविदध्यात् ॥ ८ ॥
वृत्तिकामांश्चोपजपेत् ॥ ९ ॥ एतेनैव वेपेण राजार्थश्चरित्व्यो भक्तवेतनकाले
चोपस्थातव्यमिति ॥ १० ॥ सर्वप्रव्रजिताश्च स्वं स्वं वर्गमुपजपेयुः ॥ ११ ॥

उस जगह अपने काम से जो इसको धन प्राप्ति हो-उससे अनेक साधुओं के भोजन वस्त्र और ठहरने का प्रबन्ध करे। जो संन्यासी धन की इच्छा करे उनको अपनी ओर मिलाकर राजा का गुप्तचर बना देवे। उनको समझा दे, कि तुम लोग इसी वेष में राजा का कार्य करो और जब भोजन के लिए वेतन की आवश्यकता हो तो यहां पर चले आना, इसी तरह प्रत्येक भिन्न २ सम्प्रदाय का संन्यासी अपनी २ सम्प्रदाय के संन्यासी को राजा की ओर कर दे ॥८-११॥

कृषको वृत्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो गृहपतिकव्यञ्जनः ॥ १२ ॥ स कृषि-
कर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेण ॥ १३ ॥

बुद्धिमान्, वृत्ति से हीन, शुद्ध हृदय वाला कृषक-गृहपतिक गुप्तचर होता है। वह भी कृषक के ही वेष में कृषि के स्थानों में रहे और पूर्वोक्त संन्यासियों के ढंग से कृषको को राजा के अनुकूल बना देवे ॥१२-१३॥

वाणिजको वृत्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो वैदेहकव्यञ्जनः ॥ १४ ॥ स वाणि-
कर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेण ॥ १५ ॥

वृत्तिहीन, वाणिज्य करने वाला, बुद्धिमान् शुद्धाचार युक्त, पुरुष वैदेहक गुप्तचर कहाता है। वह वैश्यों के व्यापार स्थल में अपना काम करे और पूर्वोक्तरीति से व्यापारियों को राजा के अनुकूल बना देवे ॥१४-१५॥

मुण्डो जटिलो वा वृत्तिकामस्तापसव्यञ्जनः ॥ १६ ॥ स नगराभ्याशे
प्रभृतमुण्डजटिलान्तेवासी शाकं यवसमुष्टिं वा मासद्विमासान्तरं प्रकाशमरनीयात्
॥ १७ ॥ गूढमिष्टमाहारम् ॥ १८ ॥

मुंड मुड़ाए या जटाधारी वेष में रहने वाला, राजवृत्ति का इच्छुक पुरुष-तापस संन्यक गुप्तचर होता है। वह नगर के पास बहुत से मुंडे हुए या जटाधारी विद्यार्थी लेकर शाकाहार या हरित अन्न भोजन करके एक दो महीने तक जनता को अपना आडम्बर दिखाकर विश्वासी बना लेवे। छुपे २ वह अपनी रुचि के अनुसार भोजन कर सकता है ॥१६-१८॥

वैदेहकान्तेवासिनश्चैनं समिद्धयोगैरचयेयुः ॥ १९ ॥ शिष्याश्चास्यावेदयेयु-
रसौ सिद्धः सामेधिक इति ॥ २० ॥ समेधाशस्तिभिश्चाभिगतानामङ्गविद्यया
शिष्यसंज्ञाभिश्च कर्माण्यभिजनेऽवसितान्यादिशेत् ॥ २१ ॥

वैदेहक (व्यापारी) गुप्तचर के अनुचर अच्छी २ तरह वस्तुओं से इन तापसों की पूजा करें। वैदेहक गुप्तचर के ये विद्यार्थी, इन तपस्वियों की सब जगह यह प्रसिद्धि कर दें कि ये बड़े सिद्ध योगी हैं। और भविष्य होनहार के बताने वाले हैं। भविष्य भाग्य के पूछने वाले मनुष्यों के आने पर अपने विद्यार्थियों से उनके घर पर हुए कार्यों का पता लगा ले, और अङ्ग के चिन्हों से उन्हें बतावे ॥१६-२१॥

अल्पलाभमग्निदाहं चोरभयं दूष्यवधं तुष्टदानं विदेशप्रवृत्तिज्ञानमिदमग्र
श्वो वा भविष्यतीदं राजा करिष्यतीति ॥ २२ ॥ तदस्य गूढाः सन्निगश्च
संपादयेयुः ॥ २३ ॥

इसके अतिरिक्त थोड़ा लाभ, अग्नि दाह, चोरभय, दूषित पुरुषों के वध, राजा के प्रसन्न होने पर उपहार, विदेश यात्रा का योग, बतावे। इस प्रकार कल या आज होने वाले कार्य का निदर्शन करे। राजा एक दो दिन में यह करने वाला है-इत्यादि फलादेश बतावे। इन सब बातोंको इसके छुपे सत्री-संज्ञक गुप्तचर पूरी करने का उद्योग करें। ॥२२-२३॥

सत्त्वप्रज्ञावाक्यशक्ति संपन्नानां राजभाव्यमनुव्याहरेन्मत्रिसंयोगं च ॥ २४ ॥
मन्त्री चैषां वृत्तिकर्मभ्यां वियतेत् ॥ २५ ॥

इन पूछने वाले व्यक्तियों में जो बुद्धिमान् बोलने वालों में उत्तम और मनस्वी हो-उससे कहे, कि तुम्हें राजा या राजमन्त्री से लाभ होने वाला है। मन्त्री भी ऐसे पुरुषों के लाभ या उनके काम लगाने का प्रयत्न करे ॥२४-२५॥

ये च कारणादभिक्रुद्धास्तानर्थमानाभ्यां शमयेत् ॥ २६ ॥ अकारण-
क्रुद्धास्तूष्णीं दण्डेन राजद्विष्टकारिणश्च ॥ २७ ॥

जो कोई शक्तिशाली बोलने वाला व्यक्ति किसी प्रकार कुपित हो गया हो-तो उसका धन और मान से सन्तुष्ट करे। जो बिना कारण हो रुष्ट हुए हों-उन को गुप्त-चुप दण्डित करें, तथा राज द्वेषियों को गुप्त-चुप मरवा डाले ॥२६-२७॥

पूजिताश्चार्थमानाभ्यां राज्ञा राजोपजीविनाम् ।

जानीयुः शौचमित्येताः पञ्च संस्थाः प्रकीर्तिताः ॥ २८ ॥

इस प्रकार राजा अपने धन और मान से सन्तुष्ट हुए गुप्त राजकर्मचारी अमात्यों की स्थिति का पता लगाते रहें। इस अध्याय में काण्टिक आदि पांच गुप्तचरों का वर्णन किया गया है ॥२८॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे गूढपुरुषोत्पत्तौ संस्थोत्पत्तिः एकादशो-
ऽध्यायः ॥ ११ ॥

इति श्रीकौटिलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में
गुप्तचरों के बनाने का ग्यारहवां अध्याय समाप्त हुआ ।

बारहवां अध्याय

आठवां प्रकरण

गुप्तचरों की कामों पर नियुक्ति ।

ये चाप्यसंवन्धिनोऽवश्यमर्तव्यास्ते लक्षणमङ्गविद्यां जम्भकविद्यां माया-
गतमाश्रमधर्मं निमित्तमन्तरचक्रमित्यधीयानाः सत्रिणः ॥ १ ॥ संसर्गविद्या वा ॥ २ ॥

ये यद्यपि राजा के सम्बन्धी नहीं हैं, तो भी इनका राजा को अवश्य भरण पोषण करना चाहिए । इनमें जो हस्त-रेखा देखना जानने वाले, व्याकरणादि अङ्गों के ज्ञाता, वशी-
करण, अन्तर्हित (छुपजाना) आदि मन्त्र-यन्त्र के ज्ञाता, इन्द्रजाल (बाजीगरी) विद्या,
आश्रम धर्मों के प्रतिपादक मन्वादि धर्मशास्त्र, शकुन-और पक्षियों की बोली द्वारा शुभ
और अशुभ के जानने वाले, मनुष्य सत्री कहाते हैं । या कामशास्त्र और गीतनृत्य आदि
कला कुशल पुरुष सत्री कहाते हैं ॥ १-२ ॥

ये जनपदे शूरास्त्यक्तात्मानो हस्तिनं व्यालं वा द्रव्यहेतोः प्रतियोधयेयुस्ते
तीक्ष्णाः ॥ ३ ॥ ये बन्धुषु निःस्नेहाः क्रूराश्चालसाश्च ते रसदाः ॥ ४ ॥

परिव्राजिका वृत्तिकामा दरिद्रा विधवाग्रगल्भा ब्राह्मण्यन्तः पुरे कृत-
सत्कारा महामात्रकुलान्यधिगच्छेत् ॥ ५ ॥ एतया मुण्डा वृषल्यो व्याख्याताः
॥ ६ ॥ इति संचाराः ॥ ७ ॥

जो शक्तिशाली राष्ट्र भर में शूरवीर, देह या प्राणों की भी परवा नहीं करते हैं,
और धनोपार्जन के निमित्त हाथी, सिंह या सर्प तक से युद्ध करने लगते हैं, वे तीक्ष्ण
पुरुष कहाते हैं । जो अपने भाई बन्धुओं पर भी स्नेह नहीं रखते, बड़े क्रूर और आलसी
होते हैं, वे रसद कहाते हैं । ये इतने क्रूर होते हैं, कि प्रतिपक्षी पुरुष को विप देकर भी मार
देते हैं । जीविका की आकाङ्क्षा वाली परिव्राजिका (कापायधारिणी) साधुनी, दरिद्र से
क्लेशित विधवा, बोलने में कुशल निवास में सत्कार पाई हुई ब्राह्मणी, बड़े २ अधिका-
रियों के घरों में घुसकर उनका पता रखें । इसी तरह बौद्ध भिक्षुणी, या घर में सेवा
काम करने वाली धोत्रिन, भंगन जैसी स्त्रियां भी प्रत्येक घर का पता लगाने में बड़ी
उपयोगी होती हैं । इनका गुप्तचर न कहकर संचर कहाते हैं ॥ ३-७ ॥

तात्राजा स्वविषये मन्त्रिपुरोहितसेन।पतियुवराजदौधारिकान्तर्वशिकप्रशा-
स्तृसमाहर्तृसंनिधातृप्रदेष्टृनायकपारैव्यावहारिककार्तान्तिकमन्त्रिपरिपदध्यक्षदण्ड-
दुर्गान्तपालाटविकेपु श्रद्धेयदेशवेपशिल्पभाषाभिजनापदेशान्भक्तितः सामर्थ्ययोगा-
च्चापसर्पयेत् ॥ ८ ॥

राजा अपने ही देश में मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, द्वारपाल, अन्तःपुर (रनिवास के) रक्षक शासन करने वाले (मजिस्ट्रेट) अध्यक्ष, कर प्रहीता, (मालगुजारी वसूलकर्ता कलक्टर) रुपये का रक्षक कोषाध्यक्ष, प्रदेष्टा, (प्रबन्धक-कमिश्नर) नायक (सूवेदार) पुर के व्यवहारों का निरीक्षक, खानों का अध्यक्ष या ज्योतिषकार्यालय का अधिकारी, मन्त्रिपरिपद के सभापति, सेनापति, दुर्गरक्षक, सीमारक्षक, वन के अध्यक्ष (जंगलात के अफसर) के घरों में जैसा जिसको पसन्द हो-उसी तरह के देश की चर्चा, वैसी ही वेप भूषा, शिल्प, (कारीगरी) भाषा का प्रयोग और अपनी कुलीनता आदि का दोंग रखवा कर इन सञ्चार लोगों को अपनी २ भक्ति और शक्ति के अनुसारभेजे ॥८॥

तेषां बाह्यं चारं छत्रभृद्भारव्यजनपादुकासनयानवाहनोपग्राहिणः तीक्ष्णा
विद्युः ॥ ९ ॥ तं सचित्रणः संस्थास्वर्पयेयुः ॥ १० ॥

इन सञ्चारों में जो तीक्ष्ण नामक सञ्चार बताए हैं, वे जब छत्र, चामर, पंखा, पादुका, आसन, यान (सवारी) वाहन (अश्वादि) के ऊपर अपनी नौकरी लगा कर मन्त्री आदि का पता लेते रहते हैं, तब उनका नाम बाह्यचर हो जाता है। सत्री, संचार (गुप्तचर) इस प्रकार करने वाले तीक्ष्ण नामक सञ्चार को संस्था (कापटिक आदि गुप्तचरों के मण्डल) को सूचित कर दें ॥९-१०॥

सुदारालिकस्नापकसंवाहकास्तरककल्पकप्रसाधकोदकपरिचारका रसदाः कुब्ज
वामनकिरातमूकवधिरजडान्धच्छद्मानो नटनर्तकगायनवादकवाग्जीवनकुशीलवाः
स्त्रियश्चाभ्यन्तरं चारं विद्युः ॥ ११ ॥

मन्त्री आदि अधिकारीगणों के घर में राजा रसद नामक गुप्तचरों के रसोई बनाने वाला, मांस पाचक, स्नान कराने वाला, हाथ पैर दवाने वाला, विस्तर बिछाने वाला, नाई, वस्त्र पहनाने वाला, जल भरने वाला छुपे २ बना दे। राजा-कुवड़े, बौने, मूर्ख, गूंगे, बहरे, पागल, अन्धे आदि के वहाने तथा नट, नर्तक, गायक, वादक, किस्से कहानी कहने वाले, या खेल तमाशे करने वाले पुरुष तथा स्त्रियों को अधिकारियों के पता लगाने में लगावे। ये आभ्यन्तर चर कहाते हैं ॥११॥

तं भिक्षुक्यः संस्थास्वर्पयेयुः ॥ १२ ॥ संस्थानामन्तेवासिनःसंज्ञालिपि-
भिश्चारसंचारं कुर्युः ॥ १३ ॥ न चान्योन्यं संस्थास्ते वा विद्युः ॥ १४ ॥

गुप्तचर के रूप में रहने वाली भिक्षुकी इन सारी बातों को गुप्तचरों की संस्था (महकमें) में पहुंचा दे। संस्था (गुप्तचर विभाग) के अन्तेवासी कर्मचारी अपनी सांके-
तिक लिपि में लिखकर गुप्तचर या सञ्चारसंज्ञक चरों के पास पहुंचा दे। इन बातों को
परस्पर संस्था (महकमे) के कर्मचारी या गुप्तचर न जान सके-इस बात का बड़ा ही प्रयत्न
रखना चाहिए ॥१२-१४॥

भिक्षुकीप्रतिपेधे द्वाःस्थपरम्परा मातापितृव्यङ्गनाः शिल्पकारिकाः कुशीलवा
दास्यो वा गीतपाठ्यवाद्यभाण्डगूढलेख्यसंज्ञाभिर्वा चारं निर्हारयेयुः ॥ १५ ॥

यदि किसी मन्त्री आदि अध्यक्ष के भवन में भिक्षुकी के प्रवेश की मनाही होवे-
तो द्वारपालों की परम्परा एक दूसरे को सारा वृत्तान्त बताती रहे। अन्तःपुर के सेवकों के
बनावटी माता पिता बन कर अन्तःपुर में गुप्तचर प्रवेश करें। बड़ई लुहार आदि शिल्पी
के रूप में स्त्री भीतर जावे। नाचने वाली या कला खेलने वाली तथा दासी बनकर कोई
भीतर तक पहुंच जावे गीत, पाठ, वाजे, वर्तन, गूढलेख और संकेतों द्वारा इन अध्यक्षों
की बातों को गुप्तचरों तक पहुंचा दे ॥१५॥

दीर्घरोगोन्मादाग्निरसविसर्गेण वा गूढनिर्गमनम् ॥ १६ ॥ त्रयाणामेक-
वाक्ये संप्रत्ययः ॥ १७ ॥

दीर्घ रोग उन्माद आदि तथा अग्नि और विष आदि की भङ्गद खड़ी करके गुप्त-
चर, गुप्तभाव से उनके भवनों से निकल आवे। जब तीन गुप्तचरों की एकसी बात निकल
आवे-तब राजा विश्वास करे ॥१६-१७॥

तेषामभीक्ष्णविनिपाते तूष्णींदण्डः प्रतिपेधो वा ॥ १८ ॥ कण्टकशोधनो-
क्ताश्चापसर्पा परेषु कृतवेतना वसेयुः संपातनिश्चारार्थम् ॥ १९ ॥ त उभय-
वेतनः ॥ २० ॥

यदि ये गुप्तचर, बार २ ठीक समाचार न लावें तो उनको गुप्त-चुप दण्ड देवे या
नौकरी से पृथक् कर दे। कण्टक शोधन अधिकरण में कहे हुए गुप्तचर, वेतनप्राही होकर
प्रति पक्षी राजा के अमात्यों के यहां नौकरी करे। ये गुप्तचर, दोनों ओर से वेतन ग्रहण
करने वाले होते हैं ॥१८-२०॥

गृहीतपुत्रदारांश्च कुर्यादुभयवेतनान् ।

तांश्चारिग्रहितान्विद्यात्तेषां शौचं च तद्विधैः ॥ २१ ॥

इन उभय वेतन ग्राही गुप्तचरों के बाल बच्चे और परिवार के लोगों की राजा देख रेख रखे । इन भेजे हुए चरों को भी चरों से जानता रहे, कि काम ठीक भी कर रहे हैं ? और कहीं शत्रु से मिल तो नहीं गए हैं । ॥२१॥

एवं शत्रौ च मित्रे च मध्यमे चावपेक्षरान् ।

उदासीने च तेषां च तीर्थेष्वष्टादशस्वपि ॥ २२ ॥

इस प्रकार शत्रु, मित्र, मध्यम और उदासीन राजाओं के पास विजयाभिलाषी राजा अपने चर छोड़ दे, तथा उनके मन्त्री पुरोहित आदि अट्टारह तीर्थों के समीप भी अपने दूत छोड़ दे ॥२२॥

अन्तर्गृहचरास्तेषां कुब्जवामनवञ्चकाः ।

शिल्पवत्यः स्त्रियो मूकाश्चित्रार्थं म्लेच्छजातयः ॥ २३ ॥

इन शत्रुआदि राजा और मन्त्री आदि तीर्थों के घरों में कुब्ज, वामन और नपुंसक तथा शिल्पकार्य करने वाली स्त्रियां एवं गूंगे और विचित्र आकार वाले नीच लोगों को राजा नियुक्त करे ॥२३॥

दुर्गेषु वणिजः संस्था दुर्गान्ते सिद्धतापसाः ।

कर्षकोदास्थिता राष्ट्रे राष्ट्रान्ते व्रजवासिनः ॥ २४ ॥

दुर्गों (किलों) में वणिजों की संस्था (मण्डल) दुर्गों की सीमा पर सिद्ध और तापस, राष्ट्र में किसान और उदास्थित तथा राष्ट्र की सीमा पर ग्वालों को गुप्तचर बनाये ॥२४॥

वने वनचराः कार्याः श्रमणाटविकादयः ।

परप्रवृत्तिज्ञानार्थं शीघ्राश्चरपरंपराः ॥ २५ ॥

वन में वनवासी, तथा संन्यासी और वानप्रस्थी आदि भटपट काम कर देने वाले गुप्तचरों की परम्परा प्रतिपक्ष के वृत्तान्त जानने के लिए राजा नियुक्त करे ॥२५॥

परस्य चैतेषोद्धव्यास्तादृशैरेव तादृशाः ।

चारसंचारिणः संस्था गूढाश्च गूढसंज्ञिताः ॥ २६ ॥

शत्रु के गुप्तचरों के जानने के लिए जैसे शत्रु के गुप्तचर आये हों उनमें वैसे ही गुप्तचर छोड़कर उनका पता रखे । चार संचारियों को चार सञ्चारी, संस्था को संस्था वाले गुप्तचर और गूढ़ों की गूढ़ रूप से गुप्तचर पता लगा लें ॥२६॥

अकृत्यान्कृत्यपक्षीयैर्दर्शितान्कार्यहेतुभिः ।

परापसर्पज्ञानार्थं मुख्यानन्तेषु वासयेत् ॥ २७ ॥

दूसरे के वश में नहीं आने वाले, जिन पुरुषों को हेतुवाद पूर्वक अपने कार्यों को समझा दिया है, उन मुख्य पुरुषों को शत्रु के गुप्तचरों के पता लगाने के लिए अपने राज्य की सीमा पर नियुक्त करे ॥२७॥

इति विनयाधिकारिके अथमेऽधिकरणे गूढपुरुषोत्पत्तौ संचारोत्पत्तिः गूढपुरुष-
अणिधिः द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

इति श्रीकौटिलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक अथममधिकरण में गूढ पुरुषों की नियुक्ति आदि का बारहवां अध्याय समाप्त हुआ ।

तेरहवां अध्याय

नवां प्रकरण

अपने देश के कृत्य (शत्रु के वश में आने वाले) और अकृत्य शत्रु के बहकाने में नहीं आने वालों की रक्षा ।

कृतमहामात्रापर्षः पौरजानपदानपसर्पयेत् ॥ १ ॥ सन्निगोद्वंद्विनस्तीर्थ-
सभाशालापूगजनसमवायेषु विवादं कुर्युः ॥ २ ॥ सर्वगुणसंपन्नश्चायं राजा
श्रूयते ॥ ३ ॥ न चास्य कश्चिद्गुणो दृश्यते यः पौरजानपदान्दण्डकराभ्यां
पीडयतीति ॥ ४ ॥ तत्र येऽनुग्रहंसेयुस्तानितरस्तं अतिपेधयेत् ॥ ५ ॥

राज्य के कर्मचारी प्रधान मन्त्री आदि अव्यक्तों के समीप गुप्तचर रख कर नगर और राष्ट्र के मनुष्यों के अनुराग या द्वेष के जानने के लिए उनके पास भी गुप्तचर छोड़े । सत्री संज्ञक गुप्तचर, तीर्थ, सभा, विद्यालय मनुष्यों के झुण्ड, मेले आदि जनसमूह में परस्पर विवाद (बहस) करने लग जावें । इनमें एक अपना यह पक्ष बनावे, कि यह राजा सर्व गुण सम्पन्न हैं । दूसरा कहे, कि नहीं इस राजा में कोई गुण नहीं है । यह पुरवासी और देशवासी जनता को अपने दण्ड देने वाले अकसरों से पीड़ित कराता है । इस समय जो २ राजा की प्रशंसा करें, उनकी दूसरा काट के लिए उपस्थित रहे ॥१-५॥

मात्स्यन्यायाभिभूताः प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे ॥ ६ ॥ धान्य-
षड्भागं पण्यदशभागं हिरण्यं चास्य भागधेयं प्रकल्पयामासुः ॥ ७ ॥

अन्त में इस पक्ष की स्थापना करें, कि पूर्वकाल में बलवान् मनुष्य दुर्बल मनुष्य को खा जाता था । बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है-यही सारी प्रजा की दशा थी ।

प्रजा ने मिलकर विवस्वान् के पुत्र राजर्षि मनु को अपना राजा बनाया । इन्होंने उत्पन्न हुए अन्न का छठा भाग, व्यापार से प्राप्त हुए द्रव्य का दशवां भाग और कुछ सुवर्ण राजा के करके रूप में नियत किया ॥६-७॥

तेन भृता राजानः प्रजानां योगक्षेमवहास्तेषां किल्बिषमदण्डकरा हरन्ति
अयोगक्षेमवहाश्च प्रजानाम् ॥ ८ ॥ तस्मादुञ्छपट्भागमारण्यका अपि निवपन्ति
तस्यैतद्भागधेयं योऽस्मान्नोपायतीति ॥ ९ ॥

इस पट् भाग द्रव्य से राजागण प्रजा की रक्षा करते हुए और उनके कल्याण के ढंग बताते आए हैं । जो राजा प्रजा पर कठिन दण्ड नहीं देता-वही उनके दुस्सों के नाश करने में समर्थ होते हैं । और जो दण्ड देने वाले होते हैं, वे प्रजा के पीड़क और उनके योग क्षेम के नाशक होते हैं । मुनि लोग भी अपने उञ्छ वृत्ति से प्राप्त अन्न धीन कर लाये हुए अन्न का छठा भाग देते हैं, परन्तु इस भाग का तो वही अधिकारी है, जो राजा प्रजा की रक्षा में तत्पर हो ॥८-९॥

इन्द्रयमरथानमेतद्राजानः प्रत्यक्षेदप्रसादाः ॥ १० ॥ तानवमन्यमाना-
न्दैवोऽपि दण्डः स्पृशति ॥ ११ ॥ तस्माद्राजानोनावमन्तव्या इति क्षुद्रकान्-
प्रतिषेधयेत् ॥ १२ ॥

यह सारा ढांचा इन्द्र और यम के तुल्य है । इस प्रकार ही राजा का क्रोध और कृपा तो इन्द्र और यम से भी अधिक है, जो राजा का निग्रह और अनुग्रह यमादि की भांति अप्रत्यक्ष नहीं-किन्तु प्रत्यक्ष है । राजा के अपमान करने वाले पर दैवी विपत्ति भी आती है । इन सब बातों को अन्त में कह कर क्षुद्र प्रकृति के लोगों को राजा की निन्दा करने से पराङ्मुख कर दे ॥१०-१२॥

किंनदन्तीं च विद्युः ॥१३॥ ये चास्य धान्यमशुहिरण्यान्याजीवन्ति
तैरुपकुर्वन्ति व्यसनेऽभ्युदये वा कुपितं बन्धुं राष्ट्रं वा व्यावर्तयन्त्यमित्रमाटविकं
वा प्रतिषेधयन्ति तेषां मुण्डजटिलव्यञ्जनास्तुष्टातुष्टत्वं विद्युः ॥ १४ ॥

गुप्तचर लोग, नगर या राष्ट्र में फैली हुई चर्चा का भी पता लगाते रहें । जो कोई पुरुष, राजा को धान्य, पशु और सुवर्ण आदि भेंट करना चाहते हैं या धन आदि से राजा की संकट के समय सहायता को तत्पर है, जो सम्पत्ति, या विपत्ति में कुपित हुए बन्धु-बान्धवों या राष्ट्र को शान्त कर देते हैं, जो शत्रु या वन में रहने वाले (डाकू लुटेरे) आदि के पकड़ने में सहायता देना चाहते हैं, उनको भी संन्यासी (मूंड मुड़ाए हुए) या जटाधारी साधु के वेश में गुप्तचर, उनका पता रखे । जिन्होंने इस प्रकार की सहायता की है या करना चाहते हैं, वे राजा पर सन्तुष्ट हैं या असन्तुष्ट इसका भी गुप्तचर पता रखें ॥

तुष्टानर्थमानाभ्यां पूजयेत् ॥ १५ ॥ अतुष्टास्तुष्टिहेतोस्त्यागेन साम्ना
च प्रसादयेत् ॥ १६ ॥ परस्पराद्वा भेदयेदेनान्सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धे-
भ्यश्च ॥ १७ ॥

जो राजा से सन्तुष्ट हैं, उनका भी धन और मान से राजा सत्कार करता रहे तथा
जो असन्तुष्ट हों उनका भी धन दान या शान्ति के उपायों से राजा सन्तुष्ट करने का
प्रयत्न करे। जो राजा के विरोधी हों-उनमें परस्पर फूट डलवाते रहें। इसके लिए सामन्त
वनवासी, उनके बन्धु-बान्धव और मिलने वाले पुरुषों को हथियार बनावे ॥१५-१७॥

तथाप्यतुप्यतो दण्डकरसाधनाधिकारेण वा जनपदविद्वेषं ग्राहयेत् ॥ १८ ॥
विद्विष्टानुपांशुदण्डेन जनपदकोपेन वा साधयेत् ॥ १९ ॥

इतना करने पर भी यदि वे सन्तुष्ट न हो सकें-तो दण्ड और कर ग्रहण करने वाले
अफसरों द्वारा राष्ट्र में फूट डलवावे। जो राजा के विद्वेषी हैं, उनको गुप्त-चुप दण्ड दिलवा
दे या राष्ट्र (प्रजा) को उनपर कुपित (विरुद्ध) करके अपने वश में करे ॥१८-१९॥

गुप्तपुत्रदारानाकरकर्मान्तेषु वा वासयेत् ॥ २० ॥ परेषामास्पदभयात्
॥ २१ ॥ क्रुद्धलुब्धभीतावमानिनस्तु परेषां कृत्याः ॥ २२ ॥

ऐसे लोगों के पुत्र और स्त्रियों की रक्षा कर के राजा उनको आकर (खान) के काम
पर जंगल में लगा दे, क्योंकि इनका शत्रु से मिल जाने की सम्भावना है। जो पुरुष क्रोध,
लालच, भय या अपमान पाये हुए हैं, वे ही शत्रु की तोड़ फोड़ में आते हैं ॥२०-२२॥

तेषां कार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकव्यञ्जनाः परस्पराभिसंवन्धममित्राटविक-
प्रतिसंवन्धं वा विद्युः ॥ २३ ॥

इन लोगों का पता ज्योतिषी शकुनशास्त्रज्ञाता, या मुझूतों के जानने वाले विद्वानों के
वेष में पता रखे, क्योंकि ये अपने कार्य की सिद्धि के लिए उनसे अवश्य प्रश्न करेंगे। ये
ज्योतिषी आदि के रूप में फिरने वाले गुप्तचर इन लोगों के परस्पर सम्बन्ध का पता रखे,
कि कहीं इनका शत्रु या जंगली जाति से तो सम्पर्क नहीं बढ़ रहा है ॥२३॥

तुष्टानर्थमानाभ्यां पूजयेत् ॥ २४ ॥ अतुष्टान्सामदानभेददण्डैः
साधयेत् ॥ २५ ॥

सबसे अच्छा तो यही है, कि राजा प्रसन्न पुरुषों को धन और प्रतिष्ठादान से सन्तुष्ट
करे और असन्तुष्टों को साम, दाम, दण्ड और भेद के द्वारा वश में कर लेवे ॥२४-२५॥

एवं स्वविषये कृत्यान्कृत्यांश्च विचक्षणः ।

परोपजापात्सरत्तेत्प्रधानान्नुद्रकानपि ॥ २६ ॥

इस प्रकार बुद्धिमान राजा, अपने राष्ट्र में प्रधान या छोटे मोटे कृत्य (शत्रु के वश में आने वाले) और अकृत्य (उन के वश में नहीं आने वाले) पुरुषों की शत्रु द्वारा की जाने वाली तोड़ फोड़ से रक्षा रखे । ॥ २६ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणं त्रयोदशोऽध्यायः ॥

इति श्री कौटिलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में अपने देश के कृत्य और अकृत्य पुरुषों के पक्ष की रक्षा का तेरहवां अध्याय समाप्त हुआ ।

चौदहवां अध्याय

दशवां प्रकरण

शत्रु के देशमें कृत्य तथा अकृत्य पक्ष के पुरुषों का संग्रह ।

कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः स्वविषये व्याख्यातः ॥ १ ॥ परविषयेवाच्यः ॥ २ ॥

राजा को अपने देश में किस प्रकार कृत्य (शत्रु के वश में होने योग्य) और अकृत्य (नहीं वश में आने योग्य) पुरुषों का संग्रह करना चाहिए-इस बात का वर्णन हो हो, चुका अब शत्रु के देश में ऐसे पुरुषों को कैसे जानना चाहिए-यह बताया जाता है ॥ १-२ ॥

संश्रुत्यर्थान्विप्रलब्धस्तुल्याधिकारिणो शिल्पे वोपकारे वा विमानितो बल्लभावरुद्धः समाहूय परोजितः प्रवासोपतप्तः कृत्वा व्ययमलब्धकार्यः स्वधर्मादायाद्याद्वोपरुद्धो मानाधिकाराभ्यां भ्रष्टः कुल्यैरन्तर्हितः प्रसभाभिमृष्टस्त्रीकः कारादिन्यस्तः परोक्तदण्डितो मिथ्याचारवारितः सर्वस्वमाहारितो बन्धनपरिक्लिष्टः प्रवासितबन्धुरिति क्रुद्धवर्गः ॥ ३ ॥

राजा ने जिन पुरुषों को धन या किसी पद आदि के देने का वचन दिया हो और फिर उनको धन नहीं दिया गया है-ऐसे पुरुष राजा पर कुपित होकर कृत्य अर्थात् शत्रु की तोड़ फोड़ में आजाने के योग्य हो जाते हैं । इसी तरह शिल्प या अन्य किसी उपकार के करने वाले दो समान व्यक्तियों में राजा ने किसी एक का अधिक सत्कार कर दिया हो । राजा के प्रिय पात्रों ने जिसको राज दरबार में प्रवेश करने से रोक दिया हो । जिसको प्रथम बुलाकर फिर अपमानित किया हो । जो राजा की आज्ञा से बहुत काल से देश निकाला भोग रहा हो । किसी कार्य के निमित्त प्रत्येक व्यय करने पर भी जिसका कार्य पूरा नहीं किया हो । जिसको अपनी धार्मिक क्रिया के करने से रोक दिया गया हो, या जिसको उसके पित्रकुल के दाय भाग (हिस्से के धन से वञ्चित कर दिया हो । जो प्रतिष्ठा के योग्य पद या राज्य के किसी अधिकार पर जिसको च्युत कर दिया हो । राजकुल किन्हीं

पुरुषों द्वारा जिसका अपमान किया हो। जिसकी स्त्री को बलपूर्वक छीन लिया-या उससे व्यभिचार किया हो। जिसको बिना अपराध कारागार में डाला हो-या दूसरे के कहने पर बिना सोचे विचारे जिसको दण्ड दे दिया गया हो, किसी कार्य से जिसको छल कपट द्वारा रोक दिया-या उच्छृङ्खल व्यवहार करने वाले को रोक दिया हो। जिसका किसी अपराध में सर्वस्व अपहरण कर लिया हो। जो बन्धन में पड़ा रह रहा हो। जिसके किसी बन्धु को देश निकाला दे दिया हो-ऐसे पुरुष कृत्य (शत्रु की ओर मिल जाने) वाले हो जाते हैं। यह कृत्यों का क्रुद्ध वर्ग कहलाता है। क्योंकि इसमें राजा पर ये क्रुद्ध हुए रहते हैं ॥३॥

स्वयमुपहतो विप्रकृतः पापकर्माभिख्यातस्तुल्यदोषदण्डेनोद्विग्नः पर्यात्त-
भूमिदण्डेनोपनतः सर्वाधिकरणस्थः सा (स) हसोपचितार्थस्तत्कुलीनोपाशुंसुः
प्रद्विष्टो राज्ञा राजद्वेषी चेति भीतवर्गः ॥ ४ ॥

जिसने किसी की हत्या (कत्ल) की हो और इस पर उसको अपमानित किया हो। जो पाप कर्म में (अपराध) प्रसिद्ध हो चुके हों। अपने समान अपराध (जर्म) करने वाले पुरुषों की दण्ड व्यवस्था को सुनकर जो घबराया हो जिसको भूमि अपहरण का दण्ड दिया गया हो। जो सर्व प्रकार के साधनों से युक्त हो-या बहुत बड़े राज्याधिकार से च्युत होने का जिसको भय खड़ा हो रहा हो। अनुचित साहस द्वारा जिसने द्रव्य इकट्ठा किया हो राजा महाराजा के किसी बन्धु वर्ग (भाई बेटे) के जो आश्रित हो, इसी कारण से राजा का द्वेष का पात्र बन गया हो-या अन्य किसी प्रकार से राजा से द्वेष करता हो, इस ढंग के पुरुष भी शत्रु के वश में आने के योग्य माने गए हैं। ये पुरुष भय के कारण शत्रु से मिलने का उद्योग करते हैं-इससे भीतवर्ग में इनकी गणना की गई ॥४॥

परिक्लीणोऽत्यात्तस्वः कदर्यो व्यसन्यत्याहितव्यहारश्चेति लुब्धवर्गः ॥ ५ ॥

व्यापार आदि में बाटा लग जाने से जो दरिद्री हो गया हो। जिसका किसी कारण से धन छीन लिया गया हो। जो कायर (छोटे हृदय वाला) हो। जिसको मद्य आदि किसी प्रकार का व्यसन लगा हो। जिसका सारा करोबार रुकने-वाला हो-ऐसे पुरुष भी कृत्य अर्थात् शत्रु के वश में चले जाते हैं। ये लोभ के वश में जाते हैं-इससे इनको लुब्ध-वर्ग में सम्मिलित किया गया है ॥५॥

आत्मसंभावितो मानकामः शत्रुपूजामर्षितो नीचैरुपहितस्तर्क्षणः साद-
सिको भोगेनासंतुष्ट इति मानिवर्गः ॥ ६ ॥

जो अपने को बहुत बड़ा मानता हो। जिस को राज दरबार से मान की अभिलाषा हो। जिसके शत्रु की पूजा करदी गई हो। नीच पुरुषों ने जिसको शिर पर चढ़ा रखा

हो। जो तीक्ष्ण प्रकृति का मनुष्य हो। अनुचित साहस करने में भी जिसको हिचकिचाहट न हो। अपने प्राप्त भोगों से जिसको सन्तोष न हो। ऐसा पुरुष भी शत्रु की ओर जा मिलता है। इसको मानि-वर्ग में गिना जाता है, क्योंकि यह अपना मान का अभिलाषी होता है ॥६॥

तेषां मुण्डजटिलव्यङ्गनैर्यो यद्भक्तिः कृत्यपक्षीयस्तं तेनोपजापयेत् ॥ ७ ॥

इन पुरुषों में जिसको जिस मुण्डी (संन्यासी) या जटाधारी महात्मा की भक्ति हो-उसके द्वारा ही उसका ऐश्वर्य चाहने वाला राजा अपने वश में करले ॥७॥

यथा मदान्धो हस्ती मत्तेनाधिष्ठितो यद्गदासादयति तत्सर्वं प्रमृद्नात्येव-
मयमशास्त्रचक्षुरन्धो राजा पौरजानपदवधायाभ्युत्थितः ॥ ८ ॥

मुण्डी या जटिल गुप्तचर इन क्रुद्ध वर्ग के पुरुषों से कहे, कि अमुक (क्रुद्धवर्ग का प्रिय) राजा मदोन्मत्त महावत से चलाए हुए मदान्ध हाथी की भांति जिस किसी भले बुरे को पाता है, मार देता है। इस प्रकार शास्त्र की आँखों से रहित अमुक राजा न्यर्थ ही पुर और राष्ट्र के व्यक्तियों के मारने को उद्यत रहता है ॥८॥

शक्यमस्य प्रतिहस्तिपोत्साहनेनापकर्तुममर्षः क्रियतामिति क्रुद्धवर्गमुप-
जापयेत् ॥ ९ ॥

उस राजा के तो शत्रुओं से मिलकर इसको उखाड़ देना चाहिए! तुम भी इस पर क्रोध करो-इस प्रकार की बातें बनाकर क्रुद्ध-वर्ग को राजा अपने वश में करें ॥९॥

यथा भीतः सर्पो यस्माद्भयं पश्यति तत्र विपमुत्सृजत्येवमयं राजा जात-
दोषाशङ्कस्त्वयि पुरा क्रोधविपमुत्सृजत्यन्यत्र गम्यतामिति भीतवर्गमुपजापयेत् ॥ १० ॥

ढरा हुआ सर्प, जिस व्यक्ति से अपने को भय समझता है, उसी को काट कर उसमें विप छोड़ देता है-इसी तरह इस राजा को तुम पर व्यर्थ ही शत्रु से मिल जाने की शङ्का हो रही है। कहीं यह तुम पर क्रोधरूपी विप न उगल बैठे-तुम कहीं दूसरी जगह चलो। इस ढंग से बात बनाकर भीत वर्ग को अपने ओर तोड़ लेवे ॥१०॥

यथा श्वगणिनां धेनुः श्वभ्यो दुग्धे ना ब्राह्मणेभ्य एवमयं राजा सत्त्वप्रज्ञा-
वाक्यशवितहीनेभ्यो दुग्धे नात्मगुणसंपन्नेभ्यः ॥ ११ ॥ असौ राजा पुरुषविशे-
षज्ञस्तत्र गम्यतामिति लुब्धवर्गमुपजापयेत् ॥ १२ ॥

श्वपचों की गाय जैसे केवल श्वपचों के लिए ही दुग्ध देती है-ब्राह्मणों के लिए नहीं-इसी प्रकार यह राजा भी आत्म, बल, बुद्धि और बोलने की शक्ति से हीन नीच

पुरुषों को ही धन देता है-आत्म गुणों से सम्पन्न मनस्वी पुरुषों की तो यह बात भी नहीं पृथक्ता । अमुक राजा पुरुषों के गुणों को पहचानने वाला है-तुम वहां चलो । इस प्रकार इस लुब्धवर्ग को राजा अपनी ओर मिला लेवे ॥११-१२॥

यथा चाण्डालोदपानश्चण्डालानामेवोपभोग्यो नान्येषामेवमयं राजा नीचो
नीचानामेवोपभोग्यो न त्वद्विधानामार्याणाम् ॥ १३ ॥ असौ राजा पुरुषविशे-
षज्ञस्तत्र गम्यतामिति मानिवर्गमुपजापयेत् ॥ १४ ॥

जिस प्रकार चाण्डालों का कुआँ चाण्डालों के ही उपयोग में आता है-अन्य किसी के भी काम में नहीं आता-इसी प्रकार यह नीच राजा भी नीच व्यक्तियों के उपयोग में ही आता है-आर्य गुण सम्पन्न तुम जैसे भले मानसों का तो यह कुछ भी आदर नहीं करता अमुक राजा पुरुषों के सारे गुणों को पहचान लेने में बड़ा भावुक है । तुम भी वहीं चलो इस प्रकार अभिमानी पुरुषों को राजा अपनी ओर मिलावे । यह मानिवर्ग के तोड़ने फोड़ने का ढंग है ॥१३-१४॥

तथेति प्रतिपन्नांस्तान्संहितान्पणकर्मणा ।

योजयेत यथाशक्ति सापसर्पान्स्वकर्मसु ॥ १५ ॥

इस प्रकार शपथ या प्रतिज्ञा द्वारा लाये हुए इन पुरुषों की अभिलाषा को पूर्ण करके उनको यथाशक्ति उनके पदों पर नियुक्त कर दे । तथा जिन गुप्तचरों ने ऐसा कराया-उनको भी प्रसन्न करे ॥१५॥

लभेत सामदानाभ्यां कृत्यांश्च परभूमिषु ।

अकृत्यान्भेददण्डाभ्यां परदोषांश्च दर्शयेत् ॥ १६ ॥

जो कृत्य (अपने से अप्रसन्न होकर) शत्रु के देश में जा पहुंचे-उनको साम (समझाकर) या दान (धन देकर) अपने वश में करले । जो अभी तक शत्रु के वश में नहीं गए और विगड़े हुए हैं, उनको डरा धमकाकर या दण्ड देकर तथा अन्य राजा के दोषों को गुप्तचरों द्वारा दिखवाकर विजयाभिलाषी राजा अपने वश में करे ॥१६॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमऽधिकरणे परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः चतुर्दशोऽ-

ध्यायः ॥

इति श्रीकौटलीयार्थशास्त्रान्तर्गत प्रथमविनयाधिकारिक अधिकरण में शत्रु देश में पहुंचे हुए पुरुष या अपने ही देश में अप्रसन्न पुरुषों के वश में करने का चौदहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

पन्द्रहवां अध्याय

ग्यारहवां प्रकरण

मंत्राधिकार

कृतस्वपक्षपरपक्षोपग्रहः कार्यारम्भांश्चिन्तयेत् ॥ १ ॥ मन्त्रपूर्वाः
सर्वारम्भाः ॥ २ ॥

नीतिकुशल राजा अपने पक्ष और शत्रु पक्ष के तोड़ने फोड़ने के योग्य या अयोग्य व्यक्तियों को जानकर अपने देश में दुर्ग रचना और शत्रु देश में चढ़ाई करने आदि का विचार करे। राजा या प्रत्येक बुद्धिमान पुरुष को मन्त्रणा करने के अनन्तर ही कुछ कार्य करना चाहिए ॥१-२॥

तदुद्देशः संवृतः कथानामनिसावी पक्षिभिरप्यनालोक्यः स्यात् ॥ ३ ॥
श्रूयते हि शुक्शारिकाभिर्मन्त्रो भिन्नः श्वभिरन्यैश्च तिर्यग्योनिभिः ॥ ४ ॥

मन्त्रणा का स्थान इतना सुरक्षित होना चाहिए, कि उसमें से बात चीत कोई मुन न सके। पक्षी भी उस स्थान में अपना पंख न मार सके। यह सुना जाता है, कि तोते और मैना ने किसी राजा की मन्त्रणा सुनली-वे इतने कुशल थे, कि वे वैसे ही बोलने लगे, जिस से राजा का मन्त्र फूट निकला। कहीं पर कुत्तों की चेष्टाओं से मन्त्र का भेद होगया और कहीं पर अन्य तिर्यक्षों (पशु पक्षी) ने इसी तरह राजा की मन्त्रणा खोल दी ॥ ३-४ ॥

तस्मान्मन्त्रोद्देशमनायुक्तो नोपगच्छेत् ॥ ५ ॥ उच्छिद्येत मंत्र भेदी ॥ ६ ॥
मन्त्रभेदो हि दूतामात्यस्वामिनामिङ्गिताकाराभ्याम् ॥ ७ ॥

राजा को चाहिये, कि वह यह आज्ञा प्रचलित कर दे, कि मन्त्र स्थान पर कोई मनुष्य बिना पूछे न आ सके। जो राजा का मन्त्र भेद करे, उस को राजा देश निकाला दे दे, या शूली पर चढ़ा कर छेद दे। कभी २ दूत, अमात्य (अफसर) और स्वयं राजा की आकार और चेष्टाओं से भी मन्त्र खुल जाता है ॥ ५-७ ॥

इङ्गितमन्यथावृत्तिः ॥ ८ ॥ आंकृतिग्रहणमाकारः ॥ ९ ॥ तस्य संवरण-
मायुक्तपुरुपरक्षणमाकार्यकालादिति ॥ १० ॥

मनुष्य की स्वाभाविक चेष्टा के विपरीत चेष्टा, इङ्गित कहाती है। मुख आदि की-विकृति आदि उलटाव पलटाव आकार कहाता है। राजा को उचित है, कि वह, अपने इङ्गित या आकार को छुपाये रखे तथा जब तक कार्य करने का समय न आजावे, तब तक इङ्गित आकार ही नहीं, प्रत्युत इस मन्त्र कार्य में सम्मिलित पुरुषों की भी सावधानी से पड़ताल रखे ॥ ८-१० ॥

तेषां हि प्रमादमदसुप्तप्रलापकामादिरुत्सेकः ॥ ११ ॥ प्रच्छन्नोऽवमतो वा मन्त्रं भिनत्ति ॥ १२ ॥ तस्माद्रक्षेन्मन्त्रम् ॥ १३ ॥

मन्त्र कार्य में नियुक्त पुरुषों की असावधानी, मद, सोते २ वड़ बढ़ाना, काम-वृत्ति, (वेश्यादि की प्राप्ति) अभिमान, छुप कर सुनना, तिरस्कार कर देना आदि बातें, राजा के मन्त्र को खोल देती हैं। इन बातों को विचार कर मन्त्र-रक्षा का प्रयत्न करे ॥ ११-१३ ॥

मन्त्रभेदो ह्ययोगक्षेमकरो राजस्तदायुक्तपुरुषाणां च ॥ १४ ॥ तस्मादनु-
हमेको मन्त्रयेतेति भारद्वाजः ॥ १५ ॥ मन्त्रिणामपि हि मन्त्रिणो भवन्ति ॥ १६ ॥
तेषामप्यन्ये ॥ १७ ॥ सैषा मन्त्रिपरंपरा मन्त्रं भिनत्ति ॥ १८ ॥

मन्त्र-का फूट जाना, राजा और मन्त्राधिकारी पुरुषों के कल्याण का नाशक है। इन सब कारणों से (राजा अत्यन्त गुप्त बातों को अकेला ही विचारे) ऐसा भारद्वाज मुनि का मत है, (क्योंकि मन्त्रियों के भी मन्त्री होते हैं। उन के अन्य मन्त्री हैं। यह मन्त्रियों की परम्परा ही मन्त्र को तोड़ फोड़ देती है ॥ १४-१८ ॥)

तस्मान्नास्य परे विद्वुः कर्म किंचिच्चिकीर्षितम् ।

आरब्धारस्तु जानीयुरारब्धं कृतमेव वा ॥ १९ ॥

सारांश यह है, कि विजयाभिलाषा करने वाले राजा के भविष्य में करने योग्य कार्य को कोई भी न जान सके। जो मनुष्य उस काम में सहयोग ले रहे हैं, वे उसको आरम्भ कर देने पर उसको जान सके, साधारण जनता को तो परिणाम निकल आने पर ही कार्य का पता लगना-चाहिये ॥ १९ ॥

नैकस्य मन्त्रसिद्धिरस्तीति विशालाक्षः ॥ २० ॥ प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया हि राजवृत्तिः ॥ २१ ॥

विशालाक्ष आचार्य का मत है कि अकेले ही राजा के विचार करने से मन्त्र सिद्धि नहीं हो सकती है। दूसरे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राजा की चित्त वृत्ति का भी अनुमान हो जाता है। अथवा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राजा के कार्य को मन्त्री और अन्य पुरुष ही सम्पादित कर सकते हैं ॥ २०—२१ ॥

अनुपलब्धस्य ज्ञानगुपलब्धस्य निश्चयो निश्चितस्य वलाधानमर्थद्वैधस्य संशयच्छेदनमेकदेशदृष्टस्य शेषोपलब्धिरिति मन्त्रिसाध्यमेतत् ॥ २२ ॥ तस्माद्वृद्धिवृद्धैः सार्धमासीत् मन्त्रम् ॥ २३ ॥

नहीं जानी हुई बात का जानना, जानी हुई का निश्चय करना, निश्चित बात को छद्म बनाना, मत भेद की बात में संशय नहीं रहने देना, एक देश का ज्ञान होने पर उस के शेष अंग को पूरा करना मन्त्रियों का ही कार्य है। मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा किये बिना राजाओं का काम नहीं चल सकता, अतएव अधिक बुद्धिमानों के साथ राजा अवश्य सम्मति करे ॥ २२-२३ ॥

न कंचिद्वमन्येत सर्वस्य शृणुयान्मतम् ॥

बालस्याप्यर्थवद्वाक्यमुपयुञ्जीत परिडतः ॥ २४ ॥

अधिक बुद्धिमान् ही क्या ? राजा तो सब के मत को सुने—किसी की अवहेलना न करे। बुद्धिमान् राजा (पुरुष) तो बालक के भी सार्थक वाक्य को स्वीकार ले ॥ २४ ॥

एतन्मन्त्रज्ञानं नैतन्मन्त्ररक्षणमिति पाराशराः ॥ २५ ॥ यदस्य कार्यमभिप्रेतं तत्प्रतिरूपकं मन्त्रिणः पृच्छेत् ॥ २६ ॥

पराशर मुनि के मतानुयायी कहते हैं, कि विशालान् का कथन, मन्त्र ज्ञान है। मन्त्र रक्षण नहीं हो सकता है। इन सब बातों को विचार कर राजा जिस कार्य को करना चाहे, वैसा ही अन्य कोई कार्य मन्त्रियों के सम्मुख रखकर उनका मत जानले ॥ २५-२६ ॥

कार्यामेदमेवमासीदेवं वा यदि भवेत्तत्कथं कर्तव्यमिति ॥ २७ ॥ ते यथा ब्रूयुस्तत्कुर्यात् ॥ २८ ॥ एवं मन्त्रोपलब्धिः संवृतिश्च भवतीति ॥ २९ ॥

यह कार्य ऐसे होगा या ऐसे हो सकता है। यह होगा-या नहीं। होगा तो किस तरह हो सकता है। वे जैसी सम्मति देंगे वैसा करे। इस प्रकार मन्त्र-ज्ञान और उसका रक्षण हो सकता है ॥ २७-२९ ॥

नेति पिशुनः ॥ ३० ॥ मन्त्रिणो हि व्यवहितमर्थं वृत्तमवृत्तं वा पृष्टमनादरेण ब्रुवन्ति अकाशयन्ति वा ॥ ३१ ॥ स दोषः ॥ ३२ ॥ तस्मात्कर्मसु येषु येऽभिप्रेतास्तैः सह मन्त्रयेत् ॥ ३३ ॥ तैर्मन्त्रयमाणो हि मन्त्रवृद्धिगुप्तिं च लभत इति ॥ ३४ ॥

पिशुनाचार्य-इस बात को भी नहीं मानता। इस की युक्ति है, कि यदि मन्त्रियों से छुपा कर पूछा, उसका ढंग बदल कर घटना का रूप ही बदल दिया-तो वे अनादर के साथ उस विषय पर अपना मत प्रकट करेंगे या उस पर अरुचि के साथ प्रकाश डालेंगे। यह बड़ी बुरी बात है। जिन पुरुषों को जिन कामों पर लगावे या लगा रखे हैं, उनके साथ राजा को मन्त्रणा करनी ही चाहिए। ऐसे आवश्यक पुरुषों के साथ मन्त्रणा करने से मन्त्र की वृद्धि और रक्षा होती है ॥ ३०-३४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३५ ॥ अनवस्था होषा ॥ ३६ ॥ मन्त्रिभिस्त्रिभिश्चतु-
र्भिर्वा सह मन्त्रयेत् ॥ ३७ ॥

कौटिल्य (चाणक्य) आचार्य पिशुन (नारद) के इस मत को भी नहीं मानते । यदि इस तरह प्रत्येक कार्य के अव्यक्त या अभिमत पुरुष के साथ मन्त्रणा करना है, तो कहां तक मन्त्रणा को लम्बी की जावे । इस तरह तो अनवस्था हो जावेगी । अभिमत पुरुषों का तो अन्त ही नहीं है । कौटिल्य की सम्मति में तीन या चार मन्त्रियों के साथ अवश्य मन्त्रणा करनी चाहिए । ॥ ३५-३७ ॥

मन्त्रयमाणो ह्येकेनार्थकृच्छ्रेषु निश्चयं नाधिगच्छेत् ॥ ३८ ॥ एकश्च मन्त्री
यथेष्टमनवग्रहश्चरति ॥ ३९ ॥ द्वाभ्यां मन्त्रयमाणो द्वाभ्यां संहताभ्यामव-
गृह्यते ॥ ४० ॥

जो राजा एक ही मन्त्री के साथ मन्त्रणा करता है-वह मतभेद के स्थानों में ठीक २ मन्त्र का निश्चय नहीं कर सकता है । यदि एक ही मन्त्री राजा ने विचार के लिए रखा है, तो वह अपनी इच्छा के अनुसार बिना किसी सोच विचार के उच्छ्वल रूप से भी चल सकता है । (जो राजा अपने राजनीति के विषयों को दो मन्त्रियों के साथ विचार करते हैं-वह भी ठीक नहीं है । यदि दोनों मन्त्री मिल जाये-तो राजा का मन्त्र उचित रूप से सिद्ध नहीं हो सकता) क्योंकि दो का मिल जाना बहुत सम्भव है । ॥ ३८-४० ॥

विगृहीताभ्यां विनाश्यते ॥ ४१ ॥ त्रिषु चतुषु वा नैकान्तं कृच्छ्रेणोप-
पद्यते महादोषम् ॥ ४२ ॥ उपपन्नं तु भवति ॥ ४३ ॥

यदि दोनों मन्त्रियों में मतभेद या झगड़ा हो जावे-तो किसी बात का निश्चय ही नहीं हो सके और कार्य का विलकुल ही नाश हो सकता है । (यदि तीन या चार मन्त्री हों-तो इस दंग के अनर्थ के आने की बहुत ही कम सम्भावना होती है ।) काम ठीक २ चलता रहता है-ऐसा ही देखा गया है । ॥ ४१-४३ ॥

ततः परेषु कृच्छ्रेणार्थनिश्चयो गम्यते ॥ ४४ ॥ मन्त्रो वा रक्ष्यते ॥ ४५ ॥
देशकालकार्यवशेन त्वेकेन सह द्वाभ्यामेको वा यथा सामर्थ्यं मन्त्रयेत् ॥ ४६ ॥

(यदि चार से अधिक मन्त्रणा के लिए मन्त्री नियुक्त किये गए हों-तो फिर किसी भी कार्य का निश्चय करना बहुत ही कठिन हो जाता है । और न मन्त्र की रक्षा ही हो सकती है ।) देश-काल और कार्य की आवश्यकता देख कर एक या दो मन्त्रियों के साथ भी विचार किया जा सकता है-जैसा समय देहे-वैसा कर ले । ॥ ४४-४६ ॥

✓ कर्मणामारम्भोपायः पुरुषद्रव्यसंपद्देशकालविभागो विनिपातप्रतीकारः
कार्यसिद्धिरिति पञ्चाङ्गो मन्त्रः ॥४७॥ तानेकैकशः पृच्छेत् समस्तांश्च ॥४८॥

(१) कार्य के आरम्भ करने का उपाय, कैसे दुर्ग आदि की रचना या शत्रु के घर में कलह आदि कराया जा सकता है। (२) अपने पास योग्य पुरुष सेनापति, दूत आदि का रखना और द्रव्य का संग्रह करना (३) देश और काल का विचार (४) आये हुए अनर्थों से बच निकलने का उपाय (५) तथा अपने अभीष्ट की सिद्धि का विचार, ये पांच प्रकार मन्त्रणा के हैं, ये ही मन्त्र के पांच अङ्ग कहते हैं। इन सारे विषयों पर मन्त्रियों से पृथक् २ या सम्मिलित सभा में सब के साथ एक दम विचार किया जा सकता है। ४७-४८ ॥

✓ हेतुभिश्चैषां मतिप्रविवेकान् विद्यात् ॥ ४९ ॥ अवाप्तार्थः कालं नातिक्रामयेत् ॥ ५० ॥ न दीर्घकालं मन्त्रयेत् ॥ ५१ ॥ न च तेषांपक्षयैर्येषामपक्रुयान् ॥ ५२ ॥

राजा इन मन्त्रियों की बुद्धि पूर्वक विवेचन की युक्तिवाद के सहारे से जांच करे। जब बात का निश्चय हो जावे-तो उनके करने में देर न करे, बहुत लम्बे काल तक विचार भी नहीं करना चाहिए। और न ऐसे पुरुषों के साथ विचार करे-जिनका राजा अपकार कर चुका हो और वे पुरुष उन अपकृत पुरुषों से संसर्ग रखते हों ॥ ४९-५२ ॥

मन्त्रिपरिषदं द्वादशामात्यान्कुर्वीतेति मानवाः ॥ ५३ ॥ षोडशेति ब्राह्म-
स्पत्याः ॥ ५४ ॥ विंशतिमित्यौशनसाः ॥ ५५ ॥ यथासामर्थ्यमिति कौटिल्यः
॥ ५६ ॥ ते ह्यस्य स्वपक्षं परपक्षं च चिन्तयेयुः ॥ ५७ ॥ अकृतारम्भमारब्धानु-
ष्ठानमनुष्ठितविशेषं नियोगसंपदं च कर्मणां कुर्युः ॥ ५८ ॥ आसन्नैः सह
कार्याणि पश्येत्, अनासन्नैः सह पत्रसंप्रेषणेन मन्त्रयेत् ॥ ५९ ॥

मनु के मत के मानने वाले एक राज-सभा में बाराह मन्त्री मानते हैं। बृहस्पति के मतानुयायी सोलह और शुक्राचार्य के मत के मानने वाले बीस सभासद होना स्वीकार करते हैं। परन्तु कौटिल्य का मत है, कि जैसा समय देखे-उतने ही सभासद बना ले। वे ही मन्त्री राजा के पक्ष के और शत्रु पक्ष के सम्बन्ध में भी विचार करे। ये मन्त्री ही राजा के प्रारम्भ नहीं किये हुए कार्य का प्रारम्भ करावें। आरम्भ किये हुए का सम्यक् रीति से पूरा कराने का प्रयत्न करें। जिन कार्यों की समाप्ति हो चुकी हों-उनमें ये विशेष लावें। इस प्रकार कर्तव्य कार्यों को अपनी आज्ञा से पूरा करावे। जो मन्त्री राजा के समीप हों-उनसे राजा प्रत्यक्ष बातचीत करले और जो दूर स्थित हैं, उनके साथ पत्रादि से उचित परामर्श ग्रहण करे ॥ ५३-५९ ॥

इन्द्रस्य हि मन्त्रिपरिपट्वीणां सहस्रम् ॥६०॥ स तच्चक्षुः ॥६१॥ तस्मादिमं
द्वयं सहस्राक्षमाहुः ॥ ६२ ॥

इन्द्र की मन्त्रिपरिपट्व में एक सहस्र समासद्वताए जाते हैं। ये ही इन्द्र की आंखें मानी गई हैं। यही कारण है, कि इन्द्र के दो ही आंख हैं, तो भी वह सहस्राक्ष कहाता है ॥ ६०-६२ ॥

आत्ययिके कार्ये मन्त्रिणो मन्त्रिपरिपट्वं चाहूय ब्रूयात् ॥ ६३ ॥ तत्र
यद्भूयिष्ठाः कार्यसिद्धिकरं वा ब्रूयुस्तत्कुर्यात् ॥ ६४ ॥

राजा कठिन समस्या आ पढ़ने पर मन्त्री और मन्त्रि परिपट्व को बुलावे। उस समय जिस बात की अधिकांश व्यक्ति पुष्टि करें, उसी कार्य के सिद्धि करने वाले उपाय को-राजा वर्तान में लावे ॥ ६३-६४ ॥

कुर्वतश्चः—

नास्य गुह्यं परे विद्युः छिद्रं विद्यात्परस्य च ।

गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि यत्स्याद्विवृतमात्मनः ॥ ६५ ॥

जब राजा अपने विचार को कार्य में परिणत करे, तो-ऐसा ढंग होना चाहिए कि इनके इस गुप्त मन्त्र को कोई विरोधी न जान सके-अत्युत यही शत्रु के छिद्र (न्यूनता) को जानले। राजा तो अपने आकार को इस तरह छुपा ले जैसे-कछुवा अपने अङ्गों को छुपा लेता है ॥ ६५ ॥

यथा ह्यश्रोत्रियः श्राद्धं न सतां भोक्तमर्हति ।

एवमश्रु तशास्त्रार्थो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥ ६६ ॥

जिस तरह धार्मिक पुरुषों के घरों में श्राद्ध में अश्रोत्रिय (वेद हीन) ब्राह्मण जीमने का अधिकार नहीं रखता है, ऐसे ही राजनीति आदि शास्त्रों को नहीं पढ़ा हुआ व्यक्ति मन्त्र कार्य का अधिकार नहीं रखता ॥ ६६ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे मन्त्राधिकारः पञ्चदशो ऽध्यायः ॥ १५ ॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक प्रथममधिकरण में गूढ़ पुरुषों की नियुक्ति आदि का पन्द्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।

सोलहवां अध्याय

वारहवां प्रकरण

दूत प्रणिधि

उद्धतमन्त्रो दूतप्रणिधिः ॥ १ ॥ अमान्यसंपदोपेतो निसृष्टार्थः ॥ २ ॥

पादगुणहीनः परिमितार्थः ॥ ३ ॥ अर्थगुणहीनः शासनहरः ॥ ४ ॥

इस प्रकार मन्त्र के निश्चित हो जाने पर दूत नियत करना चाहिए। दूत तीन तरह के होते हैं (१) निसृष्टार्थ (२) परिमितार्थ (३) शासनहर। जिस दूत में पूर्वोक्त अमान्य के से गुण हों-वह निसृष्टार्थ कहाता है अर्थात् जो अपनी बुद्धि से कार्य सिद्धि के अनुकूल योग्य बातचीत अपनी स्वतन्त्रता से भी चलाने की योग्यता रखता है-या चलाता है-वह निसृष्टार्थ, इससे जो चतुर्थांश में न्यून होता है-अर्थात् थोड़ा बोलकर कार्य को सम्मुख रखता है-वह परिमितार्थ कहाता है। जो निसृष्टार्थ से आधा गुण रखता है अर्थात् जो संदेश दिया-उसे ही पहुंचा कर पृथक् होता है-अपनी योग्यता से उत्तर प्रत्युत्तर नहीं करता वही दूत, शासनहर कहाता है ॥१-४॥

सुप्रतिविहितयानवाहनपुरुषपरिचापः प्रतिष्ठेत ॥ ५ ॥ शासनमेवं वाच्यः परः, स वक्ष्यत्येवं, तस्येदं प्रतिवाक्यमेवमतिसंधातव्यमित्यधोयानो गच्छेत् ॥ ६ ॥

दूत भी यान, (सवारी गाड़ी) वाहन (अश्व) नौकर चाकर और उत्तम २ सामान (गलीचे आदि) लेकर शत्रु के देश में प्रभाव के साथ प्रवेश करे। दूत को यह मनन करते रहना चाहिए, कि मैं इस प्रकार अपने राजा के संदेश को विरोधी राजा के सम्मुख रखूंगा। वह यह कहेगा, तो मैं उसका यह उत्तर दूंगा, इस तरह उसके संदेश की निवृत्ति कर दूंगा। इस ढंग से सोचता-विचारता हुआ दूत गमन करे ॥५-६॥

अटव्यन्तपालपुरराष्ट्रमुख्यैश्च प्रतिसंसर्गं गच्छेत् ॥ ७ ॥ अनीकस्थानयुद्धप्रतिग्रहापसारभूमीरोत्मनः परस्य चावेक्षेत ॥ ८ ॥ दुर्गराष्ट्रप्रमाणं सारवृत्तिगुप्तिच्छिद्राणि चोपलभेत ॥ ९ ॥

शत्रु के देश में प्रवेश करके दूत, विरोधी राजा के वन के रक्षक (जंगलात के अफसर) राज्य की सीमा के रक्षक (कलक्टर, आदि) तथा पुर और राष्ट्र के मुख्य २ व्यक्तियों से जहां तक हो सके-अपना मेल जोल बढ़ावे। वहां पर अपनी सेना के ठहरने के योग्य स्थान, युद्धस्थल, समय पड़ने पर भागने के मार्ग तथा शत्रु की सेना की स्थिति

का भी दूत पता लगावे यही नहीं-किन्तु शत्रु के पास कितने दुर्ग (किले) राज्य का विस्तार, किस तरह कितनी धान्य सुवर्ण और रुपये की आमदनी है । प्रजा की जीविका की क्या दशा है । राज्य की रक्षा किस तरह हो रही है । राज्य में क्या २ दोष उत्पन्न हो रहे हैं-इन सब बातों का दूत को ज्ञान कर लेना चाहिए ॥७-६॥

पराधिष्ठानमनुज्ञातः प्रविशेत् ॥ १० ॥ शासनं च यथोक्तं ब्रूयात् ॥ ११ ॥

प्राणावाधेऽपि दृष्टे ॥ १२ ॥

दूत शत्रु के प्रदेश में उसकी आज्ञा (इजाजत) आने पर ही प्रवेश करे । अपने राजा के संदेश को ठीक ढंग से प्रस्तुत करे । यदि प्राण वाधा भी उपस्थित हो जावे-तो भी अपने स्वामी के हितकारी संदेश के समुचित रीति से कहने में दूत कभी आगा पीछा न करे ॥१०-१२॥

परस्य वाचि वक्त्रे दृष्ट्यां च प्रसादं वाक्यपूजनमिष्टपरिप्रश्नं गुणकथा-
सङ्गमासन्नमासनं सत्कारमिष्टेषु स्मरणं विश्वासगमनं च लक्षयेत्तुष्टस्य ॥ १३ ॥
विपरीतमतुष्टस्य ॥ १४ ॥ तं ब्रूयात् ॥ १५ ॥ दूतमुखा वै राजानस्त्वं चान्ये
च ॥१६॥ तस्मादुद्यतेष्वपि शस्त्रेषु यथोक्तं वक्तारस्तेषामन्तावसायिनोऽप्यवध्याः
॥ १७ ॥ किमङ्ग पुनर्ब्राह्मणाः ॥ १८ ॥ परस्यैतद्वाक्यमेष दूतधर्म इति ॥ १९ ॥

जिस राजा के पास संदेश ले जाया गया है-यदि दूत से मिलने पर उसकी वाणी, मुख और दृष्टि पर प्रसन्नता की झलक आवे-दूत के वचन का आदर करे, प्रिय प्रश्न करे संदेश भेजने वाले राजा के गुणों के सुनने में मन लगावे, दूत को अपने समीप ही आसन दे, सत्कार करे, इष्ट मित्रों की कुशल पूछे तथा दूत पर विश्वास प्रकट करे-तो समझ लेना चाहिए-कि यह राजा प्रसन्न है । यदि इन बातों के विपरीत विरोधी राजा कुछ चेष्टा करे-तो समझ लेना चाहिए कि इसका ढंग अच्छा नहीं है । इस दशा में उससे कह दे-कि अप्रसन्नता की बात है-राजा तो दूतों के द्वारा ही बातचीत करते हैं । उसमें कटु या मधुर सब दूत को कहने का अधिकार है । तुम हो या अन्य कोई राजा हो-सबको दूत तो ऐसे ही भेजने पड़ते हैं और सबके दूत इसी तरह निर्भोक्ता से अपने संदेश को रखते हैं । दूतों में तो कोई चण्डाल भी नियुक्त हो-जावे-तो वह भी अवध्य ही है । दूत तो शस्त्र के उठा लेने पर यथोक्त बात ही कहता है या उसको कहनी चाहिए । इनमें यदि चण्डाल भी नियुक्त हो जावे-तो भी वह अवध्य ही है-फिर ब्राह्मण के अवध्य होने में तो कहना ही क्या है । दूत जो कुछ कहता है-वह तो राजा की बात कहता है । दूत का तो धर्म ही सत्य २ बात कह देना है ॥१३-१९॥

वसेदविसृष्टः प्रपूजया नोत्सिक्तः ॥ २० ॥ परेषु बलित्वं न मन्येत
॥ २१ ॥ वाक्यमनिष्टं सहेत ॥ २२ ॥ स्त्रियः पानं च वर्जयेत् ॥ २३ ॥ एकः
शयीत ॥ २४ ॥ सुप्तमत्तयोर्हि भावज्ञानं दृष्टम् ॥ २५ ॥

जब तक राजा विदा न करे-दूत वहीं निवास करे। राजा के सत्कार से दूत को घमण्ड नहीं करना चाहिए। शत्रुओं के मध्य में पहुंचकर अपने बल का अभिमान न दिखावे। अनिष्टवाक्य भी कोई बोले, तो-उसे भी सह लेवे। दूत को पर स्त्री गमन और सुरापान बिल्कुल नहीं करना चाहिए तथा उसे सोना भी अकेला ही चाहिए। यदि दूत सुरापान करके मद में पागल होगा। या सोता हुआ कभी बड़-बड़ा बैठेगा-तो दूत के मत की गुप्त बात का बाहर आ जाना बहुत कुछ सम्भव है-इससे दूत को कभी सुरापान और अन्य के साथ शयन नहीं करना चाहिए ॥२०-२५॥

कृत्यपक्षोपजापमकृत्यपक्षे गूढप्रणिधानं रागापरागौ भर्तृरिन्द्रं च
प्रकृतीनां तापसवैदेहकव्यञ्जनाभ्यामुपलभेत ॥ २६ ॥ तयोरन्तेवासिभिश्चिकित्सक-
पापण्डव्यञ्जनोभयवेतनैर्वा ॥ २७ ॥ तेषामसंभाषायां याचकमत्तोन्मत्तसुप्तप्रलापैः
॥२८॥ पुण्यस्थानदेवगृहचित्रलेख्यसंज्ञाभिर्वा चारमुपलभेत ॥ २९ ॥ उपलब्ध-
स्योपजापमुपेयात् ॥ ३० ॥

दूत, शत्रु देश में तोड़ने फोड़ने योग्य व्यक्तियों को तोड़ फोड़कर अपनी ओर मिलावे। जो तोड़ने फोड़ने में नहीं आवे-उनका सूक्ष्म दृष्टि से ज्ञान प्राप्त करे। विरोधी राजा के रन्ध्र (त्रुटियाँ) तथा प्रजा का अनुराग और द्वेष तापस तथा वैदेहक (व्यापारी) रूपधारी अपने गुप्तचरों से पता लगाता रहे, इन तापस और वैदेहक गुप्तचरों के शिष्य, वैद्य, तथा अन्य वनावटी वेपधारी, एवं दोनों ओर से वेतन लेने वाले गुप्तचरों से भी पूर्वोक्त बातों का पता लगाया जा सकता है। यदि इन लोगों के साथ बातचीत का अवसर न मिल सके-तो याचक (भिखारी) मत्त (नशेवाज) उन्मत्त (मूर्ख) तथा सुप्त व्यक्तियों के प्रलापों से इन बातों की जानकारी प्राप्त करे। उसके अतिरिक्त तीर्थ स्नान, देवालय, चित्रशाला, तथा अन्य लेखन कला आदि के संकेतों के द्वारा विरोधी राष्ट्र के समाचारों का पता लगावे। जब पता लग जावे-तो जिसकी तोड़ फोड़ करनी है, उसे तोड़ फोड़ देवे ॥२६-३०॥

परेण चाक्तः स्वासां प्रकृतीनां परिमाणं नाचक्षीत ॥ ३१ ॥ सर्वं वेद
भवानिति ब्रूयात् ॥ ३२ ॥ कार्यसिद्धिकरं वा ॥ ३३ ॥

यदि शत्रु राजा कुछ ढंग से अपने राजा का पता लगावे-तो अपने राज्य के अमात्य या प्रजा का कुछ भी पता न देवे । आप सब कुछ जानते हैं-मैं क्या कहूँ । इस समय भी जो बोले वह अपने कार्य की सिद्धि करने वाला वचन ही बोले ॥३१-३३॥

कार्यस्यसिद्धावुपरुध्यमानस्तर्कयेत् ॥ ३४ ॥ किं भर्तुर्मे व्यसनमासन्नं पश्यन् ॥ ३५ ॥ स्वं वा व्यसनं प्रतिकर्तुकामः ॥ ३६ ॥ पार्थिग्राहासारावन्तः कोपमाटविकं वा समुत्थापयितुकामः ॥ ३७ ॥ मित्रमाक्रन्दं वा व्यापादयितुकामः ॥ ३८ ॥ स्वं वा परतो विग्रहमन्तः कोपमाटविकं वा प्रतिकर्तुकामः ॥ ३९ ॥ संसिद्धं मे भर्तुर्यात्राकालमभियन्तुकामः सस्यकुप्यपण्यसंग्रहं दुर्गकर्म बलसमुत्थानं वा कर्तुकामः ॥ ४० ॥ स्वसैन्यानां वा व्यायामदेशकालावाकांक्षमाणाः ॥ ४१ ॥ परिभवग्रमदाभ्यां वा ॥ ४२ ॥ संसर्गानुबन्धार्थी वा ॥ ४३ ॥ मामुपरुणद्धीति ॥ ४४ ॥

इसके अतिरिक्त कार्य सिद्धि का वचन देकर विरोधी राजा इनको रोके रखे-तो रोका हुआ दूत, यह विचार करे, कि क्या इसने कोई मेरे स्वामी के सम्बन्ध में समीप ही विपत्ति का अनुमान किया है या यह मुझे रोककर इस काल में अपनी त्रुटि को पूरा कर रहा है । यह कहीं हमारे राजा के किसी अन्य शत्रु या शत्रु के मित्र तथा किसी वन के राजा को हमारे राजा के विरुद्ध करने का तो प्रयत्न नहीं कर रहा है । यह राजा कहीं हमारे राजा के आगे पीछे के सहायक मित्रों के मारने की घात में तो नहीं है । कहीं इसका स्वयं दूसरे राजा के साथ युद्ध या किसी वन के साथ आन्तरिक द्वेष तो नहीं ठन रहा है जिसका इस मध्य में प्रतीकार करना चाह रहा हो । मेरे स्वामी के चढ़ाई के इस उचित समय को यह टलाना तो नहीं चाह रहा है । इसकी इच्छा धान्य, चारा, लोहा-तांबा आदि धातु, दुर्गों (किलो) की क्रिया (मरम्मत) या सेना की तय्यारी की तो नहीं है । यह अपनी सेना के व्यायाम (क्रवायद) कराने तथा उसके हारने की सम्भावना या आलस्य में पड़ी रहने के कारण देशकाल की प्रतीक्षा में तो तत्पर नहीं हो रहा है । किस सहयोग या सम्बन्ध को विचार कर मुझे रोका है-दूत इन सब बातों पर विचार करे ॥३४-४४॥

ज्ञात्वा वसेदपसरेद्वा ॥ ४५ ॥ प्रयोजनमिष्टमवेक्षेत वा ॥ ४६ ॥ शासनमिष्टमुक्त्वा बन्धवधभयादविसृष्टो व्यपगच्छेत् ॥ ४७ ॥ अन्यथा नियम्येत ॥ ४८ ॥

इन सब बातों में से विचार कर दूत शत्रु राजा के राष्ट्र में ठहरने या नहीं ठहरने का विचार निश्चित करे-या वहीं ठहरा हुआ अपने स्वामी के प्रिय प्रयोजन की सिद्धि का उपाय करे। अपने स्वामी का संदेश सुनाते हुए विरोधी राजा को वह घुरा प्रतीत हो और जो वह दूत को बन्धन या बध में डालना चाहे-तो बिना राजा से पूछे ही वहां से निकल भागे। यदि दूत सावधानी न रखे तो वह पकड़ा जा सकता है ॥ ४५-४८ ॥

प्रेषणं संधिपालत्वं प्रतापो मित्रसंग्रहः ।

उपजापः सुहृद्भेदो गूढदण्डातिसारणम् ॥ ४९ ॥

बन्धुरत्नापहरणं चारज्ञानं पराक्रमः ।

समाधिमोक्षो दूतस्य कर्म योगस्य चाश्रयः ॥ ५० ॥

शत्रु के देश में अपना संदेश भेजना, पूर्व में की हुई सन्धि के नियमों का पालन कराना, अपने प्रताप का प्रकट करवाना, मित्रों का इकट्ठे रखना, तोड़ने फोड़ने योग्य व्यक्तियों को तोड़ लेना, शत्रु के मित्रों में फूट डलवाना, तथा गुप्तचुप दण्ड देने की व्यवस्था करना, शत्रु के बन्धु-बान्धव रूपी अच्छे २ व्यक्तियों का संग्रह कराना, गुप्तचरों का ज्ञान प्राप्त करना, पराक्रम का प्रयोग, सन्धि के रूप में छोड़े हुए राजकुमारों आदि का लुटवाना तथा अपने कार्य की सिद्धि के निमित्त मारण आदि प्रयोगों का आश्रय लेना-ये दूतों के कर्म माने गए हैं ॥ ४९-५० ॥

स्वदूतैः कारयेदेतत्परदूतांश्च रक्षयेत् ।

प्रतिदूतापसर्पाभ्यां दृश्यादृश्यैश्च रक्षिभिः ॥ ५१ ॥

राजा अपने दूतों से यह सब कुछ करावे और शत्रु के दूतों पर दृष्टि रखे। शत्रु के दूत का पता दूसरे दूत, गुप्तचर, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, रक्षकों (सिपाहियों) द्वारा लगाता रहे ॥ ५१ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे दूतप्रणिधिः षोडशो ऽध्यायः ॥ १६ ॥

इति श्रीकौटिलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिकअधिकरण में दूतों के कर्मों के वर्णनका सोलहवां अध्याय समाप्त हुआ ।



सत्रहवां अध्याय

तेरहवां प्रकरण

राज पुत्रों से राजा की रक्षा ।

रक्षितो राजा राज्यं रक्षत्यासन्नेभ्यः परेभ्यश्च ॥ १ ॥ पूर्वदारेभ्यः पुत्रेभ्यश्च ॥ २ ॥ दाररक्षणं निशान्तप्रणिधौ वक्ष्यामः ॥ ३ ॥ पुत्ररक्षणम् ॥ ४ ॥

अपने समीप के बन्धु-बान्धव, और शत्रुके दुरुपायों से सुरक्षित ही राजा अपने राज्य को चला सकता है ! सबसे प्रथम राजा की रक्षा अपनी भार्या और पुत्रों से ही करनी है । स्त्रियों से रक्षा करने के उपायों का वर्णन निशान्त-प्रणिधि नामक प्रकरण में करेंगे । अबतो पुत्रों से सुरक्षित रहने के उपायों का वर्णन किया-जाता है ॥ १-४ ॥

जन्मप्रभृति राजपुत्राच्चेत् ॥ ५ ॥ कर्ककटसधर्माणो हिजनकभक्षा राजपुत्राः ॥ ६ ॥ तेषामजातस्नेहे पितर्युपांशुदण्डः श्रेयानिति भरद्वाजः ॥ ७ ॥

राजा को उचित है, कि राजकुमारों के जन्म से लेकर उन पर निगरानी रखे । राज पुत्रों का स्वभाव होता है, कि वे कैकड़े जलजन्तु की भांति अपने-पिता के ही भक्षक होते हैं । भरद्वाज-मुनि का मत है, कि राजा अपने पुत्रों पर स्नेह न करके उनको गुपचुप मरवा-देवे-यही अच्छी बात है ॥ ५-७ ॥

नृशंसमदृष्टवधः क्षत्रयीजविनाशश्चेति विशालाक्षः ॥ ८ ॥ तस्मादेकस्था नावरोधः श्रेयानिति ॥ ९ ॥

इस पर विशालाक्ष आचार्य का मत है, कि इस प्रकार बालक का वध तो बड़ा ही नीच कर्म है और यह हो भी कैसे सकता है-यदि सारे ही राजकुमार मरवा दिए जावे-तो तत्काल ही नाश हो जावेगा । इससे यही अच्छा है । कि किसी स्थान पर उनको रख देवे ॥ ८-९ ॥

अहिभयमेतदिति पाराशराः ॥ १० ॥ कुमारो हि विक्रमभयान्मां पिता रुणद्धीति ज्ञात्वा तमेवाङ्गे कुर्यात् ॥ ११ ॥ तस्मादन्तपालदुर्गे वासः श्रेयानिति ॥ १२ ॥

पराशर के मत के मानने वाले इस प्रकार बन्धन में डालने को ही अहिभय कहते हैं सांप अपने मारने के भय से ही मनुष्य को काटता है । राजकुमार बन्धन के कारण डलटा शत्रु बन जाता है । राजकुमार जब यह जान लेगा कि मेरा पिता

मेरे कुछ आक्रमण कर देने आदि के भय से मुझे कारागार में डालना चाहता है-तो वह उससे भी प्रथम राजा के पकड़ने का उपाय करेगा, इसलिए उसको कैद न करके अपनी सीमा के अन्त के दुर्गपाल (किलेदार) के पास उसे स्वतन्त्रता से रख देवे । ॥ १०-१२ ॥

औरभ्रकं भयमतदिति पिशुनः ॥ १३ ॥ प्रत्यापत्तेर्हि तदेव कारणं ज्ञात्वान्तपालसखः स्यात् ॥ १४ ॥ तस्मात्स्वविषयादपकृष्टे सामन्तदुर्गे वासः श्रेयानिति ॥ १५ ॥

पिशुन (नारद) आचार्य का मत है, कि इसमें तो मेंढे का सा भय खड़ा हो जावेगा । मेंढा टक्कर मारने के निमित्त पीछे हटता है-इस तरह उस की टक्कर प्रबल पड़ती है । इसी तरह दूरी पर स्थित राजकुमार भी दृढ़ पड़्यन्त्र कर सकता है । जब उसको अपनी इस आपत्ति का ज्ञान होगा-और इसका कारण जान लेगा-तो वह सीमान्तपाल से मित्रता करके आक्रमण करेगा । सब कारणों को सोच कर अपने राष्ट्र से दूर किसी सामन्त के दुर्ग में अपने राजकुमार के रखने की राजा व्यवस्था करे ॥ १३-१५ ॥

वत्सस्थानमेतदिति कौणपदन्तः ॥ १६ ॥ वत्सेनेवः हि धेनुं पितरमस्य सामन्तो दुह्यात् ॥ १७ ॥ तस्मन्मातृबन्धुषु वासः श्रेयानिति ॥ १८ ॥

कौणपदन्त (भीष्म) आचार्य का मत है, कि यह भी ढंग अच्छा नहीं है । जैसे गाय का बछड़ा दूसरे को सौंप दिया जावे-इस उपाय की भी वही दशा है । वह सामन्त इस पुत्र का बहाना बना राजा से मनमाना द्रव्य दुहता रहेगा-जैसे बछड़े से कोई गाय का दूध दुह लेता है । इससे तो माता के बन्धुओं में राजकुमार को रख देवे ॥ १६-१८ ॥

ध्वजस्थानमेतदिति वातव्याधेः ॥ १९ ॥ तेन हि ध्वजेनादितिकौशिक-वदस्य मातृवान्धवा भिक्षेरन् ॥ २० ॥ तस्माद्ग्राम्यधर्मेणैवमवसृजेयुः ॥ २१ ॥ सुखोपरुद्धा हि पुत्राः पितरं नाभिद्रुन्ध्यतीति ॥ २२ ॥

वात व्याधि आचार्य इस मत के भी-विरुध हैं । वे कहते हैं, इस तरह तो राज कुमार की स्थिति ध्वजा के समान हो जावेगी । जैसे अदिति (देवों की मूर्ति दिखा कर भिजा मांगने वाली) और कौशिक (सर्प को दिखा कर मांगने वाले सपेरे) के तुल्य इसके मातृ-कुल के बान्धव करेंगे । वे इस राजकुमार को दिखा कर प्रत्येक सामन्त, प्रजा के मुख्य पुरुष आदि से रुपया बटोरेंगे । इससे तो इस राजकुमार को स्त्रियों के भोग विलास में फंसा देवे । सुख में लिपटाये हुए पुत्र, अपने पिता से द्रोह नहीं करते हैं ॥ १९-२२ ॥

जीवन्मरणमेतदिति कौटल्यः ॥ २३ ॥ काष्ठमिव हि घुणजग्धं राजकुलमवि-नीतपुत्रमभियुक्तमात्रं भज्येत ॥ २४ ॥ तस्माद्दुर्मत्यां महिष्यांश्चत्विजश्चरुमैन्द्रवा-हस्पत्यं निर्वयेयुः ॥ २५ ॥ आपन्नसत्त्वायां कौमारभृत्यो गर्भभर्मणि प्रजनने च वियतेत ॥ २६ ॥ प्रजातायाः पुत्रसंस्कारं पुरोहितः कुर्यात् ॥ २७ ॥ समर्थं तद्विदो विनयेयुः ॥ २८ ॥

आचार्य कौटल्य इसे बहुत बुरा मानता है । इस तरह तो पुत्र को जीते ही मार देना है । घुण कीड़े से खोखले किये हुए काष्ठ की भांति अशिक्षित पुत्र से बिना किसी युद्ध आदि के ही राजवंश का नाश हो जाता है । इससे जब राजमहिषी ऋतुमती हो-तो ऋत्विक् लोग इन्द्र और बृहस्पति देवता के उद्देश्य से हवन करें । जिससे राजपुत्र ऐश्वर्य शाली और विद्यावान् हो सके । जब रानी के गर्भ स्थिति हो जावे-तब चिकित्सा शास्त्रानुसार गर्भ के पुष्ट करने वाली औषध और सुख पूर्वक बालक के उत्पन्न हो जाने की औषधियों का सेवन कराना चाहिए । जब पुत्र उत्पन्न हो जावे-तब उसका संस्कार पुरोहित के द्वारा बड़े प्रेम से राजा करे । जब राजकुमार समर्थ होजावे-तब उसे अच्छी तरह प्रत्येक विषयों के पृथक् २ विद्वानों से पढ़ावे ॥ २३-२८ ॥

सन्निशामेकथैनं मृगयाद्य तमद्यस्त्रीभिः प्रलोभयेत् ॥ २९ ॥ पितरि विक्रम्य राज्यं गृहाणेति ॥ ३० ॥ तदन्यः सत्री प्रतिषेधयेदित्याम्भीयाः ॥ ३१ ॥

आन्ध्र आचार्य के अनुयायी ऐसा कहते हैं, कि राजकुमार के सहचर इसको मृगया (शिकार) द्यूत (जुआ) मद्य (मुरा) और सुन्दर स्त्रियों के जाल में फंसाने की चेष्टा करे । यहां तक उससे कहें-कि तुम अपना पड़्यन्त्र करके पिता का राज्य छीन लो । दूसरा गुप्तचर सहचर इस कथन का खण्डन करे ॥ २९-३१ ॥

महादोषमबुद्धबोधनमिति कौटल्यः ॥ ३२ ॥ नवं हि द्रव्यं येन येनार्थ-जातेनोपदिह्यते तत्तदाचूषति ॥ ३३ ॥ एवमयं नवबुद्धिर्यद्यदुच्यते तत्तच्छास्त्रो-पदेशमिवाभिजानाति ॥ ३४ ॥ तस्माद्धर्ममर्थं चास्योपदिशेन्नाधर्ममनर्थं च ॥ ३५ ॥

कौटल्याचार्य (चाणक्य) इसे बहुत बुरी बात कहते हैं । ऐसे तो भोले भाले राजकुमार को अकारण ही विरोधी बनाना है । नये मिट्टी के वर्तन में घृत तेल आदि जो पदार्थ डाला जावेगा । वह उसी को चूस लेगा, इसी तरह नवीन आयु के नई बुद्धिवाले राजकुमार को जो सिखाया जावेगा, वह उसे ही शास्त्रोपदेश की भांति पकड़ बैठेगा । इससे इसे धर्म और नीति की ही शिक्षा देवे-इस तरह उलट पलट सिखाकर उसकी परीक्षा लेना उचित नहीं है । अधर्म और अनीति की शिक्षा बुरे संस्कार उत्पन्न करती है ॥ ३२-३५ ॥

सन्निशस्त्वेनं तव स्म इति वदन्तः पालयेयुः ॥ ३६ ॥ यौवनोत्सेका-त्परस्त्रीषु मनः कुर्वाणमार्याव्यञ्जनाभिः स्त्रीभिरमेध्याभिः शून्यागारेषु रात्राबुद्धे-जयेयुः ॥ ३७ ॥

राजकुमार के साथी उससे अपना प्रेम दिखाते हुए उसकी पालना करें । यदि यौवन के मद से राजकुमार का मन स्त्रियों में फंस भी जावे-तो दुराचारिणी स्त्रियां आर्थ-वेष भूषा बनाकर रात में शून्य वासगृह में उसको इन कुकर्मों से अरुचि करा दें । इसका पुर-स्कार स्त्रियों को दिया जावे । ॥ ३६-३७ ॥

मद्यकामं योगपानेनोद्वेजयेयुः ॥ ३८ ॥ अतकामं कापटिकैः पुरुषैरुद्वे-
जयेयुः ॥ ३९ ॥ मृगयाकामं प्रतिरोधकव्यञ्जनैस्त्रासयेयुः ॥ ४० ॥ पितरि
विक्रमवृद्ध तथेत्यनुप्रविश्य भेदयेयुः ॥ ४१ ॥

जो राजकुमार मद्यपान की ओर बढ़े-तो उसे किसी औषधि के योग को पिला कर
मद्य से भी ग्लानि करा दे । यदि जुआ की ओर राजकुमार की प्रवृत्ति हो गई-तो उसे
कपट करने वाले जुआरी पुरुषों से दुःखी करवावे । इसी तरह मृगया (शिकार) के व्यसन
की ओर झुके हुए राजकुमार को वन में नकली लुटेरे पुरुषों से तंग करवावे तथा जो यहाँ
तक राजकुमार बढ़ जावे, कि पिता का राज्य छीनने की चेष्टा करे-तो गुप्तचरों से इस बात
का पता लगने पर उसके साथ मिलकर गुप्तचर उसे मार डेकावे ॥ ३८-४१ ॥

अप्रार्थनीयो राजा विपन्ने घातः संपन्ने नरकपातः संक्रोशः प्रजाभिरैक-
लोष्टवधश्चेति ॥ ४२ ॥

जब राजकुमार अकृत कार्य (नाकामयात्र) हो जावे-तो उसको उसके साथी
समझावे-देखो राजा के विरोध में यदि तुम हार गए-तो नरक में पड़ोगे । प्रजा के लोग
निन्दा करेंगे और प्रजा अधिक असन्तुष्ट हो गई-तो पत्थर से मार कर तुम्हारा दंर कर
देगी ॥ ४२ ॥

विरागं प्रियमेकपुत्रं वा बध्नीयात् ॥ ४३ ॥ बहुपुत्रः प्रत्यन्त मन्यविषयं
वा प्रेपयेद्यत्र गर्भः पर्यं डिम्बो वा न भवेत् ॥ ४४ ॥ आत्मसंपन्नं सेनापत्ये
यौवराज्ये वा स्थापयेत् ॥ ४५ ॥

यदि पुत्र सचमुच विरक्त हो गया हो तो-चाहे वह एक ही प्रिय पुत्र हो-उसे बन्धन
में डाल दे । यदि राजा के बहुत से पुत्र हों तो सीमा के समीप या अन्य देश में राज
विरोधी पुत्र को भेज देवे । जिससे न तो गर्भ रहे, न बालक पेट में पड़े और न बालक
उत्पन्न हो-अर्थात् किसी बात का बीज ही न पड़े । यदि राजकुमार योग्य गुणों से संपन्न
हो तो उसको सेनार्पात या युवराज बना देवे ॥ ४३-४५ ॥

बुद्धिमानाहार्यबुद्धिर्दुर्बुद्धिरिति पुत्रविशेषाः ॥ ४६ ॥ शिष्यमाणो धर्मार्थावु-
पलभते चानुतिष्ठति च बुद्धिमान् ॥ ४७ ॥ उपलभमानो नानुतिष्ठत्याहार्यबुद्धिः
॥ ४८ ॥ अपायनित्यो धर्मार्थद्वेषी चेति दुर्बुद्धिः ॥ ४९ ॥

राज-पुत्र तीन प्रकार के होते हैं । (१) बुद्धिमान् (२) आहार्य बुद्धि, (३) दुर्बुद्धि ।
जो पुत्र सिखाने पर धर्म और नीति की शिक्षा को ठीक २ ग्रहण कर लेता है । और ठीक

उसका आचरण करता है-तो वह बुद्धिमान पुत्र है। जो धर्म और नीति को संमम लेता है-परन्तु तदनुकूल आचरण नहीं करता-वह आहार्य बुद्धि पुत्र कहाता है। जो सदा अपने पिता के ऊपर विपत्ति लाने के उपाय सोचता रहता है और धर्म तथा नीति के विरुद्ध चलता है-वह दुर्बुद्धि है। ॥४६-४८॥

स यद्येकेपुत्रः पुत्रोत्पत्तावस्य प्रयत्नैत ॥ ५० ॥ पुत्रिकापुत्रानुत्पादयेद्वा ॥ ५१ ॥

यदि दुर्बुद्धि पुत्र अकेला हो-तो राजा उससे पुत्र उत्पन्न कराने का प्रयत्न करे। यदि पुत्र के पुत्र उत्पन्न न हो-तो अपनी पुत्री के पुत्र को योग्य बनाकर राज्य का अधिकार देदे ॥५०-५१॥

वृद्धस्तु व्याधितो वा राजा मातृवन्धुकुल्यगुणवत्सामन्तानामन्यमेन क्षेत्रे वीजमुत्पादयेत् ॥ ५२ ॥ न चैकपुत्रमविनीतं राज्ये स्थापयेत् ॥ ५३ ॥

यदि राजा, वृद्ध हो गया-या बीमार रहता हो-तो अपने मातृकुल, तथा किसी अन्य गुणवान् सामन्त से अपनी भार्या में नियोग द्वारा पुत्र उत्पन्न करावे, परन्तु अशिक्षित दुष्ट पुत्र को राज्य का अधिकार न सौंपे ॥५२-५३॥

बहूनामेकसंरोधः पिता पुत्रहितो भवेत् ।

अन्यत्रापि ऐश्वर्यं ज्येष्ठभागि तु पूज्यते ॥ ५४ ॥

यदि बहुत पुत्र हों और उनमें एक दुराचारी हो-तो उस दुराचारी को रोक रखे। इस तरह की परिस्थिति न होने पर तो राजा अपने पुत्रों की हितचिन्ता में तत्पर रहे। यदि किस आपत्ति की सम्भावना न हो-तो राज्य अधिकार ज्येष्ठ पुत्र को ही देना चाहिए ॥५४॥

कुलस्य वा भवेद्राज्यं कुलसङ्घो हि दुर्जयः ।

अराजव्यसनावाधः शश्वेदावसति क्षितिम् ॥ ५५ ॥

इन सबसे तो यही उत्तम है, कि राज्यसिंहासन पर सारे ही राजवंश की पञ्चयन्त का अधिकार हो। कुल-समूह का शत्रु द्वारा जीता जाना बड़ा कठिन है। इस प्रकार राज्य पर कोई विपत्ति क्लेश या बाधा नहीं आती और राज्य शासन सदा ठीक चलता रहता है ॥५५॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमऽधिकरणे राजपुत्ररक्षणं सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इति श्रीकौटिलीयार्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक प्रथमअधिकरण में राज-पुत्र

रक्षण का सत्रहवां अध्याय समाप्त हुआ ।



अठारहवां अध्याय

१४-१५ वां प्रकरण

अवरुद्ध (निगरानी में रखे हुए) राजकुमार के कर्तव्य और उसके साथ
राजा का व्यवहार

राजपुत्राः कृच्छ्रवृत्तिसदृशे कर्मणि नियुक्तः पितरमनुवर्तेत ॥ १ ॥

अन्यत्र प्राणावाधकप्रकृतिकोपकपातकेभ्यः ॥ २ ॥

यदि पिता ने किसी संदेह में आकर किसी राज-पुत्र को अवरुद्ध किया है, और उस समय उसका बड़ी कठिनाई से व्यवहार चल रहा है-या उसे अयोग्य कार्य में लगा दिया है, तो भी राज-पुत्र को पिता के ही अनुकूल चलना चाहिए, यदि राज पुत्र को प्राणों का भय उत्पन्न हो जावे या राज्य के शासक और प्रजा से विगड़ने लगे-तथा अन्य कोई ऐसी ही बड़ी बुराई उत्पन्न होने लगे-तो राज पुत्र अपने पिता के विरुद्ध भी हो सकता है ॥१-२॥

पुण्यकर्मणि नियुक्तः पुरुषमधिष्ठातारं याचेत ॥ ३ ॥ पुरुषाधिष्ठितश्च
संविशेषमादेशमनुतिष्ठेत् ॥ ४ ॥ अभिरूपं च कर्माफलमौपायनिकं च लाभं पितुरु-
पनाययेत् ॥ ५ ॥

यदि राजा ने अपने राज पुत्र को रोक तो दिया, परन्तु अनुचित कार्य में न लगाकर उचित कार्य में लगा दिया है, तो एक अधिष्ठाता (अधिकारी) को राजाज्ञा से प्राप्त करले। इस अधिकारी (प्राइवेट सैक्रेटरी) के साथ रह कर राज पुत्र विशेषनीति से राजा की आज्ञा का पालन करता है। जो अपने सौंपे हुए कार्य से धन की वचत हो या जो किसी से भेंट पूजा में धन मिला हो-उसको अपने पिता के पास भेज दे ॥३-५॥

तथाप्यतुष्यन्तमन्यस्मिन्पुत्रे दारेषु वा स्निह्यन्तमरणयायापृच्छेत् ॥ ६ ॥
बन्धवधभयाद्वा यः सामन्तो न्यायवृत्तिर्धार्मिकः सत्यवागविसंवादकः प्रतिग्रहीता
मानयिता चाभिपन्नानां तमाश्रयेत् ॥ ७ ॥

इतना करने पर भी राजा प्रसन्न न हो और अन्य पुत्र और अपनी माता से पृथक् अन्य स्त्रियों से प्रेम करता हो-तो अपने प्राण बचाने के निमित्त उससे वन में चले जाने की आज्ञा लेले। राजा से बांध लेने या मरवा देने का भय खड़ा हो जावे-तो राज पुत्र, किसी न्याय वृत्ति वाले, धार्मिक, सत्यवादी, व्यर्थ की बातें न बनाने वाले अपने पास रखने को प्रसन्न, शरण में आये हुए का मान करने वाले, सामन्त का आश्रय लेले ॥६-७॥

तत्रस्थः कोशदण्डसंपन्नः प्रवीरपुरुषकन्यासंबन्धमटवीसंबन्धं कृत्यपक्षोप-
ग्रहं वा कुर्यात् ॥८॥ एकचरः सुवर्णपाकमणिरांगरूप्य हेम पर्या करकर्मान्ता-
नाजीवेत् ॥ ९ ॥

उस सामन्त के आश्रय में रहकर राज-पुत्र, कोश और सेना का सञ्चय करे। बड़े २
वीरों को साथ लेले। किसी शक्तिशाली सामन्त की पुत्री से विवाह सम्बन्ध, समीप में स्थित
किसी वन के राजा से मित्रता स्थापित करे। इसी तरह जो २ अपने पिता के पक्ष से फूटकर
अपनी ओर आने को तय्यार हों-उन्हें अपनी ओर मिला ले। यदि राजकुमार को किसी की
सहायता न मिले-तो वह सुवर्ण बनाना या सुवर्ण भस्म करना मणि, सुवर्ण, चांदी का
क्रय-विक्रय तथा अन्य खनिजपदार्थों, के द्वारा अपनी जीविका करके धन सञ्चय करे ॥८-९॥

पापण्डसङ्घद्रव्यमश्रोत्रियभोग्यं देवद्रव्यमाढ्यविधवाद्रव्यं वा गूढमनुप्र-
विश्य सार्धयानपात्राणि च मदनरसयोगेनातिसंधायापहरेत् ॥ १० ॥

किसी वेदपाठी के व्यवहार में नहीं आने वाले, देवता, पापण्डी या अधर्मी पुरुषों
तथा व्यभिचार आदि से धन कमा लेने वाली विधवा के द्रव्य को छुपकर छीन ले या किसी
विदेशी व्यापारी को नशीली चीजें खिलाकर उसके धन पर धोखे से अधिकार करले ॥१०॥

पारग्रामिकं वा योगमातिष्ठेत् ॥ ११ ॥ मातुः परिजनोपग्रहेण वा
चेष्टेत् ॥ १२ ॥

इसके अतिरिक्त जिस ग्राम पर अधिकार करने की योजना हो-उसमें कोई कार्य छेड़
दे। इसी तरह अपनी माता के पक्ष के बान्धव या सेवकों को अपनी ओर मिलाकर अपने
कार्य की सिद्धि का प्रयत्न करे ॥११-१२॥

कारुशिल्पिकुशीलवचिकित्सकवाग्जीवनपापण्डछद्मभिर्वा नष्टरूपस्तद्वयञ्ज-
नसखेशिछ्द्रे अविश्य राज्ञः शस्त्रसाभ्यां प्रहृत्य वृथात् ॥ १३ ॥

इसके अतिरिक्त बर्बर, लुहार, गृहनिर्माणकर्ता, चित्रकार, गाने बजाने वाले, चिकि-
त्सक, कथा कहानी व्याख्यान आदि से जीविका करने वाले, तथा पापण्डी पुरुषों के वेष में
होकर अपने रूप को छुपा कर अपने पिता के प्रमाद के स्थान पर पहुंचकर शस्त्र या
विपरस से उसको मार डाले ॥१३॥

अहमसौ कुमारः सहभोग्यमिदं राज्यमेको नार्हति भोक्तुं तत्र ये कामयन्ते
भर्तुं तानहं द्विगुणेन भक्तवेतनेनोपस्थास्य इति ॥ १४ ॥ इत्यवरुद्धवृत्तम् ॥१५॥

इसके अनन्तर वह राजकुमार अपने पिता के अधिकारी और मुख्यपुरुषों से
कहे, कि मैं वही अमुक राजकुमार हूं। राज्य का उपभोग सब को मिल कर करना

चाहिये । हमारे पिता की तरह राज्य का अकेला ही उपभोक्ता न-बने । जो मेरी भक्ति प्रदर्शन करेगा मैं उसको दुगुना वेतन और भत्ता दूंगा । यहां तक बिना अपराध रोके हुए राजपुत्र के कर्तव्य का वर्णन किया गया । ॥ १४-१५ ॥

अवरुद्धं तु मुख्यपुत्रमपसर्पाः प्रतिपाद्यानयेयुः ॥१६॥ माता वा प्रति-
गृहीता ॥ १७ ॥

यदि राजा ने किसी मुख्य राजकुमार पर अप्रसन्न होकर उसे वन्धन में डालकर कहीं एकान्त में रख दिया, तो अमात्य आदि मुख्य पुरुष अपना गुप्त रूप से भेज बदल कर उसे समझा बुझाकर ले आवें अथवा राजा का संकेत पाकर माता उसे सान्त्वना देकर ले आवे । ॥ १६-१७ ॥

त्यक्तं गूढपुरुषाः शस्त्रसाभ्यां हन्युः ॥ १८ ॥ अत्यक्तं तु न्यशीलाभिः
स्त्रीभिः पानेन मृगयया वा प्रसज्य राजावुपगृह्यान्येयुः ॥१९॥

यदि राजकुमार का बड़ा अपराध है और उसे निकालना ही आवश्यक है-तो गुप्त पुरुषों द्वारा शस्त्र या विष से उसको मरवा डाले । यदि राजा ने नहीं निकाला हो और राजकुमार स्वयं अप्रसन्न होकर निकल गया हो तथा पडयन्त्र करना चाहता हो-तो-उसकी समान आयु वाली सुन्दर स्त्री-सुरापान, या शिकार के चक्कर में डाल कर उसे रात में पकड़ कर ले आवें । ॥ १८-१९ ॥

उपस्थितं च राज्येन ममोर्ध्वमिति सान्त्वयेत् ।

एकस्थमथ संरुन्ध्यात्पुत्रवान्वा प्रवासयेत् ॥ २० ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणेऽवरुद्धवृत्तमवरुद्धे च वृत्तिः

अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

जब राजकुमार आवे-तो राजा उसको समझावे, मेरे अनन्तर यह तुम्हारा ही तो राज्य है । यदि पुत्र अकेला हो और समझाने पर भी नहीं मानता हो तो उसे वन्धन में डाल ले और जब अन्य पुत्र हो जावे-तब उसे निकाल दे । ॥ २० ॥

इति श्री कौटलीयाथेशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक अधिकरण में राजकुमार के रोकने या समझाने का अष्टारवां अध्याय पूरा हुआ ।

उन्नीसवां अध्याय

१६ वां प्रकरण

राजप्रणिधि

राजानमुत्तिष्ठमानमनुत्तिष्ठन्ते भृत्याः ॥ १ ॥ प्रमाद्यन्तमनुप्रमाद्यन्ति ॥ २ ॥
कर्माणि चास्य भक्षयन्ति ॥ ३ ॥ द्विपद्भिश्चातिसंधीयते ॥ ४ ॥ तस्मदुत्थानमात्मनः
कुर्वीत ॥ ५ ॥ नाडिकाभिरहरष्टधा रात्रिं च विभजेत ॥ ६ ॥ छायाप्रमाणेन वा ॥ ७ ॥

जब राजा उदार आचरण से सम्पन्न होगा-तो उसके सेवक (अधिकारी) भी उन्नत विचार के हो होंगे । जो राजा प्रमाद (ग़फलत) करेगा तो उसके अनुचर भी प्रमादी होंगे । राजा उद्योग भी करेगा-तो ये उसको अपने प्रमाद के कारण नष्ट कर देंगे । यहां तब कि राजा को प्रमाद (ग़फलत सुरापानादि) में फंसा देख कर ये शत्रु तक से जा सन्धि करेंगे, इसलिये राजा को अपनी उन्नत का प्रयत्न अवश्य सावधानी से करते रहना उचित है । राजा अपने कार्य का विभाग (टाइम टेबिल) बना ले । वह रात और दिन को आठ २ घड़ियों में बाँटे या छाया के घटने बढ़ने के (छाया घड़ी के) आधार पर समय का विभाग कर के राज्य कार्यों का सम्पादन करे ॥ १-७ ॥

त्रिपौरुषी पौरुषी चतुरङ्गुला चछाया मध्याह्न इति पूर्वे दिवसस्याष्टभागाः
॥ ८ ॥ तैः पश्चिमा व्याख्याताः ॥ ९ ॥

छाया के प्रमाण से इस प्रकार समय विभाग किया जाया है । प्रातः जब तक तीन पुरुषों के बराबर छाया का प्रमाण हो-यह एक भाग, जब छाया का प्रमाण पुरुष के बराबर लम्बा रहे है-यह दूसरा भाग, जब चार अंगुल की छाया रह जावे-यह तीसरा भाग है । इस के अनन्तर का समय का चतुर्थ भाग समझे । इसी तरह उल्टे क्रम से दिन के उत्तरार्ध के भी भाग बनालो । इस प्रकार दिन के आठ भाग हुए । ॥ ८-९ ॥

तत्र पूर्वे दिवसस्याष्टभागे रत्नविधानमायव्ययौ च शृणुयात् ॥ १० ॥

द्वितीये पौरजानपदानां कार्याणि पश्येत् ॥ ११ ॥ तृतीये स्नानभोजनं
सेवेत ॥ १२ ॥ स्वाध्यायं च कुर्वीत् ॥ १३ ॥ चतुर्थे हिरण्यप्रतिग्रहमध्यक्षांश्च
कुर्वीत् ॥ १४ ॥

दिन के प्रथम अष्टम भाग में राजा, प्रजा की रक्षा के विधानों (पुलिस विभाग) को और राज्य की आर्थिक व्यवस्था का श्रवण करे । दूसरे विभाग में नगर और राष्ट्र के कार्यों को देखें अर्थात् उनके अभियोग और व्यवहार (मुकदमे) सुने । दिन के तीसरे विभाग में स्नान भोजन का सेवन और स्वाध्याय करे और चतुर्थ विभाग में सुवर्ण का ग्रहण अर्थात् कर विभाग (माल के महकमे) का निरीक्षण और शासकों की नियुक्ति परिवर्तन आदि पर विचार करे ॥ १०-११ ॥

पञ्चमे मन्त्रिपरिषदा पत्रसंप्रेषणेन मंत्रयेत् ॥ १५ ॥ चारुगुह्यबोधनीयानि च बुद्धयेत् ॥ १६ ॥ षष्ठे स्वैरविहारं मंत्रं वा सेवेत् ॥ १७ ॥ सप्तमे हस्त्यश्वरथायुधीयान्पश्येत् ॥ १८ ॥ अष्टमे सेनापतिसखो विक्रमं चिन्तयेत् ॥ १९ ॥ प्रतिष्ठितेऽहनि संध्यामुपासीत ॥ २० ॥

अब पांचवें दिन के भाग में पत्र (मिसल) पर मन्त्रि परिषद् की सम्मति लेनी हो-ले-ले । इसी समय गुप्तचरों की गुप्त बातों की-राजा जानकारी प्राप्त करे । छठे विभाग में राजा की इच्छा है-जो उस की इच्छा में आवे-वह करे-मन्त्रणा कर ले । सातवें विभाग में हाथी, अश्व, रथ और शस्त्रों की देख रेख (पड़ताल) करे । आठवें भाग में सेनापति को बुलाकर उस के साथ युद्ध विषय पर बातचीत करे । इस प्रकार जब सांयकाल हो जावे-तो राजा उठ कर सन्ध्योपासन करे ॥ १५-२० ॥

प्रथमे रात्रिभागे गूढपुरुषान्पश्येत् ॥ २१ ॥ द्वितीये स्नानभोजनं कुर्वीत स्वाध्यायं च ॥ २२ ॥ तृतीये तूर्यधोषेण संविष्टश्चतुर्थपञ्चमौ शयीत ॥ २३ ॥ षष्ठे तूर्यधोषेण प्रतिबुद्धः शास्त्रमिति कर्तव्यतां च चिन्तयेत् ॥ २४ ॥ सप्तमे मंत्रमध्यासीत गूढपुरुषांश्च प्रेषयेत् ॥ २५ ॥ अष्टमे ऋत्विगाचार्यपुरोहितसखः स्वस्त्ययनानि अतिगृह्णीयात् ॥ २६ ॥ चिकित्सकमाहानसिकमौहृतिकांश्च पश्येत् ॥ २७ ॥

इसके अनन्तर रात्रि के प्रथम मार्ग में गुप्त-पुरुषों से बातचीत करे । दूसरे-रात्रि के भाग में स्नान भोजन और स्वाध्याय करे । तीसरे भाग (अर्ध प्रहर) में तूर्य ध्वनि के साथ रनिवास में प्रवेश करे और चौथे तथा पांचवे भाग में अर्थात् एक प्रहर तक शयन करे । छठे-भाग के अन्त में वही तुरीनाद (बाजों की ध्वनि) और गानों के साथ राजा निद्रा का परित्याग कर के उठे और उस समय नीति शास्त्र और दिन के आवश्यक कर्तव्य का विचार कर ले । सातवें भाग में गुप्तमन्त्रणा गुप्तचरों से करनी हो वह कर के उनको अपने कामों पर भेज दे-फिर रात्रि के आठवें भाग में ऋत्विक्, आचार्य और पुरोहित के साथ स्वस्तिवाचन पुण्याहवाचन करे ।

इसके अनन्तर इसी-रात के विभाग में वैद्य, रसोई के कार्यकर्ता और ज्योतिषी से वातचीत करके अपने शरीर आदि के सम्बन्ध में विचार कर ले ॥ २१-२७ ॥

सवत्सां धेनुं वृषभं च अदक्षिणीकृत्योपस्थानं गच्छेत् ॥ २८ ॥ आत्मबलानुकूल्येन वा निशाहर्भागान्प्रविभज्य कार्याणि सेवेत ॥ २९ ॥

प्रातःकाल होने पर बछड़े सहित धेनु की परिक्रमा करके राजा (दरबार) में पहुंचे । यह राजा की दिन और रात्रि की चर्या बताई । इसके सिवा वह अपनी शक्ति की अनुकूलता के अनुसार रातदिन का विभाग कर सकता है और उनमें पृथक् २ कार्यों को देख सकता है । कार्य विभाग कैसे भी बनावे परन्तु राज्य कार्यों को राजा स्वयं देखे, उनमें कभी प्रमाद न करे ॥ २८-२९ ॥

उपस्थानगतः कार्यार्थिनामद्वारासङ्गं कारयेत् ॥ ३० ॥ दुर्दर्शो हि राजा कार्याकार्यविपर्ययसमासन्नैः कार्यते ॥ ३० ॥ तेन अकृतिकोपमरिविशं वा गच्छेत् ॥ ३२ ॥

जब राजा दरबार में उपस्थित हो-तो जिनके जो काम हो-उनको वे-रोक टोक आने दे । यदि न्याय करने के समय राजा के पास सर्व साधारण पुरुषों की रोक-टोक होगी तो-आसन्न पुरुष (सरिश्तेदार आदि) राजा से उलट-पलट का काम करवा लेंगे । इससे प्रजा असन्तुष्ट होगी जिससे शत्रु के वश में चले जाना बहुत कुछ सम्भव है ॥ ३०-३२ ॥

तस्माद्देवताश्रमपापण्डश्रोत्रियपशुपुण्यस्थानानां बालवृद्धव्याधितव्यसन्यनाथानां स्त्रीणां च क्रमेण कार्याणि पश्येत् ॥ ३३ ॥ कार्यगौरवात्ययिकवशेन च ॥ ३४ ॥

प्रजा की रक्षा और शत्रु के आक्रमण से बचाव रखने के लिए राजा देवालय, मुनियों के आश्रम, पाण्डित्यों के मठ, वेदशाला, पशुओं की शाला तथा धर्मशाला आदि का स्वयं निरीक्षण रखे । इसी तरह बालक, वृद्ध, रोगी व्यसनी (नशेवाज) अनाथ और स्त्रियों तक के कामों पर निगरानी रखे । कार्य की आवश्यकता और किसी काम के करने में देर की सम्भावना या अधिक समय लगाने की आवश्यकता हो-तो राजा अपने कार्यक्रम को तोड़ सकता है ॥ ३३-३४ ॥

सर्वमात्ययिकं कार्यं शृणुयान्नातिपातयेत् ।

कृच्छ्रसाध्यमतिक्रान्तमसाध्यं वाभिजायते ॥ ३५ ॥

राजा को उचित है, कि जिन कार्यों के करने का समय निकला जा रहा हो-प्रथम उनको करे । उन आवश्यक कार्यों का समय न निकलने दे यदि समय पर करने योग्य कार्य का समय निकल गया-तो फिर वह कार्य कष्ट से पूरा होगा-या हो ही नहीं सकेगा ॥ ३५ ॥

अग्नयगारगतः कार्यं पश्येद्वैद्यतपस्विनाम् ।

पुरोहिताचार्यसखः प्रत्युत्थायाभिवाद्य च ॥ ३६ ॥

राजा वैद्य और तपस्वियों के कार्यों को अग्निशाला में देखे या सुने । इस संमये पुरोहित और आचार्य आदि की भी वही स्थिति होनी चाहिए और जिसका जैसा अभ्यु-
स्थान और प्रणाम आदि करना है-राजा वैसा करे ॥ ३६ ॥

तपस्विनां तु कार्याणि त्रैविद्यैः सह कारयेत् ।

मायायोगविदां चैव न स्वयं कोपकारणात् ॥ ३७ ॥

राजा तपस्वियों के कार्यों को वेद के विद्वानों के साथ विचारे । जो प्रकृति के योग विज्ञान के कार्यों के करने वाले हों-उनके कामों का भी अकेला राजा विचार न करे । कहीं कोई त्रुटि रह जावेगी-तो ये लोग फिर राजा पर ही कुपित होंगे । यदि मन्त्री आदि के साथ विचार करेगा-तो ये लोग केवल राजा पर कुपित न होंगे ॥ ३७ ॥

राज्ञो हि व्रतमुत्थानं यज्ञः कार्यानुशासनम् ।

दक्षिणावृत्तिसाम्यं च दीक्षितस्याभिषेचनम् ॥ ३८ ॥

अपनी उन्नति, यज्ञ, प्रजा से कराने योग्य कार्यों के अनुशासन (फरमान) जारी करना या व्यवहारों (मुकदमों) के निर्णय (फैसला) करना, दान देना, सारी प्रजा पर समान दृष्टि रख कर उसका पालन करना या शत्रु मित्र और उदासीन की देख रेख करके तदनुकूल वर्तव्य करना तथा धर्मशास्त्रानुसार कर्तव्य कर्म में संलग्न होकर उसको पूरा ही करके छोड़ना ये सब राजा के व्रत माने गए हैं ॥ ३८ ॥

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम् ।

नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ॥ ३९ ॥

प्रजा के सुख में सुख और प्रजा के हित में ही राजा को अपना हित समझना चाहिए । बात तो यह है, कि राजा का अपना प्रिय और हितकारी कोई कार्य पृथक् नहीं है । प्रजा प्रिय और हितकारी कार्य ही राजा का प्रिय और हितकर कार्य है ॥ ३९-॥

तस्मान्नित्योत्थितो राजा कुर्यादर्थानुशासनम् ।

अर्थस्य मूलमुत्थानमनर्थस्य विपर्ययः ॥ ४० ॥

इस बात को ध्यान में रख कर राजा नित्य उद्योग में तत्पर हो-और नीति के अनुसार आज्ञा देता रहे । जो राजा नीति के अनुसार चलेगा, उसकी उन्नति होगी, और संकट उससे कौशों दूर भाग जावेगा ॥ ४० ॥

अनुत्थाने ध्रुवो नाशः प्राप्तत्यानास्यं च ।

प्राप्यते फलमुत्थानाल्लभेत चार्थसंपदम् ॥ ४१ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे राजप्रणिधिः एकोनविंशो ऽध्यायः ॥१६॥

यदि राजा अपनी उन्नति के उपायों में तत्पर नहीं होगा-तो पायी हुई और आगे प्राप्त होने वाली सारी सम्पत्तियों को खो बैठता है । जब नीति के अनुसार राजा बढ़ने की चेष्टा करता है, तभी उसे फल और धन तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ॥४१॥

इति श्री कौटलीयार्थशास्त्र में विनयाधिकरण प्रकरणान्तर्गत राज प्रणिधि का उन्नीसवां

अध्याय समाप्त हुआ ।



बीसवां अध्याय

सत्तरहवां प्रकरण

निशान्त प्रणिधि

(राज भवन के निर्माण आदि के वर्णन को निशान्त प्रणिधि कहते हैं)

वास्तुकप्रशस्तै देशे सप्राकारपरिखाद्वारमनेककक्ष्यापरिगतमन्तः पुरं कारयेत् ॥ १ ॥ कोशगृहविधानेन वा मध्ये वासगृहं गूढभित्तिसंचारं मोहन गृहं तन्मध्ये वा वासगृहं भूमिगृहं वासन्नकाष्ठचैत्यदेवतापिधानद्वारमनेकसुरुङ्गासंचारं प्रासादं वा गूढभित्तिसोपानं सुपरिस्तम्भप्रवेशापसारं वा वासगृहं यन्त्रवद्धतलावपातं कारयेत् ॥ २ ॥

गृहनिर्माण विद्या के जानने वाले विद्वान् जिस प्रदेश की प्रशंसा करे, उस स्थान पर राजा अनेक कक्ष्यों (मंजिल) से युक्त अन्तःपुर (रहने का महल) बनावे । इस प्रकार के पर कोटा और खाई भी बनानी चाहिए । कोश गृह के निर्माण की विधि के अनुसार (आधि० २-५) कोश गृह बनवा कर उसके मध्य में वासगृह बनवावे । गुप्त भीत बनवा कर भूल भुलैया के मध्य में भी वासगृह बनवाया जाता है-इसे मोहनगृह कहते हैं । इसी तरह भूमिगृह (भूमि के नीचे तहखाना) बनवावे, काष्ठ के संग्रह वाग, या देव-मन्दिर से राजगृह का द्वार छुपा हुआ होना चाहिए । जो प्रासाद (महल) बने, उसमें अनेक निकलने की सुरङ्ग होवें । राजगृह की सीढ़ी इतनी छुपी बनवावे, जिस में सहसा मनुष्य न पहुंच सके । जहां तक हो पोले खम्भों के द्वारा आने जाने का मार्ग बनवावे । इसके अतिरिक्त

किसी यन्त्र पर राजा के महल की संजिलों का खड़ा होना या गिर जाना सम्भव हो-ऐसा राजगृह बनवा लेना चाहिए ॥१-२॥

आपत्प्रतीकारार्थमापदि वा कारयेत् ॥ ३ ॥ अतोऽन्यथा वा विकल्पयेत् ॥ ४ ॥ सहाध्ययिभयात् ॥ ५ ॥

आपत्ति से बचने के लिए राजा को ऐसे घर बनवाने का विधान किया गया है। आपत्ति आने की आशङ्का होते ही ऐसे राजगृह राजा बनवाले। यदि विरोधी राजा के भी इस प्रकार के घर बनवा लेने की विधि के ज्ञान होने की सम्भावना हो और वह इन घरों का पता लगा सकेगा-यह सम्भावना हो-तो इसमें उलट फेर करके चतुराई से अन्य प्रकार के राजा गुप्त राजगृह बनवावे ॥३-५॥

मानुषेणाग्निना त्रिरपसव्यं परिगतमन्तः पुरमग्निरन्यो न दहति ॥ ६ ॥
न चात्रान्योऽग्निर्ज्वलति ॥ ७ ॥ वैद्युतेन भस्मना मृत्संयुक्तेन कनकवारिणा-
वलिप्तं च ॥ ८ ॥

मनुष्य की चिता की आग से तीन बार दायीं ओर से अन्तःपुर को धूनी देदे-तो अन्य आग अन्तःपुर को नहीं जला सकती है। अथर्व-वेद के इस प्रकार के मन्त्रों के द्वारा तीन परिक्रमा करनी चाहिए-इस दशा में अन्य अग्नि प्रज्वलित नहीं होती है। इसी प्रकार बिजली से जले हुए वृक्ष आदि की भस्म को मिट्टी में मिलाकर धतूरे के पानी के साथ राज भवन में लीप दे-तो इससे भी अन्य अग्नि राजगृह को नहीं जला सकती है ॥ ६-८ ॥

जीवन्तीश्वेतामुष्ककपुष्पवन्दाकाभिरक्षीवे जातस्याश्वत्थस्य प्रतानेन वा
गुप्तं सर्पा विषाणि वा न प्रसहन्ते ॥ ९ ॥

जीवन्ती, श्वेता, (शंख पुष्पी) मुष्कक, (लोंध) के पुष्प वन्दाक (अमरवेल) अथवा सहँजने के वृक्षपर उत्पन्न पीपल के प्रतान (दाढ़ी) से अभिरक्षित राजगृह में सर्प या अन्य किसी प्रकार के विष का प्रयोग सफल नहीं हो सकता है ॥९॥

मार्जारमयूरनकुलपृषतोत्सर्गः सर्पान्भक्षयति ॥ १० ॥ शुक्र-शारिका भृङ्ग-
राजो वा सर्पविषशङ्कायां क्रोशति ॥ ११ ॥ क्रौञ्चो विषाभ्याशे माद्यति ॥ १२ ॥

विलाव, मोर, नौला, और मृग आदि सर्प भक्षक जन्तुओं का राज घर में छोड़ देना सर्पों को खा जाता है। शुक्र (तोता) शारिका (मैना) या अमर-अन्न-आदि में सर्प के विष की आशङ्का होते ही या घर में सर्प के आते ही चिल्लाने लगते हैं। क्रौंच पक्षी (राजहंस) विष के घर में आते ही मूर्च्छित हो-जाता है ॥१०-१२॥

ग्लायति जीवजीवकः ॥ १३ ॥ म्रियते मत्तकोकिलः ॥ १४ ॥ चकोरस्या-
क्षिणी विरज्येते ॥ १५ ॥ इत्येवं अग्निविपसर्पेभ्यः प्रतिकुर्वीत ॥ १६ ॥

जीव जीवक (चकोर) पक्षी विप के देखते ही ग्लानि करने लगता है। एक विशेष प्रकार का मत्त कोकिल (कोयल) पक्षी विप को देखते ही मर जाता है। चकोर के विप के देखने से आँख भी लाल हो जाते हैं। इस प्रकार राजा अग्नि विप और सर्प से अपना वचाव रखे ॥१३-१६॥

पृष्ठतः कक्ष्याविभागे स्त्रीनिवेशो गर्भव्याधिवैद्यप्रत्याख्यात-संस्था वृद्धोद-
कस्थानं च ॥ १७ ॥ ग्रहिः कन्याकुमारपुरम् ॥ १८ ॥

राजगृह के पिछले कक्ष्या विभाग (कमरों) में स्त्रियों के रहने के स्थान बनवावे। इनके पास ही सूतिकागार (जन्माश्रम) रुग्णालय और असाध्य (राजयक्ष्मादि के) रोगियों के गृह बनवावे। इसी तरह उपवन और तालाब आदि भी राजभवन में पीछे की ओर बनवा लेवे। इस राजगृह के बाहर की ओर कन्या और कुमारों के रहने के कमरे बनवा लेवे ॥१७-१८॥

पुरस्तादलंकारभूमिर्मन्त्रभूमिरुपस्थानं कुमारार्ध्यक्षस्थानं च ॥ १९ ॥ कक्ष्या-
न्तरेष्वन्तर्वाशिकसैन्यं तिष्ठेत् ॥ २० ॥

राजा के रहने के कमरों के सम्मुख सुन्दर द्वार आदि से अलंकृत भूमि होनी चाहिए। फिर मन्त्रालय योग्य स्थान, राजसभा (दरबार) और उसके समीप ही राजकुमार और अव्यक्तों के भवन (आफिस) होने चाहिए। कुछ ऐसे कमरे हों जिनमें रनिवास की रक्षा करने वाली सेना रह सके ॥१९-२०॥

अन्तर्गृहगतः स्थविरस्त्री परिशुद्धां देवीं पश्येत् ॥ २१ ॥ न कांचिदभि-
गच्छेत् ॥ २२ ॥

इस राजभवन के भीतर वृद्ध स्त्रियों से समन्वित राजमहिषी को बुलावे राजा किसी भी स्त्री के पास कभी गमन न करे ॥२१-२२॥

देवीगृहे लीनो हि भ्राता भद्रसेनं जघान ॥ २३ ॥ मातुः शय्यान्तर्गतश्च
पुत्रः कारुण्यम् ॥ २४ ॥ लाजान्मधुनेति विषेणपर्यस्य देवो काशिराजम् ॥ २५ ॥
विपदिग्धेन नूपुरेण वैरन्त्यं मेखलामणिना सौवीरं जालूथमादर्शेन वेण्यां
गूढं शस्त्रं कृत्वा देवीं विद्वरथं जघान ॥ २६ ॥ तस्मादेतान्यास्पदानि परिहरेत् ॥ २७ ॥

राजदेवी के घर में छुप कर ही किसी विरोधी भ्राता ने राजा भद्रसेन को मार डाला था। माता की शय्या के नीचे छुप कर पुत्र ने कारुशराज अपने पिता का वध कर डाला। धान की खीलों को मधु में मिलाने के बहाने से विष मिला कर रानी ने ही काशिराज को मार डाला था। विष में बुझे हुए नृपूर-के द्वारा वैरन्त्य, मेखला (तगड़ी) की मणि के द्वारा सौवीरक आर्दश (दर्पण) के द्वारा जादूथ, और अपने-बालों में शस्त्र छुपा कर देवी ने विद्वरथ को मार दिया था। इन सब बातों को सोच कर राजा किसी भी रानी के इन स्थानों पर न जावे ॥ २३-२७ ॥

मुण्डजटिलकुहकप्रतिसंसर्गं बाह्याभिश्च दासीभिः प्रतिषेधयेत् ॥ २८ ॥ न चैनाः कुल्याः पश्येयुरन्यत्र गर्भव्याधिसंस्थाभ्याम् ॥ २९ ॥

मुंडी, जटी तथा अन्य वस्त्रक पुरुषों के साथ, रानी का सम्पर्क न होने दे और न बाहर की दासियों से मिलने दे। सूतिकागार और बीमार होने के सिवा कोई कुल के बन्धु बान्धव भी रानी से न मिल सके ॥ २८-२९-॥

रूपाजीवाः स्नानप्रघर्षशुद्धशरीराः परिवर्तितवस्त्रालंकाराः पश्येयुः ॥ ३० ॥

रूपवती सुन्दर रानी, स्नान, डबटन आदि से शुद्ध शरीर होकर और वस्त्र तथा अलंकार पहन कर राजा से मिलने जावे ॥ ३० ॥

आशीतिकाः पुरुषाः पञ्चाशत्कास्त्रियो वा मातापितृव्यञ्जनाः स्थविरवर्ष-
वराभ्यागारिकाश्चावरोधानां शौचाशौचं विद्युः स्थापयेयुश्च स्वामिहिते ॥ ३१ ॥

अस्ती वष के वृद्ध, और पचास वर्ष की स्त्रियां माता-पिता की तरह राज-रानियां की पवित्रता की रक्षा रखें, तथा वृद्ध नपुंसक और अन्य कुट्टज आदि भी रनिवास की रक्षा में तत्पर रहे और रानियों को स्वामी के हित में लगावे ॥ ३१ ॥

स्वभूमौ च वसेत्सर्वः परभूमौ न संचरेत् ।

न च बाह्येन संसर्गं कश्चिदाभ्यन्तरो व्रजेत् ॥ ३२ ॥

ये उपर्युक्त जन समुदाय अपने २ स्थान पर ही रहें-एक दूसरे के स्थान पर न जावें। भीतर का मनुष्य बाहर के आदमी से कभी संसर्ग न करे ॥ ३२ ॥

सर्वं चावेक्षितं द्रव्यं निवद्धागमनिर्गमम् ।

निर्गच्छेदभिगच्छेद्वा मुद्रासंक्रान्तभूमिकम् ॥ ३३ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

भीतर से बाहर और बाहर से भीतर जाने आने वाली वस्तुएं अच्छी

तरह देख लेनी चाहिये या जो वस्तु बाहर जावे या भीतर आवे- उन पर मुद्रा लगा देने का नियम रखना उचित है ॥ ३३ ॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्र में विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में

वीं सवां अध्याय समाप्त हुआ ।



इक्कीसवां अध्याय

१८ वां अकरण

आत्मरक्षा

शयनादुत्थितः स्त्रीगणैर्धन्विभिः परिगृह्येत ॥ १ ॥ द्वितीयस्यां कक्ष्यायां
कञ्चुकोष्णीपिभिर्वर्षवराभ्यागारिकैः ॥ २ ॥ तृतीयस्यां कुब्जवामनकिरातैः ॥ ३ ॥
चतुर्थ्यां मन्त्रिभिः संवन्धिभिर्दौवारिकैश्च प्रासपाणिभिः ॥ ४ ॥

जब राजा प्रातः काल अपने शयन से उठे-तो धनुषधारिणी स्त्रियां उनके साथ रहे । जब राजा शयन गृह से निकल कर दूसरे कमरे में पहुंचे-तो वहां कञ्चुक (अंगरखा) और पगड़ी पहने हुए नपुंसक और राजभवन के प्रबन्धक धनुष आदि शस्त्र लिये राजा की रक्षा में तत्पर रहें । तीसरी कक्ष्या (कमरे) में कुबड़े वामन (वौने) और किरात (वनवासी) लोग रक्षा करें । चौथी कक्ष्या (राजसभा) में मन्त्री, सम्बन्धी, और द्वारपाल प्रास (भाले) नामक शस्त्र धारण किये हुए राजा की देख रेख में सावधान रहें ॥ १-४ ॥

पितृपैतामहं महासंवन्धानुबन्धं शिक्षितमनुरक्तं कृतकर्माणं जनमासन्नं
कुर्वीत ॥ ५ ॥ नान्यतोदेशीयमकृतार्थमानं स्वदेशीयं वाप्यपकृत्योपगृहीतम् ॥ ६ ॥
अन्तर्वेशिकसैन्यं राजानमन्तः पुरं च रक्षेत् ॥ ७ ॥

जो पिता पितामह, तथा बहुत समीप के सम्बन्ध में अनुबद्ध, शिक्षित, प्रेमी और संसार के अनुभव से युक्त योग्य पुरुष को राजा अपने समीप रखे, धन आदि से जिसका मान न किया गया हो-ऐसे विदेशी पुरुष तथा आकार करके फिर किसी तरह रखे हुए स्वदेशी पुरुष को भी राजा अपना शरीर रक्षक न बनावे । भीतर महलों में नियुक्त सेना राजा और निवास की रक्षा में सावधान रहे ॥ ५-७ ॥

गुप्ते देशे माहानसिकः सर्वमास्वादवाहुल्येन कर्म कारयेत् ॥ ८ ॥ तद्वा-
जा तथैव प्रतिभुञ्जीत पूर्वमग्नये वयोभ्यश्च वलिं कृत्वा ॥ ९ ॥

पाकशाला (रसोई घर) पर नियुक्त पुरुष (अफसर) गुप्त प्रदेश में राजा की स्वादिष्ट रसोई तय्यार करावे। राजा प्रथम अग्नि पत्नी आदि को बलि देकर पीछे स्वयं उस स्वादिष्ट भोजन का भक्षण करे ॥८-६॥

अग्नेर्ज्वालाधूमनीलता शब्दस्फोटनं च विपयुक्तस्य वयसां विपत्तिश्च
॥ १० ॥ अन्नस्योष्मा मयूरग्रीवामः शैत्यमाशुक्लिष्टस्यैव वैवर्यं सोदकत्वमक्रिन्नत्वं
च ॥ ११ ॥

(यदि भोजन में विप मिला हो-तो अग्नि में उसकी लपट नीली और धुंआ भी नीला ही निकलेगा तथा अग्नि में चटचट शब्द होगा) यदि पक्षियों ने खाया होगा-तो वह उसी समय तड़फड़ने लगेगा। अन्न में जो भाप उठती है वह भी मयूर के ग्रीवा के सदृश नीली ही होती है। (विपमिश्रित अन्न ठंडा भी शीघ्र हो जाता है) और तोड़ने फोड़ने पर उसका रंग अन्य प्रकार का ही हो जाता है। किसी २ विप के संयोग से भोजन में पानी छुट जाता है और किसी से बहुत ही रुखा भोजन बन जाता है ॥१०-११॥

व्यञ्जनानामाशुशुष्कत्वं च काथश्याम फेनपटलविच्छिन्नभावो गन्धस्पर्शरसवधश्च ॥ १२ ॥

दाल-शाक में विप हो-तो वे शीघ्र शुष्क हो जावेंगे। उनका आकार काथ का सा दिखाई देगा। किसी साग की रंगत काली, किसी में भाग या किसी का विकृत आकार दिखाई देने लगता है। इस तरह उसके गन्ध, स्पर्श और रस में भी फर्क पड़ जाता है ॥ १२ ॥

द्रव्येषु हीनातिरिक्तच्छायादर्शनम् ॥ १३ ॥ फेनपटलसीमान्तोर्ध्वराजी-
दर्शनं च ॥ १४ ॥

पतले शाकों में पुरुष की छाया का आकार ही दूसरे ढंग का दिखाई देने लगता है उसमें भाग समूह, उठता है, पानी अलग और शाक अलग या उसके ऊपर रेखा सी दृष्टि में आती है ॥ १३-१४ ॥

रसस्य मध्ये नीला राजी पयसस्ताम्रा मद्यतोययोः काली दध्नः श्यामा च मधुनः श्वेता ॥ १५ ॥ द्रव्याणामार्द्राणामाशु प्रम्लानत्वमुत्पक्वभावः काथनीलश्यामता च ॥ १६ ॥

शाकादिके रस में विप हों-तो नीली पंक्ति, दूध में लाल, मद्य और जल में काली, वही में श्याम (कुछ न्यून काली) और मधु (शहद) में श्वेत धारी दिखाई देती है। जो

गीले पदार्थ हैं, उनमें विष होने पर वे शीघ्र ही वासी से दिखाई देने लगेंगे। या सड़ से जावेंगे। यदि उनको पकाया जावे-तो वे अच्छी तरह नहीं पकेंगे और उनका काथ (रसा) नीला और काला सा दिखाई देगा ॥१५-१६॥

शुष्काणामाशुशातनं वैवर्यं च ॥ १७ ॥ कठिनानां मृदुत्वं मृदूनां कठेनत्वं च ॥ १८ ॥ तदभ्याशे जुद्रसत्त्ववधश्च ॥ १९ ॥

शुष्क (फलादि) पदार्थों में विष मिला हो-तो शीघ्र कट जावेंगे और उनका रंग बदल जावेगा। जो पदार्थ कठिन हों-वे गिलगिले और कोमल पदार्थ कठिन हो जावेंगे। विष मिश्रित अन्य के समीप चींटी मकड़ी आदि शुद्र जन्तुओं की मृत्यु भी हो जाती है ॥

आस्तरणप्रावरणानां श्याममण्डलता तन्तुरोमपद्मशातनं च ॥ २० ॥
लोहमणिमयानां पङ्कमलोपदेहता ॥ २१ ॥ स्नेहरागगौरवप्रभाववर्णस्पर्शवधश्चेति
विषयुक्तलिङ्गानि ॥ २२ ॥

विज्ञाने ओढ़ने के वस्त्रों में यदि विष का प्रयोग किया है-तो उसमें काले धब्बे पड़ जाते हैं। या उनके तन्तु और रोम कट जाते हैं। धातु और मणियों के पात्रों में विष का सम्पर्क होते ही वे कीचड़ में लिपटे से दिखाई देते हैं। इसी तरह विष मिली हुई वस्तुओं की चिकनाई, रंगत, उनका प्रभाव वर्ण और स्पर्श सब नष्ट हो जाते हैं। यहां तक विष-युक्त वस्तुओं के पहचानने के चिन्ह बताये गए हैं ॥ २०-२२ ॥

विषप्रदस्य तु शुष्कस्यावयक्तता वाक्सङ्गः स्वेदो विजृम्भणं चातिमात्रं
वेपथुः प्रस्खलनं बाह्यविप्रेक्षणमावेगः स्वकर्मणि स्वभूमौ चानवस्थानमिति ॥ २३ ॥

विष देने वाले पुरुष के मुख की कान्ति, सूखी और मलिन काली सी दिखाई देगी। उसकी बाणी रुक-रू कर निकलती है। उसको पसीना, जंभाई और बहुत अधिक कँप कँपी सी आती रहती है। उसकी चार २ गति भङ्ग होती है। वह बाहर की ओर टकटकी बांधे रहता है। उसे बहुत ही घबराहट रहती है तथा वह अपने काम और स्थान पर निश्चल होकर नहीं टिकता है ॥ २३ ॥

तस्मादस्य जाङ्गलीविदो भिषजश्चासन्नाः स्युः ॥ २४ ॥ भिषग्भैषज्यागारा-
दास्त्रादविशुद्धमौषधं गृहीत्वा पाचकपोषकाभ्यामात्मना च प्रतिस्वाद्य राज्ञे ग्रय-
च्छेत् ॥ २५ ॥ पानं पानीयं चौषधेन व्याख्यातम् ॥ २६ ॥

राजा को विष प्रयोग के जानने वाले वैद्यों को सर्वदा अपने साथ रखना उचित है। वैद्य भी औषधालय से चाख-रू कर बनाई हुई औषधि मंगाकर उसके पकाने पीसने

वाले पुरुष और स्वयं भी राजा के सन्मुख चंख कर फिर राजा को देवे । इसी तरह पीने योग्य वस्तु का पान करके राजा को अर्पण करे ॥ २४-२६॥

कल्पकप्रसाधकाः स्नानशुद्धवस्त्रहस्ताः समुद्रमुपकरणमन्तर्वशिकहस्तादादा-
यपरिचरैयुः ॥ २६ ॥ स्नापकसंवाहकास्तरकरजकमालाकारकर्म दास्यः कुयुः
॥ २८ ॥

और बनाने वाले या स्नान, शृङ्गार कराने वाले पुरुष प्रथम स्वयं स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण किये हुए, मुद्रा से अङ्कित, उत्तरे आदि प्रसाधन के साधनों को महलों के भीतर रहने वाले सेवकों के हाथ से लेकर राजा की सेवा में तत्पर हों । स्नान कराने पर दवाने, विस्तर, विछाने, कपड़े, धोने तथा माला बनाने का काम महल में रहने वाली दासी ही करें ॥ २७-२८ ॥

ताभिरधिष्ठिता वा शिल्पिनः ॥ २९ ॥ आत्मचक्षुषि निवेश्य वस्त्रमाल्यं
दद्युः ॥ ३० ॥ स्नानानुलेपनप्रघर्षचूर्णवासस्नानीयानि स्ववक्षोवाहुपुच ॥ ३१ ॥
एतेन परस्मादागतकं च व्याख्यातम् ॥ ३२ ॥

यदि दासी नहीं कर सकती हों-तो दासियों की देख रेख में शिल्पी (कारीगर) ही इन कार्यों को कर देंगे । दासियां अपनी आंखों से देखकर वस्त्र और मालाएँ राजा को अर्पण करे । स्नान के उपयोगी उबटन, चन्दन, सुगन्धित द्रव्य आदि वस्तुओं को दासियाँ प्रथम अपनी छाती और भुजाओं पर लगाएँ । इसी ढंग से बाहर से आई हुई वस्तुओं की परीक्षा कर लेना ॥ २९-३२ ॥

कुशीलवाः शस्त्राग्निरसवर्जं नर्मयैयुः ॥ ३३ ॥ आतोद्यानि चैषामन्तस्ति-
ष्ठेयुरश्वरथद्विपालंकाराश्च ॥ ३४ ॥ मौलपुरुषाधिष्ठितं यानवाहनमारोहेत् ॥ ३५ ॥
नावं चाप्तनाविकाधिष्ठिताम् ॥ ३६ ॥ अन्यनौग्रतिवद्वां वातवेगवशां च नोपेयात्
॥ ३७ ॥ उदाक्रान्ते सैन्यमासीत् ॥ ३८ ॥

राजा को नाटक दिखाने वाले नट आदि पुरुष, शस्त्र अग्नि और विष व्यवहार के खेल छोड़ कर अन्य खेल दिखावें । इन नटों के वाजे भी राजा के अन्तःपुर में ही रखे रहने चाहिए । रथ, अश्व, हाथी और अलङ्कार भी राजा के भवन में ही बँधे रहा करें । विश्वासी पुरुष के चढ़ने पर ही राजा पालकी आदि यान और अश्व आदि वाहन पर चढ़े । नाव पर भी नाविक के साथ ही राजा सवारी करे । किसी दूसरी नाव से बंधी हुई नाव या वायु के वेग से डगमगाने वाली नाव पर राजा सवारी न करे । नौका भी सवारी के समय सेनातट पर स्थित (तैनात) रहनी चाहिए ॥ ३३-३८ ॥

मत्तयग्राहविशुद्धमवगाहेत् ॥ ३६ ॥ व्यालग्राहपरिशुद्धमुद्यानं गच्छेत् ॥
४० ॥ लुब्धकैः श्वगणभिरपास्तस्तेनव्यालपरात्राधभयं चललक्षपरिचर्यार्थं
मृगारण्यं गच्छेत् ॥ ४१ ॥

राजा, मगर-ग्राह आदि जलजन्तुओं से रहित जलाशय में स्नान करे। सर्प आदि से रहित परीक्षित उद्यान में राजा टहल सकता है। कुत्ते रखने वाले शिकारी गण के साथ राजा, चोर, सिंह (शेर) शत्रु आदि के भय से रहित वनैले जन्तुओं से भरे हुये वन में चञ्चल लक्ष्य के बँधने के निमित्त राजा मृग या कौ जावे ॥ ३६-४१ ॥

आप्तशस्त्रग्राहाधिष्ठितः सिद्धतापसं पश्येत् ॥ ४२ ॥ मन्त्रिपरिषदा सा-
मन्तदूतं संनद्धोऽश्वं हस्तिनं रथं वारूढः संनद्धमनीकं गच्छेत् ॥ ४३ ॥

शस्त्रधारी आप्त पुरुषों के साथ ही राजा किसी तपस्वी से मिल सकता है, मन्त्रि सभा के साथ सामन्त राजा के दूत से मिले। आप कवच आदि पहन कर सावधानी के साथ अश्व, हाथी और रथ पर सवारी करे या शस्त्रादि से सुसज्जित सेना में जावे ॥ ४२-४३ ॥

निर्याणेऽभियाने च राजमार्गमुभयतः कृतारक्षं दण्डभिरपास्तशस्त्र-
हस्तप्रव्रजितव्यङ्गं गच्छेत् ॥ ४४ ॥ न पुरुषसंवाधमवगाहेत् ॥ ४५ ॥

कहीं अन्य स्थान में जाने या आने के समय राजमार्ग दोनों ओर दण्डधारी पुरुषों से घिरा होवे। इन सिपाहियों से सुरक्षित तथा शस्त्रधारी संन्यासी या लंगड़े लूले पुरुषों से रहित मार्ग में राजा गमन करे। पुरुषों की भीड़ में राजा कभी न घुसे ॥ ४४-४५ ॥

यात्रासाजोत्सवप्रवहणानि दशवर्गिकाधिष्ठातानि गच्छेत् ॥ ४६ ॥

राजा जब कभी किसी देवस्थान सभा उत्सव या प्रवहण (पार्टी) में जावे-तो दश रत्नों से अवश्य युक्त होवे। इनके बिना कभी गमन न करे ॥ ४६ ॥

यथा च योगपुरुषैरन्यान् राजाधितिष्ठति ।

तथायमन्यवाधेभ्यो रक्षेदात्मानमात्मवान् ॥ ४७ ॥

इति विनयाधिकारिके अथमेऽधिकरणे आत्मरक्षितकम् एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य विनयाधिकारिकं अथमधिकरणं समाप्तम् ॥

जिस प्रकार गूढ़ प्रयोगों का राजा, शत्रु पर प्रयोग करता है-वैसे ही शत्रुप्रयुक्त गूढ़ प्रयोगों से राजा अपनी रक्षा करता रहे ॥ ४७ ॥

इति श्री कौटलीयार्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में आत्म
रक्षित इक्कीसवां अध्याय समाप्त हुआ, यहीं पर विनयाधिकरण भी समाप्त होगया



विनयाधिकरण प्रथम अधिकरण समाप्त ।



अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरण



पहिला अध्याय

१६ वां प्रकरण

जनपदनिवेश

किसी पुराने या नये प्रदेश के बसाने को जनपद निवेश कहते हैं ।

भूतपूर्वमभूतपूर्व वा जनपदं परदेशापवाहनेन स्वदेशाभिष्यन्दवमनेन वा निवेशयेत् ॥ १ ॥ शूद्रकर्षकग्रायं कुलशतावरं पञ्चशतकुलपरं ग्रामं क्रोश-द्विक्रोशसीमानमन्योन्यारक्ष निवेशयेत् ॥ २ ॥

पुराने या नये देश के बसाने के लिए राजा, अन्य देश के मनुष्यों को बुला कर या अपने देश के प्रान्त को उलट पलट करके बसा लेवे । राजा को प्रत्येक ग्राम में शूद्र (शिल्पी) और कृषक (किसान) ही अधिक बसाने-चाहिए । (एक ग्राम में सौ से न्यून और पांच सौ से अधिक घर नहीं बसाने चाहिए) ये ग्राम-एक दो २ कोस की दूरी पर बसाने योग्य हैं । समय पड़ने पर एक ग्राम दूसरे ग्राम की रक्षा कर सके-ऐसा भी उचित प्रबन्ध हो ॥ १-२ ॥

नदीशैलवनगृष्टिदरीसेतुबन्धशात्मलीशमीक्षीरवृक्षानन्तेषु सीम्नां स्थापयेत् ॥ ३ ॥ अष्टशतग्राम्या मध्ये स्थनीयं चतुःशतग्राम्या द्रोणमुखं द्विशतग्राम्या खार्वाटिकं दशग्रामीसंग्रहेण संग्रहणं स्थापयेत् ॥ ४ ॥ अन्तेष्वन्तपालदुर्गाणि ॥ ५ ॥

राजा ग्राम की सीमा को नदी पर्वत, वन, बेर के वृक्ष, खाई, सेतु (पुल) बन्ध, संमल और शमी (छोंकरा) वड़, गूलर आदि के वृक्षों से सुशोभित बनावे । आठ सौ ग्रामों के मध्य में एक स्थानीय (बड़ा नगर) बसावे । चार सौ गांवों के मध्य में एक द्रोण मुख (नगर) की स्थापना करे । दोसौ गांवों के मध्य में खार्वाटिक (कसबे) की रचना करनी उचित है और दश गांवों का संग्रह करके उनके मध्य में कर आदि के संग्रह करने को संग्रहण नामक स्थान की स्थापना करे ॥ ३-४ ॥

अन्तेष्वन्तपालदुर्गाणि ॥ ५ ॥ जनपदद्वाराण्यन्तपालाधिष्ठितानि स्थापयेत् ॥ ६ ॥ तेषामन्तराणि वागुरिकशबरपुलिन्दचण्डालारण्यचरा रक्षेयुः ॥ ७ ॥

इस प्रकार अपने इस नवीन प्रदेश की सीमा पर राजा अन्तपाल नामक अध्यक्ष को नियुक्त करके दुर्ग रचना करे। इस नवीन प्रदेश के द्वारों पर भी अन्तपाल नामक अध्यक्षों (अफसरों) को ही राजा को नियुक्त करना उचित है। इन स्थानों के मध्य भागों की रक्षा का भार, व्याध, शबर, पुलिन्द, (भील) चण्डाल, तथा अन्य वनवासी पुरुषों के अधीन करनी चाहिए ॥ ५-७ ॥

ऋत्विगाचार्यपुरोहितश्रोत्रियेभ्यो ब्रह्मदेयान्यदण्डकराण्यभिरूपदायकानि प्रयच्छेत् ॥ ८ ॥

राजा, अपने ऋत्विग, आचार्य, पुरोहित और-वेदपाठी ब्राह्मणों के निमित्त, भूमि प्रदान करे। ब्राह्मणों से किसी प्रकार दण्ड या कर ग्रहण करने की अभिलाषा न करे। यह भूमि का प्रदान इन आचार्य आदि की वंश परम्परा तक सदा चलना चाहिए। ८ ॥

अध्यक्षसंख्यायकादिभ्यो गोपस्थानिकानीकस्थचिकित्साश्वदमकजङ्घाकरिकेभ्यश्च विक्रयाधानवर्जम् ॥ ९ ॥

राजा पृथक् २ कार्यालयों के अध्यक्ष (अफसर), संख्यायक (गणना) करने वाले दफ्तर के नौकर आदि राज्यकर्मचारियों को भी भूमि प्रदान करे। दश गांवों के अधिकारी गोप, स्थानिक, (नगर रक्षक) सेनापति, चिकित्सक (वैद्य) अश्व-शिक्षक, और दूतकर्म करने वाले सैनिकों को भी प्रदान करे, परन्तु उनको इस भूमि के बेचने या गिरवी रखने का अधिकार नहीं होना चाहिए ॥ ९ ॥

करदेभ्यः कृतक्षेत्राण्यैकपुरुषिकाणि प्रयच्छेत् ॥ १० ॥

जो कर देने वाले लोग हैं, यदि उनकी सेवा से प्रसन्न होकर राजा उन्हें भूमि प्रदान करे-तो यह भूमि एक पुरुष तक रह सकती है अर्थात् वही पुरुष उस भूमि का उपयोग कर सकता है ॥ १० ॥

अकृतानि कर्तृभ्यो नादेयात् ११ ॥

उसके अनन्तर राजा उस कृतक्षेत्र (हीन हयात) भूमि को उसके जोतने वाले-उसके पुत्रों को प्रदान न करे ॥ ११ ॥

अकृषतामाच्छिद्धान्येभ्यः प्रयच्छेत् ॥ १२ ॥ ग्रामभृतकवैदेहका वा कृपेयुः ॥ १३ ॥

जो पुरुष स्वयं कृषि (खेती) न करके भूमि को पड़ा रखता है या अन्य से खेती कराता है, तो उससे छीन कर राजा उस भूमि को अन्य के लिए प्रदान कर देवे। राजा की इच्छा हो, तो उस भूमि को गांव के चौधरी पटेल जोत वो-सकते हैं ॥ १२-१३ ॥

अकृपन्तोऽपहीनं दद्युः ॥ १४ ॥ धान्यपशुहिरण्यैश्चैनाननुगृहीयात्तान्य-
नुसुखेन दद्युः ॥ १५ ॥

यदि कोई मनुष्य खेती करने की प्रतिज्ञा करके उस भूमि में कृषि (खेती) न करे-तो राजा, उस भूमि का उससे अपहीन (हर्जाना) ग्रहण (वसूल) करे राजा कृषकों को धान्य- पशु और रुपये की भी समय समय पर सहायता करता रहे। ये लोग भी अन्नोत्पत्ति (पैदावार), के अनन्तर राजा की इस रकम को धीरे-२ सुख पूर्वक चुका दें ॥ १४-१५ ॥

अनुग्रहपरिहारौ चैभ्यः कोशवृद्धिकरौ दद्यात् ॥ १६ ॥ कोशोपधातिकौ
वर्जयेत् ॥ १७ ॥ अल्पकोशो हि राजा पौरजानपदानेव ग्रसते ॥ १८ ॥
निवेशसमकालं यथागतकं वा परिहारं दद्यात् ॥ १९ ॥

राजा जो धन ग्रामीण जनता के स्वास्थ्य की वृद्धि के लिए सफाई आदि में व्यय करता है-यह अनुग्रह, और जो स्वास्थ्य की वृद्धि में औषधालय (अस्पताल) आदि पर व्यय किया जाता है-यह परिहार कहाता है। इस प्रकार अनुग्रह और परिहार अर्थात् स्वास्थ्य रक्षा और नीरोगता के लिए जो राजा का धन व्यय होता है-वह राजा के कोष की वृद्धि का कारण होता है। यदि इन दोनों कार्यों में इतना अधिक व्यय हो जावे कि कोश (खजाना) खाली हो जावे-तो इन में भी राजा व्यय करना बन्द कर दे। जब राजा के कोश में धन नहीं रहता है, तो वह समय पड़ने पर पुर और देश को ही कष्ट पहुंचाता है। जब राजा के कोष में धन आवे उसी समय राजा जनता के नीरोगता के लिए प्रतिज्ञात धन को फौरन यथा स्थान पहुंचादे ॥ १६-१९ ॥

निवृत्तपरिहारान्पितेवानुगृहीयात् ॥ २० ॥ आकरकर्मान्तिद्रव्यहस्तिवनव्र-
जवणिक्पथप्रचारान्वारिस्थलपथपण्यपत्तनानि च निवेशयेत् ॥ २१ ॥

जब प्रजा के लोग अपने इस परिहार (स्वास्थ्य के लिए व्यय किये हुए) द्रव्य को चुकादेवे, तो राजा उन पर पिता की भांति अनुग्रह प्रदर्शित करे। आकर (खान) से उत्पन्न सुवर्ण चांदी आदि के बेचने के स्थान, चन्दन आदि उत्तम २ काष्ठ के बाजार, हाथियों के वन, बैल-गाय की वृद्धि के साधन व्यापार के स्थान जलमार्ग, स्थल मार्ग, तथा बड़े २ बाजारों का राजा निर्माण करे ॥ २०-२१ ॥

सहोदकमाहायो दक्रं वा सेतुं बन्धयेत् ॥ २२ ॥ अन्येषां वा बन्धतां भूमि-
मार्गवृक्षोपकरणानुग्रहं कुर्यात् ॥ २३ ॥ पुण्यस्थानारामाणां च ॥ २४ ॥

भरनों के जल से भरे हुए सरोवर नदियों का, राजा सेतु (पुल) बनवाता रहे। यदि कोई धनवान् उन को पुण्यार्थ बंधवाना चाहे, तो-राजा, उनको भूमि, मार्ग और वृक्ष आदि सामग्री प्रदान करने की सहायता करे। इसी प्रकार जो दानी पुण्य स्थान (धर्म शाला) और वगीचे बनवावे, उसकी भी राजा को सहायता करनी चाहिए ॥ २२-२४ ॥

संभूय सेतुबन्धादपक्रामतः कर्मकरवलीवर्गाः कर्म कुर्युः ॥ २५ ॥ व्ययकर्मणि च भागी स्यात् ॥ २६ ॥ न चांशं लभेत ॥ २७ ॥

जब सारी प्रजा के मनुष्य किसी सेतु (पुल) बंध आदि कार्य को मिलकर कर रहे हों और उस कार्य में जो मनुष्य किसी आवश्यक कार्य से सम्मिलित न हो सके-तो उसके स्थान में नौकर या उसके बैलों को समझ लिया जावे। जो उस सम्मिलित कार्य में व्यय हो उस में उसके हिस्से में आये हुए धन का अंश उससे अवश्य ग्राहण (वसूल) कर लेना चाहिए। इस पुण्य कार्य में जो कुछ द्रव्य लाभ हो- वह आलसी मनुष्य उस लाभ का अधिकारी नहीं है ॥ २६-२७ ॥

मत्स्यप्लवरहितपण्यानां सेतुषु राजा स्वार्थं गच्छेत् ॥ २८ ॥ दासाहितकवन्धनशृण्वतो राजा धिनयं ग्राहयेत् ॥ २९ ॥

जिस जलाशय में मछली और कारखंड आदि पक्षी न रहते हों-उसके सेतु पर राजा का अधिकार रहे। दास (नौकर) या द्रव्य के बदले में (गिरवी रूप से) रहने वाले पुरुष यदि राजा की आज्ञा न माने-तो राजा उनको दण्ड-आदि से सीधा करदे ॥ २८-२९ ॥

बालवृद्धव्याधितव्यसन्यनाथांश्च राजा विभृयान् ॥ ३० ॥ स्त्रियमप्रजातां प्रजातायाश्च पुत्रान् ॥ ३१ ॥ बालद्रव्यं ग्रामवृद्धा वर्धयेयुराव्यवहारप्रापणात् ॥ ३२ ॥ देवद्रव्यं च ॥ ३३ ॥

धार्मिक राजा, बालक, वृद्ध, व्याधिग्रस्त, विपत्ति में फंसे हुए तथा अनाथ मनुष्यों की रक्षा करता रहे। सन्तान हीन अरक्षित स्त्री, या सन्तान उत्पन्न करने वाली अनाथ स्त्री के बालकों की भी राजा रक्षा करे। किसी बालक (नाबालिग) की सम्पत्ति का अधिकार गांव के वृद्ध पुरुषों के पास रहे-तबतक बढ़ाते रहे-जबतक वह बालक युवा होकर व्यापार के योग्य न हो-जावे। देव सम्पत्ति का भी इसी प्रकार वृद्धों को अधिकार होना चाहिए जो उसे बढ़ावें ॥ ३०-३३ ॥

अपत्यदारान् मातापितरौ भ्रातृनप्राप्तव्यवहारान्भगिनीः कन्या विधवा-
श्चाविभ्रतः शक्तिमतो द्वादशपणो दण्डोऽन्यत्र पतितेभ्यः ॥ ३४ ॥ अन्यत्र मातुः ॥ ३५ ॥

अपनी सन्तान, भार्या, माता, पिता, प्रथक् २ होकर अपना २ अंश नहीं पाये हुए भ्राता, भगिनी कन्या और विधवा का जो सामर्थ्यवान् पुरुष पालन-पोषण नहीं करता, उस पर राजा वारह पण (उस समय का सुवर्ण का सिक्का) का दण्ड देवे । जो पतित होकर घर से निकल गए-उनके पालन करने का भार नहीं है-परन्तु माता के तो पतित हो जाने पर भी उस के पालन का भार पुत्र पर बनाही रहेगा ॥३४-३५॥

पुत्रदारमप्रतिविधाय प्रव्रजतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३६ ॥ स्त्रियं च प्रव्राजयतः ॥ ३७ ॥ लुप्तव्यवायः प्रव्रजेदापृच्छय धर्मस्थान् ॥ ३८ ॥ अन्यथा नियम्येत ॥ ३९ ॥

जो पुरुष पुत्र और भार्या के निर्वाह का प्रबन्ध न करके संन्यास ग्रहण करे-तो राजा उसे यथोचित दण्ड प्रदान करे । इसी तरह जो स्त्री को संन्यासिनी हो जाने की प्रेरणा करे-उसे भी साहस दण्ड देना चाहिए । जत्र मनुष्य का काम विकार शान्त हो जावे उस समय धर्माचार्यों की आज्ञा लेकर मनुष्य संन्यासी हो सकता है । जो पुरुष राज्य के इस नियम का उल्लंघन करे-राजा उसे अवश्य दण्ड दे ॥३६-३९॥

वानप्रस्थादन्यः प्रव्रजितभावः सुजांतादन्यः संघः समुत्थायिकादन्यः समयानुबन्धो वा नास्य जनपदमुपनिविशेत् ॥ ४० ॥

वानप्रस्थी साधुओं के सिवा कोई भी संन्यासियों की टोली, राज्य सेवा के निमित्त बने हुए संघ के अतिरिक्त दुष्ट जनों के संघ आचार सहित पुरुषों की सभा के सिवा उपद्रवियों की सभाओं को राजा देश में न बढने देवे ॥४०॥

न च तत्रारामविहारार्थाः शाला स्युः ॥ ४१ ॥ नटनर्तनगायनवादकवा-
जीवनकुशीलवा वा न कर्मविघ्नं कुर्युः ॥ ४२ ॥ निराश्रयत्वाद्ग्रामाणां क्षेत्रा-
भिरतत्वाच्च पुरुषाणां कोशविष्टिद्रव्य धान्यरसवृद्धिर्भवतीति ॥ ४३ ॥

बड़े २ वगीचों में विहारोपयोगी शाला भी नहीं बननी चाहिए । नट, नर्तक, गायक, वादक तथा अन्य, वाणी से जीविका करने वाले कथा वाचक, राजकार्यों में विघ्नकारी कर्म न करने पावे । इनमें उपद्रव करा देने की शक्ति होती है । गांवों में नाट्यशाला आदि भोग सामग्री के न होने से प्रत्येक जन अपने कृषि आदि कार्यों में लगा रहेगा । इसीसे कोष (खजाना) द्रव्य, धान्य, रस की वृद्धि और कठिन श्रमसाध्य कर्म होते रहते हैं ॥४१-४३॥

परचक्राटवीग्रस्तं व्याधिदुर्भिक्षपीडितम् ।

देशं परिहरेद्राजा व्ययक्रीडाश्च वारयेत् ॥ ४४ ॥

शत्रु के गुप्तचरों से व्याप्त, व्याधि और दुर्भिक्ष से पीड़ित, अपने देश को राजा न रहने दे-यदि प्रबन्ध करने में असमर्थ हो-तो उसे छोड़ दे तथा राजा ऐसे खेलों का बहिष्कार करे-जो विलास प्रियता के बढ़ाने वाले हो ॥४४॥

दण्डविष्टिकरावधैः रक्षेदुपहतां कृषिम् ।

स्तेनव्यालविपग्राहैः व्याधिभिश्च पशुव्रजान् ॥ ४५ ॥

दण्ड, विष्टि (वेगार) कर (टैक्स) आदि की बाधा से नष्ट होने वाली कृषि को राजा सर्वदा रक्षा करे अर्थात् राजा किसानों पर अधिक बोझ न डाले । इसी प्रकार चोर, हिंसक प्राणी, विप प्रयोग तथा अन्य प्रकार की व्याधियों ने किसानों के पशुओं की रक्षा करना भी राजा का कर्तव्य है ॥४५॥

वल्लभैः कार्मिकैः स्तेनैरन्तपालैश्च पीडितम् ।

शोधयेत्पशुसंघैश्च क्षीयमाणवणिक्पथम् ॥ ४६ ॥

राजा के समीपवर्ती प्रिय पुरुष, कर (लगान या टैक्स) प्रहण करने वाले अरुन्धत या कर्मचारी, चोर, सीमा रक्षक तथा हिंसक जन्तुओं से रुके हुए राजमार्ग को राजा समुचित प्रबन्ध द्वारा ठीक २ रखे ॥४६॥

एवं द्रव्यद्विपवनं सेतुबन्धमथाकरान् ।

रक्षेत्पूषकृतान् राजा नवांश्चाभिप्रवर्तयेत् ॥ ४७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे जनपदनिवेशः प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥

प्रादितो द्वाविंशः ॥ २२ ॥

इस प्रकार राजा हाथी और काण्ट आदि वस्तुओं के वन, पूर्व सेतु रचित बन्ध, और आकरों (खानों) की रक्षा करे-तथा अन्य भी नये २ बनवाता रहे ॥४७॥

इति श्रीकौटिलीयअर्थशास्त्रान्तर्ग, अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीयअधिकरण में जनपद निवेश (राष्ट्र वसाने) का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ ।



दूसरा अध्याय

बीसवां प्रकरण

भूमिच्छिद्र विधान

बंजर भूमियों को उपयोग में लाने को भूमिच्छिद्र विधान कहते हैं । इस प्रकरण में इसीके उपयोगी कार्यों का वर्णन किया जाता है ।

अकृष्यायां भूमौ पशुभ्यो विवीतानि प्रयच्छेत् ॥ १ ॥ प्रदिष्टाभयस्था-
वरजङ्गमानि च ब्राह्मणेभ्यो ब्रह्मसोमारण्यानि तपोवनानि च तपस्विभ्यो गोरुत-
पराणि प्रयच्छेत् ॥ २ ॥

(जो भूमि अकृष्या (वंजर) होती है, उसमें राजा पशुओं को चरने की
आज्ञा देदे) इस भूमि में ऐसा वन छोड़ दिया जावे जहां वृक्ष और वनैले जन्तु
वृद्धि पा सके। इसी तरह जहां तक गायों के शब्द पहुंच सके इतनी २ भूमि
प्रथक् ब्राह्मणों को ब्रह्म सोमयाग निमित्त और तपस्वियों को तपोवन के लिये
प्रदान करे ॥१-२॥

तावन्मात्रमेकद्वारं खातगुप्तं स्वादुफलगुल्मगुच्छमकण्टकिद्रुममुत्तानतोया-
शयं दान्तमृगचतुष्पदं भग्ननखदंष्ट्रव्यालं मार्गयुकहस्तिहस्तिनीकलभं मृगवनं
विहारार्थं राज्ञः कारयेत् ॥ ३ ॥

इसी तरह इसमें एक लम्बा चौड़ा एक द्वार का खात गुप्त (भवन) वनवावे। इस
भूमि में स्वादिष्ट फलों के वृक्ष, लता-भाड़ी, कण्टक हीन वृक्ष, थोड़े २ जलपूर्ण जलाशय,
अच्छे २ मृग आदि प्राणी, नखदांतों से हीन करके छोड़े हुए व्याघ्र चीते आदि जन्तु,
हाथी हथिनी और हाथी के बच्चों से युक्त राजा के विहार (शिकार) के लिए एक मृगया वन
(शिकारगाह) भी तय्यार किया जावे ॥३॥

सर्वातिथिमृगं प्रत्यन्ते चान्यन्मृगवनं भूमिवशेन वा निवेशयेत् ॥४॥
कुप्यप्रदिष्टानां च द्रव्याणामैकैकशो वा वनं निवेशयेत् ॥ ५ ॥ द्रव्यवनकर्मान्ता-
नटवीश्च द्रव्यवनापाश्रयाः ॥ ६ ॥

इसी वन के समीप बाहर के प्रदेशों से ला २ कर रखे हुए मृग तथा अन्य प्रकार
के जीवों का एक चतुष्पादभवन राजा निर्माण करवावे, वह जैसा जिस भूमि में वन सकता
हो-वनवावे। कुप्य नामक प्रकरण में बताया है पृथक् २ लकड़ी आदि के वनों की भी इसी
भूमि में रचना करनी चाहिए। द्रव्य वन की वस्तुओं पर काम करने वाले, उसी प्रदेश में
रहने वाले ग्रामीण मनुष्यों से इस द्रव्यवन का काम करवावे अर्थात् इस कार्य पर वनवासी
मनुष्यों को नियुक्त करे ॥४-६॥

प्रत्यन्ते हस्तिवनमटव्यारक्ष्यं निवेशयेत् ॥ ७ ॥ नागवनाध्यक्षः पार्वतं
नादेयं सारसमानूपं च नागवनं विदितपर्यन्तप्रवेश निष्कसनं नागवनपालैः
पालयेत् ॥ ८ ॥

इस भूमि में कहीं पर वन निवासी मनुष्यों से सुरक्षित एक हस्तीवन, वनवावे । इस हस्तीवन का अध्यक्ष, पर्वत, नदी तट, सरोवर आदि जल-प्रदेश के समीप वनवाये हुए हस्तीवन का हाथियों के कार्य में कुशल व्यक्तियों से पालन करवावे । इस अध्यक्ष को उस वन के सारे घुसने निकलने के द्वारों का पता होना चाहिए । ७-८॥

हस्तिघातिनं हन्युः ॥ ६ ॥ दन्तयुगं स्वयं मृतस्याहरतः सपादचतुष्पणो लाभः ॥ १० ॥

जो कोई वहां आकर हाथियों का शिकार करना चाहे-राजा उसे दण्ड देवे । जो पुरुष वन में स्वयं मरे हुए हाथियों के दोनों दांतों को लादे-उसे सवा चार रुपये का लाभ होना चाहिए ॥६-१०॥

नागवनपाला हस्तिपकपादपाशिकसैमिकवनचरकपारिकर्मिकसखा हस्तिमूत्रपुरीषच्छन्नगन्धा भल्लातकीशाखाप्रतिच्छन्नाः पञ्चभिः सप्तभिर्वा हस्तिवन्धकीभिः सह चरन्तः शय्यास्थानपद्मालण्डकूलपातोद्देशेन हस्तिकुलपर्यग्रं विद्युः ॥ ११ ॥

हाथीवान्, जाल फैलाने वाले, सीमा रक्षक, वन में घूमने वाले हाथियों की सेवा में निपुण पुरुषों को साथ लेकर हस्तिवन का अध्यक्ष, हाथियों के मूत्र, पुरीष (मल) की गन्ध से बनैले हाथियों का पता लगावे । ये पुरुष भिलावे की शाखा से अपने को छुपाये रहें । इनके साथ पांच या सात हथनी होनी चाहिए । इस प्रकार हाथियों के शयन स्थान, पाद चिन्ह, मल मूत्र त्याग तथा नदी कूलों के गिराने के चिन्ह से हाथियों के गृथ का पता लगावे ॥११॥

यूथचरमेकचरं निर्यूथं यूथपतिं हस्तिनं व्यालं मत्तं पोतं बंध मुक्तं च निवन्धेन विद्युः ॥ १२ ॥

यूथ में घूमने वाले, अकेले फिरने वाले, भुंड से पृथक् हुए, यूथपति, क्रूर प्रकृति, मदोन्मत्त, हाथी हाथियों के बच्चे, वन्धन में आये हुए खुले फिरने वाले हाथियों की राजा, अपने कर्मचारियों से गणना करवा कर उनको पुस्तक (रजिस्टर) में लिखवा दे ॥

अनीकस्थप्रमाणैः प्रशस्तव्यञ्जनाचारान्हस्तिनो गृहीयुः ॥ १३ ॥ हस्तिप्रधानो हि विजयो राज्ञाम् ॥ १४ ॥ परानीकव्यूहदुर्गस्कन्धावारप्रमर्दनाद्यतिप्रमाणशरीराः प्राणहरकर्माणो हस्तिन इति ॥ १५ ॥

सेना में रहने वाले योग्य वीरों की आज्ञानुसार अच्छे २ लक्षणों से युक्त हाथियों को राजा पकड़वावे । राजा की विजय हाथियों की सेना से ही मानी गई है । ये हाथी ही

शत्रु सेना, व्यूह, दुर्ग, स्कन्धावार (छावनी) के मर्दन करने में कुशल होते हैं, क्योंकि इनके शरीर बड़े विशाल हैं । जितना शीघ्र ये हाथी मनुष्यों के प्राण हर लेते हैं, उतना शीघ्र कोई भी जन्तु सेना में प्राण हरने में समर्थ नहीं है ॥१३-१५॥

कलिङ्गाङ्गजाः श्रेष्ठाः प्राच्याश्चेति करुशजाः ।

दशार्णाश्चापरान्ताश्च द्विपांतां मध्यमा मताः ॥ १६ ॥

कलिङ्ग, अङ्ग और पूर्व के करुष देशोत्पन्न हाथी सर्वश्रेष्ठ माने गए हैं । दशार्ण और पश्चिम के हाथी मध्यम, माने गए हैं ॥१६॥

सौराष्ट्रिकाः पाञ्चजनाः तेषां प्रत्यवराः स्मृताः ।

सर्वेषां कर्मणा वीर्यं जवस्तैजश्च वर्धते ॥ १७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे भूमिच्छिद्रविधानं द्वितीयो ऽध्यायः ॥२॥

आदितस्त्रयोविंशः ॥ २३ ॥

सौराष्ट्र (गुजरात) पञ्चजन आदि देशों में उत्पन्न हाथी साधारण होते हैं । इन समस्त हाथियों का बल, और तेज शिक्षा द्वारा बढ़ाया जा सकता है ॥१७॥

इति श्रीकौटिलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचार अधिकरण में भूमिच्छिद्र विधान

का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ।



तीसरा अध्याय

२१वां प्रकरण

दुर्गविधान

अत्र दुर्गं (किले) बनाने की विधि का वर्णन किया जाता है—

चतुर्दिशं जनपदान्ते सांपरायिकं दैवकृतं दुर्गं कारयेत् ॥ १ ॥ अन्तर्द्वीपं स्थलं वा निम्नावरुद्धमौदकं प्रस्तरं गुहां वा पार्वतं निरुदकस्तम्भमिरिणं वा धान्वनं खञ्जनोदकं स्तम्भगहनं वा वनदुर्गम् ॥२॥

राजा को अपने देश के चारों ओर युद्ध के उपयोगी दैव कृत पर्वत आदि विकट स्थानों को ही दुर्ग के रूप में काम में लाना चाहिए । किसी स्वाभाविक जल से घिरे हुए द्वीप या खाई आदि गहरे खोदकर जल भरे हुए स्थानों से घिरे हुए स्थल दो प्रकार के औदक दुर्ग माने गए हैं । बड़े २ पत्थरों से बना हुआ या कन्दराओं से व्याप्त दुर्ग पर्वत दुर्ग होता है । जल और घास आदि से रहित या ऊपर प्रदेश में बना हुआ दुर्ग धान्वन

दुर्ग होता है और चारों और दलदल से घिरा हुआ या काँटेदार झाड़ियों से व्याप्त दुर्ग वन दुर्ग कहाता है ॥१-२॥

तेषां नदीपर्वतदुर्गं जनपदरक्षस्थानं धान्नवनवनदुर्गमटवीस्थानम् आपन्नपसारो वा ॥ ३ ॥ जनपदमध्ये समुदयस्थानं स्थानीयं निदेशयेत् ॥ ४ ॥

इन दुर्गों में नदी दुर्ग और पर्वत दुर्ग देश की रक्षा के कारण होते हैं। धान्न दुर्ग और वन दुर्ग वन में बनाये जाते हैं, इनमें राजा आपत्ति के समय भाग कर अपनी रक्षा कर सकता है। देश के मध्य में धनवृद्धि के केन्द्र बड़े २ नगरों को राजा बसावे ॥

वास्तुकप्रशस्ते देशे नदीसङ्गमे हृदस्य वाविशोपस्याङ्के सरसस्तटाकस्य वा वृत्तं दीर्घं चतुरश्रं वा वास्तुकवशेन प्रदक्षिणोदकं पर्यपुटभेदनमंसवारिपथाम्ब्यामुपेतम् ॥५॥

भवन निर्माण कला जानने वाले विद्वान् जिस स्थान को श्रेष्ठ बतावे-उसपर नगर बसाने चाहिए। नदी के तट, नहीं सूखने वाले हृद के समीप, सरोवर या तालाब के किनारे पर वृत्त (गोल) दीर्घ या चोकोर नगर बसाने उचित है। वातु विद्या के ढंग पर उन नगरों में दायीं ओर से नहरें निकलवा देनी चाहिए। इधर उधर उत्पन्न होने वाली वस्तुओं के विक्रय के उपयोगी और जल तथा स्थल मार्ग से सुसम्पन्न नगर बनवाने योग्य होते हैं ॥

तस्य परिखास्तिस्रो दण्डान्तराः कारयेत् ॥ ६ ॥ चतुर्दशं द्वादशं दशेति दण्डान्विस्तीर्णाः विस्तारादवगाधाः पादोनमर्थं वा त्रिभागमूला मूले चतुरथाः पाषाणेऽपहिताः पाषाणेष्टकावद्धपार्श्वा वा तोयान्तिकीरागन्तुतोयपूर्णा वा रापरिवाहाः पद्मग्राहवतीश्च ॥ ७ ॥

इन नगरों के चारों ओर चार २ हाथ की दूरी पर तीन खाई खुदवा देवे जो क्रमशः छप्पन, अड़तालीस, और चालीस हाथ चौड़ी होनी चाहिए। इसी विस्तार से आधी या तीन भाग या एक भाग न्यून ये खाइयां गहरी बनवाई जावें। इनकी तलहटी पत्थर से साफ बनी हुई होवे, जिसमें पत्थर जड़े हुए होने चाहियें। पत्थर या ईंटों से उसकी दीवार बनी रहे, जिनमें वर्षा का या नहर का पानी भरा रहे। इनमें से जल के निकलने की नहरें भी बनवानी चाहियें। इन खाइयों में सुन्दर २ कमल और भीषण मकर रहें-तो भी बड़ी अच्छी बात है ॥६-७॥

चतुर्दण्डावकृष्टं परिखायाः षड्दण्डोच्छ्रितमवरुद्धं तद्विगुणविष्कम्भं खाताद्वयं कारयेत् ॥ ८ ॥ ऊर्ध्वचयं मञ्चपृष्ठं कुम्भकुक्षिकं वा हस्तिभिर्गोभिश्च क्षुरणं कण्टकिगुल्मविषवल्लीप्रतानवन्तं पांसुशेषेण वास्तुच्छिद्रं वा पूरयेत् ॥ ९ ॥

खाई से चार दण्ड (सोलह हाथ) की दूरी पर छः दण्ड (चौबीस हाथ) ऊंची सत्र ओर से दृढ़, ऊपर की चौड़ाई से दुगुना नीव में आकार वाला बड़ा प्राकार (सफ़ील) बनवाया जावे। ऊर्ध्वचय, मञ्चपृष्ठ और कुम्भकुक्षिक-इस प्रकार से तीन तरह का बड़ा प्राकार होता है। जो अत्यन्त ऊंचा प्राकार होता है वह ऊर्ध्वचय, जो मध्यम ऊंचा होता है, वह मञ्चपृष्ठ, और जो अत्यन्त पुष्ट बनाया जाता है, वह कुम्भकुक्षिक कहाता है। इन बड़े प्राकारों को बनाते समय हाथी, बैल आदि से अच्छी तरह खुदवावे। इसके चारों ओर कांटेदार विपैली भाड़ी लगी होनी चाहिए। बची हुई मिट्टी से जो प्राकार में छिद्र हों-उन्हें भरवा देवे ॥८-६॥

वप्रस्योपरि प्राकारं विष्कम्भद्विगुणोत्सेधमैष्टकं द्वादशहस्तादूर्ध्वमोजं युग्मं वा आचतुर्विंशतिहस्तादिति कारयेत् ॥ १० ॥

इस विशाल प्राकार पर एक छोटा ईंटों का प्राकार (भित्ति) बनवावे। जो अपनी चौड़ाई से दुगुना ऊंचा होना चाहिए। यह बाहर हाथ से लेकर चौबीस हाथ सम-विषम किसी भी संख्या में बनवालेवे अर्थात् तेरह चौदह हाथ आदि की संख्या में चौबीस हाथ तक बनवाया जा सकता है ॥१०॥

रथचर्यासंचारं तालमूलमुरजकैः कपिशिर्षिकैश्चाचिताग्रं पृथुशिलासहितं वा शैलं कारयेत् ॥ ११ ॥

इस प्राकार का ऊपर इतना आकार हो कि उसपर एक रथ सीधी तरह चल सके। इसकी नीव तालवृक्ष की ऊंचाई के सदृश गहरी होवे मृदङ्ग (तबले) और कपि के शर के तुल्य छोटे बड़े पत्थरों से इसका अग्रभाग बनवाना उचित है तथा मोटी २ शिलाओं से उसका उर्ध्व भाग पर्वताकार में बनादे ॥११॥

न त्वेव काष्ठमयम् ॥ १२ ॥ अग्निरवहितो हि तस्मिन्वसति ॥ १३ ॥
विष्कम्भचतुरश्रमट्टालकमुत्सेधसमावक्षेपसोपानं कारयेत् त्रिंशद्दण्डान्तरं च ॥१४॥

इस प्राकार में लकड़ी का कहीं भी उपयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि काष्ठ में सर्वदा अग्नि सन्निहित होता है। इस प्राकार की चौड़ाई के समान ही उसपर चौकोर एक अट्टालिका बनवाई जावे, जिसमें ऊपर तक पहुंचने वाली सीढ़ी होवे। इन अट्टालिकाओं का तीस दण्ड (एक सौ बीस हाथ) का अन्तर (फासला) होना चाहिए ॥१२-१४॥

द्वयोरट्टालकयोर्मध्ये सहस्र्यद्वितलां द्वयर्धायामां प्रतोलीं कारयेत् ॥१५॥
अट्टालकप्रतोलीमध्ये त्रिधानुकाधिष्ठानं सपिधानच्छिद्रफलकसंहतमितीन्द्रकोशं कारयेत् ॥ १६ ॥

दो अट्टालिकाओं के मध्य में अच्छे २ कमरों से युक्त, दो तल (मंजिल) की दाईं याम चौड़ी प्रतोली (स्थान विशेष) बनवावे । अट्टालिका और प्रतोली के मध्य में तीन धनुष चौड़ा एक इन्द्रकोश बनवावे, जिसमें एक ढंका हुआ तख्ता लगा रहे और इसमें भी अनेक छिद्र होने चाहिए ॥१५-१६॥

अन्तरेषु द्विहस्तविष्कम्भं पार्श्वे चतुर्गुणायाममनुप्राकारमष्टहस्तायतंदेवपथं कारयेत् ॥१७॥ दण्डान्तरा द्विदण्डान्तरा वा चार्याः कारयेत् ॥ १८ ॥ अग्राह्ये देशे प्रधावितिकां निष्कुहद्वारं च ॥ १९ ॥

इनके बीच में दो हाथ चौड़ा और प्राकार के समीप आठ हाथ चौड़ा और आठ हाथ ही लम्बा एक गुप्त मार्ग बनवाया जावे । एक दण्ड (चार हाथ) या दो दण्ड (आठ हाथ) के अन्तर पर उतरने चढ़ने की सीढ़ी सी बनी होवे । जिस स्थान पर शत्रु के बाण (गोली) न पहुंच सके वहां प्रधावितिका (छुपने का स्थान) बनवावे और शत्रु के देखने को निष्कुह-द्वार (छिद्र) भी रखे ॥१७-१९॥

वहिर्जानुभञ्जनीं त्रिशूलप्रकरकूटावपातकण्टकप्रतिसराहिपृष्ठतालपत्रशृङ्गाटक-
श्वदंष्ट्राग्लोपस्कन्दनपादुकाम्बरीषोदपानकैः छन्नपथं कारयेत् ॥ २० ॥

खाई से बाहर शत्रु के घोड़ों को तोड़ देने वाले खूंटे, त्रिशूलों का समूह, ऊंचे नीचे विषम प्रदेश, लोह कण्टकों का ढेर, सर्प की अस्थियां, तालपत्र के समान लोह जाल, तीन २ नोक वाले लोहे के कांटे, कुत्ते के दांत, बड़े २ लट्टे, दल दल से भरे पैर फंसा देने वाले गड्ढे, आग और दूषित जल से भरे हुए प्रत्येक २ स्थानों से इस दुर्ग के मार्ग को गुप्त रूप से ढंक देवे ॥२०॥

प्राकारमुभयतो मण्डपकमध्यर्धदण्डं कृत्वा प्रतोलीपटतलान्तरं द्वारं निवेशयेत् ॥ २१ ॥ पञ्चदण्डादेकोत्तरवृद्ध्याष्टदण्डादिति चतुरश्रं द्विदण्डं वा षड्-
भागमाय मादधिकमष्टभागं वा ॥ २२ ॥

दुर्ग के प्राकार के दोनों ओर के डेढ़ दण्ड (छः हाथ) का एक मण्डप सा बनवाया जावे । उसमें प्रतोली स्थान के सदृश छः खम्भों का एक द्वार बनवावे । द्वार का विस्तार पांच दण्ड (बीस हाथ) से लेकर छः, सात और आठ दण्ड (चौबीस, अट्ठाईस और बत्तीस हाथ) तक का चौकोर द्वार बनवावे । दो दण्ड अर्थात् आठ हाथ का भी कोई २ विद्वान् द्वार बनवाने का मत प्रवृत्त करते अथवा चौड़ाई से छः गुना या अठगुना ऊंचा द्वार बनाया जा सकता है ॥ २२ ॥

पञ्चदशहस्तादेकोत्तरमष्टादशहस्तादिति तलोत्सेधः ॥ २३ ॥ स्तम्भस्य
परिक्षेपाः षडायामा द्विगुणो निखातः चूलिकायाश्चतुर्भागः ॥ २४ ॥ आदित-
लस्य पञ्च भागाः शाला वापी सीमागृहं च ॥ २५ ॥ दशभागिकौ समत्तवारणौ
द्वौ प्रतिमञ्चौ अन्तरमाणि ॥ २६ ॥ हर्म्यं च समुच्छ्रयादर्धतलं स्थूणावबन्धश्च ॥ २७ ॥

पन्द्रह हाथ से लेकर सोलह, सत्रह या अठारह हाथ तक द्वार खम्भे या द्वार की
ऊंचाई कर देनी चाहिए। ४ खम्भों की मोटाई छः आयाम अर्थात् ऊंचाई से छठाभाग
होजानी चाहिए। मोटाई से दुगुना भाग खम्भों का भूमि नीचे गाड़ दिया जावे। खम्भे की
चूलिका (ऊपरी भाग) भी मोटाई से चौथाई होना चाहिए। नीचे की तल (मंजिल) के पांच
भागों में बावड़ी, शाला, और सीमाग्रह (छोटे २ ग्रह) बनवावे इसी के दशवें भाग में दो
पत्थर के मत्तहाथी और सामने ही दो मञ्च (बुर्जी) रचे। ऊपर के कमरों की ऊंचाई नीचे
से आधी होनी चाहिए। और उसमें स्थान २ पर खम्भे भी लगा देवे ॥ २३-२७ ॥

आर्धवास्तुकमुत्तमागारं त्रिभागान्तरं वा ॥ २८ ॥ इष्टकावबन्धपार्वम्
॥ २९ ॥ वामतः प्रदक्षिणसोपानं गूढभित्तिसोपानमितरतः ॥ ३० ॥

ऊपर के भाग (मंजिल या तल) की ऊंचाई अर्ध वास्तुक अर्थात् डेढ़ दण्ड
(छः हाथ) तक होनी चाहिए या द्वार के परिमाण के अनुसार तृतीयांश ऊंचाई ऊपर
के तल की कर देवे। बायीं ओर से दायीं ओर जाने वाली एक सीढ़ी चढ़ाई गई हो और
दूसरी ओर गुप्त सोपान (जीना) बनवाना उचित है ॥ २८-३० ॥

द्विहस्तं तोरणशिरः ॥ ३१ ॥ त्रिपञ्चभागिकौ द्वौ कवाटयोगौ ॥ ३२ ॥
द्वौ द्वौ परिघौ ॥ ३३ ॥

द्वार का शिर (बुर्जी) दो हाथ की बनवावे। तीन या पांच भाग में दोनों किवाड़
आजाने चाहिए। किवाड़ों के पीछे दो २ अर्गला लगवा देवे ॥ ३१-३३ ॥

अरत्तिरिन्द्रकीलः ॥ ३४ ॥ पञ्चहस्तमणिद्वारम् ॥ ३५ ॥ चत्वारो हस्ति-
परिघा ॥ ३६ ॥

एक हाथ की भीतर इन्द्रकील (चटखनी) किवाड़ों को बन्द करने की होनी चाहिए।
पांच हाथ का मणिद्वार (किवाड़ों की खिड़की) बनावे। एक २ हाथ की मुटाई के चारों
द्वारों के परिघ (अर्गला) बनवाये जावे ॥ ३४-३६ ॥

निवेशार्धं हस्तिनखः मुखसमः संक्रमोऽसंहायो वा भूमिमयो वा निरु-
दके ॥ ३७ ॥ प्राकारसमं मुखमवस्थाप्य त्रिभागगोधामुखंगोपुरं कारयेत् ॥ ३८ ॥

द्वार की ऊँचाई से आधे परिमाण का द्वार के समीप ऊँचा नीचा मिट्टी का टीला (ढेर) होना चाहिए। दुर्ग में संचरण के स्थान का आकार द्वार के समान ही दृढ़ होना चाहिए। जिसे कोई तोड़ न सके। जल रहित प्रदेश में वह स्थान केवल मिट्टी का ही बनवाया जावे। प्राकार के तुल्य ही मुख बनवाकर तीन भाग में गोधा जन्तु के मुख के आकार का द्वार बनवावे ॥३७-३८॥

प्राकारमध्ये कृत्वा चार्षीं पुष्करिणीद्वारं चतुःशालामध्यर्धान्तराणीकं
कुमारीपुरं मुण्डहर्म्यं द्वितलं मुण्डकद्वारं भूमिद्रव्यवशेन वा ॥३९॥
त्रिभागाधिकायामा भाण्डवाहिनीः कुल्याः कारयेत् ॥ ४० ॥

प्राकार के मध्य में ही बावड़ी बनवा कर उसका द्वार बनवावे। इसी का नाम पुष्करिणी द्वार है। चार शालाओं के समीप इस द्वार से दून्धोड़ा एक द्वार बनवाया जावे, जिसका नाम कुमारी पुर है। मुण्डहर्म्य दो तल का बने और मुण्डक द्वार भूमि के प्रमाण के अनुसार देख कर बनवाले। जिस भवन के ऊपर कंगूरे आदि न लगे हो-वह मुण्डहर्म्य कहा जाता है। तीन भाग में लम्बी चौड़ी वस्तु ले जाने की एक कुल्या (नहर या सुरङ्ग) बनवानी चाहिए ॥३९-४०॥

तासु पाषाणकुदालकुठारीकाण्डकल्पनाः ।

मुशुण्डीमुद्रा दण्डचक्रयन्त्रशतघ्नयः ॥ ४१ ॥

कार्याः कामारिकाः शूला वेधनाग्राश्च वेणवः ।

उष्ट्रग्रीव्यो ऽग्निसंयोगाः कुप्पकप्पे च यो विधिः ॥४२॥

इस मार्ग से दुर्ग के भीतर पत्थर, कुदाल, कुल्हाड़ी, चाण, कल्पना, (हाथी आदि के सामान) वन्दूक या कीलों की गदा मुद्गर, लाठी, चक्र, यन्त्र, शतघ्नी (तोप) लुहारों के कार्य में आने वाला सामान, शूल, तीक्ष्ण नोक के भाले, बांस, ऊंट की घीवा के आकार के लम्बे २ शस्त्र, अग्नि से चलने वाले शस्त्र तथा अन्य जो युद्धोपयोगी सामान हैं-वह इकट्ठा करे ॥४१-४२॥

इति श्री कौटलीयार्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचार नामक अधिकरण में दुर्ग

विधान का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे दुर्गविधानं तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥

आदितश्चतुर्विंशः ॥ २४ ॥



चौथा अध्याय

२२वां प्रकरण

दुर्गनिवेश ।

दुर्ग के भीतर राजमार्ग, राज भवन और अमात्यों के भवन किस प्रकार बनाये जावे-इसे दुर्ग निवेश कहते हैं—

त्रयः प्राचीना राजमार्गास्त्रय उदीचीना इति वास्तुविभागः ॥ १ ॥

स द्वादशद्वारो युक्तोदकभूमिच्छन्नपथः ॥ २ ॥ चतुर्दण्डान्तरा रथ्याः ॥ ३ ॥

अब इसी विषय का निरूपण किया जावेगा । इस दुर्ग में तीन पूर्व से पश्चिम और तीन उत्तर से दक्षिण के राज मार्ग होने चाहिए-यह वास्तु विद्या (भवन निर्माणकला) के अनुसार विभाग है । उसमें जो बारह द्वार बताये गए हैं अर्थात् चारों ओर तीन २ द्वार कहे हैं । ठीक जल प्रबन्ध से युक्त, भूमिच्छन्न (सुरङ्ग) मार्ग भी अवश्य होने चाहिए । वह मार्ग कम से कम आठ हाथ चौड़े हों ॥१-३॥

राजमार्गद्रोणमुखस्थानीयराष्ट्रविवीतपथाः संयानीयव्यूहमशानग्रामपथा-
श्राष्टदण्डाः ॥ ४ ॥ चतुर्दण्डः सेतुवनपथः ॥ ५ ॥ द्विदण्डो हस्तिक्षेत्रपथः ॥ ६ ॥
पञ्चारत्नयो रथपथश्चत्वारः पशुपथः ॥ ७ ॥ द्वौ क्षुद्रपशुमनुष्यपथः ॥ ८ ॥

राजमार्ग (सड़कें) द्रोण मुख (चार सौ गावों के मध्य का स्थान) स्थानीय (आठ सौ गावों के मध्य का स्थान) को जाने वाली और राष्ट्र में घूमने वाली सड़कें, पशुओं के स्थान और व्यापारी मण्डियों के गमन के मार्ग ये सारे आठ दण्ड अर्थात् वत्तीस हाथ तक चौड़े होने चाहिए । सेतुवन का मार्ग, चार दण्ड (सोलह हाथ) हस्ति क्षेत्र का मार्ग आठ हाथ, रथ का मार्ग, पांच अरत्ति (हाथ) और पशुओं के चरने जाने का मार्ग चार हाथ का बनाया जावे । दो हाथ चौड़ा बकरी आदि पशु और मनुष्यों के गमन की पगडण्डी बनायी जावे ॥४-८॥

प्रवीरे वास्तुनि राजनिवेशश्चातुर्वर्ग्यसमाजीवे ॥ ९ ॥ वास्तुहृदयादु-
त्तरे नवभागे यथोक्तविधानमन्तःपुरं प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा कारयेत् ॥ १० ॥

जिस स्थान में चारों वर्णों के रहने के सुभीते का धीरता के योग्य भूमिभाग हो उसीमें राज भवन बनवाने को दुर्ग बनवाया जावे । इस सुन्दर भूभाग के मध्य से उत्तर

की ओर नवें भाग में विधि पूर्वक अन्तःपुरकी रचना करवाई जावे । अन्तःपुर (रतिवास) का द्वार पूर्व या उत्तर को होना चाहिए ॥ ६-१० ॥

तस्य पूर्वोत्तरं भागमाचार्यपुरोहितेज्यातोयस्थानं मन्त्रिणश्चावसेयुः ॥ ११ ॥ पूर्वदक्षिणं भागं महानसं हस्तिशाला कोष्ठागारं च ॥ १२ ॥

इस राज-भवन के पूर्व और उत्तर के भाग में आचार्य, पुरोहित के भवन, यज्ञशाला जलस्थान और मन्त्रियों के भवन बनवाये जावें । इसी प्रकार पूर्व और दक्षिण के भाग में रसोई घर, हस्तिशाला, और कोष्ठागार (भण्डार) बनवावे ॥ ११-१२ ॥

ततः परं गन्धमाल्यधान्यरसपण्याः प्रधानकारवः क्षत्रियाश्च पूर्वा दिश-मधिवसेयुः ॥ १३ ॥ दक्षिणपूर्वभागं भाण्डागारमक्षपटलं कर्मनिपद्याश्च ॥ १४ ॥ दक्षिणपश्चिमं भागं कुप्यगृहमायुधागारं च ॥ १५ ॥

इसके आगे गन्ध, माला, अन्न, घृत, दुग्ध आदि की दुकानें बनवावे । प्रधान = शिल्पी और वीर क्षत्रियों के पूर्व की ओर निवास स्थान बनवा देने चाहिए । दक्षिण और पूर्व के भाग में वस्तुओं का भण्डार, आयव्यय की गणना का कार्यालय, तथा नुवर्ण चांदी आदि की वस्तुओं का भण्डार बनवाया जावे । दक्षिण पश्चिम के भाग में लोह आदि धातु और शस्त्रागार बनवाया जावे ॥ १३-१५ ॥

ततः परं नगरधान्यव्यावहारिककामान्तिकवलाव्यक्षाः पक्वानसुरामांसपण्याः रूपार्जीवास्तालापचारा वैश्याश्च दक्षिणां दिशमधिवसेयुः ॥ १६ ॥

इसके पीछे नगर के धान्य आदि के व्यापारी, आकार (खान) की विद्या के जानने वाले, सेनापति आदि यथा योग्य अधिकारीगण, बसाने उचित हैं । फिर हलवाई की दुकानें, सुरा (शराब) और मांस की दुकानें हों । वैश्या, गाने वाले और वैश्य लोग इस नगर के दुर्ग के दक्षिण में बसाये जावे ॥ १६ ॥

पश्चिमदक्षिणं भागं खरोष्ट्रगुप्तिस्थानं कर्मगृहं च ॥ १७ ॥ पश्चिमोत्तरं भागं यानरथशालाः ॥ १८ ॥

पश्चिम दक्षिण के भाग में गधे ऊंट आदि के रजागृह तंबूले आदि और उनके सिखाने के गृह बनवाये जावें । पश्चिमोत्तर भाग में पालकी और रथ आदि के स्थान बनवाये जावें ॥ १७-१८ ॥

ततः परमूर्णास्त्रवेणुचर्मवर्मशस्त्रावरणकारवः शूद्राश्च पश्चिमां दिशमधिवसेयुः ॥ १९ ॥ उत्तरपश्चिमं भागं पण्यभैषज्यगृहम् ॥ २० ॥ उत्तरपूर्व भागं कोशो गवाश्च ॥ २१ ॥

इसके बाद ऊन, सूत, बांस, चमड़ा, कच, शस्त्र, और हाथी आदि की झुले बनाने वाले कारीगरों के घर हों। इसी पश्चिम की ओर अन्य शूद्र भी अपना २ निवास स्थान निश्चित करे। उत्तर पश्चिम के भाग में राजकोय बेचने खरीदने का बाजार और औषधालय होने चाहिए। इसी तरह उत्तर पूर्व के भाग में कोश, और गौअश्वों की शाला का निर्माण कराया जावे ॥ १६-२१ ॥

ततः परं नगरराजदेवतालोहमणिकारवो ब्राह्मणाश्चोत्तरां दिशमधिबसेयुः ॥ २२ ॥ वास्तुच्छिद्रानुलासेषु श्रेणीप्रवहणिकनिकाया आवसेयुः ॥ २३ ॥

इसके पीछे नगर और राजकुल के देवमन्दिर, लुहार मनिहार आदि शिल्पी और ब्राह्मण उत्तर दिशा में बसे। इस नगर की खाली भूमि में धोबी, जुलाहे, डोली ले जाने वाले आदि का समूह वास करे ॥ २२-२३ ॥

अपराजिताप्रतिहतजयन्तवैजयन्तकोष्ठाकान् शिववैश्रवणाश्विभ्रीमदिरागृहं च पुरमध्ये कारयेत् ॥ २४ ॥ कोष्ठकालयेषु यथोद्देशं वास्तुदेवताः स्थापयेत् ॥ २५ ॥

दुर्गा, विष्णु, जयन्त, वैजयन्त (इन्द्र) शिव, कुबेर सावरुण, अश्विनीकुमार, लक्ष्मी और मदिरा देवी के स्थान नगर के मध्य में बनवाये इस दुर्गसहित नगर में भिन्न २ कोष्ठों में यथोचित वास्तु देवता की स्थापना करे ॥ २४-२५ ॥

ब्राह्मैन्द्रयाम्यसैनोपत्यानि द्वाराणि ॥ २६ ॥ बहिः परिखायाः धनुःशताप कृष्ठाश्चैत्यपुराणस्थानवनसेतुवन्धाः कार्याः, यथादिशं च दिग्देवताः ॥ २७ ॥

प्रत्येक द्वार पर उसके देवता की स्थापना करे। उत्तर का ब्रह्मा, पूर्व का इन्द्र, दक्षिण का यम और पश्चिम का सेनापति (कुमार) देवता है। परिखा से बाहर सौ धनुष (दो सौ गजके लग भग) की दूरी पर चैत्य (बगीचा) पुण्य स्थान, उपवन, सेतु वन्ध आदि स्थानों की रचना और यथा स्थान दिग्देवताओं की स्थापना की जावे ॥ २६-२७ ॥

उत्तरः पूर्वो वा श्मशानवाटः ॥ २८ ॥ दक्षिणेन वर्णोत्तराणाम् ॥ २९ ॥ तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३० ॥

नगर के उत्तर और पूर्व की ओर श्मशान का स्थान हो। दक्षिण दिशा में छोटे वर्णों का श्मशान बनाया जावे। जो श्मशानों को उलट पलट कर अपने मृतकों को जलावे उसे राजा प्रथम साहस दण्ड (नियत जुर्माने का दण्ड) देवे ॥ २८-३० ॥

पापण्डचण्डालानां श्मशानान्ते वासः ॥ ३१ ॥ कर्मान्तक्षेत्रवशेन वा कुटुम्बिनां सीमानं स्थापयेत् ॥ ३२ ॥ तेषु पुष्पफलवाटपण्डकेदारान्धान्यपण्य-निचयांश्चानुज्ञाताः कुर्युः, दशकुलीवाटं कूपस्थानम् ॥ ३३ ॥

पापंडी (कापालिक आदि) या चंडालों का निवास स्थान श्मशान के समीप नियत करे। प्रत्येक शिल्पी के कारखाने आदि की भूमि की सीमा का उसके कार्य को देख कर-कर देना चाहिये। यदि किसी के पास भूमि अधिक हो तो वह आधा लेकर उस में पुष्प फल, कमल, शाक आदि की क्यारी, धान्य या अन्य बेचने की वस्तुओं की बगीची बना सकता है। बीस हल से जोती जाने योग्य भूमि पर एक २ कुँआ बनवा देना चाहिए ॥३१-३३॥

सर्पिस्नेहधान्यक्षारलवणभैषज्यशुष्कशाक्यवसवत्पूरतृणकाष्ठ लोहचर्मा-
ङ्गारस्नायुविपत्रिपाणवेणुवल्कलसारदारुप्रहरणाश्मनिचयाननेकवर्षोपभोगसहान्का-
स्येत् ॥ ३४ ॥ नवेनानव शोधयेत् ॥ ३५ ॥

घी, तेल, अन्न, क्षार, नमक, औषध, सूखे शाक, चारा, सूखा मांस, तृण, काष्ठ, लोह, चमड़ा, कोयला, स्नायु, (तांत) विप, सींग, बांस, वृक्ष छाल, उत्तम लकड़ी, शल, पत्थरों का ढेर इतना इकट्ठा कर लिया जावे, कि कई वर्ष तक समय पर काम दे सके। जब वस्तु बिगड़ जावे-तो उसके स्थान पर नई लेली जावे ॥३४-३५॥

हस्त्यश्वरथपादातमनेकमुख्यमवस्थापयेत् ॥ ३६ ॥ अनेकमुख्यं हि परस्-
परमयात्परोपजापं नोपैतीति ॥ ३७ ॥ एतेनान्तपालदुर्गसंस्कारा व्याख्याताः
॥ ३८ ॥

हाथी, अश्व और पैदल सेना को अनेक अधिकारियों के अधीन मुख्य स्थानों पर रखे। अनेक अध्यक्षों के अधीन होने से परस्पर भय के कारण वे एक दूसरे से तोड़े फोड़े नहीं जा सकते हैं। इसी तरह सीमा पालक और दुर्गपाल भी अनेक होने चाहिए-जिससे शत्रु द्वारा बश में नहीं लाये जा सके ॥३६-३८॥

न च बाहिरिकान्कुर्यात्पुरराष्ट्रोपघातकान् ।

क्षिपेज्जनपदस्यान्ते सर्वान्वा दापयेत्करान् ॥ ३९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे दुर्गनिवेशश्चतुर्थो ऽध्यायः ॥ ४ ॥

आदितः पञ्चविंशः ॥ २५ ॥

जो बाहर के नट नर्तक आदि धूर्त मनुष्य राष्ट्र के घातक हैं, उनको राजा अपने नगर में न बसने देवे। यदि बसाने ही पड़े-तो उनको अपने देश की सीमा पर रखे और उन पर कोई कर इस प्रकार का लगादे, जिससे वे शत्रु के कार्य को न कर सकें ॥३९॥

इति श्रीकौटिलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार नामक अधिकरण में दुर्ग निवेश का चौथा अध्याय समाप्त हुआ ।



पांचवां अध्याय

२३वां प्रकरण.

सन्निधाताका निचयकर्म ।

राजकीय वस्तुओं के इकट्ठे करने वाले अध्यक्ष का क्या कर्तव्य है-अब इसका वर्णन चलता है—

सन्निधाता कोशगृहं पण्यगृहं कोष्ठागारं कुप्यगृहमायुधागारं वन्धना-
गारं च कारयेत् ॥१॥ चतुरश्रां वापीमनुदकोपस्नेर्हाखानयित्वा पृथुशिलाभिरुभयतः
पार्श्वं मूलं च प्रचित्य सारदारुपञ्जरं भूमिसमं त्रितलमनेकविधानं कुट्टिमदेशस्था
नतलमेकद्वारं यन्त्रयुक्तसोपानं देवतापिधानं भूमिगृहं कारयेत् ॥ २ ॥

सन्निधाता नामक अध्यक्ष (कोशाध्यक्ष या भांडाराधिपति) कोशगृह पण्यगृह (राजकीय विक्रीय वस्तुगृह) कोष्ठागार (अन्नवृतादि का भाण्डार) कुप्यगृह (धातुशाला), शस्त्रशाला, और वन्धनागार (जेलखाना) का निर्माण करवावे। इसी तरह जल और पानी की सील से ऊपर २ एक चौकोर वादड़ी सी खुदवावे, उसको मोटी २ शिलाओं से चारों ओर से चुनवाकर उसके पार्श्व (वगल) और मूल (तल भाग) को भी दृढ़ पत्थरों से ठीक करके और उसे भी दृढ़ (मजबूत) लकड़ियों से पटवाकर तीन तले की अनेक ढंग से समान भूमि करवाकर सुन्दर बनवा लेवे। इसमें एक द्वार हो और यन्त्र की सीढ़ी लगी हों। इसकी रचनादेव मन्दिर सी हो जिससे यह गुप्त रह सके। इस प्रकार का एक भूमिगृह (तहखाना) बनना चाहिए ॥१-२॥

तस्योपर्युभयतोनिपेधं सप्रग्रीवमैष्टकं भाण्डवाहिनीपरिक्षिप्तं कोशगृहं कार-
येत् ॥ ३ ॥ प्रासादं वा जनपदान्ते ध्रुवनिधिमापदर्थमभित्यक्तैः पुरुषैः कारयेत्
॥ ४ ॥

इस ऊपर के भाग में दोनों ओर से रूखा हुआ, ईंट के प्रग्रीव (वरामदे) से युक्त, अनेक भाण्डागारों से सुसम्पन्न, कोशगृह बनवाया जावे। इस गृह और एक ऐसे ही महल की रचना अपने राष्ट्र के मध्य में और करवावे, जिसमें उत्तम २ रत्नादि का संग्रह हो। यह भवन आपत्ति से रक्षा के निमित्त बनवाया जाता है। इस गुप्त भवन को उन अपराधियों से बनवावे, जिनको थोड़े दिन में ही फांसी देनी हो ॥३-४॥

पक्वेष्टकास्तम्भं चतुःशालमेकद्वारमनेकस्थानतलं विवृतस्तम्भापसारमुभयतः
पण्यगृहं कोष्ठागारं च दीर्घं बहुलशालं कक्ष्यावृतं कुड्यमन्तः

कुप्यगृहं तदेव भूमिगृहयुक्तमायुधागारं पृथग्धर्मस्थीयं महामात्रीयं विभक्त-
स्त्रीपुरुषस्थानमपसारतः सुगुप्तकक्ष्यं बन्धनागारं कारयेत् ॥ ५ ॥

पक्की २ ईंटों के खम्भों से युक्त, चारों ओर शालाओं से सुसम्पन्न, एक द्वार वाला, अनेक तलों (मंजिलों) से सुशोभित, घेरे के समय निकलने की सुरङ्ग से सुसज्जित पण्यगृह और कोष्ठागार बनाया जावे ! और बड़ी २ दीर्घशाला भीतों वाली अनेक कोठरियों से घिरा हुआ कुप्यगृह (धातुगृह) हो । इसी तरह भूमिगृह (तहखाने) में आयुधागार [शस्त्रशाला] बना हुआ होना चाहिए । बन्धनागार में धर्मस्थ (न्यायाध्यक्ष) या महामात्र (बड़े अफसर) से सजा पाये पुरुषों का पृथक् २ स्थान हो । उसमें स्त्री और हुए पुरुषों का स्थान भी भिन्न होना चाहिए । उसमें से भी निकलने को गुप्त मार्ग हो-ऐसा बन्धनागार (कैदखाना) बनवाना उचित है ॥ ५ ॥

सर्वेषां शालाखातोदपानवच्च स्नानगृहाग्निविपत्राणमार्जारं नकुलारक्षाः
स्वदैवपूजनयुक्ताः कारयेत् ॥ ६ ॥

इन सब स्थानों को शाला, खात (गड्ढे) और कुआँ की भांति स्नानगृह से युक्त, अग्नि, विष से बचने के साधनों से सम्पन्न, मार्जार (बिल्ली) नाले जैसे जन्तुओं सहित, अपने २ इष्टदेवों के पूजनों से सुशोभित, बनवाना चाहिए ॥ ६ ॥

काष्ठागारे वर्षमानमरत्निमुखं कुण्डं स्थापयेत् ॥ ७ ॥ तज्जातकरणाधिष्ठितः
पुराणं नवं च रत्नं सारं फल्गुकुप्यं वा प्रतिगृह्णीयात् ॥ ८ ॥

कोष्ठागार में वर्षा के नापने का एक हाथ के मुखवाला एक कुण्ड बनवाया जावे । इस कोष्ठागार का अधिपति इस विषय के छोटे-अध्यक्षों के साथ, पुरानी, नयी, वस्तु और रत्नों की अच्छी तरह पड़ताल करवाकर तथा उत्तम २ काष्ठ वस्त्र, चमड़ा आदि वस्तुओं का वहाँ संग्रह करे ॥ ७-८ ॥

तत्र रत्नोपधावुत्तमो दण्डः कर्तुः कारयितुश्च ॥ ९ ॥ सारोपधो मध्यमः
॥ १० ॥ फल्गुकुप्योपधौ तच्च तावच्च दण्डः ॥ ११ ॥

जो पुरुष, इस कोशगृह में नकली रत्नों को छल से रख देवे या सहायता करे-तो उस रखने रखवाने वाले को राजा अच्छी तरह दण्ड देवे । यदि चंदन आदि लकड़ियों के निमित्त छल किया गया हो-तो उसे मध्यम दण्ड देना उचित है । जो पुरुष, वस्त्र और चमड़े आदि में छल करे-तो उसे भी उतना ही दण्ड देवे ॥ ९-११ ॥

रूपदर्शकविशुद्धं हिरण्यं प्रतिगृह्णीयात् ॥ १२ ॥ अशुद्धं छेदयेत् ॥ १३ ॥
आहर्तुः पूर्वः साहसदण्डः ॥ १४ ॥ शुद्धं पूर्णमभिनवं च धान्यं प्रतिगृह्णीयात्
॥ १५ ॥ विपर्यये मूलद्विगुणो दण्डः ॥ १६ ॥

सुवर्ण आदि परीक्षक अध्यात्तों के सहित सुवर्ण के सिक्कों का संग्रह किया जावे । जो सिक्का अशुद्ध (बनावटी) हो-उसे काट दे । इस प्रकार बनावटी सिक्के बनाने वाले पुरुष को उत्तम दण्ड का विधान है । इसी तरह शुद्ध और नये धान्य का संग्रह किया जावे जो इसमें गड़ बढ़ी करदे-उस पर उसके मूल्य से द्विगुण दण्ड (जुरमाना) करे ॥१२-१६॥

तेन पर्यं कुप्यमायुधं च व्याख्यातम् ॥ १७ ॥ सर्वाधिकरणेषु युक्तोपयुक्ततत्पुरुषाणां पणादिचतुष्पणाः परमपहारेषु पूर्वमध्यमोत्तमवधा दण्डाः ॥ १८ ॥

उपर्युक्त प्रकार से ही बेचने खरीदने की वस्तु, लकड़ी चमड़ा आदि सामान और शस्त्र आदि की व्यवस्था समझ लेनी चाहिए । इन सारे अधिकारों पर नियुक्त, पुरुष तथा उनके साथी छोटे अफसर और कर्मचारी इस ढंग की चोरी एक बार करे-तो उनको यथा योग्य धन दण्ड देना चाहिए-तथा इस पर भी वे न माने-तो उन पर उत्तम मध्यम और प्रथम दण्ड या मृत्यु दण्ड देना चाहिए ॥ १७-१८ ॥

कोशाधिष्ठितस्य कोशाच्छेदे घातः ॥ १९ ॥ तद्वैयावृत्यकाराणामर्धदण्डः ॥ २० ॥ परिभाषणमविज्ञाने ॥ २१ ॥

यदि कोशाध्यक्ष किसी ढंग से कोशका अपहरण करे-तो उसे प्राण दण्ड देना चाहिए इसके साथी पुरुषों को आधा दण्ड देना उचित है । यदि अज्ञान में कोशका अपहरण हुआ हो-तो उसको फटकार कर सावधान कर दिया जावे ॥ १९-२१ ॥

चोराणामभिप्रवर्षणे चित्रो घातः ॥ २२ ॥ तस्मादाप्तपुरुषाधिष्ठितः संनिधाता निचयाननुतिष्ठेत् ॥ २३ ॥

यदि चोर दीवार तोड़कर कोश धन का अपहरण करें-तो उन्हें कष्ट के साथ प्राण दण्ड देना चाहिए । इन सब बातों पर ध्यान देकर आप्त (श्रेष्ठ विश्वासी) पुरुषों के साथ संनिधाता (कोशाध्यक्ष) इस अपने भाण्डार को भरता रहे ॥२२-२३॥

वाह्यमाभ्यतरं चायं विद्याद्वर्षशतादपि ।

यथा पृष्ठो न सज्येत व्ययशेषं च दर्शयेत् ॥ २४ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे संनिधातृनिचयकर्म पञ्चमो ऽध्यायः ॥५॥

आदितः षड्विंशः ॥ २६ ॥

कोशाध्यक्ष, अपने कोश के बाहर और भीतरी [अपने देश और बाहर के देश] सौ वर्ष तक के आय व्यय को अच्छी तरह जानता रहे और जब कभी राजा पूछे-और वह उसे झूट यदि जिह्वा [जुबानी] न बता सके-तो आय व्यय की वही दिखाकर जो बचत हो-वह फौरन बता देनी चाहिए ॥२४॥

इति श्रीकौटिलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचार अधिकरण में कोशाध्यक्ष के
वस्तुओं के संग्रह का पांचवां अध्याय समाप्त हुआ ।



छठा अध्याय

२४वां प्रकरण

समाहर्तु—समुदय-ग्रस्थापनम् ।

राज्य की माल गुजारी वसूल करने वाले को संस्कृत में समाहर्ता कहते हैं अब उसके
कार्यों का वर्णन किया जाता है—

समाहर्ता दुर्गं राष्ट्रं खनिं सेतुं वनं व्रजं वणिक्पथं चावेक्षेत ॥ १ ॥
शुल्कं दण्डः पौतवं नागरिको लक्षणाध्यक्षो मुद्राध्यक्षः सुरा सूना सूत्रं
तैलं घृतं चारं सौवर्णिकः पण्यसंस्था वेश्या घृतं वास्तुकं कारुशिल्पिगणो देवता-
ध्यक्षो द्वारवाहिरिकादेयं च दुर्गम् ॥ २ ॥

समाहर्ता [कलक्टर] दुर्ग [किला] राष्ट्र, आकर [खान] सेतु [पुल] वन, गोष्ठ
और व्यापार के मार्गों का सर्वदा निरीक्षण करता रहे। शुल्क [चुंगी] दण्ड [जुरमाना]
पौतव [तराजूवाट आदि] नगराध्यक्ष, [तहसीलदार] लक्षणाध्यक्ष [कानूगी आदि] मुद्राध्यक्ष
[खजानची] सुराध्यक्ष [आबकारी का अफसर] प्राणिवधाध्यक्ष, [फांसी देने वाला]
सूत्राध्यक्ष, तेल, घृत, चार, [नमक] और सुवर्ण के बेचने के स्थान, तथा अन्य विक्रीय
वस्तु, वेश्या घृत [जुआ] वास्तुक [गृहनिर्माण] के महकमें तथा अन्य शिल्पी कारीगर,
और देवताओं का बचा हुआ एवं द्वारपाल और नट नर्तक आदि से इकट्ठा किया हुआ
धन दुर्ग में डालने के निमित्त माना गया है ॥१-२॥

सीता भागो बलिः करो वणिक् नदीपालस्तरो नावः पट्टनं विधीतं वर्तनी
रज्जूश्चोररज्जूश्च राष्ट्रम् ॥ ३ ॥

कृषि, भाग [छठा भाग] बलि, [उपहार आदि] कर, [फल वृक्ष आदि का कर]
वणिक् नदी पार का टैक्स, नाव के कर, नगर से प्राप्त धन, पशुशाला से मिले हुए धन
सड़कों के धन, रज्जू [भूमि के अन्य कर] चोर रज्जू [चोरों से मिला धन] का धन राष्ट्र के
हितों पर व्यय कर देना चाहिए ॥३॥

सुवर्णरजतवज्रमणिमुक्ताप्रवालशङ्खलोहलवणभूमिप्रस्तररसधातवः खनिः
॥ ४ ॥ पुष्पफलवाटपण्डकेदारमूलवापाः सेतुः ॥ ५ ॥ पशुमृगद्रव्यहस्तिवन-
परिग्रहो वनम् ॥ ६ ॥

सुवर्ण, चांदी, हीरा, मरकत मणि, मोती मूंगा, शंख, लोह, लवण, भूमि, पत्थर
तथा रसधातु, ये सारे पदार्थ खनिज कहलाते हैं, क्योंकि ये खानों से प्राप्त होते हैं। पुष्प,
फल, केला सुपारी आदि के वाग, अन्नों के खेत तथा अदरक, हल्दी आदि पदार्थ सेतु
कहाते हैं, क्योंकि जल से उत्पन्न होते हैं। पशु, मृग, भिन्न २ काष्ठ हाथी आदि वस्तु वन
से प्राप्त होने के कारण ये वन कहाती है ॥४-६॥

गोमहिषमजायिकं खरोष्ट्रमश्वाश्चतराश्च व्रजः ॥ ७ ॥ स्थलपथो वारिपथश्च
वणिकपथः ॥ ८ ॥ इत्यायशरीरम् ॥ ९ ॥

गाय, भैंस, बकरी भेड़, गधा, ऊँट, अश्व खच्चर आदि जन्तु व्रज नाम से माने
गए हैं-क्योंकि ये अपने २ गोष्ठ में रहते हैं। स्थल मार्ग, जलमार्ग और वणिक मार्ग-ये
सब राजा की आमदनी के मार्ग हैं। ये सब आय शरीर कहाते हैं ॥७-९॥

मूलं भागो व्याजी परिघः क्लृप्तं रूपिकमत्ययश्चायमुखम् ॥ १० ॥

मूल [फल आदि से प्राप्त] भाग [अन्न का छठा भाग] व्याजी [व्यापारियों से दण्ड
द्वारा मिला हुआ धन] परिघ [लावारिसी धन] क्लृप्त, [नियत किया हुआ टैक्स] रूपिक
[नमक टैक्स] अत्यय, [जुरमाने का द्रव्य] ये भी राजा की आमदनी के मार्ग कहे
जाते हैं ॥१०॥

देवपितृपूजादानार्थं स्वस्तिवाचनमन्तः पुरं महानसं दूतप्रवर्तनं कोष्ठा-
गारमायुधागारं पण्यगृहं कुप्यगृहं कर्मान्तो विष्टिः पथ्यश्चरथाद्विपपरिग्रहो गोम-
ण्डलं पशुमृगपक्षिव्यालवाटाः काष्ठतृणवाटाश्चेति व्ययशरीरम् ॥ ११ ॥

देव पूजा, पितृ पूजा, दान, स्वस्तिवाचन, अन्तःपुर, रसोई, दूत, कोष्ठागार, [चीजे
इकट्ठी करना] शस्त्रागार [शस्त्र वनवाना] पण्यगृह [बेचने खरीदने के स्थान] कुप्यगृह
धातु खरीदना] कृषि आदि का कार्य, विष्टि [वेगार आदि] पैदल, अश्व, रथ, हाथी का
खरीदना, गो मण्डल, पशु, मृग पक्षि तथा व्याघ्र आदि जन्तुओं का संग्रह, काष्ठ तृण
वगीचे आदि की रक्षा में राज धन का व्यय होता है। इन्हें व्यय शरीर कहते हैं ॥११॥

राजवर्ष मासः पक्षो दिवसश्च व्युष्टं वर्षहिमन्तग्रीष्माणां तृतीयसप्तमा
दिवसोनाः पक्षाः शेषाः पूर्णाः पृथग्मासक इति कालः ॥ १२ ॥

राजा के वर्ष, मास पक्ष और दिन को व्युष्ट कहते हैं, वर्षा हेमन्त और ग्रीष्म के तीसरे और चौथे पक्ष में एक दिन कम मानना चाहिए। शेषपक्ष पूरे पन्द्रह दिन के मानने चाहिए। एक अधिक मास भी गणना में लेना है। इस प्रकार काल का विभाग है ॥१२॥

करणीयं सिद्धं शेषमायव्ययौ नीवी च ॥ १३ ॥ संस्थानं प्रचारः शरीरा-
वस्थापनमादानं सर्वसमुदयपिण्डः संजातमेतत्करणीयम् ॥ १४ ॥

करणीय, सिद्ध, शेष, आय, व्यय और नीवी का समाहर्ता ठीक २ व्यवस्था करना रहे। संयान [ग्राम से ग्रहण करने योग्य नियत धन] प्रचार [भिन्न २ देशों के ज्ञान] शरीरावस्थापन [आय व्यय का ज्ञान] आदान [सुवर्ण धान्य आदि का ग्रहण] सर्व समुदय पिण्ड [धान्य का एक स्थान पर एकत्र करना] सञ्ज्ञात प्राप्त [धन का ज्ञान] ये छः करणीय कहाते हैं ॥१४॥

कोशार्पितं राजहारः पुरव्ययश्च प्रविष्टं परमसंवत्सरानुवृत्तं शासनमुक्तं
मुखाज्ञप्तं चापातनीयमेतत्सिद्धम् ॥ १५ ॥

कोशार्पित [कोश में पहुंचाया हुआ] राजहार [राजा के व्यय में लगा हुआ] पुर व्यय [पुर के व्यय में लगा हुआ] में व्यय किया हुआ धन प्रविष्ट कहाता है। परम संवत्सरानुवृत्त [पिछले वर्ष का बचा हुआ] शासन मुक्त [जिसके व्यय की अभी तक कोई आज्ञा नहीं हुई] मुखाज्ञप्त [मुख से खर्च करने की आज्ञा दिया हुआ धन] आपातनीय कहाता है। प्रविष्ट और आपातनीय ये दोनों मिलकर सिद्ध कहाते हैं ॥१५॥

सिद्धिप्रकर्मयोगः दण्डशेषमाहरणीयं बलात्कृतप्रतिस्तब्धमवसृष्टं च प्रशो-
ध्यमेतच्छेषमसारमल्पसारं च ॥ १६ ॥

सिद्ध प्रकर्मयोग [प्राप्त धन का काम में लेना] और दण्ड शेष [जुरमाने का द्रव्य] ये दोनों आहरणीय कहाते हैं। प्रांतस्तब्ध [राजा के प्रिय पुरुषों पर रुका हुआ धन] अवसृष्ट (नगर के मुखिया चौधरी पटेलों द्वारा नहीं दिया गया) धन प्रशोध्य कहाता है। इसी प्रकार व्यर्थ व्यय या थोड़े लाभ में अधिक व्यय किया हुआ धन शेष शब्द से व्यवहृत होता है, क्योंकि यह राजा को समाहर्ता द्वारा अभी प्राप्त करना है। इस प्रकार आहरणीय, प्रशोध्य असार या अल्पसार शेष धन कहाते हैं ॥१६॥

वर्तमानः पर्युषितो ऽन्यजातश्चायः ॥ १७ ॥ दिवसानुवृत्तो वर्तमानः
॥ १८ ॥ परमसांवत्सरिकः परप्रचारसंक्रान्तो वा पर्युषितः ॥ १९ ॥
नष्टप्रस्मृतमायुक्तदण्डः पार्श्व पारिर्हाणिकमौपायनिकं डमरगतकस्वमपुत्रकं
निधिश्चान्यजातः ॥ २० ॥

वर्तमान, पर्युषित और अन्य जात-इस तरह तीन प्रकार का आय माना गया है। दैनिक आय वर्तमान, पिछले वर्ष का शेष या शत्रु के यहां से किसी प्रकार प्राप्त धन पर्युषित कहाता है। भूले धन का स्मरण, अपराधियों से दण्ड में लिया हुआ धन, किन्हीं वक्र उपायों से प्राप्त धन भेंट में आया हुआ, युद्ध या कलह में छीना हुआ धन, पुत्र-हीन का लावारिस धन 'अन्य जात' आय में परिगणित हैं ॥१७-२०॥

विक्षेपव्याधितान्तरारम्भशेषश्च व्ययप्रत्यायः ॥ २१ ॥ विक्रये पणाना-
मर्धवृद्धिरूपजा मानोन्मानविशेषो व्याजी क्रयसंघर्षे वा वृद्धिरित्यायः ॥ २२ ॥

कार्य पर लगायी हुई सेना आदि क व्यय से बचा हुआ धन, औपधालयों का शेष धन, तथा अपने आन्तरिक कार्य दुर्ग आदि में व्यय किये हुए धन का शेष भाग यह व्यय प्रत्याय कहाता है। वस्तुओं के विक्रय, या बेचने योग्य वस्तुओं के मूल्य वृद्धि से होने वाले लाभ, खर्च में काट छाँट कर बचाये हुए धन, व्यापारियों के मान दण्ड के कमती बढ़ती होने का जुर्माना तथा खरीदारों की बहस में बढ़ा हुआ धन आय कहाता है। यह भी आय के ही भीतर गिना गया है ॥२२॥

नित्यो नित्योत्पादिको लाभो लाभोत्पादिक इति व्ययः ॥ २३ ॥ दिव-
सानुवृत्तो नित्यः ॥ २४ ॥ पक्षमाससंवत्सरलाभो लाभः ॥ २५ ॥ तयोरुत्पन्नो
नित्योत्पादिको लाभोत्पादिक इति ॥ २६ ॥

नित्य, नित्योत्पादिक, लाभ और लाभोत्पादिक-ये चार व्यय हैं। जो नित्य व्यय होता है-इसे नित्य व्यय कहते हैं। जो पक्षमास या संवत्सर में होने वाले लाभ के लिए व्यय किया जाता है-वह व्यय लाभ कहाता है। इन दोनों कार्यों में नियमित व्यय से अधिक व्यय होवे-तो नित्योत्पादिक और लाभोत्पादिक व्यय कहते हैं ॥२३-२६॥

व्ययसंजातादायव्ययविशुद्धा नीवी प्राप्ता चानुवृत्ता चेति ॥ २७ ॥

व्यय से बिल्कुल बचा हुआ धन नीवी कहाता है जिसके आय व्यय की अच्छी तरह पड़ताल करली गई है। यह दो प्रकार का होता है एक प्राप्त और दूसरा अनुवृत्त। जो कोश में पहुंच गया वह प्राप्त और जो पहुंचना है वह अनुवृत्त कहाता है ॥२७॥

एवं कुर्यात्समुदयं वृद्धिं चायस्य दर्शयेत् ।

हासं व्ययस्य च प्राज्ञः साधयेच्च विपर्ययम् ॥ २८ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे समाहृतं समुदयप्रस्थापनं षष्ठो ऽध्यायः

॥ ६ ॥ आदितः सप्तविंशः ॥ २७ ॥

इस प्रकार बुद्धिमान् समाहर्ता [कलक्टर] राज धन का संग्रह करे और धन की आय तथा वृद्धि और खर्च का हिसाब रखे । इस प्रकार समाहर्ता [कलक्टर] व्यय की कमी और लाभ की वृद्धि का सर्वदा उपाय करे ॥२८॥

इति श्रीकौटिलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचारअधिकरण में समाहर्ता के वस्तु संग्रह आदि का छठा अध्याय समाप्त हुआ ।



सातवां अध्याय

२५वां प्रकरण

अक्षपटल में गाणनिक्याधिकार ।

राजकीय आय व्यय के स्थान [दफ्तर] को अक्षपटल कहते हैं । गणना करने वाले पुरुषों को गाणनिक कहते हैं । अब इनके अधिकार का निरूपण किया जाता है ।

अक्षपटलमध्यक्षः प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा विभक्तोपस्थानं निबन्धपुस्तक-स्थानं कारयेत् ॥ १ ॥

आय व्यय का प्रधान अधिकारी पुरुष, अक्षपटल [दफ्तर हिसाब] के भवन का निर्माण करवावे । उसका द्वार पूर्व और उत्तर को होना चाहिए छोटे बड़े कर्मचारी [क्लर्क] गणों के पृथक् २ स्थान होने चाहिए । इसी प्रकार उसमें निबन्ध पुस्तक [रजिस्ट्रों] के रखने का स्थान [आलमारी] भी अच्छी तरह से बनवाना चाहिए ॥ १ ॥

तत्राधिकरणानां संस्थानप्रचारसंजाताग्रं कर्मान्तानां द्रव्यप्रयोगे वृद्धि-यव्ययप्रयामव्याजी योगस्थानवेतनविष्टिप्रमाणं रत्नसारफल्युक्त्युप्यानामर्धप्रति-वर्णकप्रतिमानमानोन्मानावमानभाण्डं देशग्रामजातिकुलसङ्घातनां धर्मव्यवहार-चरित्रसंस्थानं राजोपजीविनां प्रग्रहप्रदेशभोगपरिहारभक्तवेतनलाभं राज्ञश्च पत्नीपु-त्राणां रत्नभूमिलाभं निर्देशोत्पातिकप्रतीकारलाभं मित्रामित्राणां च संधिविक्रम-प्रदानादानि निबन्धपुस्तकस्थं कारयेत् ॥ २ ॥

इस अक्षपटल [दफ्तर हिसाब] में भिन्न २ अधिकरणों [महकमों] से प्राप्तधन का पूरा २ हिसाब रहना चाहिए । प्रत्येक खान आदि कार्यो में प्रयुक्त द्रव्य की वृद्धि क्षय व्यय [खर्च] तथा प्रयाग [तैयार अन्न आदि] व्याजी [कम तोलने आदि से दण्ड में प्राप्तधन] योग [सब का जोड़ लगाना या मिलान करना] स्थान [धन प्राप्ति स्थान] वेतन, विष्टि

[वेगार] आदि से वचे धन का निबन्ध पुस्तक [रजिस्टर] में पूरा व्योरा दर्ज रखा जावे। रत्न, सार [वड़िया लकड़ी] फल्गु [वस्त्र आदि] कुप्य [चमड़ा वांस आदि] प्रत्येक वस्तु का मूल्य गुण, तोल, लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, गहराई का लेख रहना चाहिए। देश, ग्राम, जाति कुल और सभाओं के धर्म, व्यवहार, चरित्र और विशेष स्थितियों का भी रजिस्टर बनाया जावे। राज्य के सेवक कर्मचारी आदि का प्रग्रह (सत्कार) प्रदेश (स्थान) भोग (भेंट) परिहार (मुआफ़ी) भक्त (पेटिया आदि) और वेतन लाभ का भी रजिस्टर में उल्लेख (इन्द्राज) हो। राजपत्नी (महारानी) राज पुत्रों द्वारा प्राप्त रत्न भूमि आदि का लाभ, आज्ञा भङ्ग करने पर दण्ड से प्राप्त धन एवं मित्र और अमित्र राजाओं से सन्धि, युद्ध तथा उनको दिए या लिए हुए धन का भी पूरा व्योरा रजिस्टर में रहना चाहिए ॥ २ ॥

ततः सर्वाधिकरणानां करणीयं सिद्धं शेषमायव्ययौ नीवीमुपस्थानं प्रचार-
चरित्रसंस्थानं च निबन्धेन प्रयच्छेत् ॥ ३ ॥ उत्तममध्यमावरेषु च कर्मसु यज्जा-
तिकमध्यक्षं कुर्यात् ॥ ४ ॥ सामुदायिकेष्ववकृतृप्तिकं यमुपहत्य न राजानुत्प्येत ॥ ५ ॥

इस प्रकार सारे अधिकरण (महकमों) के करणीय (ग्रामों से प्राप्त करने योग्य धन) सिद्ध (कोश में डाला हुआ) शेष (वसूल करने योग्य) आय (आमदनी) व्यय (खर्च) और नीवी (वचत) तथा कर्मचारियों का उपस्थान (हाजिरी और हाजिरी) काम, व्यवहार और विशेष कार्यों का भी उल्लेख करके राजा के सन्मुख रजिस्टर द्वारा प्रस्तुत करे। जैसा जिस का कार्य हो-उसी के अनुसार उनके पद की वृद्धि करके उनमें से क्रम से अध्यक्ष बनाना उचित है। यदि बहुतों ने एक ही कार्य को बड़ी उत्तमता से किया है, तो उनमें से अत्यन्त योग्य को छांट कर अध्यक्ष [अफसर] नियुक्त किया जावे, क्योंकि उस अनुभवी को काम सौंपने से राजा को परिणाम में पछताना नहीं पड़ेगा ॥ ३-५ ॥

सहग्राहिणः प्रतिभुवः कर्मोपजीविनः पुत्रा भ्रातरो भार्या दुहितरो भृत्याश्वा-
स्य कर्मच्छेदं वहेयुः ॥ ६ ॥

यदि किसी अध्यक्ष ने राज्य कार्य का नाश करके धन का अपहरण किया-तो राजा उस धन को उस अध्यक्ष के साथी, प्रति भू [जामिन] साथी कर्मचारी या इनके पुत्र, भ्राता भार्या, पुत्री और भृत्य तक से ग्रहण [वसूल] करले ॥ ६ ॥

त्रिशतं चतुःपञ्चाशच्चाहोरात्राणां कर्मसंवत्सरः ॥ ७ ॥ तमाषाढीपर्यवसानमूर्तं
पूर्णं वा दद्यात् ॥ ८ ॥ करणाधिष्ठितमधिमासकं कुर्यात् ॥ ९ ॥

तीन सौ चौवन दिन का एक वर्ष समझा जावे जिसमें सारा राज्य कार्य समाप्त कर देना है। उसकी समाप्ति आषाढ़ मास में होनी चाहिए जिसने वर्ष भर कार्य किया उसको

वर्ष की और जिस ने कम काम किया-उसको उतने ही दिन की वृत्ति दे देनी चाहिए और प्रत्येक मास में किसने कितना कार्य किया, इसका व्योरा भी उपस्थिति लेखक से लेना चाहिए ॥ ७-६ ॥

अपसर्पाधिष्ठितं च प्रचारं प्रचारचरित्रसंस्थानान्यनुपलभमानो हि प्रकृतः
समुदयमज्ञानेन परिहापयति ॥ १० ॥

प्रत्येक कर्मचारी (नौकर) अपना ठीक २ कार्य कर रहा है या नहीं, इसका पता राजा गुप्तचरों द्वारा प्राप्त करे। प्रचार (कार्य की पड़ताल) चरित्र [व्यवहार] से संस्थान [विशेष परिस्थिति] के बिना जाने अध्यक्ष अपने अज्ञान के कारण राज्य उन्नति में बाधक सिद्ध होता है ॥ १० ॥

उत्थानक्लशासहत्वादालस्येन शब्दादिष्विन्द्रियार्थेषु प्रमादेन संक्रोशाधर्मानर्थभीरुर्भयेन कार्यार्थिष्वनुग्रहवृद्धिः कामेन हिंसावृद्धिः कोपेन विद्याद्रव्यवल्लभापाश्रयादपेण तुलामानतर्कगणिकान्तरोपधानाल्लोभेन ॥ ११ ॥ तेषामानुषूच्यायावानर्थोपघातस्तावानेकोत्तरो दण्ड इति मानवाः ॥ १२ ॥ सर्वत्राष्टगुण इति पराशराः ॥ १३ ॥ दशगुण इति बार्हस्पत्याः ॥ १४ ॥ विंशतिगुण इत्यौशनसाः ॥ १५ ॥ यथापराधमिति कौटल्यः ॥ १६ ॥

जो अध्यक्ष उन्नति में करने योग्य कर्म के क्लेश के सहने में असमर्थ है वह आलस्य से राज्य कार्य का नाश करता है। जो शब्दादि इंद्रियों के विषयों में फंसा है, वह प्रमाद द्वारा घातक सिद्ध होता है। जो अपनी निन्दा, अधर्म और अनर्थ होने के भय से राज्य कार्य की उपेक्षा करता है वह भय से राज्य कार्य का नाशक है। अपने कार्य के लिए आये हुये किसी भी अपने मिलने वाले के काम को पूरा कर देने वाला अपनी कामना द्वारा राजा को हानि पहुंचाता है। यदि किसी पर कोप कर के उसे मार देता है, वह इस कोप द्वारा राज्य कार्य का नाशक है। विद्या, द्रव्य, और राजा के प्रिय पुरुषों का आश्रयी होकर जो कार्य बिगाड़ता है, यह दर्प से कार्य का नाश कहाता है, नाप तोल में कमी करके तथा वहस या हिंसा में गड़बड़ डाल कर जो राज्य कार्य में हानि पहुंचाता है वह लोभ द्वारा हानि कहाती है। इन बातों से जो राज्य कार्य में जितना धन नाश का कारण बनता है, उतना ही उनको राजा दण्ड दे। अज्ञान, आलस्य आदि द्वारा जिसने जैसी हानि पहुंचाई उसी क्रम से उन्हें दण्ड दे। अज्ञान से आलस्य, आलस्य से प्रमाद आदि से हानि पहुंचाने वाले को मनुजी ने अधिक दण्ड का भागी बताया है। पराशर मुनि के मत के मानने वाले कहते हैं, कि इन सब को हानि से अठ गुणा दण्ड देना चाहिए। बृहस्पति के अनुयायी

दस गुणा दण्ड मानते हैं। शुक्राचार्य के मतानुयायी बीस गुणा दण्ड का विधान करते हैं। परन्तु कौटल्य का मत है, कि जैसा जिसका अपराध हो, वैसा ही दण्ड देना चाहिए ॥११-१६॥

गणनिक्यान्यापादोमागच्छेयुः ॥ १७ ॥ आगतानां समुद्रपुस्तभाण्डनो-
वीकानामेकत्र संभाषावरोधं कारयेत् ॥ १८ ॥

गणना [हिसाब] के छोटे २ अधिकारी, आपाद के महीने में वर्ष की समाप्ति का बड़े कार्यालय [दफ्तर] में आकर हिसाब का मिलान करले। उन कर्मचारियों के रजि-
स्ट्रों पर मुहर लगा कर जबतक उनसे राज्य की वस्तु और शेष धन कोश [खजाने] में दाखिल न कर दिया जावे, तब तक उसको परस्पर वार्तालाप न करने दे ॥ १७-१८॥

आयव्ययनीवीनामग्राणि श्रुत्वा नीमीमवहारयेत् ॥ १९ ॥ यच्चाग्रादाय-
स्यान्तरयणं नीव्या वर्धेत व्ययस्य वा यत्परिहापयेत्तदष्टगुणमध्यक्षं दापयेत्
॥ २० ॥

इन सारे छोटे २ अफसरों के आय व्यय को सुनकर उनका शेष धन उनसे ग्रहण
करले। जो रजिस्टर के हिसाब से आमदनी या व्यय बताया गया है उससे अधिक निकले
या व्यय कमती बढ़ती हो-तो उससे अठ गुना उस कर्मचारी से दण्ड के रूप में ग्रहण
करना चाहिए ॥१९-२०॥

विपर्यये तमेव प्रति स्यात् ॥ २१ ॥ यथाकालमनागतानामपुस्तनीविकानां
वा देयदशयन्त्रो दण्डः ॥ २२ ॥

यदि कोई रकम किसी हिसाब की भूल से रजिस्टर में दर्ज होगई हो-तो उसे
कर्मचारी या अध्वक्ष को दे देनी चाहिए। जो कर्मचारी नियत-समय पर अपना रजिस्टर
लेकर न पहुंचे-तो उसकी ओर जो धन निकले उससे दश गुना उससे ग्रहण (वसूल)
किया जावे ॥२१-२२॥

कार्मिके चोपस्थिते कारणिकस्याप्रतिवध्नतः पूर्वः साहसदण्डः ॥२३॥
विपर्यये कार्मिकस्य द्विगुणः ॥ २४ ॥ प्रचारसमं महामात्राः समग्राः श्रावयेयुर-
वियममात्राः ॥ २५ ॥ पृथग्भूतो मिथ्यावादी चैषामुत्तमदण्डं दद्यात् ॥२६॥

जब हिसाब का प्रधान अध्वक्ष आ जावे और कर्मचारी हिसाब दिखाने में बहाना
बनावे-तो ऐसी दशा में उस पर प्रथम साहस दण्ड करना चाहिए। यदि प्रधान अध्वक्ष
समय पर कर्मचारियों के रजिस्ट्रों को न देखे-तो अध्वक्ष पर दुगुना दण्ड होना चाहिए।
कर्मचारियों के साथ २ बड़े २ अफसर मिलकर सारी हिसाब की मड़ताल सबको सुनावे।

जो इस मिलान में पूरा न उतरे या जिसके हिसाब में गड़ बढ़ हो-उस पर उत्तम दण्ड होना चाहिए ॥२३-२६॥

अकृताहोरूपहरं मासमाकाङ्क्षेत ॥२७॥ मासादूर्ध्वं मासद्विशतोत्तरं दण्डं दद्यात् ॥ २८ ॥ अल्पशेषनीविकं पञ्चरात्रमाकाङ्क्षेत ततः परम् ॥ २९ ॥

द्रव्य संग्रह के दिन को टला देने पर द्रव्य संग्रहकर्ता की एक मास तक प्रतीक्षा की जावे। यदि मास से भी अधिक हो जावे, तो उस अध्यक्ष पर दोसौ रुपया प्रत्येक मास के हिसाब से दण्ड देना चाहिए। जिसके पास थोड़ा राव्य द्रव्य शेष है-उसकी पांच दिन तक प्रतीक्षा करनी चाहिए और इतने दिन के बाद शेष धन लावे- तो उसे दण्ड देना चाहिए ॥२७-२९॥

कौशपूर्वमहोरूपहरं धर्मव्यवहारचरित्रसंस्थानसंकलननिर्वर्तनानुमानचारप्रयोगैरवेक्षेत ॥३०॥ दिवसपञ्चरात्रपक्षमासचातुर्मास्यसंवत्सरैश्चप्रतिसमानयेत् ॥३१॥

संगृहीत धन के लाने वाले कर्मचारी के धर्म, व्यवहार, चरित्र, विशेष स्थिति, हिसाब का जोड़ और कार्य की पड़ताल अनुमान या गुप्तचरों द्वारा करलेनी चाहिए। प्रति दिन, पांच दिन, पन्द्रह दिन, महीना, चतुर्मास या संवत्सर में हिसाब का मिलान अवश्य कर लेना चाहिए ॥३०-३१॥

व्युष्टदेशकालमुखोत्पत्त्यनुवृत्तिप्रमाणदायकदापकनिबन्धकप्रतिग्राहकैश्चान्यं समानयेत् ॥ ३२ ॥

राजा का वर्ष, मास, पक्ष और दिन, के साथ प्रचलित देशकाल, आय (आमदनी) उत्पत्ति, अनुवृत्ति (इधर उधर ले जाना) प्रमाण, करदाता का नाम, दिलाने वाले अधिकारी का नाम, लेखक और लेने वाले के नाम के साथ आय का पूरा व्योरा रजिस्टर में लिखें ॥३२॥

व्युष्टदेशकालमुखलाभकारणदेययोगपरिमाणाज्ञापकोद्धारकनिधातृकप्रतिग्राहकैश्च व्ययं समानयेत् ॥ ३३ ॥

व्युष्ट (राजा के वर्ष मास) प्रचलित देशकाल, मुख (लाभ, आमदनी) व्यय या लाभ के कारण, देने योग्य वस्तु योग (अच्छे बुरे का मिलान) परिमाण (नांपतोल) आज्ञा देने वाले उद्धारक (द्रव्य लेने वाले) निधातृक (भण्डार में डालने वाले) प्रतिग्राहक, (वापिस लेने वाला) के साथ २ व्यय का समुचित उल्लेख होना चाहिए ॥३३॥

व्युष्टदेशकालमुखानुवर्तनरूपलक्षणपरिमाणनिक्षेपभाजनगोपायकैश्च नीवीं
समानयेत् ॥ ३४ ॥

व्युष्ट (राजा की तिथी) देशकाल, मुख, (आमदनी के प्रकार) अनुवर्तन रूप (द्रव्य-
का स्वरूप,) लक्षण (द्रव्य के चिन्ह) परिमाण, निक्षेप भाजन (जिसके पास रखा गया)
गो पायक (रक्षक) पुरुष को लिख कर नीवी (शेष धन) का मिलान करे ॥ ३४ ॥

राजार्थे ऽर्थकारणिकस्याप्रतिबन्धतः प्रतिषेधयतो वाज्ञां निबन्धादायव्ययम-
न्यथा वा विकल्पयतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३५ ॥

जो कारणिक (कर्मचारी) राजा के आये हुये सुवर्ण आदि द्रव्य को रजिस्टर में चढ़ाता
और राजा की आज्ञा का उलंघन कर देता है या निबन्ध (रजिस्टर) में आय व्यय को
उलट पलट कर लिख देता है, उसे प्रथम साहस (प्रथम कोटि का साधारण) दण्ड देना
चाहिए ॥ ३५ ॥

क्रमावहीनमुत्क्रममविज्ञातं पुनरुक्तं वा वस्तुकमवलितो द्वादशपणो
दण्डः ॥ ३६ ॥ नीवीमवलितो द्विगुणः ॥ ३७ ॥ भक्षयतो ऽष्टगुणः ॥ ३८ ॥
नाशयतः पञ्चबन्धः प्रतिदानं च ॥ ३९ ॥ मिथ्यावादे स्तेयदण्डः ॥ ४० ॥
पश्चात्प्रतिज्ञाते द्विगुणः प्रस्मृतोत्पन्ने च ॥ ४१ ॥

क्रम के विरुद्ध उलट पलट कर विपरीत लिख देने, अज्ञान से इधर उधर रजिस्टर
में डाल देने या दो बार लिख देने वाले कर्मचारी पर बारह मुद्रा दण्ड होना चाहिए ।
नीवी (शेष धन) को नहीं लिखने वाले पर दुगुणा दण्ड है । जो बचे हुए राज धन को
खा जावे-तो उस रकम से अठगुणा दण्ड लेना चाहिए । जो नीवी का नट नर्तक आदि में
व्यय करे उस पर पांच गुणा जुर्माना करके मूल रकम वसूल करनी चाहिए । जो कर्म-
चारी इस बात झूठ बोलता है उसे चोरी का दण्ड दिया जावे । जब हिसाब में पकड़ा
जावे और उसे अपनी भूल स्वीकार हो जावे, तो दुगुणा दण्ड देना चाहिए । भूली हुई बात
के याद आने पर भी रकम से दुगुणा दण्ड है ॥ ३६-४१ ॥

अपरार्थं सहेताल्पं तुष्येदल्पे ऽपि चोदये ।

महोपकारं चाध्यक्षं प्रग्रहेणाभिपूजयेत् ॥ ४२ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे अक्षपटले गाणनिष्काधिकारः सप्तमो

ऽध्यायः ॥ ७ ॥ आदितोष्टाविंशः ॥ ४२ ॥

राजा अध्यक्ष के छोटे २ अपराधों को सह लेवे । यदि अध्यक्ष ने थोड़ी भी आमदनी बढ़ाई-तो उस पर अवश्य प्रसन्न होकर उसे इनाम देवे । यदि किसी अध्यक्ष ने राजा का बहुत अधिक उपकार (सेवा) किया हो-तो उसको सदा सत्कार और मान से पुष्ट करे ॥४२॥
इति श्री कौटिलीय अर्थ शास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण . में अक्षपटल में गणना करने वालों के अधिकार का सातवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



आठवां अध्याय

२६वां प्रकरण

अध्यक्षोंके द्वारा अपहृत धनका प्रत्यानयन ।

अब अध्यक्षों द्वारा अपहृत धन के लौटाने के ढङ्गों का वर्णन किया जाता है ।

कोशपूर्वाः सर्वारम्भाः ॥ १ ॥ तस्मात्पूर्वं कोशमवेक्षेत ॥ २ ॥

सारे राज्य कार्यों का आधार कोश है, इस लिए राजा प्रथम कोश का ध्यान रखे अर्थात् सर्वदा उसकी देख रेख करता रहे ॥ १-२ ॥

प्रचारसमृद्धिश्चरित्रानुग्रहश्चोरनिग्रहो युक्तप्रतिषेधः सस्यसंपत्पण्यबाहुल्यमु-
पसर्गप्रमोक्षः परिहारक्षयो हिरण्योपायनमिति कोशवृद्धिः ॥ ३ ॥

राष्ट्र की समृद्धि की समृद्धि, उसके आचार व्यवहार का व्यापन, चोरों का निग्रह, उत्कोत्र लेने वाले राज्य कर्मचारियों से प्रजा का मुक्त करना, अन्नोत्पत्ति का विचार, जल स्थल में उत्पन्न वस्तुओं की वृद्धि, राज्य में होने वाले अग्नि आदि के उत्पातों से राष्ट्र की रक्षा करना, परिहार (वक्रया) को ग्रहण (वसूल) करके क्षय कर देना तथा सुवर्ण इकट्ठा करना ये सब कोश वृद्धि के ढङ्ग हैं ॥ ३ ॥

प्रतिबन्धः प्रयोगो व्यवहारोऽवस्तारः परिहापणमुपभोगः परिवर्तनमपहार-
श्चेति कोशक्षयः ॥ ४ ॥ सिद्धीनामसाधनमनवतारणमप्रवेशनं वा प्रतिबन्धः ॥ ५ ॥
तत्र दशबन्धो दण्डः ॥ ६ ॥ क्रोशद्रव्याणां वृद्धिप्रयोगाः प्रयोगः पण्यव्यवहारो
व्यवहारः ॥ ७ ॥ तत्र फलद्विगुणो दण्डः ॥ ८ ॥ सिद्धं कालमप्राप्तं करोत्यप्राप्तं
प्राप्तं वेत्यवस्तारः ॥ ९ ॥ तत्र पञ्चबन्धो दण्डः ॥ १० ॥ क्लृप्तमायं परिहापयति
व्ययं वा विवर्धयतीति परिहापणम् ॥ ११ ॥ तत्र हीनचतुर्गुणो दण्डः ॥ १२ ॥
स्वयमन्यैर्वा राजद्रव्याणामुपभोजनमुपभोगः ॥ १३ ॥ तत्र रत्नोपभोगे घातः

सारोपभोगे मध्यमः साहसदण्डः फल्गुप्योपभोगे तच्च तावच्च दण्डः ॥ १४ ॥
 राजद्रव्याणामन्यद्रव्येणादानं परिवर्तनम् ॥ १५ ॥ तदुपभोगेन व्याख्यातम्
 ॥ १६ ॥ सिद्धमायं न प्रवेशयति निवृद्धं व्ययं न प्रयच्छति प्राप्तां नीवीं
 विप्रतिजानीत इत्यपहारः ॥ १७ ॥ तत्र द्वादशगुणो दण्डः ॥ १८ ॥

प्रतिबन्ध, प्रयोग, व्यवहार, अवस्तार, परिहापण, उपभोग, परिवर्तन और अपहार ।
 ये आठ कारण कोश के क्षय करने वाले हैं । जो राज्य का कर प्रजा पर चढ़ चुका-उसे वसूल
 न करना या अपने अधिकार में न करना अथवा सरकारी कोश में नहीं पहुंचाना प्रतिबन्ध
 कहा जाता है । जो भी अध्यक्ष ऐसी भूल करे-उस से उस मूल धन (रकम) का दश गुणा धन
 राजा ग्रहण (वसूल) करे अर्थात् उस धन से दश गुणा उस पर जुर्माना करे । कोश के
 द्रव्य से अपनी वृद्धि करने लग जाना प्रयोग कहा जाता है । और उस सरकारी धन
 से व्यापार करना व्यवहार होता है । प्रयोग या व्यवहार के द्वारा जो अध्यक्ष कोश को
 हानि पहुंचावे, राजा अपने मूल धन से दशगुणा धन उस अध्यक्ष से वसूल करे । जो कर
 वसूल करने वाला अध्यक्ष कर वसूली के समय को चुका कर अपने लाभ के कारण (रिश्तत
 आदि लेने को) दूसरे समय में कर वसूली की तन्नी करे-तो उसे राजा रकम से पचगुना
 दण्ड देवे । जो कलक्टर नियत कर (आमदनी) को घटा देता है और व्यय को बढ़ा लेता है
 यह परिहापण कहा जाता है । परिहापण द्वारा जो कोश को हानि पहुंचावे, उसे हानि से चौगुना
 दण्ड के रूप में वसूल किया जावे । राजा के द्रव्य (वस्त्र) का स्वयं उपभोग करे या अन्य
 अपने मित्रों को करावे-तो यह उपभोग कहा जाता है । इस में यदि रत्नों का स्वयं उपभोग कर-
 ता है अर्थात् उड़ा लेता है तो राजा इसे प्राण दण्ड देवे । उत्तम २ चन्दन आदि की लकड़ी
 आदि सार वस्तुओं के उपभोग में मध्यम साहस दण्ड का प्रयोग करे तथा वस्त्र या अन्य
 चमड़े आदि साधारण वस्तुओं का उपभोग करे-तो राजा उसे उस द्रव्य की बराबर दण्ड
 देवे । राजा की वस्तुओं को अन्य हलकी वस्तुओं से बदल देना परिवर्तन कहा जाता है । इस
 का भी उपभोग के अनुसार ही दण्ड समझ लेना चाहिए । प्राप्त हुए धन को जो वही खाते
 में नहीं चढ़ाता तथा व्यय को रजिस्टर में चढ़ाकर भी व्यय नहीं करता एवं नोवी अर्थात् बचे
 हुए राज्य धन को उलट पलट करके जो गड़ बड़ में डाल देना चाहता है-राजा उसके ऊपर
 उस मूल धन (रकम) से बारह गुना दण्ड करे ॥ ४-१८ ॥

तेषां हरणोपायाश्चत्वारिंशत् ॥ १९ ॥ पूर्व सिद्धं पश्चादवतारितम् ॥ २० ॥
 प्रश्नात्सिद्धं पूर्वमवतारितम् ॥ २१ ॥ साध्यं न सिद्धम् ॥ २२ ॥ असाध्यं सिद्ध-
 म् ॥ २३ ॥ सिद्धमसिद्धं कृतम् ॥ २४ ॥ असिद्धं सिद्धं कृतम् ॥ २५ ॥ अल्प-

सिद्धं बहुकृतम् ॥ २६ ॥ बहुसिद्धमल्पं कृतम् ॥ २७ ॥ अन्यत्सिद्धमन्यत्कृतम् ॥ २८ ॥ अन्यतः सिद्धमन्यतः ॥ २९ ॥ देयं न दत्तम् ॥ ३० ॥ अदेयं दत्तम् ॥ ३१ ॥ काले न दत्तम् ॥ ३२ ॥ अकाले दत्तम् ॥ ३३ ॥ अल्पं दत्तं बहुकृतम् ॥ ३४ ॥ बहु दत्तमल्पं कृतम् ॥ ३५ ॥ अन्यदत्तमन्यत्कृतम् ॥ ३६ ॥ अन्यतो दत्तमन्यतः कृतम् ॥ ३७ ॥ प्रविष्टमप्रविष्टं कृतम् ॥ ३८ ॥ अप्रविष्टं प्रविष्टं कृतम् ॥ ३९ ॥ कुप्य मदत्तमूल्यं प्रविष्टम् ॥ ४० ॥ दत्तमूल्यं न प्रविष्टम् ॥ ४१ ॥ संचेषो वित्तपः कृतः ॥ ४२ ॥ वित्तपः संचेषो वा ॥ ४३ ॥ महार्घमल्पार्घ्येण परिवर्तितम् ॥ ४४ ॥ अल्पार्घ्यं महार्घ्येण वा ॥ ४५ ॥ समारोपिता ऽर्घः ॥ ४६ ॥ प्रत्यवरोपितो वा ॥ ४७ ॥ रात्रयः समारोपिता वा ॥ ४८ ॥ प्रत्यवरोपिता वा ॥ ४९ ॥ संवत्सरो मासविषमः कृतः ॥ ५० ॥ मासो दिवसविषमो वा ॥ ५१ ॥ समागमविषमः ॥ ५२ ॥ मुखविषमः ॥ ५३ ॥ धार्मिकविषमः ॥ ५४ ॥ निर्वर्तन-विषमः ॥ ५५ ॥ पिण्डविषमः ॥ ५६ ॥ वर्णविषमः ॥ ५७ ॥ अर्घविषमः ॥ ५८ ॥ मानविषमः ॥ ५९ ॥ मापनविषमः ॥ ६० ॥ भाजनविषमः ॥ ६१ ॥ इति हस्-णोपायाः ॥ ६२ ॥

राज्य द्रव्य के अपहरण के मोटे २ चालीस प्रकार हैं । (१) प्रथम सिद्ध धन को पीछे रजिस्टर या बही में चढ़ाना (२) पीछे वसूल होने वाले धन को पहले ही चढ़ा देना (३) जो धन वसूल करना चाहिए-उसे उल्कोच (रिश्वत) लेकर वसूल न करना (४) जिन देवालय आदि से धन वसूल नहीं करना है, उनसे झगड़ा करना (५) रुपया वसूल करके भी निषेध (इनकार) कर देना (६) वसूल न होने पर भी वसूल हुआ बता देना (७) थोड़ा वसूल हुए को बहुत बताना (८) और बहुत वसूल हुए को थोड़ा बताना (९) अन्य मिली वस्तु को अन्य वस्तु लिख देना अर्थात् जौ का गेहूं या गेहूं का जौ लिखना [१०] एक पुरुष से मिला धन दूसरे पुरुष के नाम से रजिस्टर में चढ़ा देना [११] देने योग्य वस्तु को न देना [१२] नहीं देने योग्य को दे देना [१३] देने योग्य वस्तु को समय पर नहीं देना [१४] असमय पर वस्तु देना [१५] थोड़े दिए हुए को अधिक लिखना [१६] बहुत दी हुई वस्तु को थोड़ा लिखना [१७] कुछ देने को कहा और कुछ दे देना [१८] किसी को देने को कहा और अन्य किसी को दे देना [१९] प्रजा से धन वसूल करके भी खजाने में प्रविष्ट [दाखिल] न कराना (२०) वसूल नहीं हुये का कोश के रजिस्टर में दर्ज करा देना (२१) बिना दाम दिये उधार कपड़ा लाना (२२) मूल्य देकर खरीदे हुये कपड़े आदि वस्तुओं का ठीक रजिस्टर में उल्लेख न होना (२३) इकट्ठे लेने योग्य करको पृथक् लेना (२४) पृथक् २ लेने

योग्य टैक्स को इकट्ठे ही ले लेना (२५) अधिक मूल्य वाले द्रव्य को थोड़ी मूल्य की वस्तु से बदल देना (२६) या थोड़े मूल्य की वस्तु को अधिक मूल्य की बताना (२७) वस्तुओं का भाव मिथ्या बढ़वा देना (२८) या इसी तरह वस्तुओं का भाव घटवा देना (२९) किन्हीं कर्मचारियों के दिन बढ़ाकर लिखना (३०) या उनके दिन घटा कर लिख लेना (३१) वर्ष के महीनों में गड़ बड़ मचा देनी (३२) या महीनों में दिनों की भ्रमण डाल देनी (३३) कर्मचारियों की संख्या में घटा बढ़ी कर देना (३४) आमदनी के मार्गों में अदल बदल मचा देनी (३५) धर्म के कार्यों में न्यूनाधिक कर देना (३६) धन के वसूल करने में नियम भङ्ग करना (३७) किसी का ले लेना और किसी से [रिश्वत लेकर] न लेना, (३८) कर में ब्राह्मण आदि वर्णों की विषमता मचा देना (३९) मूल्य में न्यूनाधिक कर देना (४०) तोल में घटा बढ़ा देना (४१) नाप में कमती बढ़ती करना (४२) पात्र के विषय में गड़ बड़ मचा ना-ये अपहरण करने के ब्यालीस ढंग हैं । (यद्यपि ये ब्यालिस प्रकार होते हैं-तो भी किन्हीं एक से दो को एक करके गिनने से चालीस हो जावेंगे) ॥ १६-६२ ॥

तत्रोपयुक्तनिधायकनिबन्धकप्रतिग्राहकदायकदापकमन्त्रिवैयावृत्यकरानेकैक-
शो ऽनुयुज्जीत ॥ ६३ ॥ मिथ्यावादे चैषां युक्तसमो दण्डः ॥ ६४ ॥

यदि किसी अध्यक्ष के धन अपहरण का राजा को सन्देह हो-तो वह प्रधान अध्यक्ष भण्डारी या खजानची, रजिस्टर रखने वाले लेखक, कर लेने वाले, देने वाले, दिलाने वाले, अपराधी के मन्त्री या उसके नौकरों से पूछताछ (तहकीकात) करे । यदि इनमें कोई मिथ्यावादी प्रमाणित हो-तो उसे भी राजा अपराधी के तुल्य दण्ड देवे ॥ ६३-६४ ॥

प्रचारे चावधोपयेत् अमुना प्रकृतेनोपहताः प्रज्ञापयन्त्विति ॥ ६५ ॥ प्रज्ञा-
पयतो यथोपघातं दापयेत् ॥ ६६ ॥

राजा सारे राष्ट्र में यह घोषणा करवादे-कि यदि अमुक अध्यक्ष ने किसी के धन में गड़ बड़ी की है या करने वाला है-तो शीघ्र आकर सूचित करो । यदि किसी ने अपने धन का अपहरण प्रमाणित कर दिया-तो राजा उसको उतना ही धन उस अध्यक्ष से दिलवावे ॥ ६५-६६ ॥

अनेकेषु चाभियोगेष्वपव्ययमानः सकृदेव परोक्तः सर्वं भजेत ॥ ६७ ॥
वैषम्ये सर्वत्रानुयोगं दद्यात् ॥ ६८ ॥

यदि उस अध्यक्ष पर अनेक अभियोग लगाये गए हों-और उनमें से एक भी प्रमाणित हो जावे-तो राजा उन सब का हर्जाना उस से दिलवावे । यदि अध्यक्ष अपना अपराध न माने या प्रमाणित न हो सके-तो भी राजा उससे अभियोग की सफाई के सान्नी उपस्थित करवावे ॥ ६७-६८ ॥

महत्यर्थापहारे चाल्पेनापि सिद्धः सर्वं भजेत ॥ ६६ ॥ कृतप्रतिधाताव-
स्थः सूचको निष्पन्नार्थः षट्मंशं लभेत ॥ ७० ॥ द्वादशमंशं भृतकः ॥ ७१ ॥

यदि अध्यक्ष पर बहुत से धन के अपहरण का अपराध लगाया गया और उसमें से यदि एक भी रकम सावित हो गई-तो वह सारी का देनदार माना जाना चाहिए। अनुचित कर्म के विनाश के निमित्त केवल अन्य के धन के अपहरण की जो सूचना देता है-उस मुखविर को भी मुकदमें के प्रमाणित हो जाने पर धन का छठा भाग उपहार में देना चाहिए। यदि सूचना देने वाला अध्यक्ष का भृत्य [सेवक] है-तो उसे धन के बारह भाग देने उचित हैं ॥ ६६-७१ ॥

प्रभूताभियोगादल्पनिष्पत्तौ निष्पन्नस्यांशं लभेत ॥ ७२ ॥ अनिष्पन्ने
शरीरं हैरण्यं वा दण्डं लभेत ॥ ७३ ॥ न चानुग्राह्यः ॥ ७४ ॥

यदि बहुत से धन का अभियोगी प्रमाणित हुआ हो और उस धन का बहुत थोड़ा भाग प्राप्त हुआ हो तो सूचक [मुखविर] को उस प्राप्त धन का ही छठा भाग मिलेगा। यदि अध्यक्ष पर लगाए गए अभियोग को सूचक [मुखविर] सावित न कर सके-तो उसे शरीर दण्ड [बैतों की सजा] दिया जावे या सुवर्ण मुद्रा का जुरमाना किया जावे। इस प्रकार के अपराधी को मुआफ कभी नहीं करना चाहिए ॥ ७२-७४ ॥

निष्पत्तौ निक्षिपेद्वादमात्मानं वापवाहयेत् ।

अभियुक्तोपजापात्तु सूचको वधमाप्नुयात् ॥ ७५ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये अधिकरणे समुदयस्य युक्तापहतस्य प्रत्यानयनमष्टमो

अध्यायः ॥ ८ ॥ आदितः एकोनत्रिंशः ॥ २६ ॥

यदि अभियोग कुछ प्रमाणित हो जावे-तो सूचक की इच्छा है-वह उस अभियोग में अपने को सम्मिलित रखे या पृथक् करले। परन्तु अपराधी से मिल कर जो सूचक पीछे अभियोग को जान बूझ कर प्रमाणित नहीं करता है-राजा को उसे प्राण दण्ड देना चाहिए ॥ ७५ ॥

इति श्री कौटिलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार नामक अधिकरण में अध्यक्षों

द्वारा अपहरण किए हुए धन के लौटाने का आठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

नवां अध्याय

२७वां प्रकरण

उपयुक्तपरीक्षा

छोटे २ कर्मचारियों पर, जो अध्यक्ष होता है-उसे उपयुक्त कहते हैं-अब उपयुक्त अध्यक्षों के विषय में निरूपण किया जाता है।

अमात्यसंपदोपेताः सर्वाध्यक्षाः शक्तितः कर्मसु नियोज्याः ॥ १ ॥ कर्मसु चैषां नित्यं परीक्षां कारयेत् ॥ २ ॥ चिन्तानित्यत्वान्मनुष्याणाम् ॥ ३ ॥

ये सारे अध्यक्ष, अमात्यों के गुणों से युक्त होने चाहिए। इनको-इनकी शक्ति या योग्यता के अनुसार कर्मों में लगाना चाहिए। जब ये अपने कार्य को कर रहे हो-तब राजा, इनकी नित्य परीक्षा करता रहे, क्योंकि मनुष्यों के चित्त सदा एक से नहीं रहते हैं। वे आज अच्छे हैं, तो कल बिगड़ भी जाते हैं ॥१-३॥

अश्वसधर्माणो हि मनुष्या नियुक्ताः कर्मसु विकुर्वते ॥ ४ ॥ तस्मात्कर्तारं कारणं देशं कालं कार्यं प्रक्षेपमुदयं चैषु विद्यात् ॥ ५ ॥

मनुष्यों की आदत अश्वों की सी होती है। जब उनको काम पर लगा दिया जाता है, तब वे उछल-कूद मचाने लगते हैं, इसलिए राजा, कर्ता [प्रधान अध्यक्ष] कारण [कर्मचारी] देश, काल, कार्य, नौकरों के वेतन और उदय [धन प्राप्ति] के विषय में अवश्य ज्ञान रखे ॥४-५॥

ते यथासंदेशमसंहता अविगृहीताः कर्माणि कुर्युः ॥ ६ ॥ संहता भक्षयेयुः विगृहीता विनाशयेयुः ॥ ८ ॥

ये छोटे २ अधिकारी परस्पर गुट न बनाकर और न लड़-झगड़कर अपने २ कार्य को करते रहे। यदि इनका गुट बन जावेगा-तो ये राजा या प्रजा के धन को खाजावेंगे। यदि ये आपस में झगड़ बैठे तो प्रजा या राजा के स्वार्थ का नाश कर देंगे ॥६-८॥

न चानिवेद्य भर्तुः किंचिदारम्भं कुर्युरन्यत्रापत्प्रतीकारेभ्यः ॥ ९ ॥ प्रमादस्थानेषु चैषामत्ययं स्थापयेद्विषयवेतनव्ययद्विगुणम् ॥ १० ॥ यत्रैषां यथादिष्टमर्थं सविशेषं वा करोति स स्थानमानौ लभेत् ॥ ११ ॥

ये छोटे अध्यक्ष अपने स्वामी [बड़े अफसर] को सूचित किये बिना किसी नवीन कार्य का आरम्भ न करें। हां ? यदि किसी आपत्ति से राजा को बचाना है-तो उस उपाय के मंजूरी लेने की आवश्यकता नहीं है। यदि ये छोटे अध्यक्ष अपने कामों में प्रमाद

करें-तो इन पर कोई दण्ड होना चाहिए और उस दण्ड की अवधि एक दिन के वेतन से दुगुनी होनी चाहिए । जो इन अध्यक्षों में अपने स्वामी की आज्ञानुसार कार्य को पूरा करता है या अधिक कर दिखाता है-तो राजा को उसका पद [दर्जा] और मान बढ़ाना चाहिए ६-११॥

अल्पायतिश्चेन्महाव्ययो भक्षयति ॥ १२ ॥ विपर्यये यथायतिव्ययश्च न भक्षयतीत्याचार्याः ॥ १३ ॥ अपसर्पेणैवोपलभ्यत इति कौटल्यः ॥ १४ ॥

(जिस अध्यक्ष के थोड़ी आमदनी और व्यय अधिक दिखाई दे, उसे समझलो कि वह राज्य के धन का अपहरण करता है या प्रजा को पीड़ित करता है) यदि जितनी आमदनी है-और उतना ही उसका व्यय दिखाई देता है-तो समझलो, कि वह राज्य के धन का गवन नहीं करता और न उत्कोच [रिश्वत] लेता है । परन्तु आचार्य कौटल्य इस बात को नहीं मानता । वह कहता है, कि धन का अपहरण करने वाला भी थोड़ा खर्च रख सकता है, इससे इनका पता गुप्तचरों द्वारा ही लगाता रहें ॥१२-१४॥

यः समुदयं परिहापयति स राजार्थं भक्षयति ॥ १५ ॥ स चेदज्ञानादिभिः परिहापयति तदेनं यथागुणं दापयेत् ॥ १६ ॥

जो राजा के नियत कर में स न्यूनता कर देता है-तो समझ लेना चाहिए कि वह राज्य धन का अपहरण करता है । यदि किसी की अयोग्यता से कर आदि में न्यूनता आ जावे-तो इससे यथाशक्ति उसका हर्जाना लेकर उससे वह काम छीनकर उसे दूसरी जगह कर देवे ॥१५-१६॥

यः समुदयं द्विगुणमुद्धावयति स जनपदं भक्षयति ॥ १७ ॥ स चेद्राजार्थमुपनयत्यल्पापराधं वारयितव्यः ॥ १८ ॥ महति यथापराधं दण्डयितव्यः ॥ १९ ॥

जो राजा की आमदनी को दुगुनी कर देता है-वह जनपद [राष्ट्र] के धन का अपहरण करता है । यदि उससे वह सारा धन राजा तक पहुंचा दिया-तो उसे थोड़ा ही दण्ड देकर इस काम से रोक देना चाहिए । यदि किसी ने प्रजा का बहुत ही पीड़न कर डाला-तो राजा उस अपराध के योग्य उसे दण्ड दे ॥१७-१९॥

यः समुदयं व्ययमुपनयति स पुरुषकर्माणि भक्षयति ॥ २० ॥ स कर्मदिव-सद्रव्यमूलपुरुषवेतनापहारेषु यथापराधं दण्डयितव्यः ॥ २१ ॥

जो अध्यक्ष व्यय के योग्य धन को व्यय न करके राज्य के लाभ में उसे भी रख छोड़ता है-वह काम करने वाले पुरुषों का धन छीनता है अर्थात् उनको हानि पहुंचाता है । इनमें जितने काम, दिन, द्रव्य, पुरुषों के वेतन आदि की हानि हुई उसका निर्णय करके उसे अपराध के अनुसार दण्ड देना चाहिए ॥२१-२१॥

तस्मादस्य यो यस्मिन्नाधिकरणे शासनस्थः स तस्य कर्मणो याथातथ्य-
मायव्ययौ च व्याससमासाभ्यामाचक्षीत ॥ २२ ॥ मूलहरतादात्विककदर्याश्च
प्रतिषेधयेत् ॥ २३ ॥

राजा का जो अधिकारी, जिस पद पर नियुक्त हो-वह अध्यक्ष उस कार्य के ठीक २
आय व्यय का व्योरा संक्षेप या विस्तार से राजा के पास पहुंचाता रहे। जो मूल हर
तादात्विक और कदर्य पुरुष हों-उनको भी अपने कार्यों से रोकता रहे ॥२२-२३॥

यः पितृपैतामहमर्थमन्यायेन भक्षयति स मूलहरः ॥ २४ ॥ यो यद्यदुत्प-
द्यते तत्तद्भक्षयति स तादात्विकः ॥ २५ ॥ यो भृत्यात्मपीडाभ्यामुपचिनोत्यर्थं
स कदर्यः ॥ २६ ॥ स पक्ष्वांश्चेदनादेयः ॥२७॥ विपर्यये पर्यादातव्यः ॥२८॥

जो पिता पितामह की सम्पत्ति को अनर्थ के साथ भोगता है-उसे मूलहर कहते हैं।
जो पुरुष, नित्य किराये आदि से उत्पन्न धन का व्यय करके भोग करता रहता है, उसे
तादात्विक कहते हैं। जो अपने भृत्य और अपने आपको पीड़ित करके धन का संग्रह
करता है-वह कदर्य कहाता है। राजा के चेतावनी देने पर भी यदि ये लोग प्रमाद से
अपने ढंग को न छोड़कर प्रजा में उत्क्रान्ति फैलाते हैं, उनको अपने पूर्वजों का भाग नहीं
मिलना चाहिए। यदि वे अपना ढंग छोड़ देवे-तो फिर उनको उनका भाग दे
देना चाहिए ॥२४-२८॥

यो महत्यर्थसमुदये स्थितः कदर्यः संनिधत्ते स्वनिधत्ते स्वस्त्रावयति वा
संनिधत्ते स्ववेशमन्यवनिधत्ते पौरजानपदेष्ववस्त्रावयति परविषये तस्य सत्त्वी
मन्त्रिमित्रभृत्यबन्धुपक्षमागतिं गतिं च द्रव्याणामुपलभेत ॥ २९ ॥ यश्चास्य
परविषयतया संचारं कुर्यात्तमनुप्रविश्य मन्त्रं विद्यात् ॥ ३० ॥ सुविदिते
शत्रुशासनापदेशेनैनं घातयेत् ॥ ३१ ॥

जो अध्यक्ष, राज्य कार्य करता हुआ महान् धनराशि इकट्ठी कर लेता है और स्वयं
कुछ भी खर्च नहीं करता है और वह अपने धन को अपने घर में गाड़ देता है, पुर या
जनपद के किसी पुरुष के पास रख छोड़ता है या अन्य देश में पहुंचा देता है, उसके
साथी गुप्तचर, उसके मन्त्री (सलाहकार) मित्र, भृत्य, बन्धु और बान्धव द्रव्य के आने
और जाने का पता रखें। जो पुरुष इस धन को अन्य राजा के देश में पहुंचाने में सहायता
करता है और स्वयं कुछ खर्च नहीं करता है-तो गुप्तचर उससे मिलकर गुप्त रूप से उसका

पता लगाता रहे । यदि इसके इस कार्य का अच्छी तरह प्रमाण मिल जावे-तो उसको शत्रु से मिला हुआ प्रसिद्ध करके राजा सरवा देवे ॥ ३०-३१ ॥

तस्मादस्याध्यक्षाः संख्यायकलेखकरूपदर्शकनीवीग्राहकोत्तराध्यक्षसखाः
कर्माणि कुर्युः ॥ ३२ ॥

इन सब बातों पर विचार करके राजा के छोटे २ अध्यक्ष, गणना करने वाले, लेखक, रूप दर्शक [मुद्रा लगाने वाले या खरे खोटे परखने वाले] नीवी ग्राहक [शेष राज्य धन के लेने वाले खजानची] तथा बड़े २ अध्यक्ष सब मिलकर राज्य कार्य का सम्पादन करें ॥ ३२ ॥

उत्तराध्यक्षाः हस्त्यश्वरथारोहाः ॥ ३३ ॥ तेषामन्तेवासिनश्शिल्पशौचयु-
क्तास्सङ्ख्यायकादीनामपमर्षाः ॥ ३४ ॥ बहुमुख्यमनित्यं चाधिकरणां
स्थापयेत् ॥ ३५ ॥

हाथी अश्व और रथों के ऊपर चढ़ने वाले वीर ही उत्तराध्यक्ष होते हैं । इनके शिल्प, में कुशल और शुद्ध हृदय के छात्र, इन संख्यायक आदि कर्मचारियों के पता लगाने वाले गुप्तचर होने चाहिए । जो बड़ा अधिकरण (महकमा) हो, उसमें अनेक मुख्य अधिकारी होने चाहिए-तथा उनको समय २ पर बदलते रहना चाहिए ॥ ३३-३५ ॥

यथा ह्यनास्वादयितुं न शक्यं, जिह्वातलस्थं मधु वा विषं वा ।

अर्थस्तथा ह्यर्थचरेण राज्ञः, स्वल्पोऽप्यनास्वादयितुं न शक्यः ॥ ३६ ॥

जिह्वा पर रखा हुआ मधु या विष अन्नस्य स्वाद लेने में आ ही जाता है, इसी तरह राजा के अर्थाधिकार पर नियुक्त पुरुष, अवश्य कुछ न कुछ उपभोग करते ही हैं ॥ ३६ ॥

मत्स्या यथान्तः सलिले चरन्तो, ज्ञातुं न शक्याः सलिलं पिबन्तः ।

युक्तास्तथा कार्यविधौ नियुक्ताः, ज्ञातुं न शक्या धनमाददानाः ॥ ३७ ॥

जिस प्रकार पानी में प्रविष्ट मछली, पानी पीती दिखाई नहीं देती, इसी तरह छोटे २ अध्यक्ष, अपने २ कार्य पर नियुक्त हुए और राज्य के धन का अपहरण करते हुए जाने नहीं जा सकते हैं ॥ ३७ ॥

अपि शक्या गतिर्ज्ञातुं पततां खे पतत्रिणाम् ।

न तु प्रच्छन्नभावानां युक्तानां चरतां गतिः ॥ ३८ ॥

आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की गति का पता रखा जा सकता है, परन्तु गुप्त रूप से राजा के धन का अपहरण करने वाले इन छोटे २ अव्यक्तों [कर्मचारियों] की गति का पता लगाना बड़ा ही कठिन कार्य है ॥३८॥

आस्रावयेच्चोपचितान्विपर्यस्येच्च कर्मसु ।

यथा न भक्षयन्त्यर्थं भक्षितं निर्वमन्ति वा ॥ ३९ ॥

जब राजा, ऐसे अव्यक्तों का पता लगा ले-तो उन धन सम्पन्न अधिकारियों के धन को छीन ले और उन्हें अपने ओहदे से नीचे गिरा दे, जिससे वे आगे धन का अपहरण न कर सकें और जो कर लिया उसे उलटा उगल दें ॥३९॥

न भक्षयन्ति ये त्वर्थान्न्यायतो वर्धयन्ति च ।

नित्याधिकाराः कार्यास्ते राज्ञः प्रियहिते रताः ॥ ४० ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे उपयुक्तपरीक्षा नवमो ऽध्यायः ॥ ६ ॥

आदितस्त्रिंशः ॥ ३० ॥

जो राज्य के धन का अपहरण न करके न्यायानुसार अपनी और राजा की वृद्धि करते हैं, राजा उनको सर्वदा उच्च पद पर अधिकारी बनाये रखे, क्योंकि राजा के हित में तत्पर होते हैं ॥४०॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचारअधिकरण में बड़े २ अव्यक्तों की परीक्षा का नौवां अध्याय समाप्त हुआ।



दसवां अध्याय

२८वां प्रकरण

शासनाधिकार

लेख द्वारा जो आज्ञा दी जाती है, उसे शासन कहते हैं-अब उसके विषय में विचार किया जाता है ।

शासने शासनमित्याचक्षते ॥ १ ॥ शासनप्रधाना हि राजानः ॥ २ ॥

तन्मूलत्वात्संधिविग्रहयोः ॥ ३ ॥ तस्मादमात्यसंपदोपेतः सर्वसमयविदाशुग्रन्थ-

श्रवक्षरो लेखवाचनसमर्थो लेखकः स्यात् ॥ ४ ॥ सो ऽव्यग्रमना राज्ञः संदेशं

श्रुत्वा निश्चितार्थं लेखं विदध्यात् ॥ ५ ॥ देशैश्वर्यवंशनामधेयोपचारमीश्वरस्य

देशनामधेयोपचारमनीश्वरस्य ॥ ६ ॥

किसी भी तरह की राजा की लिखित आज्ञा या प्रतिज्ञा शासन कहा जाता है। राजा लोग शासन प्रधान होते हैं-अर्थात् उनके सारे कार्य लेख पर अवलम्बित हैं। शासन (लेख) के अधीन सारे संधि विग्रह आदि कार्य सम्पन्न होते हैं, इस लिए अमात्य के गुणों से युक्त, प्रत्येक प्रतिज्ञा के लिखने की शैली का जानने वाला-शीघ्रता के साथ सुन्दर अक्षर और विषय (मजमून) के लिख देने तथा अन्य के लेख पढ़ने में समर्थ राजा का लेखक होना चाहिए। यह लेखक शान्ति पूर्वक राजा के अभिप्राय को समझ कर दोष रहित सुन्दर लेख लिखे। इस लेख में देश, ऐश्वर्य (पदवी-राजराजेश्वरादि) वंश, नाम तथा अन्य उपचार (यथा योग्य नमस्कार आदि) एवं साधारण मनुष्य के देश नाम और उपचार (आदर सत्कार सूचक शब्द) लिखे ॥ १-६ ॥

जातिं कुलं स्थानवयः श्रुतानि, कर्मद्विशीलान्यथ देशकालौ ।

यौनानुबन्धं च समीक्ष्य कार्ये, लेखं विदध्यात्पुरुषानुरूपम् ॥ ७ ॥

लेखक प्रत्येक राज्य कार्य सम्बन्धी लेख में जाति, कुल, स्थान वय (उमर) शास्त्रज्ञान [एम, ए, शास्त्री आदि] काम, धन सम्पत्ति, सदाचार, देशकाल, यौन सम्बन्ध [विवाह आदि सम्बन्ध का आचार] लिख कर प्रत्येक पुरुष की प्रतिज्ञा के अनुसार लेख लिखे ॥ ७ ॥

अर्थक्रमः संबन्धः परिपूर्णता माधुर्यमौदार्य स्पष्टत्वमिति लेखसंपत् ॥ ८ ॥

तत्र यथावदनुपूर्वक्रियाप्रधानस्यार्थस्य पूर्वमभिनिवेश इत्यर्थस्य क्रमः ॥ ९ ॥

प्रस्तुतस्यार्थस्यानुरोधादुत्तरस्य विधानमासमाप्तेरिति संबन्धः ॥ १० ॥

अर्थपदाक्षराणामन्यूनातिरिक्ता हेतूदाहरणदृष्टान्तरथोपवर्णनाश्रान्तपदतेति परिपूर्णता ॥ ११ ॥ सुखोपनीतचार्थशब्दाभिधानं माधुर्यम् ॥ १२ ॥

अग्रास्यशब्दाभिधानमौदार्यम् ॥ १३ ॥ प्रतीतशब्दप्रयोगः स्पष्टत्वमिति ॥ १४ ॥

(लेख में [१] अर्थ क्रम [२] सम्बन्ध [३] परिपूर्णता [४] माधुर्य [५] औदार्य और स्पष्टता-ये छः गुण माने गए हैं) लेख में (क्रियाओं का समुचित प्रयोग करके ठीक २ अर्थ का लिखना अर्थ क्रम कहा जाता है। जिस अर्थ [विषय] का प्रारम्भ किया, उसका अन्त तक ठीक २ वैसा ही अन्त तक निर्वाह करजाना, सम्बन्ध माना गया है। अर्थ, पद और अक्षरों की न्यूनता या अधिकता न होना तथा हेतु, उदाहरण और दृष्टान्त से लेख के अर्थ को सिद्ध करना एवं अर्थ के वर्णन में ढीले पदों का प्रयोग न करना-परिपूर्णता कहा जाता है। सरलता से अर्थ का बोध न करने वाले, मधुर २ शब्दों का प्रयोग करना-माधुर्यगुण कहा जाता है। अश्लील शब्दों के प्रयोग से रहित शब्दों का प्रयोग औदार्य गुण कहा जाता है। सीधा अर्थ दे देने वाले शब्दों का प्रयोग स्पष्टता गुण होता है ॥ ८-१४ ॥)

अकारादयो वर्णाः त्रिषष्टिः ॥ १५ ॥ वर्णसंघातः पदम् ॥ १६ ॥ तच्चतु-
र्विधं नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्चेति ॥ १७ ॥ तत्र नाम सन्धाभिधायि ॥ १८ ॥
अविशिष्टलिङ्गमाख्यातं क्रियाद्योचि ॥ १९ ॥ क्रियाविशेषकाः प्रादाय उपसर्गाः
॥ २० ॥ अव्ययाश्चादयो निपाताः ॥ २१ ॥ पदसमूहो वाक्यमर्थपरिसमाप्तौ ॥ २२ ॥
एकपदावरत्निपदपरः परपदार्थानुरोधेन वर्गः कार्यः ॥ २३ ॥ लेखपरिसंहरणार्थं
इतिशब्दो वाचिकमस्येति च ॥ २४ ॥

अकार आदि तरेसठ वर्ण होते हैं। वर्णों के समूह को पद कहते हैं। नाम, आख्यात
उपसर्ग और निपात-इस प्रकार चार तरह के पद माने गए हैं। जाति, गुण या द्रव्य (वस्तु)
के नाम को नाम [संज्ञा] कहते हैं। स्त्री पुलिङ्ग आदि की विशेषता से हीन क्रिया पदों को
आख्यात कहते हैं। क्रिया में विशेष अर्थ के उत्पादक आदि उपसर्ग कहाते हैं। चकार
आदि अव्यय निपात हैं। अर्थ को स्पष्ट रीति से बोध देने कराने वाले पद समूह को
वाक्य कहते हैं। एक पद या तीन पद के आगे अगले पद के अर्थ के अनुरोध से वर्ग
[विराम] मानना चाहिए। लेख की परि समाप्ति होने पर इति शब्द का प्रयोग उचित है
तथा इस को पढ़ कर सुना दिया गया आदि शब्द लिखने चाहिए ॥ १५-२४ ॥

निन्दा प्रशंसा पृच्छा च तथाख्यानमथार्थना ।

प्रत्याख्यानमुपालम्भः प्रतिषेधोऽथ चोदना ॥ २५ ॥

सान्त्वयमभ्यवपत्तिश्च भर्त्सनानुनयौ तथा ।

एतेष्वर्थाः प्रवर्तन्ते त्रयोदशसु लेखजाः ॥ २६ ॥

निन्दा, प्रशंसा, प्रश्न, समाचार, प्रार्थना, प्रत्याख्यान, उपालम्भ [उलाहना] प्रतिषेध
[नपेध] प्रेरणा, सान्त्वना, अभ्यवपत्ति [सहायता करना] फटकारना और अनुनय करना
ये तेरह अर्थ [वातें] प्रायः लेख में लिखे जाते हैं ॥ २५-२६ ॥

तत्राभिजनशरीरकर्मणां दोषवचनं निन्दा ॥ २७ ॥ गुणवचनमेतेषामेव
प्रशंसा ॥ २८ ॥ कथमेतदिति पृच्छा ॥ २९ ॥ एवमित्याख्यानम् ॥ ३० ॥ देही-
त्यर्थना ॥ ३१ ॥ न प्रयच्छामीति प्रत्याख्यानम् ॥ ३२ ॥ अननुरूपं भवत इत्यु-
पालम्भः ॥ ३३ ॥ मा कार्षिरिति प्रतिषेधः ॥ ३४ ॥ इदं क्रियतामिति चोदना
॥ ३५ ॥ योऽहं स भवान्यन्मम द्रव्यं तद्भवत इत्युपग्रहः सान्त्वम् ॥ ३६ ॥
व्यसनसाहाय्यमभ्यवपत्तिः ॥ ३७ ॥ सदोषमायतिप्रदर्शनमभिभर्त्सनम् ॥ ३८ ॥
अनुनयस्त्रिविधोऽर्थकृतावतिक्रमे पुरुषादिव्यसने चेति ॥ ३९ ॥

प्रज्ञापनाज्ञपरिदानलेखास्तथा परीहारनिसृष्टिलेखौ ।

प्रावृत्तिकश्च प्रतिलेख एव सर्वत्रगश्चेति हि शासनानि ॥ ४० ॥

किसी के वंश, शरीर और कार्य में दोष कथन करना-निन्दा कहाता है । इन्हीं कुल-शरीर और कार्य के गुणों का कथन करना प्रशंसा कहाता है । यह बात किस तरह है, यह पूछना है । यह घटना इस प्रकार-है यह कहना आख्यान होता है । यह मुझे प्रदान करो-इस प्रकार याचना को अर्थना कहते हैं । मैं यह नहीं दे सकता-इस प्रकार याचित वस्तु के दे देने में निषेध [इन्कार] कर देना प्रत्याख्यान कहाता है । यह बात करना-तुम्हारे रूप के अनुकूल नहीं है-ऐसा कहना-उपालम्भ (उलाहना) कहाता है । तुम यह काम मत करना-यह प्रतिषेध होता है । तुम यह करना-इसे चोदना (प्रेरणा) कहते हैं । जो मैं हूँ-वही आप हैं-आप में और मुझमें कोई अन्तर नहीं है-मेरा द्रव्य आपका ही है-इस प्रकार कहना सान्त्वना अर्थात् तसल्ली देना कहाता है । किसी विपत्ति में सहायता करना अभ्यवपत्ति कहाता है । दोष सहित भविष्य का दर्शन अर्थात् अनर्थ उत्पन्न कर देने की धमकी देना-अभिभत्सेन कहाता है । अनुनय तीन प्रकार का माना गया है । किसी कार्य की सिद्धि के लिए जो प्रार्थना की जाती है-यह प्रथम अनुनय है । किसी कुपित पुरुष के शान्त करने की प्रार्थना दूसरा अनुनय है । अपने परिवार या मित्र के व्यसन में किसी से प्रार्थना करना तीसरा अनुनय कहाता है । इस प्रकार लेख के ये तेरह ढंग माने गए हैं ॥२७-३६॥

प्रज्ञापन, आज्ञा, परिदान, लेख, परीहार, निसृष्टि, प्रावृत्तिक, प्रतिलेख और सर्वत्रग शासन पत्र के ये आठ भेद और माने गए हैं ॥४०॥

अनेन विज्ञापितमेवमाह तदीयतां चेद्यदि तत्त्वमस्ति ।

राज्ञः समीपे वरकारमाह प्रज्ञापनैषा विविधोपदिष्टा ॥ ४१ ॥

इस मनुष्य ने हमको सूचना दी है हो कि तुमने हमारे धन का अपहरण कर लिया है । यदि यह सत्य है-तो वह वापिस दे दो । जो अफसर या मनुष्य, राजा से स्वीकार करके स्वीकृति लेख लिख देता है, यह प्रज्ञापना पत्र कहाता है । इसके अनेक भेद हैं ॥४१॥

भर्तुराज्ञा भवेद्यत्र निग्रहानुग्रहौ प्रति ।

विशेषेण तु भृत्येषु तदाज्ञालेखलक्षणम् ॥ ४२ ॥

निग्रह और अनुग्रह के विषय में जो राजा का आज्ञा पत्र होता है और विशेष कर यह भृत्यों के सम्बन्ध में लिखा जाता है-इसे आज्ञा पत्र (हुकुमनामा) कहते हैं ॥४२॥

यथार्हगुणसंयुक्ता पूजा यत्रोपलक्ष्यते ।

अप्याधौ परिदाने वा भवतस्तावुपग्रहौ ॥ ४३ ॥

जिस पत्र में पूज्य भाव के साथ आदर के अन्तर लिखे गए हों-यह परिदानं कहाता है। यह लेख, किसी सम्बन्धी की मृत्यु पर सहानुभूति में तथा किसी दुःखी भृत्य की रक्षा के निमित्त लिखा जाता है। ये दोनों लेख उपग्रह (अनुग्रह सूचक) होते हैं ॥४३॥

ज्ञातेर्विशेषेषु पुरेषु चैव ग्रामेषु देशेषु च तेषु तेषु ।

अनुग्रहो यो नृपतेर्निदेशात्तज्ज्ञः परीहार इति व्यवस्येत् ॥ ४४ ॥

निसृष्टिस्थापना कार्य करणे वचने तथा ।

एषा वाचिक लेखः स्थाद्भवेन्नैसृष्टिकोऽपि वा ॥ ४५ ॥

विविधां देवसंयुक्तां तन्वजां चैव मानुषीम् ।

द्विविधा तां व्यवस्यन्तिप्रवृत्तिं शासनं प्रति ॥ ४६ ॥

विशेष २ (खास २) जाति, पुर, ग्राम, और देश पर जो राजा की आज्ञा का अनुग्रह पत्र निकलता है-इसे विद्वान् परीहार पत्र कहते हैं। किसी कार्य के करने या कहने में किसी प्रामाणिक व्यक्ति का अपने ऊपर भार ले लेना निसृष्टि पत्र (जमानतनामा) कहाता है। यह निसृष्टि, वाचिक लेख या नैसृष्टिक लेख भी कहाता है। देव के उत्पात या मनुष्यों की वृटना के जो समाचार पत्र निकलते हैं, वे प्रावृत्तिक कहाते हैं। राज शासन के ये समाचार पत्र शुभ और अशुभ दो तरह के होते हैं ॥४४-४६॥

दृष्ट्वा लेखं यथातत्त्वं ततःप्रत्यनुभाष्य च ।

प्रतिलेखो भवेत्कार्यो यथा राजवचस्तथा ॥ ४७ ॥

प्रथम स्वयं किसी लेख को पढ़कर और फिर उसको राजा के सन्मुख पढ़कर राजा के वचन के अनुसार उत्तर लिखना प्रति लेख कहाता है ॥४७॥

यत्रेश्वरांश्चाधिकृतांश्च राजा रक्षोपकारौ पथिकार्थमाह ।

सर्वत्रगो नाम भवेत्स मार्गे देशे च सर्वत्र च वेदितव्यः ॥ ४८ ॥

जिस पत्र में राजा अपने सामन्त, अध्यक्ष और अधिकारियों को रक्षा तथा उपकार के विषय में लिखता है-वह-सर्वत्रग नामक लेख है। वह लेख सारे मार्ग देश और राष्ट्र में चिपड़ा दिया जाता है। यह सर्वत्रग लेख ही (शाही फरमान) होता है ॥४८॥

उपायाः सामोपप्रदानं भेददण्डाः ॥ ४९ ॥ तत्र साम पञ्चविधम्-गुणसं-

कीर्तनं संबन्धोपाख्यानम् परस्परोपकारसंदर्शनमायतिप्रदर्शनमात्मोपनिधानमिति

॥ ५० ॥ तत्राभिजनशरीरकर्मप्रकृतिश्च तद्रव्यादीनां गुणागुणग्रहणं प्रशंसास्तुति-

गुणसंकीर्तनम् ॥५१॥ ज्ञातियैनमौखसौखिकुलहृदयमित्रसंकीर्तनं संबन्धोपाख्यानम्

॥ ५२ ॥ स्वपक्षपरपक्षयोरन्यो न्योपकारसंकीर्तनं परस्परौपकारसंदर्शनम् ॥ ५३ ॥
 अस्मिन्नेवं कृत इदमावयोर्भवतीत्याशाजननमायतिप्रदर्शनम् ॥ ५४ ॥ यो ऽहं न
 भवान्यन्मम द्रव्यं तद्भवता स्वकृत्येषु प्रयोज्यतामित्यात्मोपनिधानमिति ॥ ५५ ॥
 उपप्रदानमर्थोपकारः ॥ ५६ ॥ शङ्काजननं निर्भर्त्सनं च भेदः ॥ ५७ ॥ वधः पङ्क्तिशो
 ऽर्थहरणं दण्ड इति ॥ ५८ ॥

साम, दान, भेद और दण्ड-इस प्रकार चार तरह के उपाय माने गए हैं। गुण संकीर्तन, सम्बन्धोपाख्यान, परस्परौपकार संदर्शन, आयतिप्रदर्शन और आत्मोपनिधान-इस प्रकार साम पांच प्रकार का होता है। कुल, शरीर, कर्म, स्वभाव, विद्वत्ता, तथा अन्य द्रव्य आदि के विषय में गुणों का अनुकीर्तन करना-प्रशंसा, स्तुति और गुण संकीर्तन कहाता है। जाति, यौन (विवाह आदि) मांग्य (गुरु शिष्य आदि) स्त्रीय (नृवाह्यग यज्ञादि) कौलिक (कुलपरम्परा से आने वाला) हृदय से किया हुआ, मित्रता से उत्पन्न, संबंध का कथन करना, सम्बन्धोपाख्यान कहाता है। अपने तथा वस्तु के विषय में दिए हुए उपकार को बताकर सम्बन्ध प्रदर्शन करना-परस्परौपकार संदर्शन कहाता है। इस कार्य के ऐसा करने पर हम दोनों का लाभ है-इस प्रकार आशा देना-आयति प्रदर्शन कहाता है। जो मैं हूँ-सो आप हैं-मेरा द्रव्य आपका ही है। आप इसे अपने कार्य में ले सकते हैं-यह आत्मोपनिधान कहाता है। धन देकर उपकार करना उपप्रदान (दान) कहाता है शङ्का उत्पन्न कर देना या फटकार बताना- भेद कहाता है। वध, क्लेशदान, या अर्थ (धन) हरण कर लेना दण्ड होता है। ये चार तरह के उपाय कहाते हैं ॥ ५६-५८ ॥

अकान्तिव्याघातः पुनरुक्तमपशब्दः संस्रव इति लेखदोषाः ॥ ५९ ॥ तत्रकाल पत्रक्रमचारुविषमविरागाक्षरत्वमकान्तिः ॥ ६० ॥ पूर्वेण पश्चिमस्यानुपपत्तिर्व्याघातः ॥ ६१ ॥ उक्तस्याविशेषण द्वितीयमुच्चारणं पुनरुक्तम् ॥ ६२ ॥ लिङ्गवचन-कालकारकाणामन्यथाप्रयोगो ऽपशब्दः ॥ ६३ ॥ अवर्गे वर्गकरणं वर्गे चावर्गक्रिया गुणविपर्यासः संस्रव इति ॥ ६४ ॥

(अकान्ति, व्याघात, पुनरुक्त, अपशब्द, संस्रव-ये पांच लेख के दोष हैं। काल कल्लटे पत्र, असुन्दर छोटे बड़े भद्दे अक्षरों में लेख लिखना-पत्र का अकान्ति दोष होता है। पूर्व लेख का पिछले लेख से सम्बन्ध न जुड़ना-व्याघात दोष होता है। प्रथम कही हुई बात का फिर कथन करना पुनरुक्त दोष है। लिङ्ग (स्त्रिलिङ्ग पुलिङ्ग) वचन, काल, कारक, का अन्यथा प्रयोग करके भाषा का अशुद्ध लिखना, अप शब्द दोष है। विराम नहीं करने के

स्थान में विराम और विराम के स्थान में विरामाभाव तथा अर्थ क्रम के अनुसार लेखन लिखना संप्लव दोष कहाता है। ये पांच लेख पत्र के दोष हैं । ॥ ५६-६४ ॥

सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च ।

कौटल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः ॥ ६५ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे शासनाधिकारः दशमो ऽध्यायः ॥१०॥

आदित एकत्रिंश ॥ ३१ ॥

सारे शास्त्रों को विचार कर और शब्द प्रयोगों की व्यवस्था को जानकर कौटल्य (चाणक्य) आचार्य ने राजाओं के निमित्त यह शासन विधि का क्रम बताया है ॥ ६५ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में शासनाधिकार का दशवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



ग्यारहवां अध्याय

२६वां प्रकरण

कोशमें प्रवेश करने योग्य रत्नों की परीक्षा ।

इस प्रकरण में कोश (भण्डार) में इकट्ठी की जाने वाली मणि, मुक्ता, काष्ठ और वस्त्र आदि वस्तुओं की परीक्षा का वर्णन किया जावेगा ।

कोशाध्यक्षः कोशप्रवेश्यं रत्नं सारं फल्गु कुप्यं वा तज्जातकरणाधिष्ठितः प्रतिगृहीयात् ॥ १ ॥

कोशाध्यक्ष, कोश में रखने योग्य, रत्न, सार (चन्दन आदि की लकड़ी) फल्गु (वस्त्र आदि) कुप्य (धातु चमड़ा आदि) संज्ञक वस्तुओं को पृथक् २ वस्तुओं के संग्रह कर्ता कम-चारी की विद्यमानता में ग्रहण करे ॥ १ ॥

ताम्रपर्णिकं पाण्डयकवाटकं पाशिक्यं कौलेयं चार्ण्यं माहेन्द्रं कार्दमिकं स्रौतसीयं हादीयं हैमवतं च मौक्तिकम् ॥२॥ शुक्तिः शङ्खः प्रकीर्णकं च योनयः ॥ ३ ॥

ताम्रपर्णी नदी में जो मोती उत्पन्न होता है-उसे ताम्रपर्णिक कहते हैं । मलय कोटि पर्वत के समीपवर्ती सरोवरों में जो मोती उत्पन्न होवे-वें पाण्डयकवाटक कहाते हैं । पाटलिपुत्र के समीपवर्ती पाशिका नदी के मोती-पाशिक्य होते हैं । सिंहल द्वीप की कुला नामक नदी में

उत्पन्न मोती कौलेय कहते हैं । केरल देश की चूरी नदी में उत्पन्न चौऐंय, महेन्द्र पर्वत के समीपवर्ती समुद्र के माहेन्द्र, फारस देश की कर्दमा नदी के कार्शेमक, यवन देश की स्रोत-सी नदी के स्रोतसीय, यवन देश की श्रीघण्ट नामक गील के मोती हादीय, हिमालय के समीप में उत्पन्न होने वाले माती हैमवत कहते हैं । शुक्ति, शङ्ख, और प्रकीर्णक (शार्पीसर्प आदि के मस्तकोत्पन्न) ये तीन मोति के उत्पत्ति स्थान हैं ॥ २-३ ॥

मसूरकं त्रिपुटकं कूर्मकमर्धचन्द्रकं कञ्चु कितं यमकं कर्ककं खरकं सिक्थकं कामण्डलुकं रयावं नीलं दुर्विद्धं चाप्रशस्तम् ॥ ४ ॥

मसूर के समान आकार वाला मसूरक, तीन किनारों वाला, या छोटी इलायची के सदृश आकार वाला त्रिपुटक, कछुए के तुल्य आकार धारी कूर्मक, आधे चांद के तुल्य आकार वाले अर्ध चन्द्रक, ऊपर से मोटे छिलके वाले कञ्चुवित, जुड़े हुए यमक, फटे हुए कतक, खरदरे आकार वाले खरक, दाग वाले सिक्थक, कमण्डलु के रूप वाले कामण्डलुक काले नीले और अस्थान पर बिंधे हुए मोती अच्छे नहीं माने जाते हैं ॥ ४ ॥

स्थूलं वृत्तं निस्तलं आजिष्णु श्वेतं गुरु स्निग्धं देशविद्धं च प्रशस्तम् ॥ ५ ॥

स्थूल (मोटे) वृत्त (गोल) निस्तल (लुढ़कने वाले) चमकीले, श्वेत, भारी चिकने, और स्थान पर बिंधे हुए मोती उत्तम माने जाते हैं ॥ ५ ॥

शीर्षकमुपशीर्षकं प्रकाण्डकमवघाटकं तरलप्रतिबन्धं चेति यष्टिप्रदेशाः ॥ ६ ॥

बीच में एक मोती बड़ा और छोटे २ मोतियों की लड़ी को शीर्षक, एक बीच में बड़ा, दोनों ओर छोटे दो मोती, फिर बड़ा और दो छोटे-इस तरह की बनी मोतियों की लड़ी को उपशीर्षक, एक बीच में बड़ा मोती और दोनों ओर चार २ छोटे मोती-इस तरह की मोतियों की लड़ी को प्रकाण्डक, एक बड़ा मोती बीच में लगाकर उत्तरोत्तर, उतार के छोटे मोतियों की लड़ी को अवघाटक और सब बराबर के मोतियों की लड़ी को तरल प्रतिबन्ध कहते हैं ॥ ६ ॥

यष्टीनामष्टसहस्रमिन्द्रच्छन्दः ॥ ७ ॥ ततो ऽर्धं विजयच्छन्दः ॥ ८ ॥

शतं देवच्छन्दः ॥ ९ ॥ चतुष्पष्टिरर्धहारः ॥ १० ॥ चतुष्पञ्चाशद्रश्मिकलापः ॥ ११ ॥ द्वात्रिंशद्गुच्छः ॥ १२ ॥ सप्तविंशतिर्नक्षत्रमाला ॥ १३ ॥ चतुर्विंशतिरर्धगुच्छः ॥ १४ ॥ विंशतिर्माणवकः ॥ १५ ॥ ततो ऽर्धमर्धमाणवकः ॥ १६ ॥

एक हजार आठ मोतियों की माला के आभूषण को इन्द्रच्छन्द, पांच सौ चार मोतियों की लड़ियों के आभूषण को विजयच्छन्द, सौ लड़ियों के बने हुए भूषण को देवच्छन्द, चौंसठ लड़ियों के आभूषण को अर्धहार, चौवन लड़ियों के आभूषण को रश्मि-

कलाप, वत्तीम का गुच्छक, सत्ताईस का नवत्र माला, चौविस का अर्ध गुच्छक, बीस का माणवक और दश लड़ियों के आभूषण को अर्धमाणवक कहते हैं ॥ ७-१६ ॥

एत एव मणिमध्यास्तन्माणवका भवन्ति ॥ १७ ॥ एकशीर्षकः शुद्धो हारः ॥ १८ ॥ तद्वच्छेषाः ॥ १९ ॥ मणिमध्यो ऽर्धमाणवकः ॥ २० ॥ त्रिफलकः फलकहारः पञ्चफलको वा ॥ २१ ॥

यदि इतनी ही मोतियों की मालाओं के मध्य में एक २ मणि लगा दी जावे-तो वे इन्द्रच्छन्द माणवक नामक आभूषण कहलाने लगता है। यदि एक शीर्षक लड़ी के ढंग पर मोती लगा दिए जावे-तो इन्द्रच्छन्द शीर्षक शुद्धहार नामक हार बन जाता है। उपशीर्षक के ढंग पर पोये हुए मोती इन्द्रच्छन्दोपशीर्षक शुद्धहार आभूषण बनते हैं। इसी तरह सारे जान लेने चाहिए। यदि इनके मध्य में मणि लगा दी जावे-तो वह इन्द्रच्छन्द अर्धमाणवक हार होता है। यदि किसी भी मोती की माला में तीन दाने या पांच सोने के दाने पो दिए जावें-तो वह फलक हार होता है या मणि मध्य वाले अर्धमाणवक आभूषण में तीन या पांच सोने के दाने पो देने से फलकहार बनता है ॥ १७-२१ ॥

सूत्रमेकावली शुद्धा ॥ २२ ॥ सैव मणिमध्या यष्टिः ॥ २३ ॥ हेममणि-चित्रा रत्नावली ॥ २४ ॥ हेममणिमुक्तान्तरो ऽपवर्तकः ॥ २५ ॥ सुवर्णसूत्रा-न्तरं सोपानकम् ॥ २६ ॥ मणिमध्यं वा मणिसोपानकम् ॥ २७ ॥ तेन शिरो-हस्तपादकटीकलापजालकविकल्पा व्याख्याताः ॥ २८ ॥

केवल सूत्र में पिरोई हुई मोतियों की लड़ी शुद्ध और मणि के साथ पिरोई मोतियों की लड़ी यष्टि कहाती है। सोने में जड़ी हुई मणि से युक्त मोती माला रत्नावली कहाती है, मोतियों के कुछ २ अन्तर पर सुवर्ण जड़ित मणियों के पो देने पर अपवर्तक आभूषण बनता है। सुवर्ण के सूत्र में केवल मोती पोये हों तो वह सोपानक आभूषण (हार) कहाता है। यदि उसके बीच में मणि लगा दी जावे-तो मणि सोपानक हो जाता है। इसी तरह शिर, हस्त, पाद कटी (कमर) के भिन्न २ प्रकार के आभूषणों के नाम होते हैं अर्थात् शिर सोपानक, शिरमणि सोपानक आदि समझ लेने चाहिए ॥ २२-२८ ॥

मणिः कौटो मौल्यकः पारसमुद्रकश्च ॥ २९ ॥ सौगन्धिकः पद्मरागोऽनव-धरागः पारिजातपुष्पको बालसूर्यकः ॥ ३० ॥

मलय सागर के समीप कौटि नामक स्थान में उत्पन्न मणि कौट, मलय देश के प्रान्त में उत्पन्न होने वाली मणि, मौल्यक, समुद्रपार सिंहलद्वीप में उत्पन्न मणि पार समुद्रक

मणि कहाती है। इनके सौगन्धिक, पद्मराग, अनवद्यराग, पारिजात पुष्पक और बालसूर्यक ये पांच भेद हैं। नील कमल के सदृश मणि सौगन्धिक, लाल कमल के तुल्य पद्मराग, कमलकेसर के सदृश अनवद्यराग, पारिजात के पुष्प तुल्य पारिजातपुष्पक और उदय होते हुए सूर्य के सदृश बालसूर्यक मणि या माणिक्य कहाते हैं ॥ २६-३० ॥

वैदूर्य उत्पलवर्णः शिरीषपुष्पक उदकवर्णो वंशरागः शुक्पत्रवर्णः पुष्कर-
गो गोमूत्रको गोमेदकः ॥ ३१ ॥ नीलावलीय इन्द्रनीलः कलायपुष्पको महानी-
लो जाम्बवाभो जीमूतप्रभो नन्दकः स्रवन्मध्यः ॥ ३२ ॥ शुद्धस्फटिकः मृलाट-
वर्ण शीतवृष्टिः सूर्यकान्तश्चेति मणयः ॥ ३३ ॥

वैदूर्यमणि, के उत्पल वर्ण (नील कमल के आकार वाली) शिरीष पुष्पक (सिरस के फूल सदृश) उदक वर्ण (जल के तुल्य स्वच्छ) वंशराग (बांस के तुल्य हरी) पुष्कराग (हल्दी के तुल्य पीली) गोमूत्रक (गोमूत्र तुल्य कुछ पीली) और गोमेदक (गोरोचन के तुल्य वर्ण वाली) ये भेद होते हैं। इन्द्रनील मणि के नीलावलीय (नीली धारा वाली) इन्द्रनील (मोर के पंख सी नीली) कलाय पुष्पक [मटर के पुष्प के आकार वाली] महानील (अत्यन्त नीली) जाम्बवाभ (जामुन के तुल्य नीली) जीमूतप्रभ (मेघ तुल्य रंग वाली) नन्दक (श्वेत और नील) स्रवन्मध्य (मध्य से किरणें छोड़ने वाली) ये भेद माने गए हैं। श्वेत मणि भी-शुद्ध स्फटिक (अत्यन्त श्वेत) मृलाट वर्ण (तक्रवत् श्वेत) शीतवृष्टि [चन्द्रकिरण से पानी टपकाने वाली] सूर्यकान्त [सूर्य स्पर्श से आग उगलने वाली] चार तरह की होती है ॥ ३१-३३ ॥

षडतुश्चतुरश्रो वृत्तो वा तीव्ररागसंस्थानवानच्छः स्निग्धो गुरुरर्चिष्मानन्त-
र्गतप्रभः प्रभानुलेषो चेति मणिगुणाः ॥ ३४ ॥ मन्दरागप्रभः सशर्कर पुष्पच्छिद्रः
खण्डो दुर्धितो लेखाकीर्ण इति दोषाः ॥ ३५ ॥

छः कोने, चार कोने वाली गोल, गहरे रंग वाली निर्मल, चिकनी, भारी, दीप्ति वाली, बीच में चञ्चलकान्ति वाली, अपनी चमक से अन्य को चमका देने वाली मणि उत्तम होती है। ये सब मणियों के गुण माने गए हैं। मन्दराग, और कान्ति वाली, छोटे २ दानों वाली, छोटे २ छेदों से युक्त, कटी हुई, अयोग्य स्थान पर बिधी हुई तथा रेखाओं से घिरी हुई मणि दूषित कहाती है। ये सात मणियों के दोष हैं ॥ ३४-३५ ॥

विमलकः सस्यकोऽञ्जनमूलकः पित्तकः सुलभको लोहिताक्षो मृगाश्मको
ज्योतीरसको मैलेयक आहिच्छत्रकः कूर्पः प्रतिर्कूर्पः सुगन्धिकूर्पः क्षीरपकः शुक्ति-

चूर्णकः शिलाप्रवालकः पुलकः शुक्रपुलक इत्यन्तरजातयः ॥ ३६ ॥ शेपाः
काचमणयः ॥ ३७ ॥

विमलक [श्वेत हरित रंग मिश्रित] सस्यक [नीली] अञ्जन मूलक [नीले काले से मिली हुई] पित्तक [गोरोचन तुल्य] सुलभक [श्वेत] लोहिताक्ष [किनारों पर लाल] मृगाश्मक (श्वेत कृष्ण मिश्रित) ज्योतीरसक (श्वेत रक्त मिला हुआ) मैलेयक [सिंगरफ के तुल्य] आहिच्छत्रक [फीके रंग वाला] कूर्प (खुदहरा) प्रतिकूर्प (धब्बे वाला) सुगन्धिकूर्प [मूंग के तुल्य वर्णधारी] क्षीरपक [दुग्धवत् श्वेत] शुक्तिचूर्णक [सीप के चूने के आकार वाला] शिलाप्रवालक [मूंगे के रंग वाला] पुलक [मध्य कृष्ण] शुक्र पुलक [मध्य में श्वेत] ये मणियों के अन्य अवान्तर भेद या अवान्तर जातियां मानी गई हैं। इनके अतिरिक्त साधारण कोटि की मणियां काच मणि कहाती हैं ॥ ३६-३७ ॥

सभाराष्ट्रकं मध्यराष्ट्रकं कारभीरराष्ट्रकं श्रीकटनकं मणिमन्तकमिन्द्रवानकं च वज्रम् ॥ ३८ ॥ खनिः स्रोतः प्रकीर्णकं च योनयः ॥ ३९ ॥ मार्जाराक्षकं च शिरीषपुष्पकं गोमूत्रकं गोमेदकं शुद्धस्फटिकं मूलाटीपुष्पकवर्णं मणिवर्णानामन्य-
तमवर्णमिति वज्रवर्णाः ॥ ४० ॥ स्थूलं गुरु ग्रहारसहं समकोटिकं भाजनलेखितं कुआमि आजिष्णु च प्रशस्तम् ॥ ४१ ॥ नष्टकोणं निरश्रिपार्थापवृत्तं चाप्रशस्तम् ॥ ४२ ॥

सभाराष्ट्रक [विदर्भ [वरार] देशोत्पन्न] मध्यमराष्ट्रक [कोसल देशोत्पन्न] कश्मीर राष्ट्रक [कश्मीरोत्पन्न] [श्रीकटनकपर्वतोत्पन्न] मणिमन्तक [मणि मान्पर्वतोत्पन्न] इन्द्रवानक [कलिङ्ग देशोत्पन्न] श्रीकटनक इन छः स्थानों पर उत्पन्न होने के कारण हीरे के ये छः भेद होते हैं। इनकी खान, नदी प्रवाह और हाथी के दांत की मूल आदि इसके उत्पत्ति स्थान होते हैं। मार्जाराक्षक [विलाव की आंखों के रंग वाला] शिरीषपुष्पक [सिरस के फूल के रंग वाला] गोमूत्रक [गोमूत्र रंगधारी] गोमेदक [गोरोचन सदृश] शुद्ध स्फटिक [विल्लौर के तुल्य श्वेत] मूलाटी पुष्पक वर्ण [मूलाटी पुष्प सदृश] तथा मणियों के बताये हुए वर्णों में से किसी रंग वाला हीरा होता है। ये हीरे के रंग माने गए हैं (मोटा, चीकना, भारी चोट को सह लेने वाला, समान कोनों वाला, वर्तन में लकीर कर देने वाला, तकवे की तरह घूम जाने वाला तथा चमकदार हीरा उत्तम माना गया है। कोनों से हीन, लकीर से रहित, एक ओर से वे ढंगा-हीरा अच्छा नहीं माना जाता है ॥ ३८-४२ ॥)

प्रवालकमालकन्दकं वैवर्णिकं च रक्तं पद्मरागं च करटं गर्भिणिकावर्ज-
मिति ॥ ४३ ॥

अलकन्द नामक स्थान में उत्पन्न होने से आलकन्दक और यूनान के विवरण नामक समुद्री भाग से उत्पन्न होने से दैवर्णिक संज्ञक-मृंगा, दो प्रकार का होता है। लाल तथा पद्म के समान फीकालाल ये दो मृंगे के वर्ण होते हैं। (कीड़े से खाया हुआ तथा बीच में मोटा होना ये मृंगे के दोष माने गए हैं ॥४३॥)

चन्दनं सातनं रक्तं भूमिगन्धि ॥ ४४ ॥ गोशीर्षकं काजताम्रं मत्स्य-
गन्धि ॥ ४५ ॥ हरिचन्दनं शुक्रपत्त्रवर्णमाग्नगन्धि ॥ ४६ ॥ तार्णसं च
॥ ४७ ॥ ग्रामेरुकं रक्तं रक्तकालं वा वस्तमूत्रगन्धि ॥ ४८ ॥ दैवसभेयं रक्तं
पद्मगन्धि ॥ ४९ ॥ जावकं च ॥ ५० ॥ जोङ्गकं रक्तं रक्तकालं वा स्निग्धम्
॥ ५१ ॥ तौरूपं च ॥ ५२ ॥ मालेयकं पाण्डुरक्तम् ॥ ५३ ॥ कुचन्दनं काल-
वर्णकं गोमूत्रगन्धि ॥ ५४ ॥ कालपर्वतकं रुक्मगुरुकालं रक्तं रक्तकालं वा
॥ ५५ ॥ कोशकारपर्वतकं कालं कालचित्रं वा ॥ ५६ ॥ शीतोदकीयं पद्माभं
कालस्निग्धं वा ॥ ५७ ॥ नागपर्वतकं रुक्मं शैवलवर्णं वा ॥ ५८ ॥ शाकलं
कपिलमिति ॥ ५९ ॥ लघुस्निग्धमश्यानं सर्पिलेहलेपि गन्धसुखं त्वगनुसार्यनुल-
गमविराग्युष्णसहं दाहग्राहि सुखस्पर्शनमिति चन्दनगुणाः ॥ ६० ॥

चन्दन के सातन आदि सोलह उत्पत्ति-स्थान, लाल आदि नौ रंग और भूमि गन्ध आदि छः प्रकार के गन्ध होते हैं। सातन देश में उत्पन्न चन्दन का लाल रंग और उसमें भूमि के समान गन्ध होती है। (भूमि में जल डालने पर गन्ध निकलती है) गोशीर्षक देश में उत्पन्न चन्दन, कृष्ण और लाल सा होता है और उसमें मछली या लाल बरोंदे की सी गन्ध आती है। हरि चन्दन देशोत्पन्न चन्दन में तोते के सदृश हरा रंग और आम के तुल्य गंध होती है एवं वृणसा नामक नदी के तट पर उत्पन्न चन्दन भी हरि चन्दन जैसा ही होता है। ग्रामेरुक देशोत्पन्न, चन्दन का लाल या लाल काला सा रंग होता है और उसमें बकरे के मूत्र के समान गंध होती है। देव सभा के चन्दन में लाल वर्ण और पद्म की सी गंध होती है। जावक देश का चन्दन भी ऐसा ही होता है। जोङ्ग देश का चन्दन, लाल या लाल कालासा और चिकना होता है। इसका गन्ध भी पद्म तुल्य होता है। तुल्य देश का चन्दन भी जोङ्ग देश के तुल्य ही होता है। माला स्थान का पीला लाल सा चन्दन होता है और उसकी गंध भी पद्म की सी होती है। कुचन्दन देशोत्पन्न चन्दन का रंग काला और गन्ध गो मूत्र तुल्य होती है। कालपर्वत देश का चन्दन रुक्म, अगर के तुल्य काला, रक्त या कुछ रक्त और काला सा होता है। इसका गंध भी गो मूत्र का सा ही है। कोशकार पर्वत में होने वाला चन्दन काला या काले दागों वाला गो मूत्र गन्धी होता

है। शीतोदक देश का चन्दन कमल के समान आकारधारी, काला और चिकना होता है। नाग पर्वत में उत्पन्न चन्दन रुत और सेवाल के सदृश होता है। शाकल देशोत्पन्न कुछ पीला सा होता है। इन सब की मूत्रवत् गंध है। लघु [हल्का] चिकना, बहुत दिन में सूखने वाला, घृत के समान चिकना देह में लिपटने वाला, सुखकारी गन्ध से युक्त, त्वचा में शीतलताकारी फटा सा न दीखने वाला, वर्ण विकर से रहित, गरमी का सहने वाला, सन्तापहारक सुखकारी स्पर्श करने वाला चन्दन उत्तम होता है ॥४४-५०॥

अगुरु जोङ्गकं कालं कानचित्रं मण्डल चित्रं वा ॥६१॥ श्यामंदोङ्गकम् ॥ ६२ ॥ पारममुद्रकं चित्ररूपमुशीरगन्धि नवमालिकागन्धि वेति ॥ ६३ ॥ गुरु स्निग्धं पेशलगन्धि निर्हार्यग्निसहमसंक्षुब्धं समगन्धं त्रिमर्दसहमित्य-गुरुगुणाः ॥ ६४ ॥

जोङ्गक देशोत्पन्न “अगर” काला चितकवरा और काली सी वृन्दों से युक्त होता है। दोङ्गक देशोत्पन्न अगर काला होता है (ये दोनों प्रदेश आसाम में हैं)। समुद्र के पार सिंहलद्वीप आदि देशों में उत्पन्न अगर काली सफेद धारी वाला होता है। इसमें उशीर (खस) नई चमेली की सी गन्ध होती है। भारी, चिकना, मनोहर गन्ध वाला, शान्ति दायक, उष्णताका नाशक, आनन्दित करने वाले धूम से सम्पन्न, एक सी गन्ध वाला, पौछ देने पर गन्ध देने वाला-अगर उत्तम माना गया है ॥६१-६४॥

तैलपर्णिकमशोकग्रामिकं मांसवर्णं पद्मगन्धि ॥ ६५ ॥ जोङ्गकं रक्तपीत-कमुत्पलगन्धि गोमूत्रगन्धि वा ॥ ६६ ॥ ग्रामेरुकं स्निग्धं गोमूत्रगन्धि ॥ ६७ ॥ सौवर्णकुडयकं रक्तपीतं मातुलुङ्गगन्धि ॥ ६८ ॥ पूर्णकद्वीपकं पद्मगन्धि नवनी-तगन्धि वेति ॥ ६९ ॥

तैलपर्णिक नामक एक विशेष सुगन्धि द्रव्य, अशोक ग्राम में उत्पन्न होता है। उसका मांस के सदृश वर्ण और उसमें कमल के समान गन्ध होती है। जोङ्गक देशोत्पन्न तैलपर्णिक, लाल, पीला, कमल और गो-मूत्र तुल्य गंध वाला माना गया है। ग्रामेरुक ग्रामोत्पन्न तैलपर्णिक, चिकना तथा गो-मूत्र गन्धी होता है। आसाम के सुवर्ण कुडयक स्थान में उत्पन्न तैलपर्णिक, कुछ लाल पीला और विजोरे के तुल्य गन्ध वाला है। पूर्णकद्वीप में उत्पन्न तैलपर्णिक, कमल तुल्य गन्धी तथा नवनीत (माखन) तुल्य गंध वाला होता है ॥६५-६९॥

भद्रश्रीयं पारलौहित्यकं जातीवर्णम् ॥ ७० ॥ आन्तरवत्य मुशीरवर्णम् ॥ ७१ ॥ उभयं कुष्ठगन्धि वेति ॥ ७२ ॥

आसाम प्रान्त के लौहित्य नामक नद के पार उत्पन्न होने वाला, भद्रश्रीय (कपूर) मालती के पुष्प के समान श्वेत होता है। आसाम की अन्तरवती नदी के तट पर उत्पन्न आन्तरवत्य भद्रश्रीय (कपूर) उशीर (खस) के वर्ण का माना गया है। इन दोनों में कूट औषधि के सदृश गन्ध होता है ॥ ७०-७२ ॥

कालेयकः स्वर्णभूमिजः स्निग्धपीतकः ॥ ७३ ॥ औत्तरपर्वतको रक्तपीतक इति साराः ॥ ७४ ॥ पिएडकाथधूमसहमविरागि योगानुविधायि च ॥ ७५ ॥

चन्दनागरुवच्च तेषां गुणाः ॥ ७६ ॥

कालेयक (दारु हल्दी या पीला चन्दन) स्वर्ण भूमि प्रदेश में उत्पन्न होता है। यह चिकना और पीला होता है। उत्तर पर्वत (हिमालय) पर होने वाला 'कालेयक लाल और पीला सा होता है। चन्दन आदि वस्तु सारके अन्तर्गतमानी गई हैं। पीसने, पकाने और आग में जलाने पर भी गन्ध में कोई बदलाव नहीं होना तथा दूसरी वस्तु के साथ मिलने पर भी गन्ध देते रहना-इन तैलपर्णिक, भद्रश्रीय और कालेयक द्रव्य के गुण माने गए हैं। चन्दन और अगर के गुण भी इनमें मानने चाहिए ॥ ७३-७६ ॥

कान्तनावकं प्रैयकं चोत्तरपर्वतकं चर्म ॥ ७७ ॥ कान्तनावकं मयूरग्रीवा-
भम् ॥ ७८ ॥ प्रैयकं नीलपीतं श्वेतं लेखि विन्दुचित्रम् ॥ ७९ ॥ तदुभयमष्टाङ्गु-
लायामम् ॥ ८० ॥ त्रिसी महात्रिसी च द्वादशग्रामीये ॥ ८१ ॥ अव्यक्तरूपा
दुहिलितिका चित्रा वा त्रिसी ॥ ८२ ॥ परुषा श्वेतग्राया महात्रिसी ॥ ८३ ॥
द्वादशाङ्गुलायाममुभयम् ॥ ८४ ॥ श्यामिका कालिका कदली चन्द्रोत्तरा शाकुला
चारोहजाः ॥ ८५ ॥ कपिला विन्दुचित्रा वा श्यामिका ॥ ८६ ॥ कालिका कपिला
कपोतवर्णा वा ॥ ८७ ॥ तदुभयमष्टाङ्गुलायामम् ॥ ८८ ॥ परुषा कदली हस्तायता
॥ ८९ ॥ सैव चन्द्रचित्रा चन्द्रोत्तरा ॥ ९० ॥ कदलीत्रिभागा शाकुला कोठम-
ण्डलचित्रा कृतकर्णिकाजिनचित्रा चेति ॥ ९१ ॥ सामूरं चीनसी सामूली च
बाह्वेयाः ॥ ९२ ॥ षट्त्रिंशदङ्गुलमञ्जनवर्णं सामूरम् ॥ ९३ ॥ चीनसी रक्तकाली
पाण्डुकाली वा ॥ ९४ ॥ सामूली गोधूमवर्णेति ॥ ९५ ॥ सातिना नलतूला वृत्तपुच्छा
चौद्राः ॥ ९६ ॥ सातिना कृष्णा ॥ ९७ ॥ नलतूलानलतूलवर्णा ॥ ९८ ॥ कपिला वृत्त-
पुच्छा च ॥ ९९ ॥ इति चर्मजातयः ॥ १०० ॥ चर्मणां मृदु स्निग्धं बहुल रोम
च श्रेष्ठम् ॥ १०१ ॥

उत्तर पर्वत अर्थात् हिमालय प्रदेश में उत्पन्न चमड़ा, कान्तनावक और प्रैयक कहलाता है। कान्तनावक चमड़ा मयूर की ग्रीवा के तुल्य वर्ण वाला होता है। नीला पीला

सा श्वेत लकीरों से युक्त और विन्दुओं से चित्रित प्रैयक चमड़ा होता है। इन दोनों प्रकार के चमड़ों की चौड़ाई आठ अंगुल तक होती है। द्वादश ग्राम में उत्पन्न चमड़ा विसी और महा विसी कहाता है। जिसका रूप स्पष्ट प्रतीत न हो-वालों वाला चित्र विचित्र मृग आदि का चर्म विसी कहाता है। कठोर और श्वेत रङ्ग वाला चमड़ा महा विसी होता है। यह दोनों चमड़े त्रारह अंगुल तक चौड़े माने गए हैं। श्यामिका, कालिका, कदली, चन्द्रोत्तरा शाकुला-ये पांच प्रकार का चमड़ा हिमालय के आरोह प्रदेश में उत्पन्न होता है। कपिल रङ्ग का विन्दुओं से चित्र चमड़ा श्यामिका कहाता है। कपिल (कुछ पीला सा) तथा कथूतर के वर्ण का चमड़ा कालिका होता है। इन दोनों की मुटाई का प्रमाण भी आठ अंगुल ही माना गया है। कदली नामक चमड़ा कठोर या खुरदरा होता है जो एक हाथ लम्बा होता है। चांद से टिमकने होने से यही चन्द्रोत्तरा होता है। कदली से तीन भाग बड़ा अर्थात् तीन हाथ का शाकुला चर्म होता है। इसमें कुछ मण्डलाकार दाग होते हैं तथा कृतकर्णिक मृग चर्म के तुल्य चित्र विचित्र होता है। हिमालय के बाल्हव प्रदेश में सामूर, चीनसी और सामूली-नामक तीन तरह का चमड़ा होता है। अञ्जन के तुल्य काले वर्ण का छत्तीस अंगुल प्रमाण धारी चर्म, सामूर कहाता है। लाल नीले या पीले काले वर्ण का चमड़ा चीनसी होता है। गेहू के तुल्य वर्ण वाला चमड़ा सामूली होता है। उद्देशोत्पन्न चमड़ा-सातिना, नल-तूला और वृत्तपुच्छा माना है। (कोई २ इसे उद्द्र नामक जलचर की खाल मानते हैं) काले रंग का चमड़ा सातिना कहाता है। नलतूल [नरसल] के वर्ण का चमड़ा नलतूला होता है। कपिल वर्ण का चमड़ा वृत्तपुच्छा कहाता है। यहां तक चमड़े की जाति गिनायी हैं- ये फल्गु कहाती हैं। चमड़ों में कोमल, चिकना और अधिक रोम वाला चमड़ा उत्तम गिना जाता है ॥७७-१०१॥)

शुद्धं शुद्धरक्तं पक्षरक्तं चाविकम् ॥ १०२ ॥ खचितं वानचित्रं खण्डस-
ङ्गात्यं तन्तुविच्छिन्नं च ॥ १०३ ॥ कम्बलः कौचपकः कुलमिटिका सौमिटिका
तुरगास्तरणं वर्णकं तलिच्छकं वारवाणः परिस्तोमः समन्तभद्रकं चाविकम् ॥ १०४ ॥
पिच्छलमार्द्रमिव च सूक्ष्मं मृदु च श्रेष्ठम् ॥ १०५ ॥ अण्डस्रोतिसङ्गात्या कृष्णा
भिङ्गिन्सी वर्षवारणमपसारक इति नैपालकम् ॥ १०६ ॥ संपुटिका चतुरश्रिका
लम्बरा कटवानकं प्रावरकः सत्तलिकेति मृगरोम ॥ १०७ ॥ बाङ्गकं श्वेतं स्निग्धं
दुकूलं पौण्ड्रकं श्यामं मणिलिग्धं सौवर्णकुड्यकं सूर्यवर्णम् ॥ १०८ ॥ मणिलि-
ग्धोदकवानं चतुरश्रवानं व्यामिश्रवानं च ॥ १०९ ॥ एतेषामेकांशुकमर्धद्वित्रिचतु-
रंशुकमिति ॥ ११० ॥ तेन काशिकं पौण्ड्रकं क्षौमं व्याख्यातम् ॥ १११ ॥

भेड़ की-ऊन से बने हुए कपड़े, श्वेत, लाल और श्वेत तथा आधे लाल होते हैं। कसीदे के काम वाले खचित, बुनते हुए ही विचित्र फूलों से युक्त वान चित्र, भिन्न २ बुनावट से बुने हुए, खण्ड संघात्य और जालीदार तन्तुविच्छिन्न उनी वस्त्र होते हैं। कम्वल, कौचपक (शिरोवस्त्र) कुलमितिका (हाथी का पीठ वस्त्र) सौमितिका [अम्बारी का काला वस्त्र] तुरगास्तरण [अंश्व की झूल] वरणक [रंगा हुआ कपड़ा] तलिच्छक [विस्तरे के तले का कम्वल] वारवाण [कोट या चोला] परिस्तोम [हाथी की झूल] समन्त भद्रक [चार खाने का कम्वल] ये सब ऊन के बने हुए उत्तम २ वस्त्र होते हैं। चिकना, गीला सा प्रतीत होने वाला, सूक्ष्म [वारीक] और कोमल व उनी वस्त्र श्रेष्ठ माना जाता है। आठ टुकड़े जोड़कर बनाई हुई काली भिङ्गसी कहाती है, जो वर्षा के रोकने वाली होती है-इसे ही अपसारक कहते हैं या एक ही कपड़े से बनी अपसारक कहाती है। ये सब नेपाल में बनायी जाती हैं। संपुटिका [जाँघिया] चतुराश्रका [चारों ओर बेल बूटों वाला] लम्बरा [ओढ़ने का वस्त्र] कटवानक [मोटे डोरे से बना हुआ] प्रावरक [किनारीदार दुपट्टा] सत्तलिका [नीचे बिछाने का कपड़ा] ये सब मृग के रोम के वस्त्र होते हैं। वाङ्गक, नामक दुशाला श्वेत चिकना होता है। यह वङ्ग देश में बनता है। पुण्ड्र देश में बना हुआ दुशाला काला और मणि के तुल्य चिकना होता है। यह पौण्ड्रक कहाता है। आसाम के सुवर्ण कुडय देश में उत्पन्न दुशाला सूर्य वर्ण के समान चमकीला होता है। इसे सौवर्ण्य कुडयक कहते हैं। ये वस्त्र, मणि के समान चिकने तन्तु जल में भिगोकर चारों ओर किनारी निकाल कर या चित्र विचित्र किनारी बनाकर बनाये जाते हैं। ये वस्त्र, एक तन्तु दो तन्तु तीन तन्तु चार तन्तु मिलाकर बनाये जाते हैं। इसी प्रकार काशिक पौण्ड्रक रेशमी वस्त्रों को समझ लेना ॥१०२-१११॥

मार्गधिका पौण्ड्रका सौवर्णकुडयका च पत्रोर्णाः ॥ ११२ ॥ नागवृक्षो
लिकुचो वकुलो वटश्च यानयः ॥ ११३ ॥ पीतिका नगवृक्षिका ॥ ११४ ॥
गोधूमवर्णा लैकुचो ॥ ११५ ॥ श्वेता वाकुली ॥ ११६ ॥ शेषा नवनीतवर्णा
॥ ११७ ॥ तासां सौवर्णकुडयका श्रेष्ठा ॥ ११८ ॥ तथा कौशेय चीनपट्टाश्च
चीनभूमिजा व्याख्याताः ॥ ११९ ॥ माधुरमापरान्तकं कालिङ्गकं काशिकं वाङ्गकं
वात्सकं माहिषकं च कार्पासिकं श्रेष्ठमिति ॥ १२० ॥

मार्गधिक, पौण्ड्रक सौवर्ण कुडयक-तीन प्रकार की पत्रोर्णा [पत्तों के तन्तु की ऊन बनी हुई] होती है। इनके नागवृक्ष, लिकुच, वकुल और वट वृक्ष उत्पत्ति स्थान हैं। नाग वृक्ष से बने पत्रोर्णा पीले रंग की होती है। लिकुच (बड़हर) से बनने वाली गेहुवरंग

की बनती है। वकुल से श्वेत और बट वृक्ष से नवनीत [मक्खन] सी चिकनी बनती है। [कोई २ इन वृक्षों में रहने वाले कीटों से बने रेशमी वस्त्र को पत्रोर्णा कहते हैं] इन सब में सौवर्ण कुडय देश में उत्पन्न पत्रोर्णा उत्तम मानी गई है। इसी तरह के कौशेय, चीनपट्ट और चीनी भूमि के वस्त्र [चायना शिल्क] समझ लेनी चाहिए। पाण्ड कोङ्कण, कलिङ्ग काशी, वङ्ग, वत्स और महिषक [मैसूर] देश में उत्पन्न कपास के कपड़े श्रेष्ठ माने गए हैं। यहां तक फल्गु वस्तुओं का वर्णन किया गया है ॥१२-१२०॥

अतः परेषां रत्नानां प्रमाणं मूल्यलक्षणम् ।

जातिं रूपं च जानीयान्निधानं नवकर्म च ॥ १२१ ॥

कहे हुए रत्न आदि वस्तुओं के मूल्य लक्षण, प्रमाण जाति, रूप, खान और उनके नये २ संस्कारों को कोशाध्यक्ष अवश्य जानलेवे अर्थात् इनसे अवश्य जानकारी रखे ॥१२१॥

पुराणप्रतिसंस्कारं कर्मगुह्यमुपस्करान् ।

देशकालपरीभोगं हिंसाणां च प्रतिक्रियाम् ॥ १२२ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे कोशप्रवेश्यरत्नपरीक्षा एकादशोऽध्यायः ;

॥ ११ ॥ आदितो द्वात्रिंशः ॥ ३२ ॥

पुराने रत्नों का संस्कार रत्नों के गुह्य प्रकार [छीलना रंग बदलना आदि] उपस्कर (रत्नों के साफ करने के साधन आदि) देश कालानुसार उनका उपयोग तथा उनमें लगने वाले कीड़े या चूहे आदि का प्रतिकार भी कोशाध्यक्ष को अवश्य जान लेना चाहिए ॥१२२॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार नामक अधिकरण में कोश में :

रखने योग्य रत्नादि की परीक्षा का ग्यारहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



बारहवां अध्याय

३०वां प्रकरण

खानके कार्योंका संचालन ।

अब खान के कार्यों के संचालन का प्रकार बताया जाता है ।

आकराध्यक्षः शुल्बधातुशास्त्रसपाकमणिरागज्ञस्तज्ज्ञसखो वा तज्जातकर्मकरो-

पकरणसंपन्नः क्रिड्मृपाङ्गारभस्मलिङ्गं वाकरं भूतपूर्वमभूतपूर्वं वा भूमिप्रस्तररस-

धातुमत्यर्थवर्णगौरवमुग्रगन्धरसं परीक्षेत ॥१३॥

आकराध्यक्ष (खानों का अफसर) तांबा आदि धातु शास्त्र रस पाक (धातु मारण) और मणिराग [मणियों के वर्ण] आदि का उत्तम ज्ञाता होना चाहिए। और अपने साथी-कर्मचारी भी इसी विषय के अच्छे जानकार रखे। यह इस काम के करने वाले कारीगर और इसके साधनों [ओजारों] से सम्पन्न रहे। लोहे आदि के कोट, मूष (धातु तपाने की मिट्टी की छोटी कटोरी) और अङ्गार भस्म आदि से पुरानी या नई खान की पहचान निकाले अर्थात् यहां कोई खान निकल सकती या नहीं ऐसा पता लगावे। भूमि, पत्थर, रस, [पारा आदि] और धातुओं की भी चमकीले पन और उग्र गन्ध से पता लगाता रहे ॥१॥

पर्वतानामभिज्ञातोद्देशानां विलगुहोपत्यकालयनिगूढखातेष्वन्तःप्रस्यन्दिनो जम्बूचूततालफलपक्कहरिद्राभेदहरितालमनःशिलाचौद्रहिङ्गलुकपुण्डरीकशुकमयूपत्र-
वर्णाः सवर्णोदकौषधीपर्यन्ताश्चिकणा विशदा भारिकाश्च रसाः काञ्चनिकाः॥२॥
अप्सु निष्ठयतास्तैलवद्विसर्पिणः पङ्कमलग्राहिणश्च ताम्ररूप्ययोः शतादुपरि वेद्वारः
॥ ३ ॥ तत्प्रतिरूपकमुग्रगन्धरसं शिलाजतु विद्यात् ॥ ४ ॥

पर्वतों के परिचित प्रदेशों के विल, गुहा, पर्वत के समीप की ऊंची नीची भूमि और छिपे हुए गर्तों में बहने वाले, जामुन, आम, ताड़ के फल, पकी हलदी, हरताल, भैतसिल, शहद, शिंगरफ, कमल, शुक और मोर के पंखों के समान वर्ण वाले तथा अन्य औषधियों के वर्णधारी, चिकने, स्वच्छ और भारी जलों को देखकर यहां सुवर्ण की खान है-ऐसा समझ लेना चाहिए। जब इस पानी को अन्य जल में मिलाया जावे और उसमें यह जल तेल की तरह फैल जावे, तथा निर्मली के फल के समान यह मैले जल को साफ करके नीचे बैठ जावे, तथा सौ पल चांदी और तांबे को एक पल जल सुनहरा [पीला] बना देवे तो समझ लेना चाहिए, कि इस स्थान पर सुवर्ण की खान है। यदि ऐसा ही पानी हो और उसमें उग्र गंध और उग्र रस हो-तो वहां शिलाजीत की खान समझनी चाहिए ॥

पीतकास्ताम्रकास्ताम्रपीतका वा भूमिप्रस्तरधातवः प्रभिन्ना नीलराजीवन्तो मुद्गमाषकृसरवर्णा वा दधिविन्दुपिण्डचित्रा हरिद्रा हरीतकीपद्मपत्रशैवलयकृत्-
लीहानवद्यवर्णा भिन्नाश्च वालुकालेखाविन्दुस्वस्तिकवन्तः सगुलिका अर्चिष्मन्त-
स्ताप्यमाना न भिद्यन्ते बहुफेनधमाश्च सुवर्णधातवः प्रतीवापार्थास्ताम्ररूप्यवेधनाः
॥ ५ ॥

पीले, तांबे के रंग के लाल तथा लाल पीले, भूमि (मिट्टी) पत्थर मिले धातु हों इनके गलाने पर इनमें नीली पंक्ति दिखाई देने लगे या मूंग, उड़द के पकाने के जल के

वर्ण के तुल्य वर्ण हो जावे। दही के बिन्दु समूह से चित्रित, हल्दी, हरड़, कमल का पत्ता, सिवाल, यकृत (ज़िगर) और सीहा (तिल्ली) के सदृश नीला सा वर्ण हो जावे। तोड़ने पर छोटी २ रेत की रेखा और बिन्दुओं से युक्त, स्वास्तक का आकर प्रतीत होने लगे। तपा देने पर

गोली सी चमकने लगे-परन्तु वे टूटे नहीं, उनमें बहुत से भाग और धूम खड़ी हो जावे-तो समझना चाहिए कि यहां सुवर्ण की खान है। यदि इनको पिघलाकर ताँवे और चांदी पर ढाला जावे-तो उनके भी आकार पीले हो जावेंगे ॥ ५ ॥

शङ्ख कपूर स्फटिक नवनीत कपोत पारावत विमलक मयूर ग्रीवा वर्णाः सस्यक गोमेद-
क गुडमत्स्य एण्डिका वर्णाः कोविदार पद्म पाटली कलाय चौमात सोपुष्प वर्णाः ससीसाः
साञ्जनाः विस्रा भिन्नाः श्वेताभाः कृष्णाः कृष्णाभाः श्वेताः सर्वे वा लेखा बिन्दु चित्रा
मृदवो ध्यायमाना न स्फुटन्ति बहुफेनधूमाश्च रूप्यधातवः ॥ ६ ॥ सर्वधातूनां
गौरववृद्धौः सत्त्ववृद्धिः ॥ ७ ॥

जो धातु तपाने पर शङ्ख, कपूर, स्फटिक (विल्लोर) नवनीत (मक्खन) कपोत (भूरा कबूतर) पारावत (कबूतर) विमलक (पक्षी विशेष) और मयूर की ग्रीवा के वर्ण वाले सस्यक (अन्न के तुल्य हरित) गोरोचन, गुड़, मत्स्य एण्डक (खांड का राव) के वर्ण वाले, कोविदार (कच्चार) कमल, पाटली (नया धान्य) कलाय (मटर) चौम [अलसी विशेष] अतसी [अलसी] पुष्प के वर्णधारी, सीसा, अञ्जन (सुर्मा) सहित, दुर्गन्धपूर्ण, तोड़ने पर श्वेत, काली, श्वेत मिश्रिकाली सी रेखा और बिन्दुओं से युक्त, कोमल होकर भी टूटे नहीं, बहुत से भाग और धुआं देवे-वहां चांदी धातु की मिलावट या खान समझनी चाहिए। इन सारे धातुओं में जितना गौरव (भारीपन) होगा-उतनी ही उन में उत्तमता समझनी चाहिए ॥ ६-७ ॥

तेषामशुद्धा मृदगर्भा वा तीक्ष्णमूत्रचारभाविता राजवृक्षवटपीलुगोपित्तरो-
चना महिषखरकरभमूत्रलण्डपिण्डवद्धास्तत्प्रतीवापास्तदवलेपा वाविशुद्धाः स्रवन्ति
॥ ८ ॥ यवमाषतिलपलाशपीलुक्षारैर्गोक्षीराजक्षीरैर्वा कदली वज्रकन्दप्रतीवापो मार्द-
वकरः ॥ ९ ॥

इन में जो अशुद्ध और मलपूर्ण धातु खण्ड हों-उनको तीक्ष्ण मूत्र चार में बुझाकर अमलतास, वड़, पीलु गोरोचन तथा भैंसा, गंधा, ऊँट के बच्चे के मूत्र और मलपिण्ड में रखकर तपावे या इनके लेप करके तपावे-तो ये शुद्ध होकर पिघल निकलते हैं। जौ, उड़द तिल, ढाक और पीलु के चार, गाय, बकरी के दूध, कदली तथा वज्रकन्द (सूरण कन्द) की भावना देना या गोले में तपाना उन धातु खण्डों को मृदु बना देता है ॥ ८-९ ॥

मधुमधुकमजापयः सतैलं घृतगुडकिण्वयुतं सकन्दलीकं ।

यदपि शतसहस्रधा विभिन्नं भवति मृदु त्रिभिरेव तन्निपेकैः ॥ १० ॥

शहद, मुलहदी, बकरी का दूध, तेल, घृत, गुड़, सुरा बीज या सूरणकन्द आदि के योग से जो धातु खण्ड, सैंकड़ों, सहस्रों चोटों से भी नहीं टूटता है, वह इनकी तीन ही भावना से कोमल हो जाता है ॥ १० ॥

गोदन्तशृङ्गप्रतीवापो मृदुस्तम्भनः ॥ ११ ॥ भारिकः स्निग्धो मृदुश्च प्रस्तरधा-
तुर्भूमिभागो वा पिङ्गलो हरितः पाटलो लोहितो वा ताम्रधातुः ॥ १५ ॥ काक-
मेचकः कपोतरोचनावर्णः श्वेतराजिनद्धो वा विस्रः सीसधातुः ॥ १३ ॥ ऊपरकर्बुरः
पक्वलोष्ठवर्णो वा त्रपुधातुः ॥ १४ ॥ कुरुम्वः पाण्डुरोहितः सिन्दवारपुष्पवर्णो
वा तीक्ष्णधातुः ॥ १५ ॥ काकाण्डभुजपत्रवर्णो वा वैकृन्तकधातुः ॥ १६ ॥
अच्छः स्निग्धः सप्रभो घोषवाञ्शीतस्तीव्रस्तनुरागश्च मणिधातुः ॥ १७ ॥ धातु-
समुत्थितं तज्जातकर्मन्तिषु प्रयोजयेत् ॥ १८ ॥

यदि पिघले हुए इन धातुओं पर गाय के दांत और सींग का चूर्ण घुरका दिया जावे-
तो ये फिर ज्यों के त्यों जम जाते हैं । भारी, चिकना, कोमल पापाण धातु तथा हरा कुङ्कुम
लाल या अधिक लाल भूमि भाग हो-तो वहाँ ताम्र धातु की स्थिति समझनी चाहिए । जो
भूमि स्थान काक के तुल्य काला कवूतर और गोरोचन सा भूरा, श्वेत पंक्तिर्यों से युक्त और
दुर्गन्ध पूर्ण हो वहाँ सीसे की खान का अनुमान करना चाहिए । जो भूमि भाग उपर
(अनुपजाऊ) भूमि के तुल्य चित्र-विचित्र, अथवा पके हुए मिट्टी के ढेले के आकार का हो-
तो वहाँ भी त्रपु (सीस) धातु की उत्पत्ति का स्थान समझना चाहिए । चिकने पत्थरों वाले,
कुङ्कुम श्वेत और लाल खिले हुए निर्गुण्टी के पुष्प के वर्ण वाला- जहाँ भूमि भाग होगा-वहाँ
लोह की उत्पत्ति का स्थान समझना चाहिए । कौवे के अण्डे या भोज पत्र के तुल्य आकार
वाले भूमि भाग में वैकृन्तक [इस्पाती] लोहे की उत्पत्ति की खान समझ लेवे । चमकीला
चिकना, शुद्ध अग्नि जलाने पर शब्द करने वाला, अत्यन्त शीतल, थोड़े से रङ्ग का धारण
करने वाला भूमि भाग मणियों की उत्पत्ति का स्थान होता है । धातुओं से उत्पन्न धन को
अन्य सुवर्ण आदि धातुओं की उत्पत्ति में ही व्यय करते रहना चाहिए ॥ ११-१८ ॥

कृतभाण्डव्यवहारमेकमुखमत्ययं चान्यत्र कर्तृक्रेतुविक्रेतृणां स्थापयेत्
॥ १९ ॥ आकरिकमपहरन्तमष्टगुणं दापयेदन्यत्र रत्नेभ्यः ॥ २० ॥ स्तेनमनिसु-
ष्ठोपजीविनं बद्धं कर्म कारयेत् ॥ २१ ॥ दण्डोपकारिणश्च ॥ २२ ॥

इन इकट्ठी की हुई सुवर्ण आदि वस्तुओं का किसी एक ही मुख्य स्थान पर विक्रय होना चाहिए । जो राजा से छुप कर इन सुवर्ण आदि धातुओं को निकाले खरीदे और बेचे तो राजा उन्हें दण्ड देवे । रत्न के अतिरिक्त जो खान के अन्य द्रव्य सुवर्ण आदि हैं यदि उनको कोई वनवावे वा बेचे-तो राजा उनसे जुरमाने में आठ गुणा धन वसूल करे । जो चोरी से राजा की बिना आज्ञा के खान से द्रव्य इकट्ठा करे-तो राजा उसे वन्यधन में डाल कर कठिन काम करवावे और जो अपराधी की सहायता करे-राजा उसको भी उतना ही दण्ड दे ॥ १६-२२ ॥

व्ययक्रियाभारिकमाकरं भागेन प्रक्रमेण वा दद्यात् ॥ २३ ॥ लाघविकमात्मना कारयेत् ॥ २४ ॥ लोहाध्यक्षस्ताम्रसीसत्रपुवैकृन्तकारकूटवृत्तकंसताललोहकर्मान्ताङ्कारयेत् ॥ २५ ॥ लोहभाण्डव्यवहारं च ॥ २६ ॥ लक्षणाध्यक्षतुर्भागताम्रं रूप्यरूपं तीक्ष्णत्रपुसीसाञ्जनानामन्यतमं माषजीजयुक्तं कारयेत् पणमर्धपणं पादमष्टभागमिति ॥ २७ ॥ पादार्जवं ताम्ररूपं माषकमर्धमाषकं काकणीमर्धकाकणीमिति ॥ २८ ॥ रूपदर्शकः पणयात्रां व्यावहारिकीं कोशप्रवेश्यां च स्थापयेत् ॥ २९ ॥ रूपिकमष्टकं शतम् ॥ ३० ॥ पञ्चक शतं व्याजीम् ॥ ३१ ॥ पारीक्षिकमष्टभागिकं शतम् ॥ ३२ ॥ पञ्चविंशतिपणमत्ययं चान्यत्र कर्तृक्रेतृविक्रेतृपरीक्षितभ्यः ॥ ३३ ॥

यदि खान के आरम्भ में व्यय अधिक हो गया हो-तो भाग २ [किस्त दर किस्त] उस रुपये को चुका दे या कुछ सुवर्ण बेच कर उस ऋण को चुका दे । यदि थोड़ा सा भार हो-तो राजा या अध्यक्ष अपने पास से देकर उस कार्य को चलता करदे । लोहाध्यक्ष, तांबा, सीसा, त्रपु [आम सीसा] वैकृन्तक [इस्पाती लोहा] आरकूट [दृढ़ लोह] वृत्त [गोल लोह] कांसी, ताल तथा अन्य प्रकार से लोहे के कामों को अपनी देख रेख में करवावे । इसी प्रकार लोहे से बनी हुई तलवार आदि वस्तुओं के बेचने का प्रबन्ध भी स्वयं ही करे । लक्षणाध्यक्ष, [सिक्के बनवाने का अध्यक्ष] चार माशा तांबा तथा एक माशा तीक्ष्ण त्रपु-सीसा या अञ्जन (काला लोह) और शेष ग्यारह मासा चाँदी मिलाकर सौलह मासे का एक पण (रुपया) बनवावे । इस प्रकार अर्ध पण (इस से आधा) आठ आना, पादपण (चौवन्नी) और अष्ट भाग पण (दोअन्नी) बनवावे । रुपये के चतुर्थ भाग के व्यवहार के लिए एक तांबे का सिक्का भी बनवाया जावे, जिसे माषक कहते हैं । इस माषक में ग्यारह मासा तांबा चार मासा चाँदी और एक माशा लोहा आदि होता है । इसी हिसाब से अर्ध माषक काकणी और अर्ध काकणी सिक्के बनते हैं । सिक्कों का अध्यक्ष, इन पणों के चलने या कोश में डलवा देने की व्यवस्था करे । सौपणपर आठ पण राज्य भाग को रूपिक, सौपणपर पांच पण

राज्य भाग को व्याजी, और सौंपणपर आठवें हिस्से राज्य भाग को पारीक्षिक कहते हैं। जिनको सिक्के बनाने लेने देने और परीक्षा करने का अधिकार है। उनसे अतिरिक्त जो इनको बनाता, लेता, देता है, उस पर कम से कम पच्चीस पण दण्ड होना चाहिए ॥ २३-३३ ॥

खन्यध्यक्षः शङ्खवज्रमणिमुक्ता प्रवालक्षारकर्मान्तान्कारयेत् ॥ ३४ ॥ पण-
नव्यवहारं च ॥ ३५ ॥

खान का अध्यक्ष, शङ्ख, वज्र (हीरा), मणि, मोती, प्रवाल, (मृन्ना) तथा यवक्षार आदि से सम्बन्ध रखने वाले कामों का प्रबन्ध करे एवं इनके बेचने का समुचित प्रबन्ध करता रहे ॥ ३५ ॥

लवणाध्यक्षः पाकमुक्तं लवणभागं प्रकयं च यथाकालं संगृहीयात् ॥ ३६ ॥
विक्रयाच्च मूल्यं रूपं व्याजीम् ॥ ३७ ॥ आगन्तुलवणं पट्टभागं दद्यात् ॥ ३८ ॥
दत्तभागविभागस्य विक्रयः पञ्चकं शतं व्याजीं रूपं रूपिकं च ॥ ३९ ॥ क्रेता
शुल्कं राजपण्याच्छेदानुरूपं च वैधरणं दद्यात् ॥ ४० ॥ अन्यत्र क्रेता पट्टतमत्ययं
च ॥ ४१ ॥ त्रिलवणमुत्तमं दण्डं दद्यात् ॥ ४२ ॥ अनिसृष्टोपजीवी च ॥ ४३ ॥
अन्यत्र वानप्रस्थेभ्यः ॥ ४४ ॥ श्रोत्रियास्तपस्विनो विष्टयश्च भक्तलवणं हरेयुः
॥ ४५ ॥ अतोऽन्यो लवणक्षारवर्गः शुल्कं दद्यात् ॥ ४६ ॥

लवणाध्यक्ष तैय्यार हुए और बेचने योग्य लवण को समयानुसार इकट्ठा करले। विक्रय से प्राप्त मूल्य पर सौ पर पाँच रुपये राज्य भाग रूप व्याजी भी लेले। बाहर से आने वाले नमक पर राजा छठा भाग कर के रूप में ग्रहण करे। जो इस प्रकार राजा के टैक्स को भर देता है, वही उस राजा के राज्य में लवण बेचने का अधिकारी हो सकता है। वह फिर अपने पाँच प्रतिशत राज्य भाग की व्याजी सौ पर आठवें भाग राज्य भाग की रूप या सौ पर आठ रुपये की रूपिक भी प्रदान करे। खरीदने वाला राजकीय बाजार का नियमित टैक्स भी अश करे। जो राजकीय बाजार से अन्यत्र चोरी से बेचता है, उसपर प्रतिशत छः रुपये का जुर्माना किया जावे। घटिया या मिलावटी नमक बेचने वाले पर उत्तम दण्ड (अधिक जुर्माना) होना चाहिए। जो बिना राजा की आज्ञा के नमक से जीविका करता है उसपर भी यही दण्ड है। वानप्रस्थ मुनि बिना टैक्स नमक बना सकता है। वेदपाठी, तपस्वी, राज्य की बेगार देने वाले पुरुष, अपने उपयोग में आने मात्र लवण की बिना टैक्स चुल्ही के भी व्यवहार में ला सकते हैं। इनके अतिरिक्त लवण तथा अन्य क्षार के सम्बन्ध में प्रत्येक बनाने बेचने वाला-राजा को उसका शुल्क (टैक्स) अदा करे ॥ ३६-४६ ॥

एवं मूल्यं विभागं च व्याजीं परिधमत्ययम् ।

शुल्कं वैधरणं दण्डं रूपं रूपिकमेव च ॥ ४७ ॥

खनिभ्यो द्वादशविधं धातुं पण्यं च संहरेत् ।

एवं सर्वेषु पण्येषु स्थापयेन्मुखसंग्रहम् ॥ ४८ ॥

इस प्रकार मूल्य, विभाग, (सौ पर पाँच) व्याजी, (पारीक्षिक दण्ड विशेष) परिध अत्यय, (दण्ड) शुल्क (टैक्स) वैधरण, (तय-वाजारी टैक्स) रूप (सिक्के) और रूपिक [सौ पर आठ पण] तथा खानों से बारह प्रकार के धातु एवं अन्य बेचने योग्य पदार्थों को खान का अध्यक्ष संग्रह करे। इन सारी बेचने की चीजों का एक मुख्य बाजार बनाया जावे ॥ ४७-४८ ॥

आकरप्रभवः कोशः कोशादण्डः प्रजायते ।

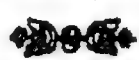
पृथिवी कोशदण्डाभ्यां प्राप्यते कोशभूषणा ॥ ४९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे आकरकर्मन्तिप्रवर्तनं दशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

आदितः त्रयस्त्रिंशः ॥ ३३ ॥

कोश की उन्नति खानों पर निर्भर है कोश के भरे रहने पर सेना तैयार होती है। कोश के आधार पर ही दण्ड व्यवस्था होती है। कोश और दण्ड से ही कोश को भूषित करने वाली भूमि प्राप्त होती है ॥ ४९ ॥

इति श्री कौटिलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में खान की वस्तु उत्पन्न करने का बारहवां अध्याय समाप्त हुआ ।



तेरहवां अध्याय

३१वां प्रकरण

अक्षशाला में सुवर्णाध्यक्ष का कार्य

सुवर्णाध्यक्षः सुवर्णरजतकर्मन्तानामसंबन्धावेशनचतुःशालामेकद्वारामक्ष-
शालां कारयेत् ॥ १ ॥ विशिखामध्ये सौवर्णिकं शिल्पवन्तमभिजातं प्रात्यर्थिकं
च स्थापयेत् ॥ २ ॥

खान से निकाले हुए सुवर्ण के साफ करने के स्थान को अक्षशाला कहते हैं इसी अक्षशाला के अध्यक्ष या सुवर्णाध्यक्ष के कामों का अब निरूपण किया जाता है। सुवर्णाध्यक्ष

एक ऐसी अक्षशाला बनवावे जिस में एक द्वार और चारों ओर चार कमरे हों, परन्तु उन चारों कमरों का एक दूसरे में आने जाने का मार्ग न हो। विशिखा [सर्पाफे] में सुवर्ण बेचने वाले [सर्पाफे] बड़े शिल्पी, कुलीन और अविश्वासघात रखने चाहिए ॥ १-२ ॥

जाम्बूनदं शातकुम्भं हाटकं वैणवं शृङ्गशुक्तिजं, जातरूपं रसविद्धमाकरो-
द्गतं च सुवर्णम् ॥ ३ ॥ किञ्जल्कवर्णं मृदु स्निग्धमनादि आजिष्णु च श्रेष्ठम् ॥ ४ ॥
रक्तपीतकं मध्यमम् ॥ ५ ॥ रक्तमवरम् ॥ ६ ॥ श्रेष्ठानां पाण्डु श्वेतं चाप्राप्तकम्
॥ ७ ॥ तद्येनाप्राप्तकं तच्चतुर्गुणेन सीसेन शोधयेत् ॥ ८ ॥ सीसान्वयेन भिद्यमानं
शुष्कपटलैर्धर्मापयेत् ॥ ९ ॥ रूक्षत्वाद्विद्यमानं तैलगोमये निपेचयेत् ॥ १० ॥
आकरोद्गतं सीसान्वयेन भिद्यमानं पाकपान्त्राणि कृत्वा गण्डिकासुकुट्टयेत् ॥ ११ ॥
कन्दलीवज्रकन्दकल्के वा निपेचयत् ॥ १२ ॥

मेरु पर्वत की जम्बू नदी से उत्पन्न होने वाले सुवर्ण को जाम्बूनदं कहते हैं। शत कुम्भ पर्वत से उत्पन्न सुवर्ण, शात कुम्भ माना गया है। खान से उत्पन्न सुवर्ण हाटक होता है वैणु पर्वत पर उत्पन्न सुवर्ण वैणव कहाता है। भूमि से उत्पन्न सुवर्ण शृङ्ग शुक्ति होता है। पर्वत से उत्पन्न शुद्ध सुवर्ण जातरूप, रसों के योग से बना रसविद्ध और खानों से साफ करके बनाया हुआ आकरोद्गत कहाता है। कमल के रज के समान वर्ण, कोमलता और चिकनाई से युक्त शब्द रहित तथा चमकीला सुवर्ण उत्तम माना गया है। लाल पीला मध्यम और लाल निकृष्ट कोटि का सुवर्ण है। इन उत्तम सुवर्णों के गलाने साफ करने के समय जो पीला सफेद सा रह जाता है वह अप्राप्तक होता है, जो सुवर्ण अप्राप्तक रह गया, उस में उसके गरिमाण से चतुर्गुण सीसा धातु डाल कर उसे शुद्ध कर लेना चाहिए। यदि सीसे के योग से सुवर्ण फटने लगे-तो उसे जङ्गली कण्डों से पिघलावे। यदि रूक्षता के कारण सुवर्ण फटता हो-तो उसमें तेल और गोंधर की भावना देवे। खान से उत्पन्न सुवर्ण भी सीसा मिलाने पर फटने लगे-तो उसे तपाकर उसके पत्र बना ले और उसे घन पर खूब कूटे इसके अनन्तर कन्दली लता और वज्रकन्द के कल्क (रस) में इसको घुमावे ॥ ३-१२ ॥

तुत्थोद्गतं गौडिकं काम्बुकं चाक्रवालिकं च रूप्यम् ॥ १३ ॥ श्वेतं स्निग्धं
मृदु च श्रेष्ठम् ॥ १४ ॥ विपर्यये स्फोटनं च दुष्टम् ॥ १५ ॥ तत्सीसचतुर्भुजिन
शोधयेत् ॥ १६ ॥ उद्गतचूलिकमच्छं आजिष्णु दधिवर्णं च शुद्धम् ॥ १७ ॥

तुत्थ-नामक पर्वत पर उत्पन्न चांदी तुत्थोद्गत, आसाम में उत्पन्न गौडिक, कम्बु पर्वत पर उत्पन्न काम्बुक तथा चक्रवाल खान से उत्पन्न चाक्रवालिक चांदी होती है, श्वेत

चिकनी और कोमल चाँदी उत्तम मानी गई है । कालापन, रुखाई, और खरदरेपन को लिए हुए फटने वाली चाँदी खराब मानी गई है । इस में चौथाई सीसा डाल कर इसको शुद्धकर लेना चाहिए । जब उस में चूलिका सी उठ आवे और वह स्वच्छ दही के वर्ण के तुल्य चमकने लगे तब उसे शुद्ध समझ लेना चाहिए ॥ १३-१७ ॥

शुद्धस्यैको हारिद्रस्य सुवर्णो वर्णकः ॥ १८ ॥ ततः शुल्बकाकण्युत्तराप-
सारिता आचतुःसीमान्तादिति षोडशवर्णकाः ॥ १९ ॥ सुवर्णं पूर्वं निकष्य
पश्चाद्वर्णिकां निकषयेत् ॥ २० ॥ समरागलेखमनिम्नोन्नते देशे निकषितम् ॥ २१ ॥
परिमृदितं परिलीढं नखान्तराद्वा गैरिकेणावचूर्णितमुपधिं विद्यात् ॥ २२ ॥
जातिहिङ्गुलकेन पुष्पकासीसेन वा गौमूत्रभावितेन दिग्धेनाग्रहस्तेन संस्पृष्टं
सुवर्णं श्वेतीभवति ॥ २३ ॥ सकेसरस्निग्धो मृदुर्भ्राजिष्णुश्च निकषरागः
श्रेष्ठः ॥ २४ ॥

हरिद्रा के तुल्य शुद्ध वर्णधारी सुवर्ण का सोलह मासे का एक वर्णक होता है । उस में ताँबे की एक काकणी [मापा के चतुर्थांश] के मिला देने पर षोडश वर्णक होते हैं । एक, दो, तीन, चार काकणी बढ़ाते जाने पर ये सोलह तक पहुँचते हैं ये सब मिश्रवर्णक कहाते हैं । वर्णक की परीक्षा करने को प्रथम सुवर्ण दो कसोटी गर कसे और पीछे वर्णिक को घिसे । यदि ऊँचे नीचे कसोटी के किसी हिस्से पर नहीं कसी गई है-तो शुद्ध वर्णिक की सीधी एक रङ्गत की रेखा आवेगी । खोटे को अधिक रगड़ना अच्छे की कम रेखा लाना तथा नखमें किसी गैरिक आदि पर्वतके धातु को रखकर रेखा खेंचना-झल पूर्ण परीक्षा कहाती है । विशेष प्रकार के शिंगरफ पीले हरताल के साथ गौ मूत्र में भीगे हुए हाथ से छुआ हुआ सुवर्ण श्वेत सा हो जाता है । कमल के केसर के तुल्य पीली चिकनी कोमल और चमकीली कसोटी की रेखा वाला सुवर्ण श्रेष्ठ कहाता है ॥ १८-२४ ॥

कालिङ्गकस्तापी पापाणो वा मुद्रवर्णो निकषः श्रेष्ठः ॥ २५ ॥ समरागी
विक्रयक्रयहितः ॥ २६ ॥ हस्तिच्छविकः सहरितः प्रतिरागी विक्रयहितः ॥ २७ ॥
स्थिरः परुषो विषमवर्णश्चाप्रतिरागी क्रयहितः ॥ २८ ॥ भेदश्चिकणः समवर्णः
रत्नदण्डो मृदुर्भ्राजिष्णुश्च श्रेष्ठः ॥ २९ ॥ तापे बहिरन्तरश्च समः किञ्जल्कवर्णः
कुरण्डकपुष्पवर्णो वा श्रेष्ठः ॥ ३० ॥ श्यावो नीलश्चाप्राप्तकः ॥ ३१ ॥
तुलाप्रतिमानं पौतवाध्यक्षे वक्ष्यामः ॥ ३२ ॥ तेनोपदेशेन रूप्य सुवर्णं दद्यादा-
ददीत च ॥ ३३ ॥

कलिका देशोत्पन्न या तापी नदी में उत्पन्न मृग के वर्ण का काला कसोटी का पत्थर श्रेष्ठ होता है। जो कसोटी सर्वदा एक सी रेखा देती रहे-वह सुवर्ण बेचने और खरीदने वाले दोनों को ही उत्तम होती है। हाथी के चमड़े के तुल्य खरदूरी दूरी २ सी रंगत देने वाली कसोटी बेचने वालों को लाभ देती है। बड़ी चढ़ या कटोर विषम वर्ण की रंग नहीं देने वाली कसोटी खरीदार को लाभ पहुंचाती है। चिकना, समान वर्णधारी, शुद्ध कीमल और चमकीला सुवर्ण का टुकड़ा-उत्तम सुवर्ण का खण्ड होता है। तपाने पर यह बाहर भीतर से एक सा निकलता है। इसका वर्ण कमल के केसरे या कुरण्डक पुष्प के वर्ण का होता है-यह भी श्रेष्ठ सुवर्ण माना जाता है। तपाने पर कुछ काला या नोले से रंग का जो सुवर्ण हो जावे-तो उसे खोटा समझना चाहिए। तोलने की प्रक्रिया या प्रमाण का वर्णन पौतवाध्यक्ष नामक प्रकरण में किया जावेगा। उसी प्रमाण के अनुसार चांदी और सुवर्ण लेना और देना चाहिए ॥२५-३३॥

अक्षशालामनायुक्तो नोपगच्छेत् ॥ ३४ ॥ अभिगच्छन्नुच्छेद्यः ॥ ३५ ॥
 आयुक्तो वा सरूप्यसुवर्णस्तेनैव जीयेत ॥ ३६ ॥ विचितं वस्त्रहस्तगुह्याः काञ्चनपृ-
 पतत्पण्डितपनीयकारयो ध्मायकचरकपांसुधावकाः प्रविशेयुः निष्कसेयुश्च ॥ ३७ ॥
 सर्वं चैषामुपकरणमनिष्ठिताथ प्रयोगास्तत्रैवावतिष्ठेरन् ॥ ३८ ॥ गृहीत सुवर्णं
 धृतं च प्रयोग करणमध्ये दद्यात् ॥ ३९ ॥ सायं प्रातश्च लक्षितं कर्तृकारयितु-
 मुद्राभ्यां निदध्यात् ॥ ४० ॥

बिना आज्ञा प्राप्त किए किसी को अक्षशाला (सुवर्ण बनाने के स्थान) में प्रवेश का अधिकार नहीं देना चाहिए। जो कोई बिना इजाजत अक्षशाला में घुस जावे-तो राजा उसका सर्वस्व अपहरण करके देश निकाला देदे। जिसको सुवर्ण शाला में जाने की आज्ञा है और वह भी सुवर्ण या चोरी के साथ पकड़ा जावेगा-तो उसे भी यही दण्ड देना चाहिए। सुवर्ण निकालने वाले, तपा कर गोली बनाने वाले, छोटे बड़े पात्र निर्माता, तपाने वाले शिल्पी, धौकनी लगाने वाले, अन्य कार्य करने वाले, भाड़ू लगाने वाले, धोने वाले आदि सुवर्णशाला के कार्य कर्ता, अपने चख, हाथ और गुह्य स्थानों की (तलाशी) देकर भीतर जावे और निकलती दार फिर उनकी तलाशी ली जावे। इन सारे कारीगरों के औजार आदि साधन, या आधे सुवर्ण निकालने के प्रयोग वहीं रखे रहें-वे बाहर घर पर तय्यारी के लिए नहीं जाने देने चाहिए। तय्यार सुवर्ण और आधा घाण में पड़ा हुआ सुवर्ण तोलकर कर्मचारी के पास रजिस्टर में लिखा कर रख दिया जावे। इस तरह सांयकाल रखना और प्रातःकाल लेना-यह सब कुछ कार्य, कर्मचारी (अहलकार)

सरकारी मुहर और काम करने वाले के अंगूठे आदि के चिन्ह के साथ करे अर्थात् मुद्रा से ही लेना देना होवे ॥३४-४०॥

क्षेपणो गुणः क्षुद्रकमिति कर्मणि ॥ ४१ ॥ क्षेपणः काचार्पणादीनि ॥ ४२ ॥ गुणः सूत्रवानादीनी ॥ ४३ ॥ घनं सुपिरं पृषतादियुक्तं क्षुद्रकमिति ॥ ४४ ॥ अर्पयेत्काचकर्मणः पञ्चभागांकाञ्चनं दश भागं कटुमानम् ॥ ४५ ॥ तांभ्रपादयुक्तं रूप्यं रूप्यपादयुक्तं वा सुवर्णं संस्कृतं तस्माद्वेदेत् ॥ ४६ ॥ पृषतकाचकर्मणस्त्रयो हि भागाः परिभाण्डं द्वौ वास्तुकम् ॥ ४७ ॥ चत्वारो वा वास्तुकं त्रयः परिभाण्डम् ॥ ४८ ॥

सुवर्णशाला में बड़े २ तीन कार्य होते हैं । (१) क्षेपण (२) गुण (३) और क्षुद्रक । आभूषणों में मणि आदि का जड़ना क्षेपण कहा जाता है । सुवर्ण सूत्रों के गूँथने को गुण कहते हैं । भरी या पोली घूँघरु बनाना-क्षुद्रक कार्य कहा जाता है । मणिको पांचवां भाग सुवर्ण में प्राविष्ट कर देना चाहिए और दशवां भाग कटुमान (सुवर्ण की भराई-कुन्दन, करवाई) होनी चाहिए । ताँबे का कुछ भाग मिली हुई चांदी और चांदी का कुछ भाग मिला हुआ सुवर्ण-ये इसमें शुद्ध सुवर्ण के नाम से लगा देते हैं । सुवर्णाध्यक्ष इन कारीगरों की चालाकी से आभूषणों की देख रेख रखे । छोटी २ मणियों के जड़ने के निमित्त पांच भाग सुवर्ण के किये जावे, जिनमें तीन परिभाण्ड, अर्थात् स्वस्तिक आदि आभूषण के निमित्त और दो भाग आधार (मूलभाग) पीठ के निमित्त होते हैं । वास्तुक (आधार पीठ-मूलभाग) के चार भाग और पद्म-स्वस्तिक आदि के निमित्त तीन भाग भी किये जा सकते हैं ॥४१-४८॥

त्वष्टुकर्मणः शुल्बभाण्डं समसुवर्णेन संयूहयेत् ॥ ४९ ॥ रूप्यभाण्डं घनं घनसुपिरं वा सुवर्णार्धेनावलेपयेत् ॥ ५० ॥ त्रुर्भागसुवर्णं वा बालुकाहिगुलकस्य रसेन चूर्णेन वा वासयेत् ॥ ५१ ॥ तपनीयं ज्येष्ठं सुवर्णं सुरागं समसीसाति-क्रान्तं पाकपत्रपक्वं सैन्धविकयोज्ज्वालितं नीलपीतश्चेतहरितशुकपोतवर्णानां प्रकृतिर्भवति ॥ ५२ ॥ तीक्ष्णं चास्य मयूरग्रीवाभं श्वेतभङ्गं चिमिचिमायितं पीतचूर्णितं काकणिकः सुवर्णरागः ॥ ५३ ॥

अब त्वष्टृ कर्म अर्थात् चांदी ताँबे पर पत्र चढ़ाने का वर्णन किया जाता है । ताँबे के मूल आभूषण की बराबर सुवर्ण चढ़ाया जावे । चांदी का आभूषण घन (ठोस) होया कुछ ठोस और पोला हो-तो उसपर आधा सुवर्ण चढ़ाया जाता है । ताँबे या चांदी के

आभूषण का चतुर्थांश सुवर्ण लेकर वालुका (गन्ध द्रव्य विशेष) के रस और शिंशरफ के चूर्ण के साथ उसपर सुवर्ण का पानी चढ़ा देवे । तपनीय सुवर्ण सर्व श्रेष्ठ होता है । इसमें बड़ी ही सुन्दर रंगत होती है । इसमें बराबर सीसा डाल कर इसके पत्रों को तपावे । उसको सिन्धुदेश की मिट्टी से उजलावे । इस तरह जब सुवर्ण शुद्ध हो जावे-तब उसे नील, पीत, श्वेत, हरित, कपोत वर्ण की मणियों के जड़ने के योग्य समझना चाहिए । इस सुवर्ण को तीक्ष्ण ताप देने पर यह मोर की घ्रीवा के वर्ण का होता है । काटने पर श्वेत चम चमाता निकलता है । इसके पीले २ टुकड़ों में एक काकणी (दोस्ती) तांबा मिला देने पर सुवर्ण को बहुत चमका देता है ॥४६-४३॥

तारमुपशुद्धं वास्थितुत्थे चतुः समर्सासे चतुः शुष्कतुत्थे चतुः कपाले त्रिर्गो-
मये द्विरेवं सप्तदशतुत्थातिक्रान्तं सैन्धविकयोज्ज्वालितम् ॥ ५४ ॥ एतस्मात्का-
कण्युत्तरापसारिता, आद्विमाषादिति सुवर्णे देयं पश्चाद्वागयोगः, श्वेततारं भवति
॥५५॥ त्रयोऽशास्तपनीयस्य द्वात्रिंशद्वागश्वेततारमूर्च्छितं तत् श्वेतलोहितकं भवति
॥ ५६ ॥ ताम्रं पीतकं करोति ॥ ५७ ॥ तपनीयमुज्ज्वाल्य रागत्रिभागं दद्यात्
॥ ५८ ॥ पीतरागं भवति ॥ ५९ ॥ श्वेततारभागौ द्वावेकस्तपनीयस्य मुद्गवर्णं
करोति ॥ ६० ॥ कालायसस्यार्धभागाम्यक्तं कृष्णं भवति ॥ ६१ ॥ प्रतिलेपिना
रसेन द्विगुणाम्यक्तं तपनीयं शुक्लपत्रवर्णं भवति ॥ ६२ ॥ तस्यारम्भे रागविशे-
षेषु प्रतिवर्णिकां गृहीयात् ॥ ६३ ॥ तीक्ष्णताम्रसंस्कारं च बुद्धयेत् ॥ ६४ ॥
तस्माद्वज्रमणिमुक्ताप्रवालरूपाणामपनेयिमानं च रूप्यसुवर्णभाण्डवन्धप्रमाणानि
चेति ॥ ६५ ॥

हड्डी से मिली हुई मिट्टी की मूपा में चारवार, सीसे के सम भाग में मिली हुई मिट्टी की बनी मूपा में चार वार, शुष्क शर्करा की मिट्टी की मूपा में चार वार, शुद्ध मिट्टी की मूपा में तीन वार, गोबर मिली हुई मिट्टी की मूपा में दो वार, इस तरह कुल सत्रह वार मूपाओं में बदल लेने से और फिर सिन्धु देश की रज में उजाल लेने पर चांदी शुद्ध हो जाती है । इसमें से काकणी (माषा का चतुर्थांश) चांदी निकाल कर सुवर्ण में मिलाई, जावे, और बढ़ाते २ दो माषा चांदी तक बढ़ा दे, और फिर रंग चमकावे यह श्वेत तार बन जावेगा । तीन अंश पूर्वोक्त तपनीय सुवर्ण के और बत्तीस भाग इस श्वेत तार चांदी के मिला दिये जावे-तो श्वेत लोहितक नामक सुवर्ण बनता है । तपनीय सुवर्ण को उजला कर उसमें तीन भाग तांबा मिला दे-तो उसका पीला और लाल रंग हो जाता है । श्वेत तार नामक चांदी के दो भाग और उसमें एक भाग सुवर्ण का मिला दिया जावे-तो वह सुवर्ण

मूंग के वर्ण का चमकने लगता है। कालायस लोहे का छठा भाग मिला देने पर सुवर्ण में काली छठा निकलने लगती है। पिघले हुए लोहे या चांदी के रस से मिला हुआ सुवर्ण शुक (तोते) के पंखों के रंग का हो जाता है। नील, पीत विशेष २ रंगों में न्यूनता अधिकतम के लिए पूर्वोक्त वर्णक की सी प्रक्रिया समझ लेनी चाहिए। सुवर्ण के रंग बदलने में काम आने वाले तीक्ष्ण ताम्र और लोह ये शुद्ध करने की प्रक्रिया जान लेनी चाहिये। वज्र (हीरा) मणि, मुक्ता, प्रवाल, के रंगों का बदलने तथा चांदी सुवर्ण के आभूषण या पात्रों में मिलावट अधिक करने के सारे प्रकार सुवर्णाध्यक्ष को ज्ञात होने चाहिए ॥५४॥६५॥

समरागं समद्वन्द्वमशक्तं पृषतं स्थिरम् ।

सुविमृष्टमसंवीतं विभक्तं धारणे सुखम् ॥ ६६ ॥

अभिनीतं प्रभायुक्तं संस्थानमधुरं समम् ।

मनोनेत्राभिरामं च तपनीयगुणाः स्मृताः ॥ ६७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे अक्षशालाया सुवर्णाध्यक्षत्रयोदशोऽध्यायः ।

॥ १३ ॥ आदितश्चतुस्त्रिंशः ॥ ३४ ॥

एक जोड़ी में दोनों आभूषणों का समान रंग, और समान आकार होना चाहिए। कहीं पर बीच में गांठ न हो। स्थिर बना हुआ हो। उसके सारे भाग अच्छी तरह चमका दिए हों-ठीक ढङ्ग पर सुन्दर बना हुआ हो, जो धारण करते ही सुख उत्पन्न करे। उस में सब ओर से चमक आती हो। उसके स्थान में समान सुन्दरता हो। जिसको देखते ही मन और नेत्र तृप्त हो-ये तपनीयसुवर्ण के गुण माने गए हैं ॥ ६५-६७ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में अक्षशाला में

सुवर्णाध्यक्ष के कार्यों के वर्णन का तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।



चौदहवां अध्याय

३२ वां प्रकरण

विशिखा में सौवर्णिकका व्यापार ।

विशिखा (सराफे के बाजार) में आभूषणों के बेचने वाले सौवर्णिक (सराफ) के कार्यों का अब वर्णन किया जाता है ।

सौवर्णिकः पौरजानपदानां रूप्यसुवर्णमावेशनिभिः कारयेत् ॥ १ ॥ निर्दिष्टकालकार्यं च कर्म कुर्युः अनिर्दिष्टकालं कार्यापदेशम् ॥ २ ॥ कार्यस्यान्यथा-

करणे वेतननाशः तद्विगुणश्च दण्डः ॥ ३ ॥ कालातिपातेन पादहीनं वेतनं तद्वि-
गुणश्च दण्डः ॥ ४ ॥ यथावर्णप्रमाणं निक्षेपं गृहीयुस्तथाविधमेवार्पयेयुः ॥ ५ ॥
कालान्तरादपि च तथाविधमेव प्रतिगृहीयुरन्यत्र क्षीणपरिशीर्णम्याम् ॥ ६ ॥

सुवर्णाध्यक्ष नगर और राष्ट्र के सोने चाँदी के आभूषण अपनी देख रेख में अपने नीचे-काम करने वाले सुवर्णकारों से बनवावे। ये सब ठीक समय पर आभूषण बनाकर तय्यार करें। कार्य कठिनाता देखकर किसी किसी कार्य का समय [वायदा] नहीं भी किया जा सकता है। यदि कोई कारीगर आभूषण बिगाड़ देवे-तो उसका वेतन रोक देना चाहिए। यदि अधिक खराबी करदी हो-तो उस कारीगर पर आभूषण की कीमत का दुगुणा देकर करने पर दुगुने वेतन का दण्ड दिया जा सकता है। कारीगर जैसे वर्ण और जितना तोल का सुवर्ण प्रमाण करें-उतना ही वैसे के वैसे आभूषण बनाकर देवें। यदि सुवर्ण के देने पर किसी कारण से बहुत दिन भी व्यतीत हो गए-तो भी सुवर्ण देने वाला वैसे ही सुवर्ण के ग्रहण का अधिकार रखता है। यदि सुवर्ण नष्ट कर दिया या उस में से कम हो गया-तो इस दशा में स्वर्णकार [सुनार] दण्ड का भागी होता है ॥ १-६ ॥

आवेशनिभिः सुवर्णपुद्गललक्षणप्रयोगेषु तत्तज्जानीयात् ॥ ७ ॥ तप्तक-
कलधौतकयोः काकणिकः सुवर्णं त्रयो देयः ॥ ८ ॥ तीक्ष्णकाकणीरूप्यद्विगुणो
रागप्रक्षेपस्तस्य षड्भागः त्रयः ॥ ९ ॥ वर्णहीने मापावरे पूर्वः साहसदण्डः ॥ १० ॥
प्रमाणहीने मध्यमः तुलाप्रतिमानोपधावुत्तमः कृतभाण्डोपधौ च ॥ ११ ॥ सौव-
र्णिकेनादृष्टमन्यत्र वा प्रयोगं कारयतो द्वादशपणो दण्डः ॥ १२ ॥ कर्तुर्द्विगुणः
सापसारश्चेत् ॥ १३ ॥ अनपसारः कण्टकशोधनाय नीयेत् ॥ १४ ॥ कर्तुश्च द्विशतो
दण्डः पणच्छेदनं वा ॥ १५ ॥

राज्य में नौकरी करने वाले स्वर्णकार जिस प्रकार सुवर्ण [सुन्दर भाग बनाना] पुद्गल [आभूषण का मूलपत्र] तथा लक्षण [आभूषण का आकार] की रचना करें-सुवर्णा-
ध्यक्ष उनकी रचना के प्रयोगों को अच्छी तरह जानता रहे। सुवर्णाध्यक्ष यदि जानता रहेगा-
तो ये छल नहीं कर सकेगा। यदि सुवर्ण तप्त और कलधौत [अर्थात् कुछ अशुद्ध] रूप में
दिया जावे-तो उसमें दो रत्ती छीजन भी स्वर्णकार को मिलनी बाजिब है। एक तीक्ष्ण [लोहे]
की काकणी [दो रत्ती] और दो काकणी चाँदी सोलह मासे सुवर्ण में मिलाने से सुवर्ण में
एक रंगत सी आ जाती है। इसमें एक रत्ती छीजन की कारीगर को मिलनी चाहिए।

यदि एक मापा सुवर्ण कारीगर रंही कर दे-तो उसको साधारण दण्ड देना चाहिए । यदि कारीगर तोल में एक मासा सोना खा जावे-तो उसे मध्यम दण्ड देना चाहिए । यदि तोलने के कांटे में छल निकले-तो उत्तम दण्ड देना चाहिए-और बने हुए आभूषण आदि वस्तुओं के चलती कर देने पर उत्तम दण्ड दिया जा सकता है । सुवर्णाध्यक्ष की दृष्टि से बचाकर या अन्य स्थानों में बनाये हुए आभूषण आदि भाण्ड वाट हों-तो बनवाने वाले पर वारह पण (सुवर्ण मुद्रा) दण्ड होना चाहिए और बनाने वाले पर इस से दुगुना दण्ड करके उसे देश से निकाल देना चाहिए । यदि उसे देश निकाला नहीं दिया जावे-तो उसे न्यायाधीश के पास ले जाया जावे अर्थात् उस पर खुला मुकदमा चलाया जावे । बनाने वाले पर दो सौ पण [सुवर्ण मुद्रा] दण्ड होनी चाहिए । यदि अधिक दोषी प्रमाणित हो तो उसकी अंगुली कटवा देवे ॥७-१५॥

तुलाप्रतिमानभाण्डं पौतवहस्तात्क्रीणीयुः ॥ १६ ॥ अन्यथा द्वादशपणो दण्डः ॥ १७ ॥ घनः घनसुपिरं संयूह्यमवलेप्यं संघात्यं वासितक च कारुकर्म ॥ १८ ॥ तुलाविषममपसारणं विस्रावणं पेटकं पिङ्कश्चेति हरणोपायाः ॥ १९ ॥ संनामिन्पुत्कीर्णिका भिन्नमस्तकोपकण्ठी कुशिक्या सकटुकच्या पारिवेल्ययस्कान्ता च दुष्टतुलाः ॥ २० ॥ रूप्यस्य द्वौ भागावेकं शुल्बस्य त्रिपुटकम् ॥ २१ ॥ तेना-करोद्गतमपसार्यते तन्त्रिपुटकापसारितम् ॥ २२ ॥ शुल्बेन शुल्बापसारितम् ॥ २३ ॥ वेल्लकेन वेल्लकापसारितम् ॥ २४ ॥ शुल्बार्धसारेण हेम्ना हेमापसारितम् ॥ २५ ॥ मूकमृषा पूतिकिङ्कः करटकमुखं नाली संदंशो जोङ्गनी सुवर्चिकालवणम् ॥ २६ ॥ तदेव सुवर्णमित्यपसरणमार्गाः ॥ २७ ॥

कांटे और उसके वाट आदि पौतवाध्यक्ष से ग्रहण किये जावे । यदि वे स्वयं ही काँटा या वाट बनाले-तो उनपर वारह पण दण्ड होना चाहिए । घन (ठोस) अंगूठी आदि कुछ ठोस और पोले कड़े आदि संयूह्य (मोटे पत्रे चढ़े हुए) आभूषण, अवलेप्य (पतले पत्र चढ़ाये हुए तगड़ी आदि) तथा वासितक (पानी दिये हुए) आभूषण बनाना-कारीगरों का काम है । तुलाविषम, अपसारण, विस्रावण, पेटक और पिङ्क-ये पाँच सुवर्ण के उड़ा देने (अपहरण कर लेने) के दण्ड हैं । संनामिनी, (अंगुली के इशारे से भुक् जाने वाली) पुत्कीर्णिका (लोह भरने के छेद युक्त) भिन्न मस्तका [आगे के हिस्से में छेद से युक्त] उप-कण्ठी [गाँठो वाली] कुशिक्या [पलड़े खराब वाली] सकटुकच्या [खराब डोरी से बनी हुई] पारिवेल [लगातार वायु से काँपने वाली] अयस्कान्ता [चुम्बक लगाकर बनी हुई] तराजू खराब होती हैं । इस तरह आठ प्रकार की वस्तु विषमता मानी गई हैं । इसके द्वारा सुवर्ण अपहरण किया जाता है । दो भाग चाँदी और एक भाग ताँबा मिला देने से जो चाँदी

तय्यार की जाती है यह त्रिपुटक कहाती है। इसको मिलाकर जो सुवर्ण उड़ाया जाता है-यह त्रिपुटकापसारित कहाता है। जो केवल तांबा मिलाकर सुवर्ण का अपहरण किया जावे-यह शुल्वापसारित कहाता है। लोहा और चांदी मिलाकर जो मेलतय्यार किया जावे-यह वेङ्क कहाता है। इसे सुवर्ण में मिलाकर जो सुवर्ण का अपहरण किया जाता है-यह वेल्लकापसारित कहाता है। तांबे में सोना मिलाकर फिर इस सुवर्ण को शुद्ध सुवर्ण में मिलाकर जो सुवर्ण का अपहरण है-उसे हेमापसारित कहते हैं। मूक मूपा [छुपी हुई भूस] लोहे का मैल, करटकमुख [कन्त्री] नाली [नाल] संदेश [संडाला] जोड़नी [लोहे की छड़ी] सुवर्चिका लवण [सुहागा] आदि सुवर्ण अपहरण के साधन हैं। इनके द्वारा ही भूस में से सुवर्ण कार सुवर्ण उड़ाता है। और तुम्हारा ऐसा ही खान से निकला हुआ सुवर्ण है-यह कह देता है ॥ १६-२७ ॥

पूर्वप्रणिहिता वा पिएडवालुका मूपाभेदादग्निष्ठा उद्ध्रियन्ते ॥ २८ ॥ पश्चाद्वन्धने आचितकपत्त्रपरीक्षायां वारूप्यरूपेण परिवर्तनं विस्त्रावणम् ॥ २९ ॥ पिएडवालुकानां लोहपिएडवालुकाभिर्वा ॥ ३० ॥ गाढश्चाभ्युद्धार्यश्च पेटकः संयूह्यावलेप्यसंघात्येषु क्रियते ॥ ३१ ॥ सीसरूपं सुवर्णपत्रेणावलिप्तमभ्यन्तरमप्टकेन वद्धं गाढपेटकः ॥ ३२ ॥ स एव पटलसंपुटेष्वभ्युद्धार्यः ॥ ३३ ॥ पत्रमारिलिष्टं यमकपत्त्रं वावलेप्येषु क्रियते ॥ ३४ ॥ शुल्वं तारं वा गर्भः पत्त्राणाम् ॥ ३५ ॥ संघात्येषु क्रियते शुल्वरूपसुवर्णपत्रसंहतं प्रमृष्टं सुपार्थम् ॥ ३६ ॥ तदेव यमकपत्रसंहतं प्रमृष्टं ताम्रताररूपं चोत्तरवर्णकः ॥ ३७ ॥ तदुभयं तापनिकापाभ्यां निःशब्दोल्लेखनाभ्यां वा विद्यात् ॥ ३८ ॥ अभ्युद्धार्य वदराम्ले लवणोदके वा साधयन्तीति पेटकः ॥ ३९ ॥

सुवर्णकार पूर्व से ही भिन्न २ धातुओं की बालुका अंगीठे में रख देता है और भूसों के उठाने बदलने टूट जाने के बहाने से उन्हें बदल देता है। यह भी सुवर्ण अपहरण का प्रकार है। पीछे कड़ियां जोड़ने जड़े हुए पत्रों की परीक्षा हो लेने पर चाँदी मिले हुए पत्रे बदल देने को विस्त्रावण कहते हैं। सोने की खान की बालुका को लोहे की खान की बालुका से बदल देना भी विस्त्रावण कहाता है संयूह्य [गाढ़ पत्र चढ़ाने] अवलेप्य [पतले पत्र या पानी चढ़ाने] तथा संघात्य [कड़ियाँ जोड़ने] पेटक नामक सुवर्ण अपहरण का सुवर्णकार प्रयोग करते हैं। पेटक गाढ़ और अभ्युद्धार्य भेद से दो प्रकार का होता है। सीसे के पत्रों को सुवर्ण के पत्रों से लाख द्वारा जोड़ कर जो सुवर्ण उड़ाया जाता है-इसे गाढ़ पेटक कहते हैं। वही बन्धन यदि लाख आदि से जोड़ कर टूट नहीं किया जावे-तो वह अभ्युद्धार्य

पेटक कहाता है। अवलेप्य कार्य में दो पत्र जोड़कर एक पत्र सा कर दिया जाता है या दो पत्र में चाँदी या ताँवे का पत्र लगा दिया जाता है—यह भी पेटक कहाता है। संघात्य [कैंड़ी आदि के जोड़ने में] कर्मों में ताँवे के पत्र सुवर्ण पत्र से ढक कर साफ करके इधर उधर जोड़ दिए जाते हैं। उस ही ताँवे की कड़ी पर दोनों ओर से सुवर्ण चढ़ाकर स्वच्छ कर दिया जाता है। इस में भीतर ताँवा या चाँदी होती है और ऊपर उसका उत्तम रङ्ग बना दिया जाता है। इन दोनों पेटकों की ताप और कसोटी से परीक्षा हो सकती है या हलकी सी चोट मारने तथा तीक्ष्ण शस्त्र से लकीर खँचने से भी परीक्षा हो सकती है। अभ्युद्वाये पेटक [लाख रहित जुड़े पत्रों] की वेर के खट्टे रस या लवण के जल में भी देख लिया जाता है। यही पेटक की क्रिया है ॥ २८-३६ ॥

घनसुपिरे वा रूपे सुवर्णमृन्मालुकाहिङ्गुलुककल्को वा तप्तोऽवतिष्ठते ॥ ४० ॥ दृढवास्तुके वा रूपे बालुकामिश्रजतुगान्धार पङ्को वा तप्तोऽवतिष्ठते ॥ ४१ ॥ तयोस्तापनमवध्वंसनं वा शुद्धिः ॥ ४२ ॥ सपरिभाण्डे वा रूपे लवणमुल्कया कंदुशर्करया तप्तमवतिष्ठते ॥ ४३ ॥ तस्यकाथनं शुद्धिः ॥ ४४ ॥ अब्रपटलमष्टकेन द्विगुणवास्तुके वा रूपे ब्रध्यते, तस्य पिहितकाचकस्योदके निमज्जत एकदेशः सीदति, पटलान्तरेषु वा सूच्या भिद्यते ॥ ४५ ॥ मणयो रूप्यं सुवर्णं वा घनसुपिराणां पिङ्कः ॥ ४६ ॥ तस्य तापनमवध्वंसनं वा शुद्धिरिति पिङ्कः ॥ ४७ ॥ तस्माद्ब्रजमणिमुक्ताप्रवालरूपाणां जातिरूपवर्णप्रमाणपुद्गललक्षणान्युपलभेत ॥ ४८ ॥

ठोस अथवा पोले कड़े आदि आभूषणों में सुवर्ण की मिट्टी, बालुका, हींगलुका कल्क-तपा कर भर दिया जाता है। जब आभूषण का आधार पीठ [मूल ढाँचा] बन जाता है—तो उसमें सुवर्ण बालुका से मिली हुई लाख भर देते हैं या सिन्दूर की कीचड़ तपा कर भर दी जाती है। उनका तपाना या तोड़ देना ही शुद्धि है। घूँघरुदार मणि बन्ध आदि आभूषणों में लवण को उल्का से तपा कर या छोटी २ कंकड़ियों को तपा कर रख दिया जाता है उसको वेरी के रस में उबाल लेने पर उसकी शुद्धि मानी गई है। अब्र पटल [अभ्रक] लाख आदि के द्वारा अपने से दुगुने वास्तुक में रख दिया जाता है, उसको वेरी के काथ में डुबो देने से अभ्रक का भाग नहीं डूबता है वह एक ओर से डूबता है। यदि किसी ताँवे आदि के पत्र लगाये गये हों—तो उसका सूची से भेदन करने पर ही पता लगता है। ठोस या पोले चाँदी सोने के आभूषणों में काँच जड़ कर भी सोना चाँदी उड़ा लिया जाता है। यह सब सुवर्ण या चाँदी के अपहरण पिङ्क नाम में प्रसिद्ध है। इनकी

तपाने और तोड़ देने से ही शुद्धि का पता लगता है। यहां तक पिङ्क का वर्णन समाप्त हुआ। इन सब बातों पर विचार करके वज्र मणि, मुक्ता, प्रवाल आदि की जाति, रूप [आकार] वर्ण, प्रमाण, पुद्गल [आभरण] तथा लक्षणों का सारा ज्ञान प्राप्त करे, जिससे कोई भी कारीगर किसीके आभूषणों से सुवर्ण न चुरा सके ॥४०-४८॥

कृतभाण्डपरीक्षायां पुराणभाण्डप्रतिसंस्कारे वा चत्वारो हरणोपायाः
॥ ४९ ॥ परिकुट्टनमवच्छेदनमुल्लेखनं परिमर्दनं वा ॥ ५० ॥ पेटकापदेशेन
पृथक्तं गुणं पिटकां वा यत्परिशातयन्ति तत्परिकुट्टनम् ॥ ५१ ॥ यद्विगुणवा-
स्तुकाणां वा रूपे सोसरूपं प्रक्षिप्याभ्यन्तरमवच्छिन्दन्ति तदवच्छेदनम् ॥ ५२ ॥
यद्वनानां तीक्ष्णेनोल्लिखन्ति तदुल्लेखनम् ॥ ५३ ॥ हरितालमनःशिलाहिङ्गल-
कचूर्णानामन्यतमेन कुरुविन्दचूर्णेन वा वस्त्रं संयुह्ययत्परिमृद्नन्ति तत्परिमर्दनम्
॥ ५४ ॥ तेन सौवर्णराजतानि भाण्डानि क्षीयन्ते ॥ ५५ ॥ न चैषां किञ्चिद-
वरुणं भवति ॥ ५६ ॥ भग्न खण्डघृष्टानां संयुह्यानां सदृशेनानुमानं कुर्यात्
॥ अवलेप्यानां यावदुत्पाटितं तावदुत्पाट्यानुमानं कुर्यात् ॥ ५७ ॥ विरूपाणां वा
तापनमुदकपेषणं च बहुशः कुर्यात् ॥ ५८ ॥

नवीन आभूषण बनाने की परीक्षा के अनन्तर पुराने आभूषणों के संस्कार में सुवर्ण अपहरण के प्रकार बताये जाते हैं। परिकुट्टन, अवच्छेदन, उल्लेखन और परिमर्दन ये चार पुराने आभूषणों से सुवर्ण अपहरण के ढंग हैं। पेटक परीक्षा के मिस से छोटी २ घूघरुं, तार, पत्रे आदि को जो काट लिया जाता है-वह परिकुट्टन कहाता है। द्विगुणित सुवर्ण वाले आभूषण के मूल भाग में कुछ सीसे के पत्र भीतर प्रविष्ट कर देना और सुवर्ण काट लेना अवच्छेदन कहाता है। जो सुनार रेती आदि से ठोस सुवर्ण से सोना उतार लेते हैं, यह उल्लेखन कहाता है। हरिताल, मैनशिल, हिंगाः, तथा कुरुविन्द (पापाण विशेष) के चूर्ण के साथ तगड़ी आदि का जो रगड़ लेना है-यह भी सुवर्ण अपहरण का परिमर्दन नामक ढंग है। इससे सुवर्ण और चांदी के आभूषण (पदार्थ) घिस जाते हैं। इस तरह आभूषण में कोई चोट या रगड़ दिखाई नहीं देती है। पृथक् २ पत्रों के घिस लेने या तगड़ी आदि के रगड़ लेने पर जो सुवर्ण छीन लिया जाता है, उसका पता उसके बराबर के दूसरे आभूषणों या पत्रों से लगता है। पतले पत्र चढ़े हुए आभूषणों के कटने का दूसरे आभूषण के भाग को काट कर जांच करे। जिन आभूषण (भाण्डों) को बहुत विरूप कर दिया है, उनकी तपाने और जल में बुझाने से ही शुद्धि या जांच होती है ॥४९-५८॥

अवक्षेपः प्रतिमानमग्निर्गण्डिका भण्डिकाधिकरणी पिच्छः सूत्रं चेन्नं वोल्लनं
शिर उत्सङ्गो मक्षिका स्वकायेक्षादतिरुदकशरावमग्निष्ठमिति काचं विद्यात् ॥६०॥
राजतानां विस्रं मलग्राहि परुषं प्रस्तीनं विवर्णं वा दुष्टमिति विद्यात् ॥ ६१ ॥

अवक्षेप (देखते २ बाजीगरी से सुवर्ण-उड़ा देना) प्रतिमान (बदल देना) अग्नि
[अग्नि में अपहरण] गण्डिका [घन] भण्डिका [सोने के गलाने के बाद ढालने का पात्र]
अधिकरणी [सुवर्ण के रखने का पात्र] पिच्छ [पांख] सूत्र [सुवर्ण की तराजू की डोरी]
चेन्न [वस्त्र] वोल्लन [कहानी के द्वारा गाहक को चुकाना] शिर [शिर का खुजाना] उत्संग
[गोदी] मक्षिका [मक्खी के उड़ाने के बहाने से सोना उड़ाना] अपना शरीर दिखाना,
धौकनी, जल की कूँडी अंगीठा-ये सब सुवर्ण अपहरण के उपाय हैं। चांदी के आभूषणों
के मिलावटी बना देने पर उनमें दुर्गन्ध मलिनता, कठोरता, कान्तिहीनता, और फीका
पड़ जाना, ये दोष दिखाई देने लगते हैं ॥६०-६१॥

एवं नवं च जीर्णं च विरुपं च विभाण्डकम् ।

परीक्षेतात्ययं चैषां यथोदिष्टप्रकल्पयेत् ॥ ६२ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे विशिखायां सौवर्णिकप्रचारः चतुर्दशोऽ-
ध्यायः ॥ १४ ॥ आदितः पञ्चत्रिंश ॥ ३५ ॥

इस प्रकार नये और पुराने, विरुप आभूषणों की परीक्षा और उनके ढण्ड का
विधान बताया गया है। राजा इनका यथा योग्य प्रयोग करे ॥६२॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में विशिखा
[सर्गफे] के मध्य में सुवर्ण बेचने वालों के कर्तव्यों के निर्णय का
चौदहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



पन्द्रहवां अध्याय

३३वां प्रकरण

कोष्ठागाराध्यक्ष ।

धान्य आदि भरने के स्थान को कोष्ठ कहते हैं। इस विषय का अधिकारी कोष्ठा-
गाराध्यक्ष होता है। अब कोष्ठागाराध्यक्ष के कर्मों का निरूपण करते हैं ।

कोष्ठागाराध्यक्षः सीताराष्ट्रक्रयिमपरिवर्तकप्रामित्यकापमित्यकसिंहनिकान्यजा-
तव्ययप्रत्यायोपस्थानान्युपलभेत ॥ १ ॥ सीताध्यक्षोपनीतः सस्यवर्णकः सीता

॥ २ ॥ पिण्डकरः पड्भागः सेनाभक्तं वलिः कर उत्सङ्गः पार्श्वं पारिहीणिकमौ-
पायनिकं कौष्ठेयकं च राष्ट्रम् ॥ ३ ॥ धान्यमूल्यं कोशनिर्हारः प्रयोगप्रत्यादानं
च क्रयिमम् ॥ ४ ॥ सस्यवर्णानामर्घान्तरेण विनिमयः परिवर्तकः ॥ ५ ॥ सस्य-
याचनमन्यतः ग्रामित्यकम् ॥ ६ ॥ तदेव प्रतिदानार्थमापमित्यकम् ॥ ७ ॥ कुट्ट-
करोचकसक्तुशुक्तपिष्टकर्म तज्जीवनेषु तैलपीडनमौरभ्रचाक्रिकेविक्षूणां च दार-
कर्म सिंहनिका ॥ ८ ॥ नष्टप्रस्मृतादिरन्यजातः ॥ ९ ॥ विक्षेपव्याधितान्तरारम्भ-
शेषं च व्ययप्रत्यायः ॥ १० ॥ तुलामानान्तरं हस्तपूरणमुत्करो व्यार्जा पर्युषितं
प्रार्जितं चोपस्थानमिति ॥ ११ ॥

कोष्ठागाराध्यक्ष, सीता, राष्ट्र, क्रयिम, परिवर्तक ग्रामित्यक, आपमित्यक, सिंहनिका,
अन्यजात, व्ययप्रत्याप, और उपस्थान इन दश बातों का अच्छी तरह चिन्तन करे।
सीताध्यक्ष (धान्य संग्रह करने वाला अधिकारी) द्वारा राज्य कोष में पहुँचायी हुई धान्य
आदि वस्तु “सीता” कहाती है क्योंकि ये प्रायः सीता (हल) चलाने से उत्पन्न होती है।
पिण्डकर (गांवों पर नियत कर) पड्भाग (अन्य का छठा भाग) सेना भक्त (सेना
सम्बन्धी कर) वलि (राज्य भेंट) कर (जल या वृक्ष आदि पर नियत कर) उत्सङ्ग,
(उत्सव आदि पर राज्यार्पित धन) पार्श्व (समय पड़ने पर अधिक राजा के ग्रहण करने
योग्य कर) पारिहीणिक (पशुओं पर लगाया हुआ कर) औपायनिक (राज दरबार के
समय भेंट में प्राप्त धन) कौष्ठेयक [तालाब बगीचों से प्राप्त धन] यह दश प्रकार का राजा
के ग्रहण करने योग्य धन “राष्ट्र” कहलाता है। धान्य मूल्य [धान्य के बेचने से मिला
हुआ धन] कोशनिर्हार [राजकीय द्रव्य से खरीदा हुआ धान्यादि] प्रयोग प्रत्यादान
[न्याज के रूप में अधिक प्राप्त धान्य आदि] ये तीन, क्रयिम कहाते हैं। एक धान्य से
आवश्यक दूसरे धान्य का बदलना “परिवर्तक” कहाता है। अन्य से धान्य आदि आवश्यक
वस्तु का मांग लेना, ग्रामित्यक कहाता है। जो धान्य आदि पदार्थ लौटाने की प्रतिज्ञा पर
ग्रहण किये जाते हैं, वे आपमित्यक कहाते हैं। कुट्टक [कूटने का कार्य करने वाले] रोचक
[मूँग उड़द आदि छड़ने] सक्तु [सक्तु पीसने] शुक्त [सिरका बनाने] पिष्टकर्म अर्थात् गेहूं
आदि आटा पीस कर जीविका करने वाले एवं तेल निकालने और भेड़ के ऊन से जीविका
करने वाले या चक्र चलाने वाले [कुमार आदि] गन्ने के रस से गुड़, राव, शकर आदि
बनाने वाले पुरुषों से राजकीय अंश ग्रहण किया जाता है-यह सिंहनिका कहाता है। नष्ट
हुए धन का फिर स्मरण हो आना अन्यजात कहाता है। विक्षेप [सेना के व्यय से
बचा हुआ] व्याधित शेष (औषधालय के व्यय से बचा हुआ) अन्तरारम्भ (दुर्ग आदि के

निर्माण से बचा हुआ) धन “व्यय प्रत्याय” कहा जाता है । तुलामानान्तर (तोलने के बाद कुछ अधिक ढाला हुआ) हस्तपूरण (हाथ से नापने के अन्तर मुट्ठी भर २ कर अधिक दिया हुआ) उत्कर (अधिक दिया हुआ) व्याजी (कुछ अधिक लिया हुआ सोलहवां या बीसवां भाग) पयुपित (पिछली साल का शेष) प्रार्जित (अपनी चतुराई से इकट्ठा किया हुआ “उपस्थान” कहा जाता है ॥१-११॥

धान्यस्नेहचारलवणानाम् ॥१२॥ धान्यकल्पं सीताध्यक्षे वक्ष्यामः ॥१३॥
 सर्पिस्तैलवसामज्जानः स्नेहाः ॥ १४ ॥ फाणितगुडमतस्यण्डिकाखण्डशर्कराः चार-
 वर्गः ॥ १५ ॥ सैन्धवसामुद्रविडयवचारसौवर्चलोद्भेदजा लवणवर्गः ॥ १६ ॥
 चौद्रं मार्द्धिकं च मधु ॥ १७ ॥ इक्षुरसगुडमधुफाणितजाम्बवपनसानामन्यतमो
 मेपशृङ्गीपिप्पलीकाथाभिषुतो मासिकः पाणमासिकः सांवत्सरिको वा चिद्भिदोर्वा-
 रुकेक्षुकाण्डाम्रफलामलकावसुतः शुद्धो वा शुक्तवर्गः ॥ १८ ॥ वृक्षाम्लकरमर्दा-
 म्रविदलामलकमातुलुङ्गकोलवदरसौवीरकपरूपकादिः फलम्लवर्गः ॥ १९ ॥ दधिधान्या-
 म्लादिः द्रवाम्लवर्गः ॥ २० ॥ पिप्पलोमरीचशृङ्गिवेराजाजिकिराततिक्तगौरभर्षप-
 कुस्तुम्बुरुचोरकदमनकमरुवकशिग्रकाण्डादिः कटुकवर्गः ॥ २१ ॥ शुष्कमत्स्यमां-
 सकन्दमूल फलशाकादि च शाकवर्गः ॥ २२ ॥

अब धान्य स्नेह (घृत आदि) चार और लवण के विषय में बताना शेष है । सीता-
 ध्यक्ष प्रकरण में धान्यों की चर्चा की जावेगी । घृत, तेल, वसा और मज्जा-ये चार प्रकारके
 स्नेह होते हैं । गन्ने से बने हुए फाणित (रात्र) गुड़ मतस्यण्डिका (विशेष रात्र) और खांड
 शर्करा आदि पदार्थ चार वर्ग में गिने गए हैं । सैन्धव, (सैन्धानमक) सामुद्र (समुद्री नोन)
 विड (खारी नमक) यवचार (जवाखार) सौवर्चल (सजीखार) और उद्भेदज (ऊपर मिट्टी
 का बना हुआ नमक) ये सब चार वर्ग में सम्मिलित हैं । मक्खियों का तय्यार किया हुआ

दाख किसमिसों द्वारा बनाया हुआ शहद भी दो प्रकार का होता है । इक्षुरस (ईख का
 रस) गुड़, मधु (शहद) फाणित (रात्र) जाम्बव (जामुन का रस) पनस (कटहल) या इमली
 रस) इनमें से किसी एक के रस में मेप शृङ्गी (मेढा सींगी) और पिप्पली (पीपल) के
 काथ के साथ मिलाकर एक मास, छः मास तथा एक वर्ष तक बन्द करके रखा जावे एवं
 चिद्भिद (मीठी ककड़ी) उर्वाख (खरबूजा) इक्षुकाण्ड (ईख) आम का फल और आंवला-
 इन सब को भी उस में डाल कर या इनको न डाल कर भी जो मिट्टी द्वारा अर्क खेंचा जाता
 है, जो रस खेंचा जाता है-वह सारा शुक्त वर्ग में सम्मिलित है । वृक्षाम्ल [इमली] करौंदा,
 आम, अनार, आंवला, खट्टा नीचू या बिजोरा. भाडी बेर, बडा बेर, सौवीरक [उन्नाव]

परुषक [फालसा] आदि फल खट्टे फलों के वर्ग में गिने जाते हैं दही, कांजी, छाछ आदि पानी वाली खट्टी वस्तु मानी गई हैं। पीपल, मिरच, अदरक, जीरा, चीरायता, सफेद सरसों कुस्तुम्वुरु [धनिया] चोरक [चोर वेल] दमनक [कान्ता औपधि] मरुवक [मैन फल] शिप्रकाण्ड [सैंजना] आदि कटुक वर्ग में माने गए हैं। सूखी मछली, सूखा मींस, कन्द, मूल [गाजर मूली] फल और शाक आदि शाकवर्ग में सम्मिलित होते हैं ॥ १२-२२ ॥

ततो ऽर्धमापदर्थं जानपदानां स्थापयेत् ॥ २३ ॥ अर्धमुपयुञ्जीत ॥ २४ ॥
नवेन चानवं शोधयेत् ॥ २५ ॥ क्षुरणघृष्टपिष्टभृष्टानामार्द्रशुष्कसिद्धानां च
धान्यानां वृद्धिद्वयप्रमाणानि प्रत्यक्षीकुर्वीत ॥ २६ ॥ कोद्रवव्रीहीणामर्धं सारः
॥ २७ ॥ शालीनामर्धभागोनः ॥ २८ ॥ त्रिभागोनो वरकाणाम् ॥ २९ ॥ प्रिय-
ङ्गूणामर्धं सारः नवभागवृद्धिश्च ॥ ३० ॥ उदारकस्तुल्यः ॥ ३१ ॥ यवा गोधू-
माश्च क्षुरणाः ॥ ३२ ॥ तिला यवा मुद्गमापाश्च घृष्टाः ॥ ३३ ॥ पञ्चभागवृद्धि-
गोधूमः सक्तवश्च ॥ ३४ ॥ पादोना कलायचमसी ॥ ३५ ॥ मुद्गमापाणामर्धपा-
दोनः ॥ ३६ ॥ शैम्बानामर्धं सारः ॥ ३७ ॥ त्रिभागोनः मन्त्राणाम् ॥ ३८ ॥
पिष्टमांसं कुल्मापाश्चाध्यर्धगुणाः ॥ ३९ ॥ द्विगुणो यावकः ॥ ४० ॥ पुलाकः
पिष्टं च सिद्धम् ॥ ४१ ॥ कोद्रववरकोदारकप्रियङ्गूणां त्रिगुणमन्नम् ॥ ४२ ॥
चतुर्गुणं व्रीहीणाम् ॥ ४३ ॥ पञ्चगुणं शालीनाम् ॥ ४४ ॥ तिमितमपरान्नं द्विगु-
णमर्धाधिकं विरूढानाम् ॥ ४५ ॥ पञ्चभागवृद्धिः भृष्टानाम् ॥ ४६ ॥ कलायो
द्विगुणः ॥ ४७ ॥ लाजाभरुजाश्च ॥ ४८ ॥

इन सब वस्तुओं में जो अपने जनपद [देश] में उत्पन्न हों-राजा अपने देश की रक्षा के निमित्त उनमें से आधी इकट्ठी करलेवे और आधी वस्तुओं को प्रजा के उपयोग में लावे। जब प्रत्येक वर्ष में नई २ फसल में नई २ वस्तु आजावे, तब पुरानी को व्यवहार में ले आवे। कूटी, घिसी, पिसी, भूनी हुई तथा गीली सूखी और पकाकर बनाई हुई वस्तु तथा धान्य की वृद्धि [आय] और क्षय [व्यय] की कोष्ठागाराध्यक्ष, स्वयं अपने सामने जांच कर वावे। कोद्रव [कोदू] और चाँवलों में आधाधान्य निकलता है। शाली चाँवलों में भी आधा भाग घट जाता है। वरक [लोभिया आदि अन्न विशेष] में एक हिस्सा छीज जाता है प्रियंगू 'कांगनी' आदि में आधा हिस्सा सारभूत निकलता है। किसी २ जगह नवां भाग आधे से अधिक भी हो जाता है। उदारक 'मोटे चाँवल' का भी कांगनी के समान ही आधा सार होता है। यव 'जौ' और गेहूँ, क्षुरण 'कूटने पर निकलने वाले' कहाते हैं। तिल, यव मूँग उड़द घृष्ट 'मलने पर निकलने वाले' कहाते हैं। गेहूँ और जौ भूनने पर पाँचवें भाग

की वृद्धि हो जाती है तथा मटर और पिट्टी एक पाद घट जाती है। मूङ्ग और उड़द पीसे जाने पर आठवां हिस्सा कम हो जाता है। सैमों में आधा सार हो जाता है। मसूरों के पीसने पर तीसरा भाग न्यून हो जाता है। कच्चे पीसे हुए या पकाए हुए गेहूं, मूङ्ग आदि ढंथोड़े हो जाते हैं। जौ पके हुए दुगुने होते हैं। आधे पके हुए या सूजी आदि पकी हुई दुगुनी बैठती है। कोंदो, बरकू 'लोभिया आदि' उदारक 'मोटा चावल' प्रियंगू 'कांगनी' के पकाए जाने पर तिगुना बोंभा बैठता है। शाली 'वासमती आदि चावल' पकाने पर पच-गुने बैठ जाते हैं। काटने के समय अधपका अन्न दुगुने और कुछ बढ़ने पर काटने पर ढाई गुने पकाने पर हो जाते हैं। भुने हुए धान्यों के पकाने पर उनकी वृद्धि पांचवां भाग होती है। मटर तो दुगुनी हो जाती है। भुने हुए चावल और जौ भी पकाने पर दुगुने ही होते हैं ॥ २३-२८ ॥

पट्कं तैलमतसीनाम् ॥ ४६ ॥ निम्बकुशाम्रकपित्थादीनां पञ्चभागः ॥ ५० ॥
चतुर्भागिकास्तिलकुसुम्भमधूकेङ्गदीलेहाः ॥ ५१ ॥ कार्पासक्षौमाणां पञ्च-
पले पलसूत्रम् ॥ ५२ ॥ पञ्चद्रोणे शालीनां च द्वादशाढकं तण्डुलानां कलभभो-
जनम् ॥ ५३ ॥ एकादशकं व्यालानाम् ॥ ५४ ॥ दशकमौषवाह्यानाम् ॥ ५५ ॥
नवकं सान्नाह्यानाम् ५६ ॥ अष्टकं पत्तीनाम् ॥ ५७ ॥ सप्तकं मुख्यानाम् ॥ ५८ ॥
पट्कं देवीकुमाराणाम् ॥ ५९ ॥ पञ्चकं राज्ञाम् ॥ ६० ॥

अलसी से तेल का छठा भाग तय्यार होता है। नीम कुशा, आम की गुठली, कैथ का पांचवां हिस्सा तेल बैठता है। तिलकुसुम्भ 'कसूम' सहुआ और इंगुरी मेंसे, चौथाई हिस्सा तेल तय्यार होता है। कपास और रेशम में पांच पल, (बीस तोला) एक पल 'चार तोला' सूत्र तय्यार होता है। पांच द्रोण शालियों जब बारह आढक शेष रह जावें, तब वह एक हाथी के बच्चे का भोजन बनता है। चार सेर का एक आढक और चार आढक का एक द्रोण होता है। कूट ज्ञान कर पांच द्रोण में से जब ग्यारह आढक रहे-तो दुष्ट हाथियों का भोजन बनता है। दश आढक शेष रहने पर राजा की सवारी के हाथियों का अन्न बनता है। नौवां हिस्सा आढक शेष रहने पर युद्ध के हाथियों का भोजन बनता है। आठ आढक शेष रहने पर पैदल सैनिकों के भोजन का चावल बनता है। सात आढक शेष होने पर मुख्य सेनापतियों के भोजन के उपयोग में आता है। छः आढक शेष रहने पर रानी और राजकुमारों के भोजन में आ सकता है। और पांच द्रोण में से जब पांच आढक शेष रहे- तो वह राजाओं के भोजन के योग्य बन जाता है ॥ ४६-६० ॥

अखण्डपरिशुद्धानां वा तण्डुलानां प्रस्थः ॥ ६१ ॥ चतुर्भागः सूपः सूप-
षोडशो लवणस्यांशः चतुर्भागः सर्पिषस्तैलस्य वा एकमार्गभक्तम् ॥ ६२ ॥

प्रस्थषड्भागः सूपः, अर्धस्नेहमचराणाम् ॥ ६३ ॥ पादोनं स्त्रीणाम् ॥ ६४ ॥
 अर्धं बालानाम् ॥ ६५ ॥ मांसपलविंशत्या स्नेहार्धकुडुवः पलिको लवणस्यांशः
 चारपलयोगो द्विधरणिकः कटुकयोगो दध्नश्चार्धप्रस्थः ॥ ६६ ॥ तेनोत्तरं व्या-
 ख्यातम् ॥ ६७ ॥ शाकानामध्यर्धगुणः ॥ ६८ ॥ शुष्काणां द्विगुणः स चैव
 योगः ॥ ६९ ॥ हस्त्यश्वयोस्तदध्यक्षे विधाप्रमाणं वक्ष्यामः ॥ ७० ॥ वल्लीवर्दानां
 मापद्रोणं यवानां वा पुलाकः शेषमश्वविधानम् ॥ ७१ ॥ विशेषो-घाणपिण्याक-
 तुला कणकुण्डकं दशाढकं वा ॥ ७२ ॥ द्विगुणं महिषोष्ट्राणाम् ॥ ७३ ॥
 अर्धद्रोणं खारपृषतरोहितानाम् ॥ ७४ ॥ आढकमेणकुरङ्गाणाम् ॥ ७५ ॥
 अर्धाढकमजैलकचराहाणां द्विगुणं वा कणकुण्डकम् ॥ ७६ ॥ प्रस्थोदनःशुनाम्
 ॥ ७७ ॥ हंसक्रौञ्चमयूराणामर्धप्रस्थः ॥ ७८ ॥ शेषाणामतो मृगपशुपक्षिव्याला-
 नामेकभक्तादनुमानं ग्राहयेत् ॥ ७९ ॥ अङ्गारांस्तुपांशोहकर्मन्तभित्तिलेप्यानां
 हारयेत् ॥ ८० ॥ कणिका दासकर्मकरसूपकाराणामतोऽन्यदौदनिकोपूपिकेभ्यः
 प्रयच्छेत् ॥ ८१ ॥ तुलामानभाण्डं रोचनी दृपन्मुसलोलूखलकुडुकरोचकयन्त्रपत्त-
 कशूर्पचालनिकाकण्डोलीपिटकसंमार्जन्यश्चोपकरणानि ॥ ८२ ॥ मार्जकरक्षकध-
 रकमायककापकदायकदापकशलाकाप्रतिग्राहकदासकर्मकरवर्गश्च विष्टिः ॥ ८३ ॥

लगातार शुद्ध करते रहने पर अखण्ड छॉट लेने पर एक सेर चांवल तो राजा के
 अवश्य ही भोजन के योग्य बन जाता है। चौथाई भाग दाल, दालका सोलहवां हिस्सा नमक
 सूप का चौथा हिस्सा घृत, अथवा तेल एक योग्य पुरुष का भोजन (सीधा) होता है। एक
 प्रस्थ चांवलों का छठा भाग दाल और पहिले आधा घी तेल होना चाहिए। यह साधारण
 मनुष्यों के भोजन का भत्ता 'सीधा' है। इस में चौथाई कम करके स्त्रियों को देना चाहिए।
 और उस से आधा बालको को समझना चाहिए। बीस पल मांस के साथ आधी कुडुव
 'आधा सेर' घी चढ़ाना चाहिए। उस में एक पल नमक डाले या अन्य जवाखार आदि
 डाल देवे। पीपल मिरच आदि ढाई तोले के लग भग डालने चाहिए। और आधा सेर
 दही डालना उचित है। इससे अधिक मांस पकाने में इसी हिसाब से ये वस्तु डाले।
 शाकादि के बनाने में ड्यौढ़ा मसाला डालना चाहिए। हाथी और अश्वों के भोजन
 का प्रमाण उनके प्रकरण में बताया जावेगा। बैलों के लिए एक द्रोण उड़द
 तथा उतने ही आवे उबले हुए जौ समझने चाहिए। शेष अश्वों की प्रक्रिया
 के समान जानना। घाणी में बनी हुई तिलों की खल सौ पल और दूटे
 हुए चांवलों के साथ उनकी भूसी दश आढ़क बैलों को होनी चाहिए।

वैल से दुगुना सामान भैंसा और ऊंटों को होना उचित है। आधा द्रोण विशेष २ गर्दभों के निमित्त होना चाहिए। चीतल लाल, राण और कुरङ्ग संज्ञक हरिणों को आधा द्रोण भोजन (दाना) मिलना चाहिए। आधा आढ़क वकरा, भेड़ और सूअरों के निमित्त बताया गया है। चावल मिली हुई भूसी एक आढ़क देनी चाहिए। एक सेर पके हुए चावल कुत्तों के लिए नियत है। हंस, कौच, मयूरों का आधा सेर चावल देने चाहिए। इनके अतिरिक्त, मृग, पशु, पक्षि, व्यालों हिंसक जन्तुओं को उनको एक दिन खिला कर उनका अनुमान कर लेना चाहिए। अङ्गारे और भूसी को लोह के कर्म करने वाले या भीत लेपने वालों को दे देवे। अन्न की वारीक करिका, दास, कर्म कर (कृषि में सेवा करने वाले) दाल शाक आदि बनाने वाले को देवे। तथा चावल और पक्की रसोई बनाने वालों को भी इसी अन्न में से देना चाहिए (तुला तराजू) मान भाण्ड (वाट) रोचनी (दलने का चकला) दृपद् (शिल) मुसल (मूसल) ऊखल, कुट्टक (धान कूटने का यन्त्र) रोचक यन्त्र (चक्की) पत्रक (लकड़ी का तख़्ता) शूर्प (छाज) चालनिका (छलनी) कण्डोली (टोकरी) पिटक 'पिटारी' और संमार्जनी ये सारी रसोई बनाने की सामग्री या साधन हैं। भाड़ू लगाने वाला, कोष्ठागार रक्षक, तराजू उठाने वाला, तुलवाने वाला, इनका अधिकारी, देने वाला, दिलाने वाला, बोझ आदि उठाने वाला, दास, और अन्य कार्य करने वाले-ये सब लोग विष्टि (सेवक) कहते हैं ॥६१-३॥

उच्चैर्धान्यस्य निक्षेपो सूताः क्षारस्य संहताः ।

मृत्काष्ठकोष्ठाः स्नेहस्य पृथिवी लवणस्य च ॥ ८४ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे कोष्ठागाराध्यक्षः पञ्चदशो ऽध्यायः ॥१५॥

आदितः षट्त्रिंशः ॥ ३६ ॥

धान्य आदि को ऊँचे स्थान में रखे। गुड़ शर्करा आदि को घास फूस पर रखे। घृत आदि स्नेह के रखने के लिए मिट्टी में या काष्ठ के वर्तन होने चाहिए। लवण आदि के रखने के लिए पृथ्वी भी ठीक है। इस प्रकार इन वस्तुओं के रखने का कोष्ठागाराध्यक्ष प्रबन्ध करे ॥८४॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचारअधिकरण में कोष्ठागाराध्यक्ष के कर्तव्यों के वर्णन का पन्द्रहवां अध्याय समाप्त हुआ ।

सोलहवां अध्याय

३४वां प्रकरण

पण्याध्यक्ष ।

राजकीय वेचने योग्य वस्तुओं के अध्यक्ष को पण्याध्यक्ष कहते हैं । अब उन वस्तुओं के वेचने खरीदने और और उस अध्यक्ष के कर्तव्यों के विषय का वर्णन किया जाता है ।

पण्याध्यक्षः स्थलजलजानां नानाविधानां पण्यानां स्थलपथवारिपथोपयानां सारफलवर्धांतरं प्रियाप्रियतां च विद्यात् ॥ १ ॥ तथा विक्षेपसंचेपक्रयविक्रयप्रयोगकालान् ॥ २ ॥ यच्च पण्यं प्रचुरं स्यात्तदेकोकृत्यार्धमारोपयेत् ॥ ३ ॥ प्राप्ते ऽर्धे वार्धान्तरं कारयेत् ॥ ४ ॥ स्वभूमिजानां राजपण्यानामेकमुखं व्यवहारं स्थापयेत् ॥ ५ ॥ परभूमिजानामनेकमुखम् ॥ ६ ॥ उभयं च प्रजानामनुग्रहेण विक्रापयेत् ॥ ७ ॥ स्थूलमपि च लाभं प्रजानामौपधातिकं वारयेत् ॥ ८ ॥ अजस्रपण्यानां कालोपरोधं संकुलदोषं वा नोत्पादयेत् ॥ ९ ॥ बहुमुखं वा राजपण्यं वैदेहकाः कृतार्धं विक्रीणीरन् ॥ १० ॥ भेदानुरूपं च वैधरणं दद्युः ॥ ११ ॥

पण्याध्यक्ष स्थल और जल में उत्पन्न अनेक प्रकार की विभिन्न वस्तु तथा स्थल मार्ग और जल मार्ग से आने वाली सार 'लकड़ी आदि' और फल 'वस्त्र आदि' के मूल्य के तारतम्य तथा उनकी लोक में कितनी प्रियता और अप्रियता है, इसका अवश्य ज्ञान रखे तथा किस पदार्थ का अधिक और किसका स्वल्प संग्रह करना चाहिए और किसको रखना और किसे वेच देना उचित है, इसके प्रयोग के व्यवहारों का भी पण्याध्यक्ष को अनुभव होना आवश्यक है । जो विक्रेय वस्तु अधिक हो-उसके खरीद करने के अनन्तर पण्याध्यक्ष व्यापार कोशल से उसके दाम बढ़वा देवे और वेचने के अनन्तर फिर उसके दाम गिरवा देवे । जो अपनी भूमि में उत्पन्न राजा की विक्रेय वस्तु हैं, उनको वह एक स्थान पर ही विक्रवावे । अन्य देशोत्पन्न वस्तु पृथक् २ बिक्रीनी चाहिए । दोनों प्रकार की वस्तुओं के वेचने विक्रवाने में राजा को प्रजा के लाभ का अवश्य ध्यान रखना चाहिए । यदि राजा को बहुत बड़ा लाभ हो रहा है, और उसमें प्रजा को अधिक पीड़ा होती है, तो उस लाभ को भी राजा रोक देवे । शीघ्र वेच देने योग्य शाक आदि वस्तुओं के वेचने विक्रवाने में देर कर देना, या उस वस्तु के अधिक ठेकेदार या वेचने वाले होने देना दोष है-ऐसा नहीं होने देना चाहिए । अनेक स्थानों पर बिकने वाली राजकीय वस्तुओं को व्यापारी, नियत भाव पर बेचें । भेद से वेचने पर जो-राजकीय वस्तु कम भाव पर बिकने से राज्य की हानि हुई उसको व्यापारीगण पूरा करे-इसे ही वैधरण नामक कर कहते हैं ॥१-११॥

षोडशभागो मानव्याजी ॥ १२ ॥ विंशतिभागस्तुलामानम् ॥ १३ ॥
 गण्यपणानामेकादशभागः ॥ १४ ॥ परभूमिर्ज पण्यमनुग्रहेणावाहयेत् ॥ १५ ॥
 नाविकसार्थवाहेभ्यश्च परिहारमायतिक्ष्मं दद्यात् ॥ १६ ॥ अनभियोगश्चार्थेष्वाग-
 न्तूनामन्यत्र सभ्योपकारिभ्यः ॥ १७ ॥ पण्याधिष्ठातारः पण्यमूल्यमेकमुखं काष्ठ-
 द्रोण्यामेकच्छिद्रापि धानायां निदधुः ॥ १८ ॥ अह्नश्चाष्टमे भागे पण्याध्य-
 क्षस्यार्पयेयुः, इदं विक्रीतमिदं शेषमिति ॥ १९ ॥ तुलामानभाण्डकं चार्पयेयुः
 ॥ २० ॥ इति स्वविषये व्याख्यातम् ॥ २१ ॥

व्यापारियों के पास जितनी वस्तु मांगी गई, उसका सोलहवां भाग कर रूप में
 ग्रहण करना मानव्याजी. कहाता है। तोलने योग्य वस्तुओं का बीसवां भाग ग्रहण करना,
 तुलामान होता है। जो द्रव्य गिने जा सकते हैं उनका ग्यारहवां भाग राज्य शुल्क 'टैक्स'
 होना चाहिए। पर देश में उत्पन्न वस्तुओं को राजा कुछ अनुग्रह 'नर्मी' के साथ मंगवावे।
 नौका चलाने वाले, या सार्थवाह 'काफले' के साथ व्यापार करने वाले, वनजारों से भी
 परिहार नामक टैक्स में बहुत कुछ कमी कर देवे। आने वाले व्यापारियों का लेन देन,
 बिना सरकारी स्टाम्प के हो जाना चाहिए, परन्तु जो इनके सभ्य (यही के साथी) और
 उपकारी हों-उनका अभियोग 'स्टाम्प' आदि अवश्य होना चाहिए। पण्य 'विक्रीय वस्तु' के
 बेचने वाले पुरुष, एक स्थान पर प्राप्त राजकीय वस्तुओं के मूल्य को एक काठ की सन्दूक
 में उसके ऊपर के छेद से डाल देवे। इसके अनन्तर दिन के आठवें भाग में [सायंकाल]
 पण्याध्यक्ष को उस सन्दूक को समहलवा देवे। और यह वस्तु विक्रि चुकी-इतनी बाकी
 है-यह भी बेचने वाला उसे बता दे। तराजू या नापने के वर्तन भी उसके ही अर्पण कर
 देने चाहिए। यहां तक अपने देश की वस्तुओं के विषय में लिखा गया है ॥१२-२१॥

परविषये तु पण्यप्रतिपण्ययोरर्धमूल्यं चागमस्य शुल्कवर्तन्यातिवाहिकगु-
 ल्मतरदेयभक्तभाटकव्ययशुद्धमुदयं पश्येत् ॥ २२ ॥ असत्युदये भाण्डनिर्वहणेन
 पण्यप्रतिपण्यार्धेण वा लाभं पश्येत् ॥ २३ ॥ ततः सारपादेन स्थलव्यवहार-
 मध्वना क्षेमेण प्रयोजयेत् ॥ २४ ॥ अटव्यन्तपालपुरराष्ट्रमुख्यैश्च प्रतिसंसर्गं
 गच्छेदनुग्रहार्थम् ॥ २५ ॥ आपदि सारमात्मानं वा मोक्षयेत् ॥ २६ ॥ आत्मनो
 वा भूमिमप्राप्तः सर्वदेयविशुद्धं व्यवहरेत् ॥ २७ ॥ वारिषथे च यानभाटकपथ्यदन-
 पण्यप्रतिपण्यार्धप्रमाणयात्राकालभयप्रतीकारपण्यपत्तनचारित्राण्युपलभेत ॥ २८ ॥

अब पण्याध्यक्ष, परदेश में बेचने या खरीदने योग्य वस्तुओं के मूल्य का ज्ञान प्राप्त
 करके शुल्क (टैक्स) वर्तनीदेय (अन्तपाल को) अतिवाहिकदेय (मार्ग शुल्क) गुल्मदेय

‘जंगलात के अफसर के देने योग्य’ तरदेय ‘नदी टैक्स’ भक्त ‘भोजन व्यय’ तथा भाड़े के व्यय को निकाल कर वृद्धि ‘वचत’ कामीजान लगावे । यदि इस तरह कुछ उन्नति न दिखाई दे-तो अपनी वस्तु वहां लेजाकर बेचने खरीदने अदलने बदलने की वस्तुओं का विचार कर लाभ पर दृष्टि डाले । अपने वचे हुए धन में से एक चौथाई रुपये से स्थल व्यापार का आरम्भ करे-परन्तु मार्ग के उपद्रवों की पड़ताल करले । अटवीपाल ‘जंगल का अफसर’ अन्तपाल ‘सीमा रक्षक, नगर और देश के मुख्य पुरुषों से मिले, और उनकी सहायुभूति प्राप्त करे । यदि किसी प्रकार की आपत्ति मार्ग आदि में उपस्थित हो-तो उस समय धन प्राण या केवल प्राणों की रक्षा का प्रयत्न करे । जब तक पण्याध्यक्ष द्वारा नियत व्यापारी, अपने राजा की भूमि में न आ जावे-तब तक वहां के राजा के सारे टैक्स देता रहे । जल मार्ग ‘समुद्र’ से वस्तु बेचने वाले को यान भाटक ‘नाव का भाड़ा’ मार्ग में खाने पीने का व्यय, अपने पराये बेचने योग्य वस्तुओं के मूल्य का प्रमाण, या मार्ग में व्यतीत होने वाले समय का अनुमान, मार्ग में होने वाले चोर आदि के भय के प्रतीकार के उपाय, तथा वस्तु बेचने के नगर के आचार व्यवहार का भी पण्याध्यक्ष या उसका व्यापारी ज्ञान रखे ॥ २२-२८ ॥

नदीपथे च विज्ञाय व्यवहारं चरित्रतः ।

यतो लाभस्ततो गच्छेदलाभं परिवर्जयेत् ॥ २९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे पण्याध्यक्षः षोडशो ऽध्यायः ॥ १६ ॥

आदितः सप्तत्रिंशः ॥ ३७ ॥

इसी तरह नदी से उतर कर किये जाने वाले व्यापार के स्थान के आचार व्यवहार का भी यथोचित ज्ञान होना चाहिए ! जहां लाभ हो-वहीं जाना चाहिए-अलाभ के स्थान को दूर से ही छोड़ देना उचित है ॥ २९ ॥

इती श्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में पण्याध्यक्ष के कतव्यों का सोलहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



सत्रहवां अध्याय

३५वां प्रकरण

कुप्याध्यक्ष ।

चन्दन आदि की बढ़िया लकड़ी वांस छाल आदि के प्रबन्ध करने वाले कुप्याध्यक्ष के कर्तव्यों का वर्णन किया जाता है ।

कुप्याध्यक्षो द्रव्यवनपालैः कुप्यमानाययेत् ॥ १ ॥ द्रव्यवनकर्मान्तांश्च प्रयोजयेत् ॥ २ ॥ द्रव्यवनच्छिद्रां च देयमत्ययं च स्थापयेदन्यत्रापङ्कजः ॥ ३ ॥ कुप्यवर्गः-शाकतिनिशधन्वनार्जुनमधूकतिलकसालशिशपारिमेदराजादनशिरीषख-दिरसरलतालसर्जश्चकर्णसोमवल्ककशाप्रप्रियकधवादिः सारदारुवर्गः ॥ ४ ॥ उटज-चिमियचापवेणुवंशसातीनकण्टकभाल्लूकादिर्वेणुवर्गः ॥ ५ ॥ वेत्रशीकवल्लीवांशी-श्यामलतानागलतादिर्वल्लीवर्गः ॥ ६ ॥ मालतीमूर्वाकशणगवेधुकातस्यादिर्वल्कवर्गः ॥ ७ ॥ मुञ्जवल्जजादि रज्जुभाण्डम् ॥ ८ ॥ तालीतालभूर्जानां पत्रम् ॥ ९ ॥ किंशुककुसुम्भकुङ्कुमानां पुष्पम् ॥ १० ॥

कुप्याध्यक्ष, वृक्ष या वन के पालकों द्वारा कुप्य अर्थात् बढ़िया २ लकड़ियां संग्रहावे और उन लकड़ियों से जो अच्छी २ मेज कुर्सी आदि वस्तु बन सके-वे वनवावे वन के वृक्ष काटने वाले पुरुषों का वेतन या भूलकरने पर अत्यय 'दण्ड-जुरमाना' आदि, भी नियमित होना चाहिए । यदि कोई आपत्ति या आकस्मिक भूल हा जावे-तो उनपर दण्ड नहीं होना चाहिए । शाक 'सागवान' तिनिश 'तैदुआ' धन्वन 'पीपल' अर्जुन 'अर्जुन वृक्ष' मधूक 'महुआ' तिलक 'ताल मखाना' साल 'स्याल' शिशपा 'सीसम' अरिमेद 'दुर्गन्धपूर्ण खैर वृक्ष' राजादन 'खिरनी' शिरप 'सिरस' खादर 'खैर' सरल 'देवदारु' ताल 'ताड़' सर्ग 'पीले रङ्ग का साल' आवकर्ण 'साल का भेद' सोमवल्क 'सफेद खैर' कश 'कीकर' आम, प्रियक 'कदम्व' धव 'गूलर' आदि सार दारु वर्ग कहाता है । उटज 'जिस की गांठों पर कांटे होते हैं' चिमिय 'मुलायम छाल वाले' छाया 'पौला और खरदरा' वेणु 'चिकना धनुष बनाने योग्य' वंस 'लम्बी पोरियों का वांस' सातीन, कण्टक 'वंश विशेष' भाल्लूक 'मोटा लम्बा वांस'-ये सब वांस वेणुवर्ग में सम्मिलित हैं । वेत्र 'वैत' शीकवल्ली 'लता विशेष' वाशी 'अर्जुन के फूल के समान फूल वाली, श्यामलता 'काली निसोत' नागलता 'नागर वेल' आदि लता वर्ग में सम्मिलित हैं । मालती 'चमेली' मूर्वा (संरोर फली) अर्क (आक) शण (सन) गवेधुका (नाग वला) अतसी (अलसी) आदि वल्कवर्ग में गिने जाते हैं । मुञ्ज (मूँज) बल्वज

आदि [एक प्रकार का घास] वस्तुएं रस्सी बनाने के साधन हैं। ताली ताल (ताड़) भूज [भोज पत्र] ये पत्रों में गिने गए हैं। किंशुक [दाक] कुसुम्भ [कसूम] कुंकुम [केसर] आदि पुष्प वर्ग में माने गए हैं ॥ १-१० ॥

कन्दमूलफलादिरौपधवर्गः ॥ ११ ॥ कालकूटवत्सनाभहालाहलमेपशृङ्गमु-
स्ताकुष्ठमहाविषवेल्लितकगौरार्द्रवाल्कमार्कटहैमवतकालिङ्गकदारदकांकोलसारक्रोष्टु-
कादीनि विपाणि ॥ १२ ॥ सर्पाः कीटाश्च त एव कुम्भगता विपवर्गः ॥ १३ ॥
गोधासेरकद्वीपिशिशुमारसिंहव्याघ्रहस्तिमहिषचमरसृमरखड्गगोमृगगवयानां चर्म-
स्थिपित्तस्नाय्वस्थिदन्तशृङ्गखुरपुच्छान्यन्येषां वापि मृगपशुपक्षिव्यालानाम् ॥ १४ ॥
कालायसताम्रवृत्तकांस्यसीसत्रपुवैकृन्तकारकूटानि लोहानि ॥ १५ ॥

कन्द, 'विदारी' मूल 'खस' आदि और फल 'आंवला' आदि ओषधि वर्ग कहते हैं। कालकूट, वत्सनाभ हालाहल, मेपशृङ्ग, मुस्ता, कुष्ठ, महाविष, वेल्लितक, गौरार्द्र, वालक, मार्कट, हैमवत, कालिङ्गक, दारदक, अङ्गोलसारक, उष्ट्रक आदि द्रव्य विप वर्ग में माने गए हैं। सर्प, कीट [छपकली विच्छ्र आदि] घड़े में सड़ाने पर अर्क खेंचने पर इनका अर्क भी विप वर्ग में गिना जाता है अर्थात् जहां विप वर्ग की वस्तुएं काम में आती हैं, वहां यथोचित इन का भी व्यवहार हो सकता है। गोह, सेरक [सफेद गोह] द्वीपी (बघेरा), शिशुमार [जल जन्तु] सिंह, व्याघ्र [शार्दूल] हाथी, अरण्यभैंसा, चमरी गाय, सृमर [हरिण विशेष] गैंडा गौ, मृग, नीलगाय, चर्म, अस्थि, पित्ता, स्नायु, छोटी २ हड्डी, दांत, सींग खुर, पूंछ आदी वस्तुएं काम में आती हैं। तथा अन्य वन के जीव, पशु पक्षी और व्याल (रेंगने वाले) जन्तुओं की खाल आदि भी व्यवहार में आती हैं। कालायस [काला लोहा] ताम्र वृत्त 'तांवा' कांस्य 'कांसी' सीस 'सीसा' त्रपु 'रांग' वैकृन्तक 'इस्पाती या खेड़ी लोहा' आरकूट 'पीतल' ये सब लोह भेद में ही गिने जाते हैं ॥ ११-१५ ॥

विदलमृत्तिकामयं भाण्डम् ॥ १६ ॥ अङ्गारतुपभस्मानि मृगपशुपक्षिव्या-
लवाटाः काष्ठवृणवाटाश्चेति ॥ १७ ॥

बांस की खपची आदि से टोकरी और मिट्टी के वर्तन-ये दो तरह के भाण्ड होते हैं। अङ्गार 'कोयले' तुप, भस्म 'राख' मृग, पशु, पक्षी, व्यालों 'हिसक जन्तुओं' के समूह, काष्ठ, वृण आदि के समूह-ये सब संग्रह की वस्तु हैं ॥ १६-१७ ॥

बहिरन्तरश्च कर्मान्ता विभक्ताः सर्वभाण्डकाः ।

आजीवपुररक्षार्थाः कार्याः कुप्योपजीविना ॥ १८ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे कुप्याध्यक्षः सप्तदशो ऽध्यायः ॥१७॥

आदितो ऽष्टत्रिंशः ॥ ३८ ॥

बाहर 'परदेश' अन्तर 'अपने देश' के उत्पन्न वस्तु, तथा काष्ठ आदि से बनवाये हुए भिन्न २ वर्तन, पुर और जनपद की रक्षा की वस्तु, कुप्याध्यक्ष या उसके साथी कर्मचारियों या व्यापारियों द्वारा अवश्य इकट्ठी करानी चाहिए ॥१८॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचार अधिकरण में कुप्याध्यक्ष के कर्मों के वर्णन का सत्रहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



अठारहवां अध्याय

३६वां प्रकरण

आयुधागाराध्यक्ष ।

शास्त्रों के भण्डार के अध्यक्ष का नाम आयुधागाराध्यक्ष है । अब उसके कर्तव्यों का वर्णन किया जाता है ।

आयुधागाराध्यक्षः सांग्रामिकं दौर्गकर्मिकं परपुराभिधातिकं चक्रयन्त्रमायुधमावरणमुपकरणं च तज्जातकारुशिल्पिभिः कृतकर्मप्रमाणकालवेतनफलनिष्पत्तिभिः कारयेत् ॥ १ ॥ स्वभूमिषु च स्थापयेत् ॥ २ ॥ स्थानपरिवर्तनमातपप्रवातप्रदानं च बहुशः कुर्यात् ॥ ३ ॥ ऊष्मोपस्नेहक्रिमिभिरुपहन्यमानमन्यथा स्थापयेत् ॥ ४ ॥ जातिरूपलक्षणप्रमाणागममूल्यनिक्षेपैश्चोपलभेत ॥ ५ ॥

आयुधागाराध्यक्ष, युद्धोपयोगी, दुर्ग की रक्षा में काम आने वाले, शत्रु पुरके नाश करने के उपयोगी, चक्र यन्त्र 'धूमते हुए यन्त्र' आयुध 'शस्त्र' आवरण 'कवच' तथा अन्य युद्ध की सामग्री और उस विषय के साधारण और उत्तम कारीगर उनके काम का प्रमाण, समय, वेतन आदि के विषय में अच्छी जानकारी प्राप्त करके उनसे ये कार्य करव वे । इन सारे पदार्थों को अपने अधिकार में रहने वाले स्थान में रखे । आयुधागाराध्यक्ष, उन शास्त्रा का स्थान परिवर्तन, धूप, वायु आदि अच्छी तरह लगवाता रहे, जिससे खराब न हो । गर्मी स्नेहाभाव 'जरना' और धुन दीमक आदि से बेकार हुए अस्त्रों को मरम्मत के लिए रखवा दे । उनकी जाति 'स्वभाव' रूप 'आकार' लक्षण 'चिन्ह' प्रमाण 'लम्बाई चौड़ाई' आगम 'प्राप्ति स्थान' मूल्य 'मोल' निक्षेप 'प्रहार-प्रकार' आदि का भी अध्यक्ष को ज्ञान होना चाहिए ॥१-५॥

सर्वतोभद्रजामदग्न्यबहुमुखविश्वासघातिसङ्घाटीयानकपर्जन्यकबाहुर्ध्वबाहुर्ध्व-
बाहूनि स्थितयन्त्राणि ॥ ६ ॥ पञ्चालिकदेवदण्डसूकरिकामुसलयष्टिहस्तिवारकतालवृ-
न्तामुद्गरगदास्पृक्तलाकुदालास्फोटिमोद्घाटिमोत्पाटिमशतघ्नीत्रिशूलचक्राणिचलय-
न्त्राणि ॥ ७ ॥

सर्वतोभद्र 'एक स्थान पर रखा हुआ चारों ओर बाण या गोली फेंकने वाला अर्थात् मशीन गन' जामदग्न्य 'बीच के छेद में से बड़े २ गोले फेंकने वाला अर्थात् तोप' बहुमुख 'सब ओर से गोले छोड़ने वाला' विश्वासघाती 'कुछ भी प्रतीत न होकर शत्रु को दूते ही मार डालने वाला यन्त्र' सङ्घाटी 'आग लगाने वाले यन्त्र' यानक 'सवारी पर चलने वाला यन्त्र' पर्जन्यक 'आग बुझाने वाला' बाहु 'छोटा यन्त्र' ऊर्ध्वबाहु 'ऊपर उठा हुआ यन्त्र' अर्धबाहु 'इससे कुछ छोटा' ये दश यन्त्र स्थित यन्त्र कहाते हैं । पञ्चालिक 'जल से भरी खाई को तैरते हुए शत्रु का घातक यन्त्र' देव दण्ड 'परकोटे पर बहुत ऊंचा रखा हुआ यन्त्र' सूकरिका 'सूत और चमड़े से बनी तोप' मुसलयष्टि 'मूसल में लगा हुआ भाला' हस्तिवारक 'हाथी को मारने का दण्ड' तालवृन्त 'चारों ओर घूमने वाला यन्त्र' मुद्गर, गदा, स्पृक्तला 'काटेदार गदा' 'कुदाल' कुदाल, आस्फोटिम 'पत्थर फेंकने का यन्त्र' उद्घाटिम 'मुद्गर सा यन्त्र' उत्पाटिम खम्भे आदि का उखाड़ने वाला यन्त्र, शतघ्नी लम्बी २ कीलों का यन्त्र, त्रिशूल और चक्र ये चल यन्त्र कहाते हैं ॥ ६-७ ॥

शक्तिप्रासकुन्तहाटकभिण्डपालशूलतोमरवराहकर्णकणयकपर्णत्रासिकादी-
नि च हलमुखानि ॥ ८ ॥ तालचापदारवशाङ्गाणि कामुर्ककोदण्डद्रूणाधनुषि
॥ ९ ॥ मूर्वाकशरणवेधुवेणुस्नायुनि ज्याः ॥ १० ॥ वेणुशरशलाकादण्डासन-
नाराचाश्च इषवः ॥ ११ ॥ तेषां मुखानि छेदनभेदनताडनान्यायसास्थिदारवानि ॥ १२ ॥

शक्ति 'लोह का बना हुआ कनेर के पत्ते के आकार का भाला' प्रास 'चौबीस अंगुल लम्बा दुधारा' कुन्त 'सात छः और पांच हाथ लम्बा भाला' हाटक 'तीन कांटे वाला भाला' भिण्डपाल, मोटी फल वाला भाला-शूल नेजा (बाण के तुल्य मुख वाला भाला) वराह कर्ण (वराह के कान सा भाला) कणय (बीस, वाईस, चौबीस, अंगुल का कांटेदार मूठ वाला भाला) कर्पण (बाण के तुल्य भाला) त्रासिका (लोहेकी प्रास जैसी बनी हुई) आदि-भाले मुख कहाते हैं, क्योंकि इनके अग्रभाग तीक्ष्ण होते हैं । ताल (ताड़) चाप (चांस) दास्र (लकड़ी) शाङ्ग (सींग) से बना होने से कामुर्क, कोदण्ड, द्रूणा और धनुष इनके नाम हो जाते हैं । मूर्वा (मुहार) आक 'सण' गवेधुक (मुनि वृण) वेणु 'चांस' और स्नायु (शिरा) इनकी रस्सी अच्छी बनती है, जिसकी धनुष की डोरी बनाई जाती है । वेणु चांस शर (नरसल) शलाका

(दढ़ काष्ठ) दण्डासन (आधा लोहा और आधा वांस) ये भिन्न प्रकार के बाण होते हैं । इनके मुख, छेदन, भेदन- और ताडन के लिए लोह, हंडी और दढ़ लकड़ी के होते हैं ॥८-१२॥

निस्त्रिशमण्डलाग्रासियष्टयखङ्गाः ॥ १३ खङ्गमहिषवारणविषाणदारुवेणु-
मूलानि त्सरवः ॥ १४ ॥ परशुकुठारपट्टमखनित्रकुदालक्रकचकाण्डच्छेदनाः क्षुर-
कल्पाः ॥ १५ ॥ यन्त्रगोष्पणमुष्टिपाषाणरोचनीद्वपदश्चायुधानि ॥ १६ ॥

निस्त्रिश (टेढ़ी तलवार) मण्डलाग्र 'गोल तलवार' असियाष्टि (पतली लम्बी तलवार) इस प्रकार तीन तरह की तलवार होती हैं । खङ्ग (गैडा) महिष (भैंसे की सींग) हाथी दांत दढ़ काष्ठ और वांस की जड़ की तलवारों की मूठ होती हैं । परशु (फरसा) कुठार (कुल्हाड़ा) पट्टस (दोनों ओर त्रिशूलधारी) खनित्र (कुस्सा) कुदाल (कुदाली) क्रकच (करोंत) काण्डच्छेदन 'गंडासा' यह सब क्षुर वर्ग कहाता है । यन्त्र, गोष्पण और मुष्टिका द्वारा फेंके हुए पाषाण, रोचनी (चक्की के पाट) द्वपद् (शिला) ये सब आयुध कहाते हैं ॥१३-१६॥

लोहजालजालिकापट्टकवचसूत्रकंकटशिशुमारकखङ्गधेनुकहस्तिगोचर्मखुरशृ-
ङ्गसंघातं वर्माणि ॥१७॥ शिरस्त्राणकण्ठत्राणकूर्पासकञ्चुकवारवाणपट्टनागोदरिकाः
पेटीचर्महस्तिकर्णतालमूलधमनिकाकवाटकिटिकाप्रतिहतबलाहकान्ताश्च आवरणानि
॥ १८ ॥ हस्तिरथवाजिनां योग्यभाण्डमालंकारिकं संनाहकल्पनाश्रोपकरणानि
ऐन्द्रजालिकमौपनिपदिकं च कर्म ॥ २० ॥

लोह जाल (लोहे की कड़ियों का कवच) जालिका 'लोह की जाली' लोह पट्ट 'लोह पट्टे' लोह कवच (पीठ छाती ढकने वाला) सूत्रकंकट 'सूतका कवच' शिशुमारक 'जल जन्तु या उड़ विलोव' खङ्गी (गैडा) धेनुक (नील गाय) हस्ती, वृषभ इन पांचों के चमड़े, तथा खुर, सींग के संघात से भी कवच बनाये जाते हैं । शिरस्त्राण 'सिर के कवच' कण्ठत्राण 'कण्ठका कवच' कूर्पास 'आधी बांहों का कवच' कञ्चुक 'घोंटुओं तक का कवच' वारवाण 'पैर तक का कवच' पट्ट 'बांहों से रहित' नागोदरिका [अंगुलित्राण] ये सात आवरण [कवच] होते हैं । पेटी चर्म, [चमड़े की पेटी] हस्तिकर्ण [मुंह का कवच] तालमूल [लकड़ी का बना हुआ आवरण] धमनिका [सूत का बना हुआ] कवाट [लकड़ी का कवच] किटिका [चमड़े और बांस की बनी हुई पेटी] अप्रतिहत [हाथ का कवच] बलाहकान्त [लोहे के पत्रों से ढका हुआ हाथ का कवच] इनकी गणना भी कवचों में ही की गई है । हाथी, रथ और अश्वों के योग्य पदार्थ, अंकुश आदि, अलङ्कार, कवच-ये सब युद्ध के उपकरण कहाते हैं । ऐन्द्रजालिक [थोड़ी सेना को अधिक दिखा देने तथा अग्नि न होने पर आग दिखा देना आदि] औप-

निषदक [भिपैले धुएँ [गैस] दूषित जलादिका प्रयोग] कर्म भी युद्ध के साधनों में ही माने गए हैं ॥१७-२०॥

कर्मान्तानां च—॥ २१ ॥

इच्छामारम्भनिष्पत्तिं प्रयोगं व्याजमुद्यम् ।

क्षयव्ययौ च जानीयात्कुप्यानामायुधेश्वरः ॥ २२ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे आयुधागाराध्यक्षः अष्टादशो ऽध्यायः ॥१८॥

अ दितः एकोनचत्वारिंशः ॥ ३६ ॥

जितने भी राज्य सम्बन्धी कर्मान्त [महकमे] चन्दन आदि कुप्य वस्तु रुचि के अनुसार तथा राजा की रुचि, आरम्भ और समाप्ति, उनके प्रयोग, दोष, लाभ, क्षय और व्यय, इन सबका आयुधागाराध्यक्ष ज्ञान रखे ॥२१-२२॥

इति श्रीकौटलीयअथंशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचार अधिकरण में आयुधागार के अध्यक्ष के कर्तव्यों के निर्णय का अष्टारहवां अध्याय समाप्त हुआ ।



उन्नीसवां अध्याय

३७वां प्रकरण

तोल मापका संशोधन

तोल और नाप के अधिकारी को पौतवाध्यक्ष कहते हैं, अब उसके कर्मों का निरूपण किया जाता है ।

पौतवाध्यक्षः पौतवकर्मान्तान्कारयेत् ॥ १ ॥ धान्यमाषा दश सुवर्णमापकः पञ्च वा गुञ्जाः ॥ २ ॥ ते षोडश सुवर्णः कर्पो वा ॥ ३ ॥ चतुःकर्प पलम् ॥ ४ ॥ अष्टाशीतिगौरसर्षपा रूप्यमापकः ॥ ५ ॥ ते षोडश धरणम् ॥ ६ ॥ शैव्यानि वा विंशतिः ॥ ७ ॥ विंशतितण्डुलं वज्रधरणम् ॥ ८ ॥

पौतवाध्यक्ष, पौतवकर्मान्त [नाप तोल के बाट] आदि बनवावे । दश उड़द के दानों तथा पांच रस्ती का एक सुवर्ण माषा होता है । सोलह मासे का सुवर्ण या एक कर्प होता है । चार कर्प का एक पल माना जाता है । अठ्ठासी सफेद सरसों के दानों का एक रूप्य माषक होता है । सोलह रूप्य माषक का एक धरण होता है । इसके बराबर ही बीस 'शैव्य' सैम के दाने माने गए हैं । बीस चावल का एक वज्रधारण होता है—यह हीरे की तोल का साधन है ॥१-८॥

अर्धमापकः मापकः द्वौ चत्वारः अष्टौ मापकाः सुवर्णौ द्वौ चत्वारः अष्टौ सुवर्णाः दश विंशतिः त्रिंशत् चत्वारिंशत् शतमिति ॥ ९ ॥ तेन धरणानि व्याख्यातानि ॥ १० ॥ प्रतिमानान्ययोमयानि मागधमेकलशैलमयानि यानि वा नोदकप्रदेहाभ्यां वृद्धिं गच्छेयुरुष्णेन वा हासम् ॥ ११ ॥

अर्ध आपक, मापक, दो मापक, चार मापक, आठ मापक, एक सुवर्ण, दो सुवर्ण, चार सुवर्ण आठ सुवर्ण, दश सुवर्ण, बीस सुवर्ण, तीस सुवर्ण, चालीस सुवर्ण और सौ सुवर्ण-तक के वाट बनवाने चाहिए । इसी हिसाब से धरण नामक वाट भी बनवाये जावे । तोलने के वाट लोहे के बनने चाहिए या मगध और मेकल देश के दृढ़ पत्थर के बनवाये जावे । इसके अतिरिक्त पानी और अन्य लेप से जो वृद्धि को प्राप्त न हो-तथा गरमी से क्षीण न हो-ऐस द्रव्य के वाट भी बनवाये जा सकते हैं ॥९-११॥

पडङ्गुलादूर्ध्वमष्टाङ्गुलोत्तरा दश तुलाः कारयेत्ल्लोहपलादूर्ध्वमेकपलोत्तरा यन्त्रमुभयतः शिष्यं वा ॥ १२ ॥ पञ्चत्रिंशत्पललोहां द्विसप्तत्यङ्गुलायामां समवृत्तां कारयेत् ॥ १३ ॥ तस्याः पञ्चपलिकं मण्डलं बद्ध्वा समकरणं कारयेत् ॥ १४ ॥ ततः कर्षोत्तरं पलं पलोत्तरं दशपलं द्वादश पञ्चदश विंशतिरिति पदानि कारयेत् ॥ १५ ॥ तत आशतादशोत्तरं कारयेत् ॥ १६ ॥ अक्षेषु नान्दीपिनद्धं कारयेत् ॥ १७ ॥

सोने चांदी आदि वस्तुओं के तोलने की छः अंगुल से लेकर आठ २ अंगुल बढ़ाते हुए, दश तरह की तराजू बनायी जा सकती हैं । इसका तोल एक पल लोह से लेकर एक २ पल बढ़ाते हुए अठहत्तर अंगुल की तुला में दश पल का बोझा होना चाहिए । जिसमें दोनों ओर पलड़े रहने चाहिए । पैंतीस पल लोहे की बनी हुई बहत्तर अंगुल (तीन हाथ) लम्बी गोलाकार तुला सुवर्ण आदि से अतिरिक्त वस्तुओं के तोलने को बनावे । उसका पांच पल का मण्डल [मध्य भाग] बनवाकर उसके ठीक मध्य में एक एक चिन्ह या कांटा लगावावे । उसके बाद उस बीच के चिन्ह से एक कर्ष, दो कर्ष, तीन कर्ष, पल, दश पल, बारह पल, पन्द्रह पल, और बीस पल के चिन्ह लगावे । फिर बीस पल के आगे दस २ के अनन्तर से सौ पल तक के चिन्ह लगावे । प्रत्येक अक्ष [पांच पल] के अन्तर के चिन्ह पर पहचान के लिए एक नान्दीपिनद्ध [स्वस्तिक] का विशेष चिन्ह लगा देवे । इसको समवृत्तातुला कहते हैं ॥१२-१७॥

द्विगुणलोहां तुलामतः पण्यवत्यङ्गुलायामां परिमाणीं कारयेत् ॥ १८ ॥ तस्याः शतपदादूर्ध्वं विंशतिः पञ्चाशत् शतमिति पदानि कारयेत् ॥ १९ ॥

विंशतितौलिको भारः ॥ २० ॥ दशधरणिकं पलम् ॥ २१ ॥ तत्पलशतमायमानी ॥ २२ ॥
 पञ्चपलावरा व्यवहारिकी भाजन्यन्तःपुरभाजनी च ॥ २३ ॥ तासामर्धधरणावरं
 पलम् ॥ २४ ॥ द्विपलावरमुत्तरलोहम् ॥ २५ ॥ षडङ्गुलावराश्चायामाः ॥ २६ ॥
 पूर्वयोः पञ्चपलिकः प्रयामो मांसलोहलवणमणिवर्जम् ॥ २७ ॥ काष्ठतुला अष्ट-
 हस्ता पदवती प्रतिमानवती मयूरपदाधिष्ठिता ॥ २८ ॥ काष्ठपञ्चविंशतिपलं तण्डु-
 लप्रस्थसाधनम् ॥ २९ ॥ एष प्रदेशो बहुल्पयोः ॥ ३० ॥ इति तुलाप्रतिमानं
 व्याख्यातम् ॥ ३१ ॥

समवृत्तातुला से दुगुने लोहे से बनी हुई अर्थात् सत्तर पल लोहे से बनायी हुई और
 छियानवें अंगुल [चार हाथ] लम्बी तुला बनवावे । इसको परमाणी तुला कहते हैं । इसमें भी
 कर्षसे लेकर सौ पल तक चिन्ह करके फिर बीस, पचास और सौ के चिन्ह लगा देवे अर्थात् बीस
 तुला का एक भार होता है [सौ पल का एक तुला है] दश धारणिक का एक पल और सौ पल की एक
 आयमानी होती है । आयमानी से पांच पल कम अर्थात् पिचानवें पल की एक व्यवहारिकी,
 व्यवहारिकी से पांच पल कम अर्थात् नव्वे पल की एक भाजनी तथा भाजनी से पांच पल
 न्यून अर्थात् पच्चीसी पल की एक अन्तःपुरभाजनी तुला होती है । इन व्यवहारिकी
 भाजनी और अन्तःपुर भाजनी नाम की तुलाओं में पल का परिमाण साढ़े नौ नौ और साढ़े
 आठ धरण का क्रम से जानना चाहिए । इनमें लोहा भी दो दो पल कम होना चाहिए
 अर्थात् आयमानी तुला पैंतीस, व्यवहारिकी तेतीस, भाजनी इक्कीस और अन्तःपुर
 भाजनी उनतीस पल की होती है । इनकी लम्बाई भी क्रम से छः २ अंगुल कम होती है
 अर्थात् वहत्तर अंगुल की आयमानी, छियासठ अंगुल की व्यवहारिकी, साठ अंगुल की
 भाजनी और चौवन अंगुल की अन्तःपुर भाजनी होती है । पहिली दो तुलाओं में पांच
 पल अधिक तोला जाता है अर्थात् उनमें तोलने से पांच पल का अन्तर पड़ता है, इसमें
 मांस, लोहा, लवण और मणि नहीं तोलने चाहिए । काष्ठ की तुला [तराजू] आठ हाथ की
 होनी चाहिए । इसमें एक, दो और तीन आदि चिन्हों पर रेखा बना देवे । इसके बाट
 पत्थर के होते हैं । इस तराजू के रोकने के खम्भे मयूर के पैर जैसे दो होने चाहिए । पच्चीस
 पल ईधन, एक प्रस्थ [सेर] चावलों को 'पकाने' पर्याप्त है । इसी हिसाब से अधिक और न्यून
 चावलों का काष्ठ समझ लेवे । यह तराजू के मान की व्याख्या करदी है । यहां तक सोलह
 प्रकार की तुला और चौदह प्रकार के बाटों का निरूपण किया गया ॥ १८-३१ ॥

अथ धान्यमाषद्विपलशतं द्रोणमायमानम् ॥ ३२ ॥ सप्ताशीतिपलशतमर्ध-
 पलं च व्यावहारिकम् ॥ ३३ ॥ पञ्चसप्ततिपलशतं भाजनीयम् ॥ ३४ ॥ द्विप-

ष्टिपलशतमर्धपलं चान्तःपुरभाजनीयम् ॥३५॥ तेषामाढकप्रस्थकुडुवाश्चतुर्भागावराः
 ॥ ३६ ॥ षोडशद्रोणा खारी ॥ ३७ ॥ विंशतिद्रोणिकः कुम्भः ॥ ३८ ॥ कुम्भै-
 र्दशभिर्वहः ॥ ३९ ॥ शुष्कसारदारुमयं सनं चतुर्भागशिखं मानं कारयेत् ॥४०॥
 अन्तःशिखं वा ॥ ४१ ॥ रसस्य तु ॥ ४२ ॥ सुरायाः पुष्पफलयोस्तुपाङ्गारोणां
 सुधायाश्च शिखामानं द्विगुणोत्तरा वृद्धिः ॥४३॥ सपादपणो द्रोणमूल्यम् ॥४४॥
 आढकस्य पादोनः ॥४५॥ पणमोषकाः प्रस्थस्य ॥४६॥ माषकः कुडुवस्य ॥४७॥
 द्विगुणं रसादीनां मानमूल्यम् ॥४८॥ विंशतिपणाः प्रतिमानस्य ॥४९॥ तुलामूल्यं
 त्रिभागः ॥ ५० ॥

धान्य माप के दो सौ पल का एक आयमान द्रोण होता है। एक सौ साढ़े सत्तासी पल का एक व्यवहारिक द्रोण होता है। एक सौ पिछहत्तर पल का एक भाजनीय द्रोण होता है। एक सौ साढ़े वासठ पल का एक अन्तपुर भाजनीय द्रोण कहाता है। इन चार प्रकार के द्रोणों में चतुर्थांश कम कर देने पर चार प्रकार के आढक बनते हैं, आढक में चतुर्थांश कम करने पर चार तरह के प्रस्थ और प्रस्थ में चतुर्थांश कम करने पर चार तरह के कुडुव होते हैं। सोलह द्रोण की एक खारी, बीस द्रोण की एक कुम्भ और दश कुम्भ का एक “वह” होता है। सूखी बढ़िया लकड़ी का बना हुआ, नीचे ऊपर से बराबर, चतुर्थांश भाग धारण कर लेने वाली ग्रीवा से युक्त एक मान मात्र (नापने का पात्र) बना लेना चाहिए। पात्र में चतुर्थांश भाग की शिखा पृथक् न रख कर उस में ही सम्मिलित शिखा रखकर भी पात्र बनाया जा सकता है। घृत और तेल का भी इसी तरह का नाप का पात्र होता है। सुरा (शराब) पुष्प, फल तुष (घास फूस) अङ्गार (कोयले) या कला (सफेदी) के नापने के पात्र की शिखा का भाग नीचे से दुगुना होना चाहिए। जिस पात्र में एक द्रोण वस्तु आ जावे-उसका मूल्य सवा पण होता है। एक आढक का मूल्य पौन पण, एक प्रस्थ आने वाले का छः मापा और एक कुडुव का एक मापा मूल्य होता है। घृत तेल आदि के नापनेके वर्तन का मूल्य, इनसे दुगुना होता है अर्थात् एक द्रोण घृत नापने से पात्र का मूल्य ढाई पण होता है इस प्रकार आढक आदि भी समझ लेवे। चौदह प्रकार के वाटों का मूल्य बीस पण होता है। तराजू का मोल इससे तिहाई माना गया है ॥ ३२-५० ॥

चतुर्मासिकं प्रातिवेधनिकं कारयेत् ॥ ५१ ॥ अप्रतिविद्वस्यात्ययः सपादः
 सप्तविंशतिपणः ॥ ५२ ॥ प्रातिवेधनिकं काकणीकमहरहः पौतवाध्यक्षाय दद्युः
 ॥५३॥ द्वात्रिंशद्भागस्तप्तव्याजी सर्पिषश्चतुः षष्टि भागस्तैलस्य ॥ ५४ ॥

पञ्चाशद्भागो मानसावो द्रवाणाम् ॥ ५५ ॥ कुडुवार्धचतुरष्टभागानि मानानि कारयेत् ॥ ५६ ॥

चार महीने पीछे प्रत्येक तुला और वाटों की जांच करनी चाहिए। जो समय पर शोधन (जांच) नहीं करवावे-उस पर सवा सत्ताईस पण दण्ड होना चाहिए। व्यापारीगण प्रतिदिन की एक काकणी के हिसाब से पौतवाध्यक्ष को टैक्स देवे। यदि गरम किया हुआ घी खरीदा जावे-तो उसके ऊपर बत्तीसवां भाग तप्तव्याजी [राज्य का टैक्स] लेना चाहिए तेल का चौंसठवां भाग लेना उचित है। द्रव [पतले पदार्थों] का पचासवां भाग तोलने की छीजना का होता है। कुडुव, अर्धकुडुव, चौथाई कुडुव, और आठवां हिस्सा कुडुव के वाट या नांप के वर्तन बनवाने चाहिए ॥ ५१-५६ ॥

कुडुवाश्चतुराशीतिः वारकः सर्पिषो मतः ।

चतुःषष्टिस्तु तैलस्य षाडश्च घटिकानयोः ॥ ५७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे तुलामानपौतवं एकोनविंशो ऽध्यायः

॥ १२ ॥ आदितश्चत्वारिंशः ॥ ४० ॥

घी के तोलने में चौरासी कुडुव का वारक होता है और तेल के तोलने में चौंसठ कुडुव का वारक होता है। एक पान ऊन अर्थात् इक्कीस कुडुव की एक घटिका घी तोलने और सोलह कुडुव की एक घटिका तेल नांपने की होती है ॥ ५७ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में तुलामान [तराजू वाट] आदि का उन्नीसवां अध्याय पूरा हुआ ।



बीसवां अध्याय

३८वां प्रकरण

देश तथा कालका मान ।

अब देश और काल के परिमाण का विचार किया जाता है ।

मानाध्यक्षो देशकालमानं विधात् ॥१॥ अष्टौ परमाणवो रथचक्रविप्रुट् ॥ २ ॥ ता अष्टौ लिप्ता ॥३॥ ता अष्टौ यूकामध्यः ॥ ४ ॥ ते अष्टौ यवमध्यः ॥ ५ ॥ अष्टौ यवमध्या अङ्गुलम् ॥ ६ ॥ मध्यमस्य पुरुषस्य मध्यमाया अङ्गुल्या मध्यप्रकर्षो वाङ्गुलम् ॥ ७ ॥

मानाध्यक्ष देश और काल के परिमाण को भी अच्छी तरह जाने । आठ परमाणुओं का मिल कर रथ के पहिए की उड़ाई हुई धूलि का एक कण होता है । आठ धूली कण मिलाकर एक लिप्ता होती हैं , आठ लिप्ता का एक यूकामध्य और आठ यूकामध्य का एक यवमध्य होता है । आठ यवमध्यों का एक अंगुल होता है । साधारण मध्यम कद के पुरुष की मध्य अंगुलि मध्य भाग की मुटाई की बराबर एक अंगुल की मुटाई होनी चाहिए ॥१-७॥

चतुरङ्गुलो धनुर्ग्रहः ॥ ८ ॥ अष्टाङ्गुला धनुर्मुष्टिः ॥ ९ ॥ द्वादशाङ्गुला वितस्तिः ॥१०॥ छायापौरुषं च ॥ ११ चतुर्दशाङ्गुलं शमः शलः परिरयः पदं च ॥ १२ ॥ द्विवितस्तिररतिः प्राजापत्यो हस्तः ॥ १३ ॥ सधनुर्ग्रहः पौतविवीतमानम् ॥ १४ ॥ सधनुर्मुष्टिः किष्कुः कंसो वा ॥१५॥ द्विचत्वारिंशदङ्गुलस्तदणः क्राकचिकिष्कुः स्कन्धावारदुर्गराजपरिग्रहमानम् ॥ १६ ॥ चतुःपञ्चाशदङ्गुलः कुप्यवनहस्तः ॥ १७ ॥

चार अङ्गुल की एक धनुर्ग्रह, आठ अङ्गुल की एक धनुर्मुष्टि, बारह अङ्गुल की वितस्ति (विलांद) या छाया पुरुष होता है । चौदह अंगुल का शम, शल, परिरय और पद नाम हैं । दो वितस्ति की एक अरति या प्राजापत्य हस्त (एक हाथ) भी कहते हैं । एक हाथ और धनुर्ग्रह अर्थात् अठ्ठाईस अंगुल का एक मानदण्ड, पौतव (तराजू) और विवीत (पशुओं की चरागाह वंजर भूमि) को नापना चाहिए । एक हाथ और एक धनुर्मुष्टि अर्थात् बत्तीस अंगुल का एक किष्कु या कंस कहाता है । बयालीस अंगुल का हाथ खातियों [लकड़ी का काम करने वाले कारीगरों] का एक क्राकचिकिष्कु होता है । इसका प्रयोग केवल सेना स्कन्धावार की [छावनी] राज कार्य और दुर्ग निर्माण में करना चाहिए । कुप्य और वन [लकड़ी आदि] की नाप में चौवन अंगुल का हाथ होता है ॥ ८-१७ ॥

चतुरशीत्यङ्गुलो व्यामो रज्जुमानं खातापौरुषं च ॥ १८ ॥ चतुररतिर्दण्डो धनुर्नालिकापौरुषं च ॥ १९ ॥ गार्हपत्यमष्टशताङ्गुलं धनुः पथिप्राकारमानं पौरुषं चाग्निचित्यानाम् ॥ २० ॥ षट्कंसौ दण्डो ब्रह्मदेयातिथ्यमानम् ॥ २१ ॥ दशदण्डो रज्जुः ॥ २२ ॥ द्विरज्जुकः परिदेशः ॥ २३ ॥ त्रिरज्जुकं निवर्तनम् ॥ २४ ॥ एकतो द्विदण्डाधिको बाहुः ॥ २५ ॥ द्विधनुः सहस्रं गोरुतम् ॥ २६ ॥ चतुर्गोरुतं योजनम् ॥ २७ ॥ इति देशमानं व्याख्यातम् ॥ २८ ॥

चौरासी अंगुल के एक मान दण्ड को व्याम कहते हैं । यह रस्सी के नापने या गढ़े कुवे आदि के नापने के काम में आता है । चार अरति का एक दण्ड होता है । इसी को धनुष या नालिका भी कहते हैं । एक सौ आठ अंगुल का गार्हपत्य धनुष कहाता है, जो राज

मार्ग [सड़क] किले के परकोटे के नांपने और यज्ञ भूमि नांपने के उपयोग में आता है। छः कल का एक दण्ड माना गया है जो ब्राह्मण या अतिथियों को देय भूमि आदि के नांपने के उपयोग में आता है। दश दण्ड की एक रज्जु होती है। दो रज्जु का एक परदेश और तीन रज्जु का एक निवर्त्तन होता है। एक और दो दण्ड बढ़ा देने से बाहु होता है अर्थात् वत्तीस दण्ड का बाहु है। दो हजार धनुष का एक गोस्त होता है। चार गोस्त का एक योजन है यहां तक देश मान का वर्णन हुआ ॥ १८-२८ ॥

कालमानमत ऊर्ध्वम् ॥ २९ ॥ तुटो लवो निमेषः काष्ठा कला नालिका मुहूर्तः पूर्वापरभागौ दिवसो रात्रिः पक्षो मास ऋतुरयनं संवत्सरो युगमिति कालाः ॥ ३० ॥

इस के आगे कालमान का निरूपण किया जाता है। तुट, लव, निमेष, काष्ठा, कला, नालिका, मुहूर्त पूर्वभाग, अपर भाग, दिवस, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर और युग ये कालके सत्रह भाग माने गए हैं ॥ २९-३० ॥

निमेषचतुर्भागस्तुटः, द्वौ तुटौ लवः ॥ ३१ ॥ द्वौ लवौ निमेषः ॥ ३२ ॥ पञ्च निमेषाः काष्ठा ॥ ३३ ॥ त्रिंशत्काष्ठाः कला ॥ ३४ ॥ चत्वारिंशत्कलाः नालिका ॥ ३५ ॥ सुवर्णमापकाश्चत्वारश्चतुरङ्गुलायामाः कुम्भच्छिद्रमाढकमम्भसो वा नालिका ॥ ३६ ॥ द्विनालिको मुहूर्तः ॥ ३७ ॥ पञ्चदशमुहूर्तो दिवसो रात्रिश्च चैत्रे मास्याश्चयुजे च मासि भवतः ॥ ३८ ॥ ततः परं त्रिभिर्मुहूर्तैरन्यतरः षण्मासं वर्धते हसते चेति ॥ ३९ ॥

पलक मारने में जितना काल लगता है-उसका चतुर्थांश तुट कहाता है। दो तुट का एक लव-दो लव का एक निमेष, पाँच निमेष की एक काष्ठा, तीस काष्ठा की एक कला, चांलीस कला की एक नालिका, होती है। चार सुवर्ण मापक मोटा और चार अंगुल लम्बा मटके में छिद्र कर दिया जावे-उस में एक आढक जल जितनी देर में निकले उस समय को भी नालिका कहते हैं। दो नालिका का एक मुहूर्त, पन्द्रह मुहूर्त का चैत्र और आश्विन का दिन रात होता है। तीन मुहूर्त तक दिन और रात घट बढ़ जाते हैं ॥ ३१-३९ ॥

छायायामष्टपौरुष्यामष्टादशभागश्छेदः ॥ ४० ॥ षट्पौरुष्यां चतुर्दश-भागः ॥ ४१ ॥ चतुष्पौरुष्यामष्टभागः ॥ ४२ ॥ द्विपौरुष्यां षड्भागः ॥ ४३ ॥ पौरुष्यां चतुर्भागः ॥ ४४ ॥ अष्टाङ्गुलायां त्रयो दशभागाः ॥ ४५ ॥ चतुरङ्गुलायां त्रयोऽष्टभागाः ॥ ४६ ॥ अच्छायो मध्याह्न इति ॥ ४७ ॥ परावृत्ते दिवसे शेष-मेवं विद्यात् ॥ ४८ ॥

जब धूप घड़ी में छाया छियानमें अंगुल हो-तो उस समय दिन का अष्टादशवां भाग व्यतीत हो जाता है । वहत्तर अंगुल छाया रहने पर दिन का चौदहवां हिस्सा, अड़ता-लीस अंगुल छाया रहने पर दिन का आठवां हिस्सा, चौबीस अंगुल छाया रहने पर छठा हिस्सा, बारह अंगुल छाया रहने पर दिन का चौथा हिस्सा, आठ अङ्गुल छाया रहने पर दिन के कल्पित दशभागों में तीन भाग और चार अंगुल छाया रहने पर दिन के आठ भागों में से तीन भाग दिवस व्यतीत हुआ समझो । [बारह अङ्गुल का एक पौरुष माना गया है] जब छाया विलकुल न रहे-तो उस समय पूरा मध्याह्न समझना चाहिए । जब दिन उलट पड़ता है-तब उलटा इस तरह समझ लेना चाहिए । अर्थात् चार अङ्गुल छाया होने पर दिन के आठ भागों में से तीन भाग दिन शेष समझना चाहिए-इसी तरह सारी पूर्वोक्त विधि जाननी ॥ ४०-४८ ॥

आषाढे मासि नष्टच्छायो मध्याह्नो भवति ॥ ४६ ॥ अतः परं श्रावणा-दीनां पणमासानां द्वयङ्गुलोचरा माघादीनां द्वयङ्गुलावरा छाया इति ॥ ५० ॥ पञ्चदशाहोरात्राः पक्षः ॥ ५१ ॥ सोमाप्यायनः शुक्लः ॥ ५२ ॥ सोमावच्छेदनो बहुलः ॥ ५३ ॥ द्विपक्षो मासः ॥ ५४ ॥ त्रिंशद्दहोरात्रः प्रकर्ममासः ॥ ५५ ॥ सार्धः सौरः ॥ ५६ ॥ अर्धन्यूनश्चान्द्रमासः ॥ ५७ ॥ सप्तविंशतिर्नाक्षत्रमासः ॥ ५८ ॥ द्वात्रिंशत् मलमासः ॥ ५९ ॥ पञ्चत्रिंशदश्ववाहायाः ॥ ६० ॥ चत्वारिंशद्वस्तिवाहायाः ॥ ६१ ॥

आषाढ के महीने में मध्याह्न में छाया का पता नहीं रहता है । श्रावण के महीने से लगाकर छः महीने तक दो अंगुल छाया बढ़ती है । और माघ से लेकर छः महीने तक दो अंगुल छाया घटती है । पन्द्रह दिन रात का एक पक्ष होता है । चन्द्रमा के बढ़ने वाले पक्ष को शुक्ल पक्ष और चन्द्रमा के घटने के पक्ष को कृष्ण पक्ष कहते हैं । दो पक्ष का एक मास होता है । तीस दिन रात का वेतन आदि देने के निमित्त मास माना गया है । साढ़े तीस दिन रात का एक सौर [सूर्य गणनानुसार] मास होता है । साढ़े उन्नीस दिन रात का एक चांद्र मास होता है । सत्ताईस दिन रात का नाक्षत्र मास होता है । बत्तीस दिन रात का एक मल मास है । पैंतीस दिन रात का मास अश्व वाहक [सईस] आदि को, वेतन देने के व्यवहार में माना गया है और चालीस दिन रात का हाथी पालकों का मास माना गया है ॥ ४६-६१ ॥

द्वौ मासावृतुः ॥ ६२ ॥ श्रावणः प्रोष्ठपदश्च वर्षाः ॥ ६३ ॥ आश्वयुजः कार्तिकश्च शरत् ॥ ६४ ॥ मार्गशीर्षः पौषश्च हेमन्तः ॥ ६५ ॥ माघः फाल्गुनश्च

शिशिरः ॥ ६६ ॥ चैत्रो वैशाखश्च वसन्तः ॥ ६७ ॥ ज्येष्ठामूलीय आपादश्च
 ग्रीष्मः ॥ ६८ ॥ शिशिराद्युत्तरायणम् ॥ ६९ ॥ वर्षादि दक्षिणायनम् ॥ ७० ॥
 द्वययनः संवत्सरः ॥ ७१ ॥ पञ्चसंवत्सरो युगमिति ॥ ७२ ॥

दो महीने का एक ऋतु, होता है। श्रावण भादों ये दो मास वर्षा ऋतु, आश्विन और कार्तिक शरद्, अग्रहन और पौष हेमन्त, माघ और फाल्गुन शिशिर, चैत्र-वैशाख वसन्त और ज्येष्ठ तथा आपाद ग्रीष्म ऋतु के मास माने गए हैं। शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, उत्तरायण, और वर्षा, शरद् तथा हेमन्त दक्षिणायन मानी गयी है। दक्षिणायन उत्तरायण-ये दो अयन का एक संवत्सर होता है तथा पांच संवत्सर का एक युग होता है।
 - यहां तक कालमान की व्याख्या हुई ॥६२-७२॥

दिवसस्य हरत्येकं पष्टिभागंमृतौ ततः ।

करोत्येकमहरच्छेदं तथैवैकं च चन्द्रमाः ॥ ७३ ॥

एवमर्धतृतीयानामब्दानामधिमासकम् ।

ग्रीष्मे जनयतः पूर्वं पञ्चाब्दान्ते च पश्चिमम् ॥ ७४ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे देशकालमानं विंशो ऽध्यायः ॥२०॥

आदित एकचत्वारिंशः ॥ ४६ ॥

सूर्य प्रतिदिन, दिन का साठवें भाग [एक घटिका] का छेद कर लेता है अर्थात् बढ़ा देता है-इस प्रकार एक ऋतु [दो मास] में एक दिन बढ़ जाता है। इसी तरह चन्द्रमा प्रत्येक ऋतु में एक दिन कम करता चला जाता है। इसी कारण से प्रत्येक द्वाइ वर्ष में एक अधिक मास पड़ता है अर्थात् पन्द्रह दिनसूर्य के बढ़ाने और पन्द्रह दिन चन्द्रमा के कम करने से एक मास होता है। जब प्रथम मल मास ग्रीष्म में पड़ेगा-तो पांच वर्ष के अनन्तर दूसरा मल मास हेमन्त में जाकर होगा ॥७३-७४॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचार अधिकरण में देश काल के मान
 का बीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।



इक्कीसवां अध्याय

३६वां प्रकरण

शुल्काध्यक्ष

शुल्काध्यक्ष राजकीय चुंगी आदि के टैक्स के लेने वाले अफसर को कहते हैं। इस प्रकरण में उसके कर्तव्यों का निर्णय किया जाता है।

शुल्काध्यक्षः शुल्कशालां ध्वजं च प्राङ्मुख मुदङ् मुख वा महाद्वाराभ्याशे निवेशयेत् ॥ १ ॥ शुल्कादायिनश्चत्वारः पञ्च वा सार्थोपयातान्वणिजो लिखेयुः ॥ २ ॥ के कुतस्तयाः कियत्पण्याः क चाभिज्ञानमुद्रा वा कृता इति ॥ ३ ॥ अमुद्राणामत्ययो देयद्विगुणः ॥ ४ ॥ कूटमुद्राणां शुल्काष्टगुणो दण्डः ॥ ५ ॥ भिन्नमुद्राणामत्ययो घटिकाः स्थाने स्थानम् ॥ ६ ॥ राजमुद्रापस्वितर्तने नामकृते वा सपादपणिकं वहनं दापयेत् ॥ ७ ॥

शुल्काध्यक्ष, एक विशाल शुल्कशाला [टाऊनहाल] बनवावे, जिसमें प्रधान द्वार पूर्व या उत्तर की ओर हो और उस महाद्वार पर एक ऊंची ध्वजा लगानी चाहिए। शुल्क [चुंगी कर] लेने वाले, चार या पांच कर्मचारी, साथी [गिरोह] के साथ आने वाले व्यापारियों के नाम लिखें। ये व्यापारी कौन हैं, कहां के रहने वाले, कहां से आये हैं। इनके पास कितनी विक्रय वस्तु है, और उन पर कहां की मुहर लगी है। यदि उनके माल पर अन्तपाल की मुहर नहीं लगी हो तो उससे दुगुना शुल्क लेना चाहिए। यदि उन्होंने झूठी मुद्रा बनाली हो तो उनसे अठगुना शुल्क [चुंगी-टैक्स] वसूल करना चाहिए। जिस स्थान से मुद्रा लेनी चाहिए और उसके अतिरिक्त दूसरे स्थान की मुद्रा ले-तो उसे कुछ बड़ी रोक कर चला जाने दे। राजकीय मुद्रा के बदल देने या उस पर विक्रय वस्तु का नाम बदल लेने पर सवापण [सुवर्ण मुद्रा] दण्ड दिया जावे ॥१-७॥

ध्वजमूलोपस्थितस्य प्रमाणमर्घं च वैदेहकाः पण्यस्य ब्रूयुः ॥ ८ ॥ एतत्प्रमाणेनार्घेण पण्यमिदं कः क्रेतेति ॥ ९ ॥ त्रिरुद्धोपितमर्थिभ्यो दद्यात् ॥ १० ॥ क्रेतृसंघर्षे मूल्यवृद्धिः सशुल्का कोशं गच्छेत् ॥ ११ ॥ शुल्कमयात्पण्यप्रमाणं मूल्यं वा हीनं ब्रुवतस्तदतिरिक्तं राजा हरेत् ॥ १२ ॥ शुल्कमष्टगुणं वा दद्यात् ॥ १३ ॥ तदेव निविष्टपण्यस्य भाण्डस्य हीनप्रतिवर्ण-केनार्घापकर्षेण सारभाण्डस्य फल्गुभाण्डेन प्रतिच्छादने च कुर्यात् ॥ १४ ॥ प्रतिक्रेतृभयाद्वा पण्यमूल्यादुपरि मूल्यं वर्धयतो मूल्यवृद्धिं राजा हरेत् ॥ १५ ॥

द्विगुणं वा शुल्कं कुर्यात् ॥ १६ ॥ तदेवाष्टगुणमध्यक्षस्य द्यादयतः ॥ १७ ॥
तस्माद्विक्रयः पर्यायानां धृतो मितोगणितो वा कार्यः ॥ १८ ॥ तर्कः फल्गुभाण्डाना-
मानुग्रहिकाणां च ॥ १९ ॥ ध्वजमूलमतिक्रान्तानां चाकृतशुल्कानां शुल्कादष्ट-
गुणो दण्डः ॥ २० ॥ पथिकोत्पथिकास्तद्विधः ॥ २१ ॥

राजकीय शुल्क शाला की ध्वजा के पास अपना माल रख करके व्यापारी गए, अपने माल का परिमाण और मोल बतावे, कि यह माल इतनी तोल और इतने मूल्य का है-क्या कोई खरीदना चाहता है। जब कोई माल का केता खड़ा हो जावे तो तीन आवाज [एक, दो, तीन] बोल कर [नीलाम के ढंग पर] उस माल को बोली लगाने वाले के नाम पर छोड़ दे। जब केता लोग, किसी माल के खरीदने पर संघर्ष [वहस] कर बैठे-तो उसके मोल में वृद्धि हो जावेगी, परन्तु वह वृद्धि और शुल्क सारा राजकीय कोश में ही जावेगा। शुल्क [चुंगी-कर] के भय से जो व्यापारी, अपने माल के तोल और मोल को कम बतावे, और जांचने पर अधिक उत्तरे-तो राजा उस अधिक माल को अपने खजाने में डाल देवे। यही व्यापारी को दण्ड समझाना चाहिए या उस व्यापारी से उस माल का अठ गुना शुल्क [टैक्स] ले लिया जावे। जब कोई व्यापारी किसी बोरी या सन्दूक में मिला कर बढ़िया माल की बोरी या सन्दूकों के स्थान पर घटिया दिखादे और सब में भी वही माल बतावे, तो इस प्रकार उत्तम वस्तु के स्थान में घटिया भाण्ड दिवा देने पर वही पूर्वोक्त दण्ड समझ लेना चाहिए, कि या तो उसके अच्छे माल को लेकर घटिया दे दिया जावे, या अठ गुना कर ले लिया जावे। अन्य खरीदार इस माल को न खरीद ले-इस भय से जो खरीदार माल पर अधिक दाम बढ़ा दे-तो उस वृद्धि को अपने कोश में डलवा दे या उस माल पर दुगुना टैक्स लेले। यदि किसी व्यापारी के माल को चुंगी का अध्यक्ष छिपवा देवे-तो उस माल के कर से अठ गुना दण्ड-इस अध्यक्ष पर होना चाहिए। इस सब का यही अभिप्राय है, कि माल का लेन देन, बढ़ा नियमित, मानानुसार और हिसाब के अनुकूल होता रहे। कोयले आदि साधारण वस्तु या थोड़ी चुंगी की वस्तुओं पर अनुमान से ही कर ले लेना चाहिए-उनके तोलने की आवश्यकता नहीं है। जो राजकीय शुल्क दिये बिना राजकीय शुल्कशाला की ध्वजा से आगे निकल जावे-तो उस पर शुल्क से अठ गुना दण्ड होना चाहिए। मार्ग पर घूमने वाले या मार्ग छोड़ कर घूमने वाले राजकीय पुरुष, उनका पता रखे ॥८-२१॥

वैवाहिकमन्वायनमौपायनिकं यज्ञकृत्यप्रसवनैमित्तिकं देवेज्याचौलोपनय-
नगोदानव्रतदीक्षादिषु क्रियाविशेषेषु भाण्डमुच्छुल्कं गच्छेत् ॥ २२ ॥ अन्यथा-

वादिनः स्तेयदण्डः ॥ २३ ॥ कृतशुल्केनाकृतशुल्कं निर्वाहयतो द्वितीयमेकमुद्रया भिन्वा पण्यपुटमपहरतो वैदेहकस्य तच्च तावच्च दण्डः ॥ २४ ॥ शुल्कस्थानाद्गो-
मयपलालं प्रमाणं कृत्वापहरत उत्तमः साहसदण्डः ॥ २५ ॥ शस्त्रवर्मकवचलोह-
रथरत्नधान्यपशूनामन्यतमनिर्वाह्यं निर्वाहयतो यथावघुषितो दण्डः पण्यनाशश्च
॥ २६ ॥ तेषामन्यतमस्यानयने वहिरेवोच्छुल्को विक्रयः ॥ २७ ॥

जो माल विवाह सम्बन्धी हो-जो कन्या को दान में दिया गया हो-जो भेंट में मिला हो, जो यज्ञ और प्रसव (वालकोत्पत्ति) के निमित्त हो, देव पूजा, चौल [मुण्डन] उपनयन गोदान और धार्मिक व्रत विशेष के निमित्त हो-उस माल पर चुङ्गी कर नहीं लेना चाहिए। जो अन्य कार्य या व्यापार आदि के माल को भी विवाह आदि से सम्बन्ध रखने वाला बतावे-तो राजा उसे चोरी का दण्ड देवे। शुल्क दिए हुए माल के साथ बिना शुल्क दिये माल, मुहर लगे माल के साथ बिना मुहर के माल को छुपाकर धोखे से लेजाने वाले व्यापारी से वह वस्तु छीनली जावे या वही अठगुना शुल्क वसूल किया जावे। जो मनुष्य अपने चुङ्गी के माल को भी गौ के कण्डे या पलाल [भुस-तूड़ा] में भर कर निकाल ले जाने की चेष्टा करे-तो उसपर उत्तम साहस [उस समय का अन्तिम जुर्माने का] दण्ड दिया जावे। शस्त्र, वर्म [भिन्न २ अङ्गों के कवच] कवच 'सारे शरीर के कवच' लोह, रथ, रत्न, धान्य, और पशु आदि जिनकी राजा ने आने जाने की बन्दी करदी है, यदि कोई लावे-लेजावे-तो उसको जो राजकीय दण्ड नियत हो-वह दिया जावे और उसकी वस्तु जप्त करली जावे। इनमें से कोई वस्तु लावे-तो उसे चुङ्गी की सीमासे बाहर ही बिना चुङ्गी कर के बेच देनी चाहिए ॥ २२-२७ ॥

अन्तपालः सपादपणिकां वर्तनीं गृह्णीयात्पण्यवहनस्य ॥ २८ ॥ पणिका-
मेकखुरस्य पशूनामर्धपणिकां क्षद्रपशूनां पादिकामंसभारस्य माषिकाम् ॥ २९ ॥
नष्टापहतं च प्रतिविदध्यात् ॥ ३० ॥ वैदेश्यं सार्थं कृतसारफल्युभाण्डविचयन-
मभिज्ञानं मुद्रां च दन्वा प्रेषयेदध्यक्षस्य ॥ ३१ ॥ वैदेहकव्यञ्जन वा सार्थप्रमाणं
राज्ञः प्रेषयेत् ॥ ३२ ॥

विक्री का माल लेजानेवाली गाड़ी आदि वाहनों से अन्तपाल सवापण अपनी वर्तनी (मार्ग का कर) ले लेवे। घाड़े खच्चर, गद्दे आदि से एक पण, बैल आदि पशुओं पर आधा पण, बकरी, भेड़ आदि पशुओं से चौथाई पण और कंधे पर माल ले जाने वाले से एक मापक (तांबे का सिक्का) लिया जाना चाहिए। यदि किसी व्यापारी की कोई वस्तु खो जावे तो उसको ढूँढ़ कर या चोरों से छीन कर अन्तपाल दिलावे-या आप फैसला करे-क्योंकि यह

जिम्मेवारी की चौकी है। विदेश से आने वाले सार्थ (गिरोह) के घटिया और बढ़िया माल को जांचकर अन्तपाल उसपर अपनी गहर लगादे और शुल्काध्यक्ष के पास जाते की उनको सूचना देदे। व्यापारी के वेप में रहने वाले गुमचर भी यथा समय इन व्यापारियों की चेष्टाओं की राजा को सूचना देते रहें ॥ २८-३२ ॥

तेन प्रदेशेन राजा शुल्काध्यक्षस्य सार्थप्रमाणमुपदिशेत्सर्वज्ञत्वख्यापनार्थम्
॥ ३३ ॥ ततः सार्थमध्यक्षो ऽभिगम्य ब्रूयात् ॥ ३४ ॥ इदममुप्यामुष्य च सार-
भाण्डं फल्गुभाण्डं च न निगूहितव्यम् ॥ ३५ ॥ एष राज्ञः प्रभाव इति ॥ ३६ ॥
निगूहतः फल्गुभाण्डं शुल्काष्टगुणो दण्डः ॥ ३७ ॥ सारभाण्डं सर्वापहारः ॥ ३८ ॥

इसी सूचना के अनुसार राजा, शुल्काध्यक्ष के पास इन व्यापारियों के समूह के सारे वृत्तान्त को अपने ज्ञान होने की सूचना निमित्त लिख भेजे या शुल्काध्यक्ष को सारा ज्ञान होने के निमित्त लिख दे। इस अमुक व्यापारी के पास इतना सार और इतना असार भाण्ड है, फिर तुम कोई कुछ न छिपाना। इस में राजा के प्रभाव का पता लगता है। जो व्यापारी घटिया माल को छुपावे-उस पर शुल्क से अठगुना दण्ड होना चाहिए-यदि सार भाण्ड (वस्तु) छुपाया जावे-तो उसकी वह वस्तु छीन लेनी चाहिए ॥ ३३-३८ ॥

राष्ट्रपीडाकरं भाण्डमुच्छिन्नादफलं च यत् ।

महोपकारमुच्छुल्कं कुर्याद्वीजं तु दुर्लभम् ॥ ३९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे शुल्काध्यक्ष एकविंशो ऽध्यायः ॥ २१ ॥

आदितो द्विचत्वारिंशः ॥ ४२ ॥

राष्ट्र को पीड़ित करने वाले या अच्छा फल न देने वाले विष आदि पदार्थ को राजा नष्ट करवादे, जो माल प्रजा का उकारी हो-उसको राजा बिना शुल्क आने दे-क्योंकि अच्छी वस्तु का बीज बड़ा दुर्लभ होता है ॥ ३९ ॥

इति श्रीकौटिलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचार अधिकरण में शुल्काध्यक्ष के कर्तव्यों का इक्कीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

बाईसवां अध्याय

४०वां प्रकरण

शुल्कव्यवहार ।

शुल्कव्यवहारो बाह्यमाभ्यन्तरं चातिथ्यम् ॥ १ ॥ निष्क्राम्यं प्रवेश्यं च शुल्कम् ॥ २ ॥ प्रवेश्यानां मूल्यपञ्चभागः ॥ ३ ॥ पुष्पफलशाकमूलकन्दवालि-
क्यबीजशुष्कमत्स्यमांसानां षड्भागं गृहणीयात् ॥ ४ ॥ शङ्खवज्रमणिमुक्ताप्रवाल-
हाराणां तज्जातपुरुषैः कारयेत्कृतकर्मप्रमाणकालवेतनफलनिष्पत्तिभिः ॥ ५ ॥
क्षौमदुकूलक्रिमितानकङ्कटहरितालमनः शिलाहिङ्गलुकलोहवर्णधातूनां चन्दनागरु-
कटुककिण्वावराणां सुरादन्ताजिनक्षौमदुकूलनिकरास्तरणप्रावरणक्रिमिजातानाम-
जैलकस्य च दशभागः पञ्चदशभागो वा ॥ ६ ॥

(शुल्काध्यक्ष प्रकरण के अन्तर्गत ही शुल्क व्यवहार है । किस वस्तु पर कितना शुल्क (चुंगी कर) लेना चाहिए इस निर्णय को शुल्क व्यवहार कहते हैं) यह शुल्क व्यवहार, बाह्य, आभ्यन्तर और आतिथ्य भेद से तीन तरह का है । अपने देश में उत्पन्न वस्तु पर चुंगी लेना बाह्य, अपनी राजधानी में उत्पन्न वस्तु पर चुंगी लेना आभ्यन्तर और विदेश से आने वाले माल पर चुंगी लेना आतिथ्य कहा जाता है । अपने देश से बाहर जाने वाले माल पर जो चुंगी हो-वह निष्क्राम्य और जो अपने देश में बाहर से आने वाले माल पर चुंगी है-वह प्रवेश्य कहाती है । बाहर से आने वाले माल पर उनके मूल्य से पांचवां भाग चुंगी का होना चाहिए । फूल, फल, शाक, मूल, कन्द, वालिक्य (वेल के फल-सीताफल-कद्दू आदि) बीज, सूखी मछली और सूखे मांस पर मूल्य से छठा भाग भी लिया जा सकता है । शङ्ख, वज्र (हीरा) मणि, मुक्ता, प्रवाल, और हारों पर उस २ वस्तु की परीक्षा जानने वाले पुरुषों से करवावे, क्योंकि उस विषय का ज्ञान करने और बहुत दिन से वेतन पाकर नौकरी करने से उनका इस विषय में पर्याप्त अनुभव बन चुका है । क्षौम (मोटा रेशमी कपड़ा) दुकूल (सूक्ष्म रेशमी वस्त्र) क्रिमितान (चीनी रेशमी वस्त्र) कङ्कट (सूत का कवच) हरताल, मैन्शिल, हींगल, लोह, वर्ण धातु (गेरू आदि) चन्दन, अगर, कटुक (पीपल मिरच आदि) मादक द्रव्य, सुरा (शराब) हाथी दांत, चमड़ा, क्षौम-दुकूल बनाने का तन्तु समूह, आस्तरण 'बिछोना' प्रावरण (ओढ़ना) अन्य रेशमी वस्त्र, बकरी तथा भेड़ की ऊन के वस्त्रों पर मूल से दशवां या पन्द्रहवां भाग चुंगी कर लेना, चाहिए ॥१-६॥

वस्त्रचतुष्पदद्विपदसूत्रकार्पासगन्धभैषज्यकाष्ठवेणुवल्कलचर्ममृद्भाण्डानां धान्य-
यस्त्रेहचारलवणमद्यपकान्नादीनां च विंशतिभागः पञ्चविंशतिभागो वा ॥७॥ द्वारादेयं

शुल्कपञ्चभागम्, आनुग्राहिकं वा यथादेशोपकारं स्थापयेत् ॥ ८ ॥ जातिभूमिषु च पण्यानामविक्रयः ॥ ९ ॥ खनिभ्यो धातुपण्यादानेषु षट्छतमत्ययः ॥ १० ॥

साधारण वस्त्र, चौपाये, पत्नी, सूत, कपास, गन्ध, औषधि, लकड़ी, बांस, छाल, घी तेल आदि, चार, नमक, मद्य, पके हुए अन्न, आदि पर मूल्य से बीसवां या पच्चीसवां हिस्सा चुंगी कर लेना चाहिए। नगर के प्रधान द्वार का प्रवेश कर उन पदार्थों के नियत चुंगी कर से पांचवां भाग होना चाहिए। यदि देश के उपकार की वस्तु है, तो उस पर कर मुआफ होना चाहिए। जो वस्तु जहाँ उत्पन्न हो-वहाँ उसके बेचने की व्यवस्था न की जावे। खानों से कच्चे धातु निकाल लेने वाले, या खरीदने वाले, मनुष्य पर छःसौ रुपये जुर्माने की सजा होनी चाहिए ॥८-१०॥

पुष्पफलवाटेभ्यः पुष्पफलादाने चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥११॥ पण्डेभ्यः शाकमूलकन्दादाने पादोनं द्विपञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ १२ ॥ क्षेत्रेभ्यः सर्वसस्यादाने त्रिपञ्चाशत्पणः ॥ १३ ॥ पणो ऽध्यर्धपणश्च सीतात्ययः ॥ १४ ॥

पुष्प और फलों के बगीचों से ही फूल फल खरीदने बेचने वाले मनुष्य पर चौवन पण (मुद्रा) दण्ड होना उचित है। शाक की बाड़ियों से शाक खरीदने वाले और बेचने वाले पर पौने बावन पण (मुद्रा) दण्ड किया जावे। अन्न के खेतों से अन्न खरीद लेने पर तरेवन पण दण्ड होना चाहिए। हल के बोन से उत्पन्न अन्य वस्तु खरीदने बेचने पर एक या डेढ़ पण (मुद्रा) दण्ड किया जावे ॥११-१४॥

अतो नवपुराणानां देशजातिचरित्रतः ।

पण्यानां स्थापयेच्छुल्कमत्ययं चापकारतः ॥ १५ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे शुल्कव्यवहारो द्वाविंशो ऽध्यायः ॥२२॥

आदितस्त्रिचत्वारिंशः ॥ ४३ ॥

इन सब बातों पर विचार करके राजा नये और पुराने पदार्थों की देश, काल और जाति के व्यवहार के अनुसार वस्तुओं के भाव नियत करदे-और जो उस आज्ञा को न माने उस पर दण्ड करना चाहिए ॥१५॥

इति श्रीकौटिलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में शुल्क व्यवहार का बाईसवां अध्याय समाप्त हुआ ।



तेईसवां अध्याय

४१वां प्रकरण

सूत्राध्यक्ष

उन और सूत के तारों के अध्यक्ष को सूत्राध्यक्ष कहते हैं, अब उसके कर्तव्यों का निर्णय किया जाता है।

सूत्राध्यक्षः सूत्रवर्मवस्त्ररज्ज्व्यवहारं तज्जातपुरुषैः कारयेत् ॥ १ ॥ ऊर्णा-
वल्ककार्पासतूलशणचौमाणि च विधवान्यङ्गाकन्याप्रव्रजितादण्डप्रतिकारिणीभी
रूपाजीवामातृकाभिवृद्धराजदासीभिर्व्युपरतोपस्थानदेवदासीभिश्च कर्तयेत् ॥ २ ॥
श्लक्ष्णस्थूलमध्यतां च सूत्रस्य विदित्वा वेतनं कल्पयेत् ॥ ३ ॥ ब्रह्मल्पतां च ॥ ४ ॥
सूत्रप्रमाणं ज्ञात्वा तैलामलकोद्वर्तनैरेता अनुगृह्णीयात् ॥ ५ ॥

सूत्राध्यक्ष, सूत (तन्तु) कवच, वस्त्र और रज्जु का कार्य, उस कार्य में कुशल पुरुषों द्वारा करवावे। उन, वल्क (छाल के रेशे) कपास, सैमल की रुई आदि, सण और चौमों (मोटे रेशमी वस्त्र के अंश) को विधवा, अंगहीन, कन्या, सन्यासिनी, अपराधिनी (जाति अपराध करने वाली) वेश्याओं की वृद्धा माता, वृद्धराज दासी तथा देव स्थान से बहिष्कृत देव दासियों से कतवावे। सूत की सफाई, मुटाई, गुलाई देखकर सूत्राध्यक्ष उनके वेतन (मजदूरी) का निश्चय करे। सूत की लम्बाई पर भी ध्यान रखना चाहिए। सूत के प्रमाण (लम्बाई वजन आदि) को जान कर तेल आंवले और उबटना आदि पारितोषिक रूप में देकर राजा इन विधवा आदि को अपने कार्य करने में उत्साहित करें ॥ १-५ ॥

तिथिषु प्रतिपादनमानैश्च कर्म कारयितव्याः ॥ ६ ॥ सूत्रहासेः वेतनहासः द्रव्य-
सारात् ॥ ७ ॥ कृतकर्मप्रमाणकालवेतनफलनिष्पत्तिभिः कारुभिश्चकर्म कारयेत्प्रतिसंसर्गं
च गच्छेत् ॥ ८ ॥ चौमदुकूलक्रिमितानराङ्गवर्कार्पाससूत्रवानकर्मन्तांश्च प्रयुज्जानो गन्ध-
माल्यदानैरन्यैश्चोपग्राहिकैराराधयेत् ॥ ९ ॥ वस्त्रास्तरणप्रावरणविकल्पाचुत्थापयेत्
॥ १० ॥

राजा उन विधवा आदि कार्य करने वाली परिवारिकाओं को कार्य करने की तिथियों में भी कुछ अधिक देने का वचन देकर उनका मान सत्कार करके काम लेता रहे। यदि उनका सूत कम उतरने लगे-तो उतना ही उनका वेतन या मजदूरी कम कर देनी चाहिए, क्योंकि वस्तु बिकने पर ही दाम घटाये बढ़ाये जाते हैं। जिन कारीगरों ने काम सीखने में बहुत समय लगाया और फिर बहुत दिन से उस कार्य के करने से उनको अनुभव भी

बहुत हो रहा है-ऐसे कारीगरों से काम करवावे-और उनके साथ घूमता रहे । चौम [मोटे रेशमी वस्त्र] दूकूल, सूक्ष्म रेशमी कपड़े, क्रिमितान [चीनी रेशमी वस्त्र] रंकाहरन के रोमों के वस्त्र, कपास, सूत, आदि के कतवाने बुनवाने के कामों को करवाता हुआ, सूत्राध्यक्ष, गन्ध, माल्य आदि आदर की वस्तु या अन्य कृपा के लक्षण भूत पदार्थों से उनको सन्तुष्ट रखे । जब वे सन्तुष्ट दिखाई दें-तो उनसे अनेक सुन्दर २ विस्तर-ओढ़ने, तय्यार करवावे ॥ ६-१० ॥

कङ्कटकर्मान्तांश्च तज्जातकोरुशिन्धिभिः कारयेत् ॥११॥ याथानिष्कासिन्यः प्रोषितविधवा न्यङ्गा कन्यका वात्मानं विभृयुस्ताः स्वदासीभिरनुसार्य सोपग्रहं कर्म कारयितव्याः ॥ १२ ॥ स्वयमागच्छन्तीनां वा सूत्रशालां प्रत्युपसि भाण्डवेतनविनिमयं कारयेत् ॥ १३ ॥ सूत्रपरीक्षार्थमात्रः प्रदीपः ॥ १४ ॥ स्त्रिया मुखसंदर्शने ऽन्यकार्यसंभाषायां वा पूर्वः साहसदण्डः ॥ १५ ॥ वेतनशालातिपातने मध्यमः ॥ १६ ॥ अकृतकर्मवेतनप्रदाने च ॥ १७ ॥

सूत के कवच आदि के कार्यों को भी उन २ विषय के चतुर कारीगरों से करवावे । प्रायः घर से बाहर नहीं निकलने वाली, पति के परदेश जाने से असहाय, अर्द्धहीन, कन्यायें जो अपना उदर स्वयं भरना चाहती हैं, सूत्राध्यक्ष उनके पास अपनी दासी भेज कर आदर के साथ उनसे कर्म करवावे । जो स्त्रियां स्वयं सूत्रशाला में आवे-उनके परिश्रम का वेतन शीघ्र राजा देकर उनकी वस्तु बदलवादे, अर्थात् सूत लेकर अन्य रुई आदि देदे । सूत्रशाला में सूत्र के ज्ञान प्राप्त करने के उपयोगी प्रकाश तक ही दीपक जलाया जावे । स्त्रियों के मुख की ओर देखते रहने या बातचीत करने पर प्रथम साहस दण्ड [साधारण दण्ड] होना चाहिए । वेतन देने में देर करे, या बिना काम वेतन दे देवे, तो अध्यक्ष पर मध्यम दण्ड होना चाहिए ॥११-१७॥

गृहीत्वा वेतनं कर्माकुर्वन्त्याः अङ्गुष्ठसंदंशं दापयेत् ॥१८॥ भक्षितापहृता-वस्कन्दितानां च ॥ १९ ॥ वेतनेषु च कर्मकराणामपराधतो दण्डः ॥ २० ॥ रज्जुतवर्तकैश्चर्मकारैश्च स्वयं संसृज्येत ॥ २१ ॥ भाण्डानि च वस्त्रादीनि वर्तयेत् ॥ २२ ॥

वेतन लेकर काम नहीं करने वाली स्त्रियों के अंगुष्ठ कटवा देना चाहिए । जो राजकीय द्रव्य को खा जावे, अपहरण कर लेजावे, या लेकर भाग जावें । जो कर्मचारी अपराध करें सूत्राध्यक्ष उनको उनके अपराध के अनुसार वेतन का भी दण्ड दे सकता है । रज्जु बंटने वाले तथा चमड़े के कारीगरों से सूत्राध्यक्ष मिलता रहे तथा उनसे सन की वस्तु और रस्सी आदि बनवाता रहे ॥१८-२२॥

सूत्रवल्कमयी रज्जूः वरत्रा वैत्रवैणवीः ।

सांनाह्या बन्धनीयाश्चयानयुग्यस्य कारयेत् ॥ २३ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे सूत्राध्यक्षप्रयोर्विंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

आदितश्चतुश्चत्वारिंशः ॥ ४४ ॥

सूत्र, सन आदि से बनायी जाने वाली रस्सियां तथा बँत और बांसों से बनाये जाने वाले मोटे रस्से जो बांधने और कवच बनाने के कार्य में आते हैं, तथा घोड़े आदि के जूड़ों में लगते हैं सूत्राध्यक्ष उनको तय्यार करवावे ॥२३॥

इति श्रीकौटलीयअथशास्त्रान्तर्गत अथक्षप्रचार अधिकरण में सूत्राध्यक्ष के कर्मों के निरूपण का चौबीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



चौबीसवां अध्याय

४२ वां प्रकरण

सीताध्यक्ष

(हल से उत्पन्न होने वाले पदार्थों को सीता कहा जाता है ।)

सीताध्यक्षः कृषितन्त्रशुल्कवृक्षायुर्वेदज्ञस्तज्ज्ञसखो वा सर्वधान्यपुष्पफलशा-
ककन्दमूलवालिक्व्यक्षौमकार्पासबीजानि यथाकालं गृह्णीयात् ॥१॥ बहुहलपरि-
कृष्टायां स्वभूमौ दासकर्मकरदण्डप्रतिकर्तृभिर्वापयेत् ॥ २ ॥ कर्षणयन्त्रो-
पकरणवलीवर्दैश्चैषामसङ्गं कारयेत् ॥ ३ ॥ कारुभिश्च कर्मारकुट्टाकमेदकररज्जुवर्तक-
सर्पग्राहादिभिश्च ॥ ४ ॥ तेषां कर्मफलविनिपाते तत्फलहानं दण्डः ॥ ५ ॥

(इस सीता अर्थात् कृषि कर्म के अध्यक्ष को सीताध्यक्ष कहते हैं, अब उसके कर्मों का निरूपण किया जाता है) सीताध्यक्ष, (कृषि विभाग का अधिकारी) कृषि शास्त्र, शुल्क शास्त्र [भूमि भेद के जताने वाले] तथा वृक्षों की आयु के बोधक शास्त्र का ज्ञान रखे और इन शास्त्रों का अच्छा अनुभव रखने वाले कर्मचारी [अहलकारों] गण को साथ लेकर सारे धान्य, पुष्प, फल, शाक, कन्द, मूल, वालिक्व्य [वेल के फल] क्षौम (सन-जूट आदि) और कपास के बीजों का यथा समय संग्रह करे। इन बीजों को बहुत बार हल से जोती हुई, अपनी भूमि में अपने सेवक खेती के काम करने वाले मजदूर या दण्ड [जुरमाने] के भुगतान करने के इच्छुक पुरुषों से बुधावे। कर्षणयन्त्र [खेत जोतने का विशेष यन्त्र] तथा कृषि की अन्य सामग्री और बैलों से इन मजदूरों का कोई सम्पर्क नहीं रहने दे। शिल्पी

[कारीगर] कर्मकार, कुट्टक [ढले फोड़ने वाले] गड्ढे भरने वाले, रस्सी बटने वाले तथा सर्प पकड़ने वाले लोगों से भी इन अपने सेवकों को न मिलने दिया जावे । यदि इन कर्म-चारियों के भूल या अस्त्र से खेती में कोई हानि हो जावे-तो जितनी हानि हुई है, उतना ही उनसे दण्ड लिया जा सकता है ॥ १-५ ॥

षोडशद्रोणं जाङ्गलानां वर्षप्रमाणमध्यर्धमानूपानाम् ॥६॥ देश वापानाम
धन्रयोदशाश्मकानां त्रयोविंशतिरवन्तीनानाममितमपरान्तानां हैमन्यानां च
कुल्यावापानां च कालतः ॥७॥

सोलह द्रोण वर्षा, जल प्रदेशों को पर्याप्त है और चौबीस द्रोण जाङ्गल [बुष्क] प्रदेशों को आवश्यक है (एक गड्ढे में वर्षा का जल भर कर उसका प्रमाण किया जाता है) देशों के भेद से वर्षा का स्थूल प्रमाण यह है, कि अश्मक देश में साढ़े तेरह द्रोण, अवन्ती (मालवा) में तेईस द्रोण, पश्चिम प्रान्त (मारवाड़) में जितनी अधिक वर्षा हो-उतना ही श्रेष्ठ है। हिमालय के रेतीले प्रदेश और नहरों के प्रदेशों में समग्र २ पर साधारण वृष्टि कृषि के लिए पर्याप्त मानी गई है ॥ ६-७ ॥

वर्षात्रिभागः पूर्वपश्चिममासयोर्द्वौ त्रिभागौ मध्यमयोः सुप्रमारूपम् ॥ ८ ॥
तस्योपलब्धिर्बृहस्पतेः स्थानगमनगर्भाधनेभ्यः शुक्रोदयास्तमयचारेभ्यः सूर्यस्य
प्रकृतिवैकृताच्च ॥ ९ ॥ सूर्याद्वीजसिद्धिः ॥ १० ॥ बृहस्पतेः सस्यानां स्तम्बक-
रिता ॥ ११ ॥ शुक्राद्विष्टिरिति ॥ १२ ॥

कुल वर्षा के तीन भाग होने चाहिए-पूर्व मास श्रावण और अन्तिम मास कार्तिक में केवल एक भाग वर्षा और भादों कार में वर्षा के दो भाग बरस जाना अत्युत्तम माना गया है । वर्षा तब होती है जब बृहस्पति वर्षा करने वाली राशि पर स्थिति या संक्रमण करता है । तथा उदय को प्राप्त होता है । शुक्र के उदय अस्त या वर्षा करने वाली राशि पर गमन करने से भी वर्षा होती है । सूर्य अपनी प्रकृति या विकृति (मण्डली आदि बनाना) के आकारों से जब दिखाई दे, तो भी वर्षा का अनुमान किया जा सकता है । सूर्य अपनी प्रकृति में चलता रहे-तो अनाज उत्तम उत्पन्न होता है । बृहस्पति के ठीक २ चलने पर धान्यों के स्तम्ब (बाल आदि) पुष्ट होते हैं, शुक्र के ठीक २ चलने पर वर्षा का योग बनता है ॥ ८-१२ ॥

त्रयः सप्ताहिका मेघा अशीतिः कणशीकराः ।

षष्टिरातपमेघानामेषा वृष्टिः समाहिता ॥ १३ ॥

सात दिन में तीन बार वर्षा होना उत्तम है । सारी वर्षा ऋतु में अस्सी बार बूंदों की वर्षा होनी चाहिए । साठ बार धूप खिल गई और फिर साधारण वर्षा हो गई, इस तरह बरसना चाहिए-यह वर्षा सर्वोत्तम मानी गई है ॥ १३ ॥

वातमातपयोगं च विभजन्यत्र वर्षति ।

त्रीनृकरीपांश्चजनयस्तत्र सस्यागमो ध्रुवः ॥ १४ ॥

वायु के चलने और धूप के खिलने को अवकाश देकर तथा तीन बार हल चलाने का अवसर छोड़कर जहां वर्षा होती है-वहां निश्चय अन्न की अधिक उत्पत्ति होती है ॥ १४ ॥

ततः प्रभृतोदकमल्पोदकं वा सस्यं वापयेत् ॥ १५ ॥ शालित्रीहिकोद्रवतिलप्रियङ्गुदारकवराकाः पूर्ववापाः ॥ १६ ॥ मुद्गमाषशैम्बया मध्यवापाः ॥ १७ ॥ कुसुम्भमसूरकुलुत्थयवगोधूमकलायातसीसर्पपाः पश्चाद्वापाः ॥ १८ ॥ यथर्तुवशेन वा वाजीवापाः ॥ १९ ॥

जिस देश में जैसी वर्षा हुई हो-उसी के अनुसार बीज भी बोना चाहिए । शाली, त्रीहि (चावल) कोदू, तिल, कांगनी दारक और वराक (लोभिया) आदि वर्षा के अपूर्व काल में अधिक बरसने पर बो देने चाहिए । मूङ्ग, उड़द, शौम्बय (छीमी) आदि मध्य में बरसने पर बोने चाहिए । कुसुम्भ (कुसूंब) मसूर, कुल्थी, जौ, गेहूँ, मटर, अलसी और सरसों वर्षा काल के अन्त में अच्छी वर्षा होने पर बोने उचित है । इस प्रकार ऋतु काल में जिसका जैसा उचित पड़े-उसी प्रकार बीजों को बो देना चाहिए ॥ १५-१९ ॥

वापातिरिक्तमर्धसीतिकाः कुर्युः ॥ २० ॥ स्ववीर्योपजीविनो वा चतुर्थपञ्चभागिका यथेष्टमनवसितं भागं दद्यु रन्यत्र कृच्छ्रेभ्यः ॥ २१ ॥

जिन खेतों में सीताध्यक्ष बुवाई न करा सके-उनमें आधी बटाई पर अन्य किसानों को बोने के लिए प्रदान करदे । जो अपने परिश्रम से ही अपना निर्वाह करते हैं, उन लोगों को खेती में से चौथा या पांचवां भाग देना चाहिए या जो उनका भाग ठहर जावे-वह देदे-परन्तु इस विषय में कोई उपद्रव खड़ा हो जावे-तो उसके अनुसार व्यवस्था करे ॥ २०-२१ ॥

स्वसेतुभ्यः हस्तप्रावर्तिममुदकभागं पञ्चमं दद्युः ॥ २२ ॥ स्कन्धप्रावर्तिमं चतुर्थम् ॥ २३ ॥ स्रोतोयन्त्रप्रावर्तिमं च तृतीयम् ॥ २४ ॥ चतुर्थं नदीसरस्तटाककूपोद्घाटम् ॥ २५ ॥ कर्मोदकप्रमाणेन केदारं हैमनं ग्रैष्मिकं वा सस्यं स्थापयेत् २६ ॥ शान्यादि ज्येष्ठम् ॥ २७ ॥ पण्डो मध्यमः ॥ २८ ॥ इक्षुः प्रत्यवरः

॥ २६ ॥ इक्ष्वो हि वह्नावाधा व्ययग्राहिणश्च ॥ ३० ॥ फेनाघातो वल्लीफलानां
परीवाहान्ताः मृद्वीकेक्षूणां कूपपर्यन्ताः शाकमूलानां हरिणपर्यन्ताः हरितकानां
पाल्योलवानां गन्धभैषज्योशीरहीवेरपिण्डालुकादीनाम् ॥ ३१ ॥ यथास्वं भूमिषु
च स्थल्याश्चानूप्याश्चौषधीः स्थापयेत् ॥ ३२ ॥

अपने ही सेतुओं (तालाबों) से हाथ से जल लाकर सींचने पर जो उत्पात्ति हो-उसका
पांचवाँ भाग राजा को किसान देवें। यदि सरकारी तालाब से जल हाथों से लाया जावे-तो
राजा को चौथा भाग देना उचित है। यदि छोटी २ नहरों से खेतों का भाग सींचा गया है-तो
राजा को उपज का तीसरा भाग मिलना चाहिए। नदी, सरोवर, तालाब और कुंओं से
जल, रहट द्वारा लेकर खेत सींचे जावें-तो राजा को चौथा भाग लेना चाहिए। अपनी जोत
आदि के पारश्रम और वर्षा के अनुरूप ही खेतों में हैमन्त और ग्रीष्म की ऋतु के योग्य
खरीफ और रबी अन्नों को सीताध्यक्ष बुवावे। शाली आदि चावल बोना लाभ की दृष्टि से
सर्व श्रेष्ठ है। पण्ड (वाल से उत्पन्न जो गेहूँ आदि) मध्यम हैं। ईख की खेती छोटी मानी
गई है, क्योंकि ईख के बोने में बड़ा श्रम, कीड़े आदि की बाधा और अधिक व्यय होता है
जल प्रदेश (अनूप) ककड़ी आदि फलों के लिए उत्तम है। नदी के प्रवाह से सींचा हुआ
प्रदेश, अंगूर और ईख को उपयोगी है। शाक मूल आदि को कूपजल श्रेष्ठ माना गया है।
हरे शाकों को भील तालाब आदि का हरित तट श्रेष्ठ है। काटे जाने योग्य, गन्ध (सुगन्धि-
द्रव्य) भैषज्य (औषधि) उशीर (खस) नेत्रवाला, पिण्डालुक (कचालू सकरकन्दी) आदि के
बोने के लिए बीच में तालाब (जोहड़) आदि से सम्पन्न क्षेत्र उत्तम हैं। शुष्क भूमि या जल-
प्रदेश से रसीली भूमि में अन्य औषधि आदि जैसी उचित प्रतीत हों-वे भी बोई जा
सकती हैं ॥ २२-३२ ॥

तुषारपायनमुष्णशोषणं चासप्तरात्रादिति धान्यबीजानां त्रिरात्रं पञ्चरात्रं
वा कोशीधान्यानां मधुघृतसूकरवसाभिः शकृद्युक्ताभिः काण्डबीजानां छेदलेपो
मधुघृतेन कन्दानाम्, अस्थिवीजानां शकृदालेपः, शाखिनां गर्तदाहो गोस्थिश-
कृद्भिः काले दौहदं च ॥ ३३ ॥ प्ररूढांश्चाशुष्ककटुमत्स्यांश्च स्नुहित्रीरेण
वापयेत् ॥ ३४ ॥

धान के बीजों को रात में ओस में और दिन में धूप में सात दिन रात तक रखना
चाहिए। कोशी धान्य (मूंग उड़द आदि) को तीन या पांच रात तक ओस में रखना
और दिन में धूप में सुखाना चाहिए। मधु, घृत और शूकर की चर्बी के साथ गोबर लपेट
कर ईख आदि काण्डबीजों को सुरक्षित रखना योग्य है। कन्दों (सूरण जमीकन्द

आदि) को मधु और घृत में काट काट कर सुरक्षित रखना चाहिए। गुठली के भीतर निकलने वाले बीजों को गोबर में मिलाकर रखें। आम कटहल आदि के बीजों को गो की अस्थि या गोबर से धोने के बाद गढ़े में कुछ संकना उचित है। समय के ऊपर जो २ वस्तु इनको आवश्यक हैं, वह अवश्य दोहद की भांति इन्हें देनी चाहिए। इनके अंकुर (निकलने पर गीली छोटी २ मछलियों का खात और स्नुही (सैंढ़) के दूध से इन्हें सींचना चाहिए ॥ ३३-३४ ॥

कार्पाससारं निर्मोकं सर्पस्य च समाहरेत् ।

न सर्पास्तत्र तिष्ठन्ति धूमो यत्रैष तिष्ठति ॥ ३५ ॥

कपास के बीज (विनौले) और सांपकी कांचुली को इकट्ठा करले। जहां इन दोनों का धुआं दिया जावेगा, वहां पर सर्प नहीं ठहरेगा ॥ ३५ ॥

सर्वबीजानां तु प्रथमवापे सुवर्णोदकसंप्लुतां पूर्वमुष्टिं वापयेदमुं च मन्त्रं ब्रूयात् ॥ ३६ ॥

सारे बीजों के बोने के प्रथम काल में सुवर्ण के साथ जल में भीगी हुई मुट्ठी को ही बोना चाहिए। उस बोने के समय इस मन्त्र का पाठ करे ॥ ३६ ॥

प्रजापतये काश्यपाय देवाय च नमः सदा ।

सीता मे ऋध्यतां देवी बीजेषु च धनेषु च ॥ ३७ ॥

प्रजापति काश्यप देव को सर्वदा नमस्कार है-उनके अनुग्रह से मेरी कृषि धनधान्य से पूर्ण होवे ॥ ३७ ॥

पण्डवाटगोपालकदासकर्मकरेभ्यो यथापुरुषपरिवापं भक्तं कुर्यात् ॥ ३८ ॥

सपादपणिकं मासं दद्यात् ॥ ३७ ॥ कर्मानुरूपं कारुभ्यो भक्तवेतनम् ॥ ४० ॥ प्रशीर्णं

च पुष्पफलं देवकार्यार्थं ब्रीहियवमाग्रयणार्थं श्रोत्रियास्तपस्विनश्चाहरेयुः ॥ ४१ ॥

राशिमूलमुच्छ्वृत्तयः ॥ ४२ ॥

खेतों की रखवाली करने वाले सेवक, ग्वाले, दास, तथा कर्मकर (मजदूर) पुरुषों को उनके परिश्रम अनुसार उनके भोजन की व्यवस्था करे। इस भोजन के सिवा इनको सवा पण (सवामुद्रा) मासिक भी मिलना चाहिए। अन्य कारीगरों को भी उनके परिश्रम के अनुरूप भोजन और वेतन की व्यवस्था होनी चाहिए। वृक्ष आदि से गिरे हुए पुष्प और फलों को देव कार्यों के निमित्त तथा ब्रीहि, यव आदि को आग्रयण (नवसह्येष्टि) के निमित्त तपस्वी वेद पाठी इकट्ठा करलें। राशि (रास) के पीछे पड़े हुए अन्न को उच्छ्वृत्ति करने वाले मुनि जन ग्रहण करें ॥ ३८-४२ ॥

यथाकालं च सस्यादि जातं जातं प्रवेशयेत् ।

न क्षेत्रे स्थापयेत्किंचित्पलालमपि पण्डितः ॥ ४३ ॥

समय के ऊपर उत्पन्न हुए अन्नादि को चतुर मनुष्य, सुरक्षित स्थानों पर संग्रहीत करें खेत में तो पीछे पलाल (तुफ) आदि असार वस्तुओं को भी पुरुष न छोड़े ॥ ४३ ॥

प्रकराणां समुच्छायान्नलभीर्वा तथाविधाः ।

न संहतानि कुर्वीत न तुच्छानि शिरांसि च ॥ ४४ ॥

धान्य के रखने के स्थानों को कुछ ऊंचाई पर बनवाना चाहिए, या इस तरह के वलभी नामक स्थान बनवाये । जोवें ये सब संहत (इकट्ठे) न बनवाये जायें तथा छोटे या ऊंचे शिर के भी नहीं बनाने चाहिए ॥ ४४ ॥

खलस्य प्रकरान्कुर्यान्मण्डलान्ते समाश्रितान् ।

अनग्निकाः सोदकाश्च खले स्युः परिकर्मिणः ॥ ४५ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे सीताध्यक्षः चतुर्विंशो ऽध्यायः ॥२४॥

आदितः पञ्चचत्वारिंशः ॥ ४५ ॥

मण्डल (पैर) के किनारे पर अन्न भुस आदि की (खल्यान) लगानी उचित है । खलियानों में काम करने वाले मजदूर पानी अपने पास रखें-उनके पास अग्नि नहीं होनी चाहिए ॥ ४५ ॥

इति श्री कौटिलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रकार अधिकरण में सीताध्यक्ष के कर्तव्यों के निर्णय का चौबीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



पचोसवां अध्याय

४३वां प्रकरण

सुराध्यक्षः

शुद्ध मधु और पिट्टी से सुरा बनायी जाती है, उसके अध्यक्ष को सुराध्यक्ष कहते हैं । अब उसके कर्तव्यों का निरूपण किया जाता है ।

सुराध्यक्षः सुराकिण्वव्यवहारान्दुर्गंजनपदे स्कन्धावारे वा तज्जातसुरा-किण्वव्यवहारिभिः कारयेत् एकमुखमनेकमुखं वा विक्रयक्रयवशेन वा ॥१॥ षट्छत-मत्ययमन्यत्र कर्तक्रेतविक्रेतृणां स्थापयेत् ॥२॥ ग्रामादनिर्णयनमसंघातं च सुरायाः,

प्रमादभयात्कर्मसु निर्दिष्टानां, मर्यादातिक्रमभयादार्याणामुत्साहभयाच्च तीक्ष्णानाम्
॥ ३ ॥ लक्षितमल्पं वा चतुर्भागमर्घकुडुवं कुडुवं मर्घप्रस्थं प्रस्थवेति ज्ञातशौचा
निर्हरेयुः ॥ ४ ॥ पानागारेषु वा पिबेयुरसंचारिणः ॥ ५ ॥

सुरान्वय, सुरा (शराब) बनवाने और उसके बेचने का व्यवहार, दुर्ग, राष्ट्र और स्कन्धावार (आवनी) में जिनको सुरा के मूल बीज और सुरा बनाने का अनुभव है, उन पुरुषों के द्वारा सुरा बनवावे। यह सुरा एक व्यक्ति या अनेक व्यक्तियों द्वारा बनवाई और बेची जा सकती है अर्थात् इसका एक व्यक्ति को ठेका दिया जा सकता है या बेचने खरीदने के सुभीते के अनुसार अनेक दुकानदारों के द्वारा भी बेची खरीदी जा सकती है। जिन को सुरा बनाने, बेचने और खरीदने का अधिकार है-उनके अतिरिक्त जो सुरा बनाता बेचता या खरीदता है-उसपर छः सौ रुपये जुर्माना होना चाहिए। सुरा या सुरापान किये हुए पुरुषों को ग्राम से बाहर या अन्य उत्सव आदि में प्रविष्ट नहीं होने देना चाहिए। इसे पीकर कर्मचारी अपने कार्य में भूल कर सकते हैं, बड़े २ उत्तम पुरुष भी अपनी मर्यादा को छोड़ देते हैं, और तीक्ष्ण प्रकृति के उद्धृत मनुष्य शस्त्रों का अनुचित प्रयोग कर बैठते हैं। राजकीय मुद्रा से युक्त कुडुव (पाव) अर्घकुडुव (आधा पाव) चतुर्भाग कुडुव (छटांक भर के लग भग) आध सेर या सेर भर सुरा, योग्य पुरुष ले जा सकते हैं। जो पीने वाले हैं, वे पानालयों में जाकर ही सुरापान करें-और जबतक उसका नशा रहे-कहीं भी न जावें ॥ १-५ ॥

निक्षेपोपनिधिप्रयोगापहतादीनामनिष्ठोपगतानां च द्रव्याणां ज्ञानार्थमस्वामिकं कुप्यं हिरण्यं चोपलभ्य निक्षेप्तारमन्यत्र व्यपदेशेन ग्राहयेत् ॥ ६ ॥ अतिव्ययकर्तारमनायतिव्ययं च ॥ ७ ॥ न चानर्घेण कालिकां वा सुरां दद्यादन्यत्र दुष्टसुरायाः ॥ ८ ॥ तामन्यत्र विक्रापयेत् ॥ ९ ॥ दासकर्मकरेभ्यो वा वेतनं दद्यात् ॥ १० ॥ वाहनप्रतिपानं सूकरपोषणं वा दद्यात् ॥ ११ ॥

निक्षेप (धरोहर) उपनिधि (गिरवी का माल) प्रयोग (अमानत) चोरी आदि इसी प्रकार अन्य अनुचित उपायों से संञ्चित किए हुए द्रव्य को लोग प्रायः सुरापान में व्यय किया करते हैं, उनका पता लगाने को सुरा गृह अच्छी चीज है। इसी तरह स्वामी से रहित कुप्य [शस्त्र-आदि] तथा सुवर्ण को देख कर लाने वाले पुरुष को पानालय से अन्यत्र किसी वहाँ से पकड़वा देवे। जो पुरुष अत्यन्त व्यय करता हो या आमदनी से अधिक खर्चता हो-उसका भी सुरा गृह में पता चल जाता है। उसके भी पकड़ने का सुरागृह साधन होना चाहिए। थोड़े मूल्य, उधार या व्याज सहित मिल जाने वाले रुपये से

उत्तम सुरा को कभी न बेचे, साधारण सुरा देदी जावे-तो अधिक हानि नहीं है। इस साधारण सुरा को उत्तम सुरा की दुकानों से पृथक् ही विक्रवावे। रास या सुरा के उत्पादन करने वाले कर्मकार [मजदूरों] को यह घटिया सुरा दे देनी चाहिए तथा बाहनों के पालन और सूकरों के पोषण में भी घटिया सुरा का उपयोग करना चाहिए ॥ ६-११ ॥

पानागाराण्यनेककक्ष्याणि विभक्तशयनासनवन्ति पानोद्देशानि गन्धमाल्योदकवन्त्यृतुसुखानि कारयेत् ॥ १२ ॥ तत्रस्थाः प्रकृत्योत्पत्तिकौ व्ययौ गूढा विद्यु रागन् तृश्च ॥ १३ ॥ क्रैतृणां मत्तसुप्तानामलंकाराच्छादनहिरण्यानि च विद्युः ॥ १४ ॥ तन्नाशे वणिजस्तच्च दण्डं दद्युः ॥ १५ ॥ वणिजस्तु संवृतेषु कक्ष्याविभागेषु स्वदासीभिः पेशलरूपाभिरागन्तूनां वास्तव्यानां चार्यरूपाणां मत्तसुप्तानां भावं विद्युः ॥ १६ ॥

पानागारों में अनेक कक्ष्या [कमरे] होनी चाहिए उनमें सोने विद्याने के विस्तर बिछे रहने उचित हैं। पानों के स्थानों को प्रत्येक वस्तु में सुखदायी गन्ध, माल्य और जल से सम्पन्न बनाने चाहिए। उस स्थान पर गुप्तचर अपने देश और बाहर के आए हुए पुरुषों पर खर्च होने वाली सुरा का पृथक् २ पत्ता रखे। एवं बाहर के आने वाले पुरुषों की भी जांच रखे। जो सुरापान करके वहां पर मद में उन्मत्त होकर लेट गए-उनके अलङ्कार, वस्त्र और नकदी आदि की भी यही गुप्तचर निगरानी करें कि कोई खोल न ले। यदि किसी शराबी का कोई अलङ्कार चोरी चला जावे-तो सुरा बेचने वाला उतना धन और राजकीय दण्ड का देनदार होगा। सुरा बेचने वाले व्यापारी, अपने २ कमरों में छुपकर सुन्दर २ अपनी दासियों से रमण करने वाले आर्य वेप धारी नगर निवासी या बाहर के उन्मत्त पुरुषों के सुप्त भाव या चेष्टाओं का पता लगाए रखे ॥ १२-१६ ॥

मेदकप्रसन्नासवारिष्टमैरेयमधूनामुदकद्रोणं तण्डुलानामर्धाढकं त्रयः प्रस्थाः क्रिएवस्येति मेदकयोगः ॥ १७ ॥ द्वादशाढकं पिण्डस्य पञ्च प्रस्थाः क्रिएवस्य पुत्रकत्वक्फलयुक्तो वा जातिसंभारः प्रसन्नायोगः ॥ १८ ॥ कपित्थतुला फाणितं पञ्चतौलिकं प्रस्थो मधुन इत्यासवयोगः ॥ १९ ॥ पादाधिको ज्येष्ठः पादहीनः कनिष्ठः ॥ २० ॥ चिकित्सकप्रमाणाः प्रत्येकशो विकाराणामरिष्टाः ॥ २१ ॥ मेषशृङ्गित्वक्काथाभिषुतो गुडप्रतीवापः पिप्पलीमरिचसंभारस्त्रिफलायुक्तो वा मैरेयः ॥ २२ ॥ गुडयुक्तानां वा सर्वेषां त्रिफलासंभारः ॥ २३ ॥ मृद्वीकारसो मधु ॥ २४ ॥ तस्य स्वदेशो व्याख्यानं कापिशायनं हारहरकमिति ॥ २५ ॥

मेदक, प्रसन्ना, आसव, अरिष्ट, मैरय और मधु-ये सुरा के छः भेद हैं। एक द्रोण जल, आधे आढ़क चांवल, तीन प्रस्थ [सेर] किएव [सुराबीज] इन को मिलाकर जो सुरा बनाई जाती है, वह मेदक कहाती है। बारह आढ़क चांवल की पिट्टी, पांच प्रस्थ [सेर] सुरा बीज या पुत्रक वृक्ष की त्वचा और फल तथा कई वस्तु मिलाकर बने हुए जाति संभार से सुरा तैयार होती है, वह प्रसन्ना कहाती है। सौ पल कैथ के फल का सार, पांच सौ पल, गुड़ का रात्र, एक प्रस्थ मधु-इन सब को मिलाकर जो सुरा बनती है, वह आसव कहाती है। इस में मदकारी फल का योग सवाया कर दिया जावे-तो यह उत्तम सुरा होगी और जो उसमें चतुर्थांश न्यून कर दिया जावेगा-तो वह घटिया सुरा कहलावेगी। इनही सुराओं को चिबित्तक अपने प्रमाण से बनाले-तो यह प्रत्येक अरिष्ट अर्थात् मेदकारिष्ट आदि कहलावेगा। मेदा सींगी की छाल का काथ बनाकर और उसमें गुड़ का योग देकर पीपल मिरच या हरड़ बहड़ा आंवला मिला दिया जावे-तो वह मेदक सुरा बनती है अथवा जिन सुराओं में गुड़ मिलाया जाता है, उन सब में त्रिफला मिला देना चाहिए। मुनक्का [दाख] आदि से जो सुरा बनती है, वह मधु कहाती है यह मधु नामक सुरा, कपिशा नाग नदी पर अधिक बनती है, इससे इसे कापिशायन और हरहूर नगर में बनने से हारहूरक कहाती है ॥ १७-२५ ॥

माषकलनीद्रोणमामं सिद्धं वा त्रिभागाधिकतण्डुलं मोरटादीनां कार्षिकभाग-
युक्तः किएवबन्धः ॥ २६ ॥ पाठालोध्रतेजोवत्येलावालुकमधुमधुरसाप्रियङ्गुदारु-
हरिद्रामरिचपिप्पलीनां च पञ्चकर्षिकः संभारयोगो मेदकस्य प्रसन्नायाश्च ॥ २७ ॥
मधुकनिर्युहयुक्ता कटशर्करा वर्णप्रसादिनी च ॥ २८ ॥ चोचचित्रकविलङ्गगजपिप्पलीनां
च पञ्चकर्षिकः क्रमुकमधुकमुस्तालोध्राणां द्विकार्षिकश्चासवसंभारः ॥ २९ ॥
दशभागश्चैषां बीजबन्धः ॥ ३० ॥ प्रसन्नायोगः श्वेतसुरायाः ॥ ३१ ॥ सहकार-
सुरा रसोत्तरा बीजोत्तरा वा महासुरा संभारिकी वा ॥ ३२ ॥

उड़द का कल्क या आटा एक द्रोण, कच्चे या पके हुए तंडुलों की पिट्टी पौने दो द्रोण तथा मोरटा आदि औषधियों का एक २ कर्ष [तोला] संयोग होने पर किएव बन्ध तय्यार होता है। पाठा, लोध, गज पीपल, इलायची, वालुक [सुगन्धि द्रव्य] मधु मुलहठी, केसर, दारु हल्दी, मिरच, पीपल इन सब वस्तुओं को पांच २ कर्ष [तोला] मिला लेवे-तो यह मेदक और प्रसन्ना नामक सुरा का किएव अर्थात् मूल द्रव्य बनता है। मुलहठी का काढा करके उसमें रवादार शक्कर मिला देने से इस सुरा का रङ्ग बहुत अच्छा निकल आता है दाल चीनी, चीता, वायविडङ्ग और गज पीपल-ये सब एक २ कर्ष [पांच तोला] लेकर तथा

दो २ कर्प सुपारी, मुलहठी, मोथा और लोध, कुल आठ कर्प मिला लेने पर आसव नामक सुरा का मूल द्रव्य [किएव] तय्यार होता है। दालचीनी आदि वस्तुओं का दसवां भाग बीज बन्ध होता है। प्रसन्ना नामक सुरा का योग ही श्वेत सुरा का योग कहाता है। आम का रस ढालकर जो सुरा बनाई जावे-वह सहकार सुरा कहाती है। गुड़ का रस ढालकर जो तैयार की जावे-वह रसोत्तरा, बीजबन्ध आदि औषधियों के प्रयोग से बनी हुई महा सुरा और जिसमें ये पूर्वोक्त मसाले अधिक मात्रा में पड़े हों-वह सांभरिकी सुरा कहाती है ॥२६-३२॥

तासां मोरटापलाशपत्तूरमेपशृङ्गीकरञ्जलीरवृक्षकपायभाषितं दग्धकटशर्कराचूर्णं
लोध्रचित्रकविलङ्गपाठामुस्ताकलिंगयवदारुहरिद्रेन्दीवरशतपुष्पापामार्गसप्तपर्णनिम्-
म्बास्फोटकल्कार्धयुक्तमन्तर्नखोमुष्टिः कुम्भीं राजपेयां प्रसादयति ॥ ३३॥ फाणितः
पञ्चपलिकश्चात्र रसवृद्धिर्देयः ॥ ३४ ॥

मोरट [मरोरफली] ढाक, पत्तूर, मेढ़ासींगी, करंजवा और चीरवृक्ष के काढ़े में चासनी किया हुआ रवादार शकर का चूर्ण [वृत्ता] तथा इनसे आधा लोध, चीता, वाय-विटङ्ग, पाठा, मोथा, कलिङ्गयव, दारु हल्दी, कमल, सौंफ, अपामार्ग, सप्तपर्ण, नींव और आस्फोट [आखे] का कल्क [चूर्ण] करके एक मुट्ठी भरकर एक खारी प्रमाण जल भरे कुम्भ में ढालने से राजाओं के पीने के योग्य वह सुरा हो जाती है। यदि उसमें पांच पल राव और मिलादी जावे-तो उसका स्वाद भी अत्यन्त बढ़ जाता है ॥ ३३-३४ ॥

कुटुम्बिनः कृत्येषु श्वेतसुरामौषधार्थं वारिष्टमन्यद्वा कर्तुं लभेरन् ॥ ३५ ॥
उत्सवसमाजयात्रासु चतुरहःसौरिको देयः ॥ ३६ ॥ तेष्वननुज्ञातानां प्रहवणान्तं
दैवसिकमत्ययं गृह्णीयात् ॥ ३७ ॥ सुराकिएवविचयं स्त्रियो बालाश्चकुर्युः ॥ ३८ ॥
अराजपण्याः शतं शुल्कं दद्याुः सुरकामेदकारिष्टमधुफलाम्लाम्लशीघूनां च ॥ ३९ ॥

गृहस्थी लोग, उत्सव के समय पर श्वेत सुरा का उपयोग करे। औषधि के निमित्त अरिष्ट या अन्य सुरा का व्यवहार किया जा सकता है। वसन्त आदि उत्सव, समाज [पंचायत] देव यात्रा आदि के समय पर सुराध्यक्ष, चार दिन की लोगों को सुरा पीने की छुट्टी देदे। यदि ये लोग, इन उत्सवों पर राज्य की आज्ञा बिना ही सुरा पीने लगे-तो उत्सवादि के अन्त में प्रत्येक दिन का इनसे दण्ड लिया जावे। सुरा या सुराबीज के संग्रह को स्त्री या बालक करें। जो राजकीय दुकान से सुरा न लेकर सुरका मेदक, अरिष्ट, मधु फलाम्ल और अम्लशीघ्र सुराका स्वतन्त्र व्यवहार करते हैं, उनको राज कोष में सौ रुपये शुल्क दे देने चाहिए ॥ ३५-३९ ॥

अह्नश्च विक्रयं व्याजीं ज्ञात्वा मानहिरण्ययोः ।

तथा वैधरणं कुर्यादुचितं चानुवर्तयेत् ॥ ४० ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे सुराध्यक्षः पञ्चविंशो ऽध्यायः ॥ २४ ॥

आदितः पट्चत्वारिंशः ॥ ४६ ॥

दैनिक विक्रय तथा तोल और मूल्य पर नियत व्याजी [टैक्स] तथा वैधरण [अन्य-
शुल्क] जो नियत हो-ग्रहण किया जावे, परन्तु जो शुल्क हो-वह जहां तक हो उचित ही
होना चाहिए । प्रजा के साथ अनुचित वर्ताव ठीक नहीं है ॥ ४० ॥

इति श्री कौटलीय अर्थ शास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में सुराध्यक्ष के
कर्तव्यों का पच्चीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।



छब्बीसवां अध्याय

४४वां प्रकरण

सूनाध्यक्ष ।

वध्य जन्तुओंके मारने के स्थान को सूना (कमेला) कहते हैं । इसके अध्यक्ष को सूना-
ध्यक्ष कहते हैं-अब इसके कर्तव्यों का निरूपण किया जाता है ।

सूनाध्यक्षः प्रदिष्टाभयानामभयवनवासिनां च मृगपशुपक्षि मत्स्यानां बन्ध-
वधहिंसायामुत्तमं दण्डं कारयेत् ॥१॥ कुटुम्बि नामभयवनपरिग्रहेषु मध्यमम् ॥२॥
अप्रवृत्तवधानां मत्स्यपक्षिणां बन्धवधहिंसायां पादोनसप्त विंशतिपणमत्ययं कुर्यात्
॥ ३ ॥ मृगपशूनां द्विगुणम् ॥४॥ प्रवृत्तहिंसानामपरिगृहीतानां पङ्भागं गृह्णीयात्
॥ ५ ॥ मत्स्यपक्षिणां दशभागं वाधिकं मृगपशूनां शूल्कं वाधिकम् ॥ ६ ॥
पक्षिमृगाणां जीवत्पङ्भागमभयवनेषु प्रमुञ्चेत् ॥ ७ ॥

सरकारी तौर से जिनके नहीं मारने की घोषणा की गई उनको तथा
तपोवन निवासी, मृग, पशु, पक्षी और मछलियों को जो मारता या पकड़ता
है, उसपर सूनाध्यक्ष, उत्तम साइस दण्ड की व्यवस्था करे । गृहस्थियों के
ऐसे स्थानों पर जो पशु आदि मारे या पकड़े-तो उन लोगों पर मध्यम दण्ड होना
चाहिए । जिन के वध की कंभी भी आज्ञा नहीं है, ऐसे मत्स्य पक्षि आदि का जो वध
करता है । उसपर सूनाध्यक्ष पौने सत्ताईस पण (मुद्रा) जुर्माना करे तथा मृग और पशुओं

का वध करे-तो उनपर साढ़े तरेपन पण (मुद्रा) दण्ड होना चाहिए। जो जन्तु हिंसक हैं, तथा जो खुले जंगल में घूमते हैं, ऐसे पशु पक्षियों के मारने पर उनके मूल्य का छठा भाग सूनाध्यक्ष ग्रहण करे, मत्स्य और पक्षियों का दसवाँ या इससे कुछ अधिक लेलेना चाहिए। इसी प्रकार मृग पशुओं का भी दसवाँ या इससे कुछ अधिक लेना चाहिए। जीवित पकड़े हुए मृग और पक्षियों के छठे भाग को अभय वनों के व्यय पर लगा दे ॥ १-७ ॥

सामुद्रहस्त्यश्च पुरुषवृषगर्दभाकृतयो मत्स्याः सारसा नादेयास्तटाककु-
ल्योद्भवावाक्रौञ्चोत्क्रोशकदात्यूहहंसचक्रवाकजीवजीवकमृङ्गराजचकोरमत्त कोकि-
लमयूरशुकमदनशारिका विहारपक्षिणो मङ्गल्याश्चान्येऽपि प्राणिनः पक्षिमृगा
हिंसावाधेभ्यो रक्ष्याः ॥ ८ ॥ रक्षातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥ ९ ॥

समुद्र में उत्पन्न होने वाले हाथी, अश्व, पुरुष, वृष और गर्दभ के आकृति वाले मत्स्य नदी पर उत्पन्न सारस या तड़ाग, छोटी नदी पर उत्पन्न, कौच (कुंज) कुरर, दात्यूह (जल कौआ) हंस, चक्रवाक, जीवजीवक [पक्षि विशेष] मृङ्गराज, चकोर, मत्तकोकिल, मोर तोता, मदन, शारिका [मैना] आदि क्रीड़ा योग पक्षी तथा अन्य सुंदर पक्षी, तथा मृग पक्षी आदि अन्य जन्तु हिंसा करने वाले दुष्ट प्राणियों से बचाने चाहिए। यदि सूनाध्यक्ष रक्षा करने में कोई प्रमाद करे-तो उसे प्रथम साहस दण्ड होना चाहिए ॥ ८-९ ॥

मृगपशूनामनस्थिमांसं सद्योहतं विक्रीणीरन् ॥ १० ॥ अस्थिमत्तः प्रति-
पातं दद्युः ॥ ११ ॥ तुलाहीने होनाष्टगुणम् ॥ १२ ॥ वत्सो वृषो धेनुश्चैषाम-
वध्याः ॥ १३ ॥ घ्नतः पञ्चाशत्को दण्डः ॥ १४ ॥ क्लिष्टघातं घातयश्च ॥ १५ ॥
परिस्नानमशिरः पादास्थि विगन्धं स्वयंमृतं च न विक्रीणीरन् ॥ १६ ॥ अन्यथा
द्वादशपणो दण्डः ॥ १७ ॥

मृग और पशुओं का हड्डी रहित ताजा मांस ही विक्रय करना चाहिए। हड्डी के साथ बेचा हुआ मांस हड्डी की बराबर और दिया जाना चाहिए। यदि तोल में मांस कम तोल दिया जावे-तो कम दिये हुए मांस से अठ गूणा मांस बेचने वाले को देना पड़ेगा। बछड़ा वृष और गाय सदा अवध्य है, जो पुरुष इन्हें मारे-उसपर पचास पण [सुवर्ण या रजत मुद्रा] का दण्ड होना चाहिए। जो मनुष्य अन्य पशुओं को क्लेश पूर्वक मारता है, उस पर भी पचास मुद्रा दण्ड होना चाहिए। सूनास्थान से अन्य मारे हुए पशु का मांस तथा शिर पैर और अस्थि हीन मांस, दुर्गन्धपूर्ण, स्वयं मरे हुए पशु आदि का मांस नहीं बेचा जाना चाहिए। यदि कोई ऐसा करे-तो उस पर बारह पण [रुपये] दण्ड होना उचित है ॥ १०-१७ ॥

दुष्टाः पशुमृगव्याला मत्स्याश्चाभयचारिणः ।

अन्यत्र गुप्तिस्थानेभ्यो वधवन्धमवाप्नुयुः ॥ १८ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे सूनाध्यक्षः षड्विंशो ऽध्यायः ॥ २६ ॥

आदितः सप्तचत्वारिंशः ॥ ४७ ॥

दुष्ट [सिंह आदि] जन्तु मृग [नील गाय आदि] व्याल [सर्पादि] तथा अभय चारी मत्स्य आदि, ये सुरक्षित वनों से अन्यत्र हों-तो मारे या पकड़े जा सकते हैं अर्थात् राजा से सुरक्षित वन में सिंह आदि दुष्ट जन्तु या मृग आदि साधारण जन्तुओं के भी मारने छुट्टी नहीं है। इन सुरक्षित स्थानों के अतिरिक्त स्वच्छन्द घूमने वाले जंगली पशु पक्षियों का वध या बन्धन किया जा सकता है ॥ १८ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थ शास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में सूनाध्यक्ष के कर्तव्यों के निर्णय का छत्रवीसवां अध्याय पूरा हुआ ।



सत्ताईसवां अध्याय

४५ प्रकरण

गणिकाध्यक्ष

वेश्याओं की व्यवस्था करने वाले राजकीय अधिकारी को गणिकाध्यक्ष कहते हैं, इस प्रकरण में गणिकाध्यक्ष के कार्यों का विवेचन किया जाता है ।

गणिकाध्यक्षो गणिकान्वयामगणिकान्वयां वा रूपयौवनशिल्पसंपन्नां सहस्रेण गणिकां कारयेत् ॥ १ ॥ कुटुम्बार्धेन प्रतिगणिकाम् ॥ २ ॥ निष्पतिताप्रेतयोर्दुहिता भगिनी वा कुटुम्बं भरेत् ॥ ३ ॥ तन्माता वा प्रतिगणिकां स्थापयेत् ॥ ४ ॥ तासामभावे राजा हरेत् ॥ ५ ॥

गणिकाध्यक्ष, गणिका (वेश्या) के वंश में उत्पन्न या गणिका के वंश में अनुत्पन्न भी रूप, यौवन और गान कला में निपुण स्त्री को एक सहस्र पण [मुद्रा] तक का मासिक वेतन देकर राजा की गणिका बनादे। उसकी साथी दूसरी अमुख्य गणिका को भी कुटुम्ब के पालनार्थ इससे आधा ५००) रुपया वेतन देना चाहिए। यदि कोई गणिका अपने स्थान (नौकरी) को छोड़ना चाहे या मर जावे-तो उसकी पुत्री या बहन उस स्थान पर नियुक्त होकर अपने कुटुम्ब का पालन करे। यदि उसके कोई पुत्री या बहन न हो-तो गणिका की

वृद्धा माता उसकी सहचरी अमुख्य गणिका को ही उसके स्थान पर नियुक्त करादे । यदि इनमें से कोई भी न रहे-तो उस द्रव्य का फिर राजा ही स्वामी होता है ॥१-५॥

सौभाग्यालंकारवृद्धया सहस्रेण वारं कनिष्ठं मध्यममुत्तमं वारोपयेत् ॥६॥
छत्रभृङ्गारव्यजनशिविकापीठिकारथेषु च विशेषार्थम् ॥ ७ ॥ सौभाग्यभङ्गे मातृकां
कुर्यात् ॥ ८ ॥ निष्क्रयश्चतुर्विंशतिसाहस्रो गणिकायाः ॥ ९ ॥ द्वादशसाहस्रो
गणिकोपुत्रस्य ॥ १० ॥ अष्टवर्षात्प्रभृति राज्ञः कुशीलवकर्म कुर्यात् ॥ ११ ॥

सौन्दर्य और अलङ्कार आदि की अधिकता के कारण गणिका को एक सहस्र पण वेतन की व्यवस्था की गई है । इनमें उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ-तीन भेदों की स्थापना भी कर लेनी चाहिए । मध्यम और कनिष्ठ को एक सहस्र पण मासिक से न्यून भी दिया जा सकता है । ये वेश्याएँ, छत्र, भृङ्गार [चक्रस छोटी पेटी आदि] पंखा, पालकी पीठिका [आसन] और रथ पर चढ़ने के समय विशेष २ सेवा के कार्य में नियुक्त रहें । जब इनका रूप सौन्दर्य न्यून पड़ जावे-तो ये वृद्ध वेश्या माता बन जावें और नव युवति वेश्याओं की देख रेख रखे । यदि कोई वेश्या, इस कार्य से पृथक् होना चाहे, तो उसके लिए उसे चौबीस सहस्र पण शुल्क [फीस] देना चाहिए । यदि कोई गणिका पुत्र, इस कर्म से पृथक् होने की इच्छा करे-तो उसे बारह सहस्र रुपया देना होगा । यदि उसके पास इतना रुपया देने को न हो-तो आठ वर्ष तक राजा की परिचर्या करदे-तो वह मुक्त किया जा सकता है ॥६-११॥

गणिकादासी भग्नभोगा कोष्ठागारे महानसे वा कर्म कुर्यात् ॥ १२ ॥
अविशन्ती सपादपणमवरुद्धा मासवेतनं दद्यात् ॥ १३ ॥ भोगं दायमायं व्ययमा-
यतिं च गणिकायाः निबन्धयेत् ॥ १४ ॥ अतिव्ययकर्म च वारयेत् ॥ १५ ॥
मातृहस्तादन्यत्राभरणन्यासे सपादचतुष्पणो दण्डः ॥ १६ ॥ स्वापतेयं विक्रय-
माधानं वा नयन्त्याः सपादपञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ १७ ॥ चतुर्विंशतिपणो वाक्-
पारुष्ये ॥ १८ ॥ द्विगुणो दण्डपारुष्ये ॥ १९ ॥ सपादपञ्चाशत्पणः पणोऽर्ध-
पणश्च कर्णच्छेदने ॥ २० ॥

गणिका की दासी [प्रति गणिका] यदि भोग्य के योग्य न रहे-तो कोष्ठागार [भण्डार] या रसोई के काम में लगाली जावे । यदि प्रति गणिका रसोई में रहना पसन्द न करे-और किसी पुरुष के पास रहना चाहे तो उसे प्रति मासिक सवापण अपनी स्वामिनी वेश्या को देवे । गणिकाध्यक्ष, गणिका के भोग करने वाले पुरुषों की गणना, दाय भाग से प्राप्त धन, अन्य गान आदि से मिले हुए धन, व्यय [खर्च] और भविष्य में होने

वाली आमदनी को अपने रजिस्टर में लिखता रहे और वेश्याओं को अधिक व्यय करने से रोक दे । यदि वेश्या अपनी माता के सिवा अन्य किसी को आभूषण आदि का अधिकारी बनाना चाहे-तो उसे सवा चार पण होना चाहिए । यदि यह गणिका अपने कपड़े वर्तन आभूषण आदि पदार्थों को बेचे या गिरवी रखे-तो इस पर सवा पचास पण [मुद्रा] दण्ड होना चाहिए । यदि वेश्या बाणी से कठोर व्यवहार गणिकाध्यक्ष या अन्य किसी, के साथ करे-तो उस पर चौबीस पण दण्ड होना चाहिए । यदि लड़की आदि से कठोर व्यवहार कर बैठे-तो उस पर अड़तालीस पण का दण्ड होना चाहिए । और यदि वह किसी के कान आदि को छेद डाले-तो उस पर पौने वावन पण का दण्ड होना उचित है ॥१२-२०॥

अकामायाः कुमार्या वा साहसे उत्तमो दण्डः ॥ २१ ॥ सकामायाः पूर्वः साहसदण्डः ॥ २२ ॥ गणिकामकामां रुन्धतो निष्पातयो वा व्रणविदारणेन वा रूपमुन्नतः सहस्रदण्डः ॥ २३ ॥ स्थानविशेषेण वा दण्डवृद्धिरानिष्क्रयद्विगुणा-
त्पणसहस्रं वा दण्डः ॥ २४ ॥ प्राप्ताधिकारां गणिकां घातयतो निष्क्रयत्रिगुणो दण्डः ॥ २५ ॥ मातृकादुहितृकारूपदासीनां घात उत्तमः साहसदण्डः ॥ २६ ॥ सर्वत्र प्रथमेऽपराधे प्रथमः ॥ २७ ॥ द्वतीये द्विगुणः ॥ २८ ॥ तृतीये त्रिगुणः ॥ २९ ॥ चतुर्थे यथाकामी स्यात् ॥ ३० ॥

जो कोई व्यक्ति किसी कामना रहित स्त्री पर बलात्कार करे या कुमारी कन्या के साथ व्यभिचार करे-तो उस पर उत्तम साहस [उस समय का अन्तिम] दण्ड होना चाहिए । यदि कोई सकाम स्त्री के साथ व्यभिचार करता हो-तो उसे पूर्व साहस [प्रथम कोटि] का साधारण दण्ड होना चाहिए । जो पुरुष, नहीं रहना चाहती हुई गणिका को बलपूर्वक रोककर रखता है या उसे मुक्त नहीं होने देता तथा नाक आदि काट कर उसे कुरूप बनाता है, उस पर एक सहस्र मुद्रा दण्ड होनी चाहिए । वेश्या के मर्म स्थानों की विशेषता से इस दण्ड में भी वृद्धि हो सकती है, वह एक सहस्र पण से लेकर निष्क्रय के दण्ड चौबीस सहस्र से दुगुना अड़तालीस सहस्र तक पहुंच सकता है । जो राजकीय अधिकार प्राप्त गणिकाओं को मार डालता है, उस पर निष्क्रय दण्ड से तिगुना वहत्तर सहस्र पण तक दण्ड हो सकता है । वेश्या की माता, पुत्री और रूप दासी [प्रति गणिका] के आघात पर भी उत्तम साहस दण्ड होना चाहिए । इन सारे अपराधों में जो प्रथम बार अपराध क्रिया हो-तो इस प्रथम दण्ड व्यवस्था का प्रयोग करे । दूसरी बार अपराध करने पर दुगुना और तीसरी बार पर तिगुना और चौथी बार अपराध करने पर गणिकाध्यक्ष

को अधिकार है कि वह उसका सर्वस्व अपहरण करके उसे देश निकाला दे सकता है ॥२१-३०॥

राजाज्ञया पुरुषमनभिगच्छन्ती गणिका शिफासहस्रं लभेत ॥ ३१ ॥ पञ्च-
सहस्रं वा दण्डः ॥ ३२ ॥ भोगं गृहीत्वा द्विषत्या भोगद्विगुणो दण्डः ॥ ३३ ॥
वसतिभोगापहारे भोगमष्टगुणं दद्यादन्यत्र व्याधिपुरुषदोषेभ्यः ॥ ३४ ॥ पुरुषं
धनत्याश्रिताग्रतोपो ऽप्सु प्रवेशनं वा ॥ ३५ ॥ गणिकाभरणार्थं भोगं वापहरतो
ऽष्टगुणो दण्डः ॥ ३६ ॥ गणिका भोगमायति पुरुषं च निवेदयेत् ॥ ३७ ॥

यदि राजा की आज्ञा किसी पुरुष के पास भोग के निमित्त जाने की हुई और उस
वेश्याने निषेध (इन्कार) कर दिया-तो उसको एक सहस्र कोड़े या पाँच सहस्र पण का दण्ड
होना चाहिए। भोग की फीस लेकर फिर वेश्या किसी पुरुष से झगड़ बैठे-तो उसपर भोग की
फीस से दुगुना दण्ड होवे। रात भर के भोग की फीस लेकर यदि वेश्या किसी पुरुष को
बहाने बाजी से टरका देवे-तो रात भर की फीस का अठगुना दण्ड वेश्या पर होना चाहिए।
यदि वेश्या अचानक से बीमार हो गई या पुरुष अपने पुंस्त्व की कमी से भोग नहीं कर सका-
तो वेश्या को कोई दण्ड नहीं होगा। जो वेश्या अपने घर आये हुए किसी धनी पुरुष
को मार डाले-तो उस वेश्या को उसी पुरुष की चिता के साथ जला दिया जावे या पीछे जल
में डुबो दिया जावे। गणिका के आभूषण के धन या भोग धन (भोग की फीस) को जो
पुरुष नहीं देता-उस पर अठगुना दण्ड होना चाहिए। गणिका अपने भोगधन इतर आय
तथा पुरुषों की सूचना गणिकाध्यक्ष को करती रहे ॥ ३१-३७ ॥

एतेन नटनर्तकगायकवादकवाग्जीवनकुशीलवप्लवकसौभिकचारणानां स्त्रीव्य-
वहारिणां स्त्रियो गूढाजीवाश्च व्याख्याताः ॥३८॥ तेषां तूर्यमागन्तुकं पञ्चपणं
प्रेक्षावेतनं दद्यात् ॥ ३९ ॥ रूपाजीवा भोगद्वयगुणं मासं दद्युः ॥ ४० ॥

नट नर्तक, गायक, वादक, वाग्जीवन (कहानी द्वारा जीविका करने वाले) कुशीलव
(भांड आदि) प्लवक (रस्सी पर खेल करने वाले) सौभिक (जादूगर) चारण (यश बखान
करने वाले) तथा स्त्रियों के द्वारा अपनी जीविका चलाने वाले पुरुषों की स्त्रियाँ तथा गुप्त
व्यभिचार करने वाली स्त्रियों के विषय में भी यही व्यवस्था समझनी चाहिए। इन नट
आदि की कोई कम्पनी आवे और खेल दिखावे-तो वह प्रेक्षा फीस पांच पण राजा या
गणिकाध्यक्ष को देवे। व्यभिचार से जीविका करने वाली स्त्रियाँ अपनी मासिक आमदनी
में से दो दिन की आय राज कोष में प्रदान करें ॥ ३८-४० ॥

गीतवाद्यपाठ्यनृत्तनाट्याक्षरचित्रवीणावेणुमृदङ्गपरचित्तज्ञानगन्धमाल्यसंयूह-
नसंपादनसंवाहनवैशिककलाज्ञानानि गणिका दासी रङ्गोपजीविनीश्च ग्राह्यतो
राजमण्डलादाजीवं कुर्यात् ॥ ४१ ॥ गणिकापुत्रात्रङ्गोपजीविनश्च मुख्यान्निष्पा-
दयेयुः सर्वतालावचाराणां च ॥ ४२ ॥

गाना, वजाना, पढ़ना, नाचना अभिनय करना लिखना, चित्रकारी करना
वीणा वेणु और मृदङ्ग वजाना- दूसरे के चित्त को पहचानना, गन्ध, माला गूथना
बनाना, पैर दवाना, वेश भूषा तथा अन्य कलाओं के ज्ञान, एवं गणिका दासी, रङ्गमञ्चपर
नाचने वाली स्त्रियों की जो देख भाल पड़ताल करता है, राजा उसकी वृत्ति का प्रबन्ध अपने
कोप से करे। गणिका के पुत्रों को रङ्गमञ्च से जीविका करने वालों में प्रधान माना जावे
अर्थात् प्रथम उनको इस कार्य के लिए स्थान दिया जावे तथा गान विद्या के जितने स्थान
हैं, इनमें सर्व प्रथम इनका ही प्रवेश हो ॥ ४१-४२ ॥

संज्ञाभाषान्तरज्ञाश्च स्त्रियस्तेषामनात्मसु ।

चारघातप्रमादार्थं प्रयोज्या बन्धुवाहनाः ॥ ४३ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये अधिकरणे गणिकाध्यक्षः सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

प्रादितोऽष्टचत्वारिंशः ॥ ४८ ॥

चेष्टा-संकेत आदि से सारा भाव जानलेने वाली तथा प्रत्येक देश की, भाषा में
पटु इन स्त्रियों को इनके बन्धु बान्धवों की आक्षा से दुष्ट पुरुषों और शत्रु राजा के चारों के
घात या उनको प्रमादित करने के निमित्त राजा, अपने काममें लावे ॥ ४३ ॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में गणिकाध्यक्ष के
कर्मों का सत्ताईसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

ॐ नमः शिवाय

अट्ठाईसवां अध्याय

४६वां प्रकरण

नावाध्यक्ष

नौकाओं के शुल्क आदि का ग्रहण करने वाला राजकीय अफसर नावाध्यक्ष कहाता
है। अब उसके कर्मों का निरूपण किया जाता है।

नावाध्यक्षः समुद्रसंयाननदीमुखतःप्रचारान्देवसरोविसरोनदीतरांश्च स्थानी-
यादिष्ववेक्षेत ॥ १ ॥ तद्वेलाकूलग्रामाः क्लृप्तं दद्युः ॥ २ ॥ मत्स्यबन्धका

नौकाभाटकं पडभागं दद्युः ॥ ३ ॥ पत्तनानुवृत्तं शुल्कभागं वणिजो दद्युः ॥४॥
यात्रावेतनं राजनौभिः संपतन्तः ॥ ५ ॥ शङ्खमुक्ताग्राहिणो नौभाटकं दद्युः ॥६॥
स्वनौभिर्वा तरेयुः ॥ ७ ॥

नावाध्यक्ष, समुद्र में चलने वाले तथा मुख्य २ नदियों में चलने वाले नौकादि यान एवं बड़ी २ भील सरोवर तथा छोटी २ नदियों के पार करने वाली नौकाओं तथा स्थानीय आदि मार्गों का निरीक्षण करता रहे। नदी के तट या समुद्र की बेल पर बसे हुए गांव अपनी शक्ति के अनुसार कुछ शुल्क अवश्य राजा को देते रहे। मछली पकड़ने वाले, नौका का भाड़ा अपनी आमदनी का छठा भाग देवे। अपने २ गांवों के अनुरूप शुल्क वणिक् जन देते रहें। राज्य की नौकाओं पर जाने वाले इस यात्रा का वेतन (टैक्स) भी देते रहें। शंख-मुक्ता निकालने वाले अपनी आमदनी का छठा भाग दें। अपनी २ नौका से पार होने वाले भी इस शुल्क को देते रहें ॥ १-७ ॥

अध्यक्षश्चैषां खन्यध्यक्षेण व्याख्यातः ॥ ८ ॥ पत्तनाध्यक्षनिबन्धं पण्यप-
त्तनचारित्रं नावध्यक्षः पालयेत् ॥९॥ मूढवाताहतानां पितेवानुगृहणीयात् ॥१०॥
उदकप्राप्तं पण्यमशुल्कमर्धशुल्कं वा कुर्यात् ॥ ११ ॥ यथानिर्दिष्टाश्चैताः पण्य-
पत्तनयात्राकालेषु प्रेषयेत् ॥ १२ ॥ संयान्तीर्णावः क्षेत्रानुगताः शुल्कं याचेत
॥ १३ ॥ हिंस्रिका निर्धातयेत् ॥ १४ ॥ अभिन्नविषयातिगाः पण्यपत्तनचारित्रोप-
धातिकाश्च ॥ १५ ॥ शासकनियामकदात्ररश्मिग्राहकोत्सेचकाधिष्ठिताश्च महानावो
हेमन्तग्रीष्मतार्यासु महानदीषु प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥ क्षद्रकाः क्षद्रिकासु वर्षास्त्रावि-
शीषु ॥ १७ ॥ बद्धतीर्थाश्चैताः कार्या राजद्विष्टकारिणां तरणभयात् ॥ १८ ॥
अकालेऽतीर्थे च तरतः पूर्वः साहसदण्डः ॥१९॥ काले तीर्थे चानिसृष्टतारिणः
पादोनसप्तविंशतिपणः तरात्ययः ॥ २० ॥

इनके अध्यक्ष का वही काम सम्भालना चाहिए, जो खान के अध्यक्ष के बताए हैं। नगर के अध्यक्ष तथा बेचने के नगर या बन्दरगाहों के नियमों का नावाध्यक्ष, भी यथा योग्य पालन करे। अनुचित वायु की झपट में आये हुए नौका समूह की नावाध्यक्ष पिताकी तरह सहायता करे। जो माल जल में भीग गया- उसका आधा शुल्क ले या शुल्क बिल्कुल ही छोड़ देवे। इनका जो समय निश्चित है, उसी के अनुसार इन्हें बेचने के बाजार की ओर रवाना करदे। चलती हुई नौका जब शुल्क स्थान पर पहुंचे-तो वहां उनसे शुल्क वसूल कर लिया जावे। जो नौका चोर डाकुओं की हों-उत्त को नष्ट कर दिया जावे। शत्रुके देश को जाने वाली या बेचने के बाजार या बन्दरगाहों के नियमों को नहीं मानने वाली नौका-

ओं को भी नष्ट कर देना चाहिए । शासक (नौका चलवाने का अधिकारी) नियामक (नियम में रखने वाला) दात्र ग्राहक (दांती आदि रखने वाला) रश्मि-ग्राहक (रस्सी पकड़ने वाला) उत्सेचक (भीतर के पानी को उलीचने वाला) इन पाँच कर्मचारियों से युक्त बड़ी २ नौकाओं को हेमन्त और ग्रीष्म (गरमी सरदी) में एक रूपसे वहने वाली बड़ी २ नदियों में आने जाने की आज्ञा दे । वर्षा में वहने वाली क्षुद्र नदियों में क्षुद्र नौकाओं को चलने की नावाध्यक्ष आज्ञा (इजाजत) देता रहे । इन नौकाओं के बन्दरगाहों पर बड़ा प्रबन्ध रखना चाहिए । उनके द्वारा कोई राजा का शत्रु भी न उतरे । जो असमय और अमार्ग द्वारा आकर पहुँचे उसपर पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए । समय पर नियत बन्दरगाह पर भी, यदि बिना आज्ञा कोई आ उतरे तो उसपर भी पौने सत्ताईस पण दण्ड होना चाहिए ॥८-२०॥

कैवर्तकाष्ठतृणभारपुष्पफलवाटपण्डगोपालकानामनत्ययः सम्भाव्यदूतानुपातिनां च सेनाभाण्डप्रचारप्रयोगाणां च ॥ २१ ॥ स्वतरणैस्तरताम् ॥ २२ ॥ बीजभक्तद्रव्योपस्करांश्चनूपग्रामाणां तारयताम् ॥ २३ ॥ ब्राह्मणप्रव्रजितवालवृद्धव्याधितशासनहरगर्भिणी नावध्यक्षमुद्राभिस्तरेयुः ॥ २४ ॥ कृतप्रवेशाः पारविषयिज्ञाः सार्थप्रमाणाः प्रविशेयुः ॥ २५ ॥

धीवर, (मछली मारने वाला) लकड़हारे, घसियारे, माली कूँजड़े, खेतों की रखवाली करने वाले और ग्वाले पर कोई दण्ड नहीं होना चाहिए । किसी चोर आदि के पकड़ने की सम्भावना, सेना आ-सेना की वस्तु लेजाने या गुप्तचर के प्रयोगों में समय असमय का दण्ड नहीं है । जो अपने नौका से तैरते हैं, उनपर भी यह दंड नहीं है । इसी तरह जलमय प्रदेशों में बसे हुए गांवों के बीज (धान्य आदि) भक्त (भोजन) अन्य द्रव्य (शाक फल आदि वस्तु) लेजाने वालोंपर भी यह दंड नहीं है । ब्राह्मण, सन्यासी, बालक, वृद्ध, रोगी, शासनहर (दूत) गर्भिणी, नावाध्यक्ष की मुद्रा से (मुहर) बिना शुल्क ही पार हो सकती है । अन्य देश के निवासी वही प्रवेश कर सकते हैं, जिनको आने की आज्ञा है या आने की आज्ञा वाले साथ के समूह में सम्मिलित हैं ॥ २१-२५ ॥

परस्य भार्या कन्यां वित्तं वापहरन्तं शङ्कितमाविग्रमुद्गाण्डीकृतं महाभाण्डेन मूर्ध्नि भारेणावच्छादयन्तं सद्योगृहीतलिङ्गिनमलिङ्गिनं वा प्रव्रजितमलक्ष्यव्याधितं भयविकारिणं गूढसारभाण्डशासनशस्त्राग्नियोगं विपहस्तं दीर्घपथिकममुद्रं चोपग्राहयेत् ॥ २६ ॥

दूसरे की भार्या, कन्या या धन को अपहरण करके भागते हुए को इस प्रकार पहचाने तथा जो शङ्कित (घबराया सा) दिखाई दे । बड़े भारी वस्तु समूह तथा किसी ऐसे

भार को रखे हो जिस से मुंह ढक रहा हो । जो ताजा सन्यास लिए हुए या लिङ्ग रहित सन्यासी हो और बीमारी दिखाई न देने पर भी बीमार बने हुए हों । जिस के आकार से भय के चिन्ह प्रकट हो रहे हों । जो बहु मूल्य रत्न आदि को छिपाने और किसी गुप्त लेख तथा छुपे २ वस्त्र या अग्नि प्रयोग रखने वाला हो । जिसके पास विप हो, जो लम्बे सफर में जाने वाला हो, जिसके पास अन्तपाल की मुद्रा (मुहर) न हो-ऐसे पुरुष को अनुमान करके पकड़ लेना चाहिए ॥ २७ ॥

क्षुद्रपशुर्मनुष्यश्च सभारो मापकं दद्यात् ॥ २७ ॥ शिरोभारः कायभारो गवाश्वं च द्वौ ॥ २८ ॥ उष्ट्रमहिषं चतुरः ॥ २९ ॥ पञ्च लघुयानम् ॥ ३० ॥ षड् गोलिङ्गम् ॥ ३१ ॥ सप्त शकटम् ॥ ३२ ॥ पण्यभारः पादम् ॥ ३३ ॥ तेन भाण्डभारो व्याख्यातः ॥ ३४ ॥ द्विगुणो महानदीषु तरः ॥ ३५ ॥ क्लृप्तमानू-पग्रामा भक्तवेतनं दद्युः ॥ ३६ ॥

भेड़ बकरी आदि क्षुद्र पशु, और हाथ से उठाने के बोझ से युक्त पुरुष से एक मापक (सिक्का) शुल्क लेना चाहिए । शिर और पीठ से उठाने योग्य भार से युक्त पुरुष और गाय तथा अश्व से दो मापक (सिक्का) लेना चाहिए । ऊंट और भैंस आदि से चार मापक, छोटे २ यानों से पांच मापक, मध्यम श्रेणी की बैल गाड़ी से छः मापक, बड़ी बैल गाड़ी से सात मापक तथा बीस तुला बोझ को सवा पण (सवा मुद्रा) भाड़ा होना चाहिए । इसीसे ऊंट आदि पर जाने वाले वस्तुओं के भार का भी नियम समझ लेना चाहिए । यदि बड़ी २ नदियों को पार किया जावे-तो इससे दुगुना शुल्क लेना उचित है । अनूप प्रदेश के गांव अपनी शक्ति के अनुसार कुछ भक्त (भक्ता) और वेतन के भाग का भी शुल्क अदा करते रहें ॥ २७-३६ ॥

प्रत्यन्तेषु तराः शुल्कमातिवाहिकं वर्तनीं च गृह्णीयुः ॥ ३७ ॥ निर्गच्छ-तश्चामुद्रद्रव्यस्य भाण्डं हरेयुः ॥ ३८ ॥ अतिभारेणावेलायामतीर्थे तरतश्च ॥ ३९ ॥ पुरुषोपकरणहीनायामसंस्कृतायां वा तावि विपन्नायां नावध्यक्षो नष्टं विनष्टं वभ्यावहेत् ॥ ४० ॥

अपनी २ सीमा से पार करने वाले, अधिकारी, अपने २ शुल्क और वर्तनी (नियमित बन्धन) को यथा स्थान वसूल करलें । जो बिना मुहर के अपनी वस्तुओं को लेजा रहा हो, उसकी वस्तुओं को जब्त करलें । अत्यन्त भार लेकर असमय में स्थान पर जो नदी को पार करता हुआ पकड़ा जावे, उसका भी माल जब्त कर लेना उचित है । शासक नियामक आदि पुरुषों से हीन या जीर्ण नौका में जो पार करने वालों को हानि

पहुँचे उनकी जो वस्तु नष्ट हो जावे, या खो जावे-तो उसको नावाध्यक्ष अपने पास से देवे ॥३७-४०॥

सप्ताहवृत्तामाषाढीं कार्तिकीं चान्तरा तरन् ।

कार्मिकप्रत्ययं दद्यान्नित्यं चाह्निकमावहेत् ॥ ४१ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे नावध्यक्ष अष्टाविंशो ऽध्यायः ॥ २८ ॥

आदित एकोनपञ्चाशः ॥ ४६ ॥

आषाढ़ की पूर्णमासी के एक समाह से लेकर कार्तिक की पूर्णिमा के एक सप्ताह बाद तक वर्षा का टैक्स लिया जावे । नौका संचालकों का प्रधान, नौका के कामों की सूची और नित्य की आमदनी की सूचना भी नावाध्यक्ष को देता रहे ॥४१॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचार अधिकरण में नावाध्यक्ष के कर्मों का अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त हुआ ।



उनतीसवां अध्याय

४७ वां प्रकरण

गोऽध्यक्ष ।

गाय भैंस आदि के निरीक्षण करने वाले अध्यक्ष को गोध्यक्ष कहते हैं, अब उसके ही कार्यों का निरूपण किया जाता है ।

गोऽध्यक्षो वेतनोपग्राहिकं करप्रतिकरं भग्नोत्सृष्टकं भागानुप्रविष्टकं ब्रज-पर्यग्रं नष्टं विनष्टं क्षीरघृतसंजातं चोपलभेत ॥ १ ॥

वेतन मात्र से गौ आदि की सेवा करने वाले सेवकों को वेतनोपग्राहिक कहते हैं । जो राजकीय पुरुषों से कुछ नियत कर पर गौ आदि की सेवा करे, वह कर प्रतिकर कहाता है । बेकार गायों को थोड़े से कर पर जो पालना करता है, वह भग्नोत्सृष्टक कहाता है । जो ग्वाला किसी बाहरी भय से अपने गो समूह की सरकार से रक्षा करावे और उसके निमित्त कुछ आमदनी का दसवां भाग राज्य में देवे-तो वह भागानु प्रविष्टक कहाता है । गाय आदि के स्वस्तिक आदि लोह के चिन्ह को अग्नि में तप्त करके चिन्ह कर देने और इस प्रकार उनकी खोले से रक्षा करने को ब्रज पर्यग्र कहते हैं । गाय आदि पशुओं के खो जाने को नष्ट और मारे जाने को विनष्ट कहते हैं । क्षीर और घी विषयक

ज्ञान को क्षीर घृत सञ्ज्ञात कहते हैं । गोध्वक्ष को इन सब बातों से अच्छी जानकारी होनी चाहिए ॥१॥

गोपालकपिएडारकदोहकमन्थकलुब्धकाः शतं शतं धेनूनां हिरण्यभृताः पालयेयुः ॥ २ ॥ क्षीरघृतभृता हि वत्सानुपहन्युरिति वेतनोपग्राहिकम् ॥ ३ ॥ जरदुधेनुगर्भिणीप्रष्टौहीवत्सतरीणां समविभागं रूपशतमेकः पालयेत् ॥ ४ ॥ घृतस्याष्टौ वारकान्पणिकं पुच्छमङ्गचर्म च वार्षिकं दद्यादिति करप्रतिकरः ॥ ५ ॥ व्याधितान्यङ्गानन्यदोहीदुहोहापुत्रघ्नीनां च समविभागं रूपशतंपालयन्तस्तज्ञातिकं भागं दद्युरिति भग्नोत्सृष्टकम् ॥ ६ ॥ परचक्राटवीभयादनुप्रविष्टानां पशूनां पालनधर्मेण दशभागं दद्युरिति भागानुप्रविष्टकम् ॥ ७ ॥

गोपालक, पिएडारक [भैंसपालक] दोहक, मन्थक [मथने वाला] और लुब्धक [जंगली जीवों से गायों को वचाने वाला] ये पांच मनुष्य, सौ २ गवादि पशुओं की रक्षा पर नियुक्त होंगे । इनको इसका नकद वेतन मिलना चाहिए, यदि इनका दूध या घृत में भाग रखा जावेगा, तो ये बछड़ों को भूखा मार देंगे । इस ढंग को वेतनोपग्राहिक कहा जाता है । बूढ़ी, दूध देने वाली, गर्भिणी, पठोरी, और बछिया-इन पांचों तरह की बीस २ गायें लेकर सौ करदी जावें और उनका एक ही पालक होवे । वह इन पशुओं का आठ वारक [चौरासी कुडुव] घृत, प्रत्येक गाय पर एक पण और राजकीय मुद्रा से अङ्कित मरे पशु का चमड़ा-प्रति वपे राज्य कोष में कर के रूप में देवे । इस ढंग को कर प्रतिकर कहते हैं । बीमार, अङ्ग भङ्ग एकसे ही दुही जाने वाली, कठिनाई से दुही जाने वाली, और मृत वत्सा, इन पांच प्रकार की गायों को बीस २ मिलाकर सौ गायों का जो पालन किया जावे और उनसे उत्पन्न घृत आदि का जो भाग ठहर जावे, उसे राजकीय कोष में जमा करा दिया जावे, इसे भग्नोत्सृष्टक कहते हैं । शत्रु के आक्रमण तथा जङ्गली मनुष्य या जन्तुओं के भय से जो राजकीय गोशाला में अपने पशु भेज दे और उनके पालन का शुल्क आमदनी का दशवां भाग राजकीय कोष में देवे-तो यह भागानुप्रविष्टक कहा जाता है ॥२-७॥

वत्सा वत्सतरा दम्या वहिनो वृषा उक्षाणश्च पुङ्गवाः, युगवाहनशकटवहा वृषभाः सूना महिषाः पृष्ठस्कन्धवाहिनश्च महिषाः वत्सिका वत्सतरी प्रष्टौही गर्भिणी धेनुश्चाप्रजाता वन्ध्याश्च गावो महिष्यश्च, मासद्विमासजातास्तासामुपजा वत्सा वत्सिकाश्च, मासद्विमासजातानङ्कयेत् ॥ ८ ॥ मासद्विमासपर्युषितमङ्कयेत् ॥ ९ ॥ अङ्कं चिह्नं वर्णं शृङ्गान्तरं च लक्षणमेवमुपजा निबन्धयेदिति व्रजपर्यग्रम् ॥१०॥

वत्स [दूध पीने वाला] वत्सतर [दूध छोड़ देने वाला] दम्य [हल में चलने योग्य] वह्नि [बोझ ढोहने में समर्थ] वृष, [सवारी के बैल] उत्ताण [सांड] ये छः प्रकार के वृषभ [बैल] होते हैं। जुआ [हल] वाहन, गाड़ी में चलने वाले, वृषभ, [सांड रूप में छोड़े हुए] केवल मांस के उपयोग में आने वाले, और पीठ पर बोझा ढोहने वाले-ये चार प्रकार के भैंसे होते हैं। वत्सिका [वछिया] वत्सरी [कुछ बड़ी वछिया] प्रष्टौही [पठोरी] गर्भिणी, दूध देने वाली, पहलून व्याने वाली और वन्ध्या-ये गाय और भैंस दोनों होती हैं। मास, दो मास के इनके बच्चों को उग्रजा (लवारा) वत्स, वत्सिका कहते हैं। इस अवस्था में ही इनको लोहे के चिन्हों से दाग देना चाहिए। जो बाहर की गायें राजकीय गोशाला में प्रविष्ट हों, उनको भी महीने दो महीने में दाग दे। इनके अङ्क, स्वाभाविक चिन्ह, बर्ण, सींगों का ढंग, आदि लक्षणों को गोव्यक्त अपने रजिस्टर में लिख लेवे। इसे व्रजपर्यग्र कहते हैं ॥८-१०॥

चोरहतमन्ययूथप्रविष्टमवलीनं वा नष्टम् ॥ ११ ॥ पङ्कविषमव्याधिज-
रातोयाधारावसन्नं वृक्षतटकाष्ठशिलाभिहतमीशानव्यालसर्पग्राहदावाग्निविपन्नं
विनष्टं प्रमादादभ्याह्वयेयुः ॥ १२ ॥ एवं रूपाग्रं विद्यात् ॥ १३ ॥ स्वयं हन्ता
वातयिता हर्ता हारयितां च वध्यः ॥ १४ ॥ परपशूनां राजाङ्केन परिवर्तयिता
रूपस्य पूर्वं साहसदण्डं दद्यात् ॥ १५ ॥ स्वदेशीयानां चोरहतं प्रत्यानीय पणिकं
रूपं हरेत् ॥ १६ ॥ परदेशीयानां मोक्षयितार्थं हरेत् ॥ १७ ॥ बालवृद्धव्याधितानां
गोपालकाः प्रतिकुर्युः ॥ १८ ॥ लुब्धकश्चगणभिरपास्तस्तेनव्यालपरवाधभयमृतु-
विभक्तमरणं चारयेयुः ॥ १९ ॥ सर्पव्यालत्रासनार्थं गोचरानुपातज्ञानार्थं च
वस्नूनां घण्टातूर्यं च वध्नीयुः ॥ २० ॥

गायों के नष्ट (खोने) होने के तीन प्रकार हैं, (१) चोरों का अपहरण कर ले जाना (२) अन्य के यूथ में मिल जाना (३) अपने यूथ से भ्रष्ट होकर जङ्गल में भटकना। कीचड़, विषमगन्त आदि में फंस जाना, बीमार होना, बुढ़ापा, जलप्रवाह, आहार आदि के ठीक न मिलने पर नष्ट हो जाना, वृक्ष, तट, काष्ठ, शिला आदि के आघात से मर जाना, ईश्वरीय उत्पात विजली आदि, सिंह आदि हिंस्र जन्तु, सर्प, ग्राह, दावाग्नि आदि से नष्ट होना-ये विनष्ट कहाते हैं। यदि यह प्रमाद से हो जावे-तो जिसके प्रमाद से हो वह उस हानि को पूरा करे। इन बातों के स्वरूप को गोव्यक्त भली प्रकार जाने। जो गाय को मारे या मरवावे, हरण करे या करवावे-उसे मृत्यु दण्ड होना चाहिए। अन्य के पशुओं पर जो कर्मचारी राजकीय चिन्ह लगा कर उसका पूर्व रूप बदल दे-तो उस पर पूर्व साहस दण्ड होना

चाहिए। चोरों से अपद्रुत, अपने ही देश के पशुओं को लाने वाला, प्रत्येक पशु पर एक पण स्वामी से ले लेवे। परदेश के पशुओं को चोरों से छुड़ाने वाला, उसके स्वामी से उनके मूल्य का आधा द्रव्य ले सकता है। गोपालक, बाल, वृद्ध और बीमार पशुओं की भी यथोचित देख रेख रखें। ग्वाले, लुब्धक (शिकारी) और कुत्तों के समूह रखने वाले, वनवासी मनुष्यों के द्वारा चोर, सिंह आदि से सुरक्षित अपने पशुओं को ऋतु के योग्य वन में चराते रहें। सर्प व्याल आदि जन्तुओं के डराने, कहां गाय चर रही है, इस प्रकार गोचर भूमि के ज्ञान के निमित्त डरने वाली गौओं के गले में घण्टा बांध दे ॥११-२०॥

समव्यूढतीर्थमकर्मग्राहमुदकवतारयेयुः पालयेयुश्च ॥ २१ ॥ स्तेनव्याल-
सर्पग्राहगृहीतं व्याधिजरावसन्नं चावेदयेयुरन्यथा रूपमूल्यं भजेरन् ॥ २२ ॥
कारणमृतस्याङ्गचर्म गोमहिषस्य कर्णलक्षणमजाविकानां पुच्छमङ्गचर्म चाध्वखरो-
ष्ट्राणां बालचर्मवस्तिपित्तत्नायुदन्तखुरशृङ्गास्थीनि चाहरेयुः ॥ २३ ॥ मांसमाद्रं
शुल्कं वा विक्रीणीयुः ॥ २४ ॥

सम प्रदेश, अच्छी तरह उतरने योग्य, कीचड़ आदि से रहित ग्राह के भय से हीन, जल में गोपालक गौओं को उतारे और इस प्रकार जल पान आदि कराकर उनकी पालना करे। चोर, हिंस्र जन्तु, सर्प, ग्राह आदि से पकड़े हुए, तथा व्याधि या चुढ़ापे से मरे हुए पशु की फौरन गोऽध्यक्ष को सूचना करें अन्यथा, उसे पशु के मूल्य का रूपया देना पड़ेगा। किसी कारण से मरे हुए गौ भैंस आदि का अङ्कित चर्म, अजा और भेड़ों का चिह्नित कान, अश्व, खर और ऊंटों का अङ्कित चर्म और पुच्छ, गोध्यक्ष को दिखानी चाहिए। मरे हुए पशु के बाल, चर्म, वस्ति (मूत्राशय) पित्ता, त्नायु (आंत) दांत, खुर, सींग और हड्डी तक लाकर दिखानी चाहिए। मृत पशु के गीले या सूखे मांस को बेच देवे ॥२१-२४॥

उदधिच्छ्ववराहेभ्यो दद्युः ॥ २५ ॥ कूर्चिकां सेनाभक्तार्थमाहरेयुः ॥२६॥
किलाटो धाणपिण्याकङ्कदेदार्थः ॥२७॥ पशुविक्रेता पादिकं रूपं दद्यात् ॥२८॥
वर्षाशरद्धेमन्तानुभयतः कालं दुह्युः ॥ २९ ॥ शिशिरवसन्तग्रीष्मानेककालम्
॥ ३० ॥ द्वितीयकालदोग्धुरङ्गपृच्छेदो दण्डः ॥ ३१ ॥ दोहकालमतिक्रामतस्त-
त्फलहानं दण्डः ॥३२॥ एतेन नस्यदम्ययुगपिङ्गनवर्तनकाला व्याख्याताः ॥३३॥

पशुओं की छाछ, कुत्ते वराह आदि को डाल दे। कूर्चिक [दूध दही से बनी हुई] सेना के भोजन को ले आई जावे। किलाट [फटा हुआ दूध] धाणी में बनी खल के गोले करने के उपयोग में लावे। पशु बेचने वाला सवा पण राजकीय कोश में जमा करावे।

वर्षा, शरद और हेमन्त ऋतुओं में गायों को दो समय दुहा जावे । शिशिर वसन्त और ग्रीष्म में एक काल दुहना चाहिए । द्वितीय काल में दूध निकालने वाले को अंगुष्ठ छेदन का दण्ड होना चाहिए । जो गाय के दुहने के समय गाय को आकर न दुहे-तो उसको उस दिन का वेतन नहीं मिलना चाहिए । इसी तरह नाथने वाले, बद्धों को हिलाने वाले, जुए में जोड़ने वाले, टहलाने वाले-सेवक, समय पर आकर ये सब कुछ जिस दिन न करें-तो इनको भी उस दिन का वेतन न दिया जावे ॥२५-३३॥

क्षीरद्रोणे गवां घृतप्रस्थः ॥ ३४ ॥ पञ्चभागाधिको महिषीणाम् ॥ ३५ ॥
द्विभागाधिको ऽजात्रीनाम् ॥ ३६ ॥ मन्यो वा सर्वेषां प्रमाणम् ॥ ३७ ॥ भूमि-
तृणोदकविशेषाद्धि क्षीरघृतवृद्धिर्भवति ॥ ३८ ॥

एक द्रोण गाय के दूध में से प्रस्थ (सेरभर) घी निकलता है । भैंस के एक द्रोण दूध में पांच प्रस्थ (सेर) घी निकलता है । भेड़ बकरियों के एक द्रोण दूध में दो प्रस्थ (सेर) घी निकलता है । इसके अतिरिक्त मथ कर जैसी गाय आदि पशु में जितना घी निकलता है, उसका अनुमान कर लिया जावे । भूमि, तृण, जल की उत्तमता अधिकता से भी घृत और दूध की वृद्धि हो जाती है ॥३४-३८॥

यूथवृषं वृषेणावपातयतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३९ ॥ घातयत उत्तमः
॥ ४० ॥ वर्णविरोधेन दशतीरक्षा ॥ ४१ ॥ उपनिवेशदिग्बिभामे गोप्रचारान्व-
लान्वयतां वा गवां रक्षासामर्थ्याच्च ॥ ४२ ॥ अजादीनां पाण्माषिकीमूर्णां
ग्राहयेत् ॥ ४३ ॥ तेनाश्वखरोष्ठ्वराह्व्रजा व्याख्याताः ॥ ४४ ॥

यूथ के वृष को किसी दूसरे वृष (सांड) से जो लड़ावे, उसे प्रथम साहस दण्ड होना चाहिए । जो सांड को मार डाले, उसे उत्तम साहस दण्ड होना चाहिए । एक २ वर्ण की दश २ गाय मिलाकर भी उनकी रक्षा की टोली बनायी जा सकती है । गाय आदि पशुओं के चरने के लिए स्थानों की व्यवस्था उनके सुभीते, यूथ की योग्यता और उनकी रक्षा के सुभीते अनुसार होती है । बकरी भेड़ आदि की ऊन छः मास बाद उतार ली जावे । इसी तरह अश्व, खर, ऊंट और सूकरों के समूह की पालना का ढंग भी समझ लेना चाहिए ॥३९-४४॥

बलीवर्दानां नस्याश्वभद्रगतिवाहिनां यवसस्यार्धभारस्तृणस्य द्विगुणं तुला
ध्राणपिण्याकस्य दशाढकं कणकुण्डकस्य पञ्चपलिकं मखलवणं तैलकुडुवो नस्यं
प्रस्थः पानं मांसतुला दध्नश्चाढकं यवद्रोणं माषाणां वा पुलाकः क्षीरद्रोणमर्धाढकं
वा सुरायाः स्नेहप्रस्थः क्षारदशफलं शृङ्गिरेपलं च प्रतिपानम् ॥ ४५ ॥

पादोनमश्वतरगोखराणां द्विगुणं महिषोष्ट्राणां कर्मकरवलीवर्दानां पायनार्थानां च ॥ ४६ ॥ धेनूनां कर्मकालतः फलतश्च विधादानम् ॥ ४७ ॥ सर्वेषां तृणोदकप्रकाम्यमिति गोमण्डलं व्याख्यातम् ॥ ४८ ॥

पञ्चर्षभं खराश्वानामजावीनां दशर्षभम् ।

शतं गोमहिषोष्ट्राणां गृथं कुर्याच्चतुर्वृषम् ॥ ४९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे गौध्यक्ष एकोनविंशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

आदितः पञ्चाशः ॥ ५० ॥

जो बैल नथ चुके और अश्वों की तरह अच्छी तरह रख आदि को ले चलने में समर्थ हैं, उन्हें आधा भार (दस तुला) हरी घास मिलनी चाहिए और साधारण सूखी घास दुगुनी होनी चाहिए। खल की एक तुला, दाना कुट्टी दश आड़क, पांच पल नमक एक कुडुव तेल नाक में डालने, एक प्रस्थ (सेर) पीने के लिए देना चाहिए। मांस एक तुला (१०० पल) एक आड़क दही, एक द्रोण जौ, या उड़द का आधा पका हुआ अन्न दिया जावे। दूध एक द्रोण, आधा आड़क सुरा, घृत एक प्रस्थ, गुड़ दश पल, और सौंठ एक पल ये सब भी उनके भोजन में देना चाहिए, अश्वतर (खजर) और गोखरों को एक हिल्ला (चौथाई) कम करके देना चाहिए। इससे दुगुना भोजन, भैंसे और ऊंटों को देना चाहिए। खेतों में काम करने वाले बैल तथा दूध देने वाली गायों को भी दुगुनी भोजन सामग्री देना चाहिए। दूध देने वाली गाय और काम करने वाले बैलों की समयानुसार खाद्य सामग्री का निश्चय करे, परन्तु सबको घास तो यथेष्ट मिलनी चाहिए-इस प्रकार इस गोमंडल के भोजन की व्यवस्था की गई है। खर और अश्वों के भुण्ड में प्रतिशत पांच सांड छोड़ने चाहिए। भेड़ और बकरियों में प्रतिशत दश, गर्भ स्थापन करने वाले भैंसे और बकरे होने उचित हैं। तथा गाएं, भैंसे और ऊंटों के प्रतिशत भुण्ड में चार सांड (गर्भ धारक) होने चाहिए ॥ ४५-४९ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थ शास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में गौध्यक्ष के कर्तव्यों का पच्चीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।



तीसवां अध्याय

४८वां प्रकरण

अश्वाध्यक्ष

राजकीय अश्वोंके अध्यक्ष को अश्वाध्यक्ष कहते हैं, अब उसके कर्मों का वर्णन किया जाता है ।

अश्वाध्यक्षः परयागारिकं क्रयोपागतमाहवलब्धमाजातं साहय्यकागतकं पणस्थितं यावत्कालिकं वाश्वपर्यग्रं कुलवयोवर्णचिन्हवर्गमैलैखयेत् ॥ १ ॥ अप्रशस्तन्यङ्गव्याधितांश्वावेदयेत् ॥ २ ॥ कोशकोष्ठागाराभ्यां च गृहीत्वा मास-
लाभमश्ववाहश्चिन्तयेत् ॥ ३ ॥

अश्वाध्यक्ष, चिकने को आए हुए, मोल खरीदे हुए, युद्ध में छीने हुए, अपने घर में उत्पन्न हुए, सहायता के बदले में प्राप्त हुए, आधि (गिरवी) में रखे हुए, कुछ समय को धरोहर के ढंग पर आये हुए, अश्व समूह के कुल [अरब फारस आदि] वय, वर्ण, चिन्ह वर्ग [किस्म] तथा उनके आने के स्थान का नाम [अपने रजिस्टर में] लिख लेवे । वेढंगे अङ्ग भङ्ग और बीमार अश्वों को उनकी चिकित्सा आदि के लिए अश्वाध्यक्ष भेजता रहे । कोष [खज़ाना] और कोष्ठागार [भण्डार] से महीने भर का व्यय लेकर अश्ववाह उन अश्वों के सुधार की व्यवस्था का चिन्तन करे ॥ १-३ ॥

अश्वविभवेनायतामश्वायामद्विगुणविस्तारां चतुर्द्वारोपावर्तनमध्यां सप्रग्रीवां प्रद्वारासनफलकयुक्तां वानरमयूरपृषतनकुलचकोरशुकशारिकाभिराकीर्णां शालां निवेशयेत् ॥ ४ ॥ अश्वायामचतुरश्रश्चक्षुणफलकास्तारं सखादनकोष्ठकं समू-
त्रपुरीपोत्सर्गमेकैकशः प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा स्थानं निवेशयेत् ॥ ५ ॥ शालाव-
शेन वा दिग्भिभागं कल्पयेत् ॥ ६ ॥ बडवावृषकिशोराणामेकान्तेषु ॥ ७ ॥

अश्वों की गणना के अनुसार लम्बी चौड़ी प्रत्येक अश्वके लिए उसकी लम्बाई चौड़ाई से दुगुनी विस्तार वाली, चारद्वारों से युक्त, अश्वों के घूमने के योग्य, बरामदे से सुशोभित प्रधान द्वार में सुन्दर २ बैठने के स्थान से सुसम्पन्न, चान्तर, मयूर, हिरन, नेवला चकोर, तोता, और मैना आदि सुन्दर जन्तुओं से भरी हुई घुड़साल बनवानी चाहिए । अश्व की लम्बाई के अनुकूल चकोर, सुधरी, चिकने फलक [फर्श] से संयुक्त, खादन कोष्ठ (ठाण) के सहित पुरीप और मूत्रोत्सर्ग के योग्य प्रत्येक अश्व को प्रथक् २ पूर्व या उत्तर मुख वाली शाला बनानी उचित है । जिस ढङ्ग की घुड़साल हो उसी तरह का अश्वों के बंधने

का विभाग करना उचित है। घोड़ों, गर्भधारण करने वाले अश्व और नव युवक अश्वों को पृथक् २ बाँधा जावे ॥ ४-७ ॥

बडवायाः प्रजातायास्त्रिरात्रं घृतप्रस्थः पानम् ॥ ८ ॥ अत ऊर्ध्वं सक्त-
प्रस्थः स्नेहभैषज्यप्रतिपानं दशरात्रम् ॥ ९ ॥ ततः पुलाको यवसमार्तवश्चाहारः
॥ १० ॥ दशरात्रादूर्ध्वं किशोरस्य घृतचतुर्भागः सक्तकुडुवः ॥ ११ ॥ क्षीरप्रस्थ-
श्चाहार आपणमासादिति ॥ १२ ॥ ततः परं मासोत्तरमर्धवृद्धिर्यवप्रस्थ आत्रिव-
र्षात् ॥ १३ ॥ द्रोण आचतुर्वर्षादिति ॥ १४ ॥ अत ऊर्ध्वं चतुर्वर्षः पञ्चवर्षो वा
कर्मण्यः पूर्णप्रमाणः ॥ १५ ॥

जब घोड़ी बच्चा उत्पन्न करे, उस समय तीन दिन तक उसे सेर सेर भर घी पिलाया जावे। इसके अनन्तर एक सेर घृत और औषधियों के साथ दस रात तक खाने को दिया जावे। फिर आधा पका हुआ जौ आदि का दलिया, और ऋतु के अनुसार घास खाने को देना चाहिए। दस दिन के अनन्तर उस बच्चे को भी एक कुडुव सक्तु (कलिया) घी मिलाकर खिलाया जावे और छः महीने तक एक एक सेर दूध उसके भोजन को नियत हो। इस के अनन्तर प्रत्येक मास में आधा २ सेर बढ़ाकर एक सेर जौ के सक्तू से आरम्भ करके तीन वर्ष तक खिलाना चाहिए। तीन वर्ष से चार वर्ष की आयु तक उस बच्चे को एक द्रोण भोजन मिलना चाहिए। चार वर्ष या पांच वर्ष का अश्व, सब कुछ कार्य में समर्थ हो जाता है-इससे उसके भोजन का प्रमाण भी बड़े अश्व के समान ही मानना उचित है ॥ ८-१५ ॥

द्वात्रिंशदङ्गुलं मुखमुत्तमाश्वस्य पञ्चमुखान्यायामो विंशत्यङ्गुला जङ्घा चतु-
र्जङ्घ उत्सेधः ॥ १६ ॥ त्र्यङ्गुलावरं मध्यमावरयोः ॥ १७ ॥ शताङ्गुलः परिणाहः
॥ १८ ॥ पञ्चभागावरं मध्यमावरयोः ॥ १९ ॥ उत्तमाश्वस्य द्विद्रोणं शालित्री-
हियवप्रियङ्गूणामर्धं शुष्कमर्धसिद्धं वा मुद्गमाषाणां वा पुलाकः ॥ २० ॥ स्नेहप्रस्थश्च,
पञ्चपलं लवणस्य, मांसं पञ्चाशत्पलिकं, रसस्याढकं द्विगुणं वा दध्नः पिएडक्केद-
नार्थः, क्षारपञ्चपलिकः सुरायाः प्रस्थः पयसो वा द्विगुणः प्रतिपानम् ॥ २१ ॥

उत्तम अश्व का मुख बत्तीस अंगुल का होता है। पांच मुख अर्थात् एक सौ साठ अंगुल तक उसकी लम्बाई, बीस अंगुल की जंघा, और अस्सी अंगुल की ऊंचाई मानी गई है। इससे प्रत्येक स्थान में तीन अंगुल न्यूनता वाला, मध्यम और मध्यम से भी तीन २ अंगुल न्यूनताधारी कनिष्ठ अश्व होता है। उत्तम अश्व की मुटई सौ अंगुल होती

है। अस्सी अंगुल मोटाई मध्यम और चौसठ अंगुल मोटाई कनिष्ठ अश्व की मानी जाती है। उत्तम अश्व को शाली, व्रीहि, जौ, कांगनी, आदि अन्न, आधे सूखे या आधे पकाये हुए तथा मूंग-या उड़द का पुलाक [सांदा] बनाकर दो द्रोण परिमाण में खाने को देना चाहिए। घृत तेल, एक प्रस्थ [सेर] लवण पांच पल, मांस पचास पल, दूध आदि का रस, एक आढ़क, दही दो आढ़क उस अन्न के गीला करने को होना चाहिए। गुड़ पांच पल, सुरा एक सेर, और दूध दो सेर मध्यान्होत्तर में प्रत्येक उत्तम अश्व को पीने को मिलना चाहिए ॥१६-२१॥

दीर्घपथभारक्लान्तनां च खादनार्थं स्नेहप्रस्थोऽनुवासनं कुडुबोनस्यकर्मणः
यवसस्यार्धभारस्तृणस्य द्विगुणः पडरत्निः परिक्षेपः पुञ्जीलग्राहो वा ॥ २२ ॥
पादावरमेतन्मध्यमावरयोः ॥ २३ ॥ उत्तमसमो रथ्यो वृषश्च मध्यमः ॥ २४ ॥
मध्यमसमश्चावरः ॥ २५ ॥ पादहीनं वडवानां पारशमानां च ॥ २६ ॥ अतो
ऽर्धं किशोराणां च ॥ २७ ॥ इति विधायोगः ॥ २८ ॥

लम्बे मार्ग [सफर] के भार से थके हुए अश्व के खाने के लिए एक प्रस्थ घृत तथा अनुवासन (थकान उतारने को चिकनाई के साथ औषधियों का रस) और नस्य कर्म (नाक में डालने को एक कुडुब घृत पृथक् लेवे। घास आधा भार दस तुला) तृण घास (सूखा) एक भार (बीस तुला) तथा छः हाथ या कोली भरके सूखा घास डाला जा सकता है। मध्यम अश्व को इससे पौना और साधारण अश्व को इससे आधा भोजन माना गया है। रथ में जोड़ा हुआ या घोड़ियां गर्भ धारण में नियुक्त किया हुआ मध्यम अश्व भी होवे-तो भी उसको उत्तम के समान ही भोजन मिलना चाहिए। इसी तरह अवर (साधारण) अश्व की परिपाटी है अर्थात् रथ में जुड़े हुए या गर्भ धारण करने में लगे हुए उत्तम मध्यम और साधारण तीनों प्रकार के अश्वों को एकसा भोजन मिलना चाहिए, घोड़ी या खच्चरियों को उत्तम अश्व से पौना भोजन मिलना ठीक है। बच्चों को इससे आधा ही पर्याप्त है। यहां तक अश्वों के भोजन विधि का वर्णन हुआ ॥ २२-२८ ॥

विधापाचकमूत्रग्राहकचिकित्सकाः प्रतिस्वादभाजः ॥ २९ ॥ युद्धव्याधि-
जराकर्मक्षीणाः पिण्डगोचरिकाः स्युः ॥ ३० ॥ असमरप्रयोग्याः पौरजानपदाना-
मर्थेन वृषा वडवास्त्रायोज्याः ॥ ३१ ॥ प्रयोग्यानामुत्तमाः काम्बोजकसैन्धवार-
द्वजवनायुजाः ॥ ३२ ॥ मध्यमा बाह्वीकपापेयकसौवीरकतैतलाः ॥ ३३ ॥ शेषाः
प्रत्यवराः ॥ ३४ ॥

अश्वों के भोजन पकाने वाले, रस्सी पकड़ने वाले, (सईस) और चिकित्सकों को भी इन अश्वों के व्यय के भाग में ही सम्मिलित रखना चाहिए। युद्ध, व्याधि बुढ़ापा आदि के कारण काम करने में असमर्थ अश्वों को उद्गृहीत मात्र भोजन मिलना चाहिए जो शक्तिशाली अश्व युद्ध में किसी कारण से काम में न आ सके-वे परदेश के स्वार्थ के लिए कृप रूपसे छोड़ दिए जावे-जो प्रजाकी घोड़ियों में गर्भ धारण करने के काम में आते रहें। युद्ध के उपयोगी अश्वों में कम्बोज (काबुल) सैधव (सिंध) आरट्ट (पञ्जाब का प्रदेश) वनायुज (अरब) देशोत्पन्न अश्व सर्व श्रेष्ठ माने गए हैं। बालहीक (बलख) या पञ्जाब पापेयक (सीमा प्रान्त) सौवीरक (राजपूताना) और तितल देशोत्पन्न अश्व मध्यम माने गए हैं। इन के अतिरिक्त देशों में उत्पन्न अश्व साधारण होते हैं ॥ २६-३४ ॥

तेषां तीक्ष्णभद्रमन्दवशेन सांनायमौपवाहकं वा कर्म प्रयोज-
येत् ॥ ३५ ॥ चतुरश्रं कर्माश्वस्य सांनायम् ॥ ३६ ॥ वल्गनो नीचैर्गतो लङ्घनो
घोरणो नारोष्ट्रौपवाहाः ॥ ३७ ॥ तत्रोपवेणुको वर्धमानको यमक आलीढप्लुतः
(वृथाट्ट ? पृथ ? पूर्व) गच्छिकचाली च वल्गनः ॥ ३८ ॥ स एव शिरःकर्ण-
विशुद्धो नीचैर्गतः षोडशमार्गो वा ॥ ३९ ॥ प्रकीर्णकः प्रकीर्णोत्तरा निपण्णः
पार्श्वानुवृत्त ऊर्मिमार्गः शरभक्रीडितः शरभप्लुतः त्रितालो बाह्यानुवृत्तः पञ्चपाणिः
सिंहायतः स्वाधूतः क्लिष्टः श्लिगितो वृंहितः पुष्पाभिकीर्णश्चेति नीचैर्गत-
मार्गाः ॥ ४० ॥

इन अश्वों को तीक्ष्ण (तीव्र) भद्र (मध्य) और मन्द गति के अनुसार युद्ध सवारी और खेल कूद के कार्य में लगाना चाहिए। युद्ध सम्बन्धी प्रत्येक कार्य के करने में समर्थ अश्व के काम को सांनाय माना जाता है। वल्गन, नीचैर्गत, लङ्घन घोरण और नारोष्ट्र ये अश्वोंकी गति औपवाह्य कइती है। गोलमण्डलाकार घूमने को वल्गन कहते हैं। औप-वेणुक (एक हाथ के घेर में घूमना) वर्धमानक (उतने ही घेरे में कई बार घूमना) यमक (दो पैरों में एक साथ घूम जाना) आलीढप्लुत [छलांग मारना] पूर्वग [शरीर के पूर्व भाग को घूमते हुए अधिक मोड़ना] त्रिचाली [पृष्ठ वंश और पिछली टांगों के आधार पर घूमना] इस प्रकार वल्गन छः प्रकार का होता है। जब शिर और कान में कोई विकार न आवे-तो उस वल्गन गति को ही नीचैर्गत कहते हैं। इसके सोलह भेद हैं। प्रकीर्णक [सारी चालें मिली होना] प्रकीर्णोत्तर (एक चाल का मुख्य होना) निपण्ण (पृष्ठ का न कंपाना) पार्श्वानुवृत्त [एक और तिरछी चाल करना] उर्मिमार्ग [लहरों की तरह उछलना] शरभक्रीडित (शरभ पक्षी की तरह उछलना) शरभप्लुत [शरभ की तरह कूदना] त्रिताल

तीन पैरों से चलना] बाह्यानुवृत्त [मण्डलाकार चलना] पञ्चपाणि (एक पैर को दो बार उठाना) सिंहायत [सिंह की तरह डग भरना] स्वाधूत (लम्बे कूद कर चलना) क्लिष्ट (बिना सवार भी ठीक २ चलना) श्लिङ्गित (अगले भाग को झुकाकर चलना) वृंहित [अगले भाग को ऊंचा करके चलना] पुष्पाभिकीर्ण [इधर उधर झपटकर चलना] ये सोलह प्रकार नीचैर्गत गति के हैं ॥ ३५-४० ॥

कपिप्लुतो भेकप्लुत एकप्लुत एकपादप्लुतः कोकिलसंचार्युरस्यो वकचारी च लङ्घनः ॥ ४१ ॥ काङ्को वारिकाङ्को मायूरोऽर्धमायूरो नाकुलोऽर्धनाकुलो वाराहोऽर्धवाराहश्चेति धोरणः ॥ ४२ ॥ संज्ञाप्रतिकारो नारोष्ट्र इति ॥ ४३ ॥

कूदने को लङ्घन कहते हैं । कपिप्लुत [बन्दर की तरह कूदना] एकप्लुत [हरिण की तरह कूदना] एकपादप्लुत [एक पैर से कूदना] कोकिल संचारी 'कोयल की तरह कूद कर चलना' उरस्य 'छाती ऊंची करके कूदना' वकचारी 'बगुले की तरह उछलकर चलना' ये सात लङ्घन के प्रकार हैं । धीरे २ चली जाने वाली चाल को धोरण कहते हैं । काङ्क [बगुले की तरह धीरे २ चलना] वारिकाङ्क (बतख की तरह चलना) मायूर 'मोर की तरह चलना' अर्ध मायूर 'मोर के बच्चे की तरह चलना' नाकुल 'नोले की तरह चलना' अर्धनाकुल 'कुछ २ नकुल की तरह चलना' वाराह 'सूकर की तरह चलना' अर्धवाराह 'कुछ २ सूकर की तरह चलना' इस प्रकार धोरण गति के सात भेद हैं । संकेत के अनुसार अश्वका चलना नारोष्ट्र कहाता है-यहां तक औपवाह्य गतियों का वर्णन हुआ ॥ ४१-४३ ॥

षण्णव द्वादशेति योजनान्यध्वा रथ्यानां, पञ्चयोजनान्यर्धाष्टमानि दशेति पृष्ठवाह्यानामध्वानामध्वा ॥ ४४ ॥ विक्रमो भद्राश्वासो भारवाह्य इति मार्गाः ॥ ४५ ॥ विक्रमो वल्गितमुपकण्ठमुपजवो जवश्च धाराः ॥ ४६ ॥ तेषां बन्धनोपकरणं योग्याचार्याः प्रतिदिशेयुः ॥ ४७ ॥ सांग्रामिकं रथाश्वालंकारं च सूताः ॥ ४८ ॥ अश्वानां चिकित्सकाः शरीरहासवृद्धिप्रतीकारमृतुविभक्तं चाहारम् ॥ ४९ ॥ सूत्र-ग्राहकाश्चबन्धकयावसिकविधापाचकस्थानपालकेशकारजाङ्गलीविदश्च स्वकर्मभिरश्वानाराधयेयुः ॥ ५० ॥

रथ में जोते जाने वाले अश्वों को छः नौ और बारह योजन तक लेजाया सकता है अर्थात् छः साधारण नौ मध्यम और उत्तम अश्व बारह योजन तक ले जाया जा सकता है । पीठ पर बोझा ढोहने वाले अश्वों का मार्ग पांच, साढ़े सात और दश योजन तक का माना गया है । इन तीनों अश्वों की विक्रम 'मन्द' भद्रा श्वास 'मध्यम' और भार वाह्य 'तीव्र'

तीन गति होती हैं। कोई अश्व धीरे २ चलता है, कोई चौकन्ना होकर चलता है। कोई कूद कर और कोई पहिले तेज और पीछे धीरे चलने लगता है। इन सब चालों का नाम धारा है। इनके बन्धन और आभूषण का प्रकार योग्य आचार्य सिखावे। संग्राम के योग्य रथ अश्व और अलङ्कारों का दङ्ग सारथि बताते हैं। अश्वों के शरीर की हानि, वृद्ध उनके रोग का प्रतिकार और ऋतु के अनुरूप भोजन व्यवस्था उनके चिकित्सक करें। सूत्र ग्राहक 'सईस' अश्व बन्धक 'अश्वों के बाँधने वाले' यावसिक 'घास लाने वाला' विद्यापाचक 'उनका अन्नपाचक' स्थानपाल 'घुड़साल को साफ करने वाला' केशकार 'बालों को साफ करने वाला' तथा जङ्गलीविद 'जंगली जड़ी वृष्टियोंको पहचानने वाले' अपने २ कामों से अश्वों की सेवा करें ॥ ४४-५० ॥

कर्मातिक्रमे चैषां दिवसवेतनच्छेदनं कुर्यात् ॥ ५१ ॥ नीराजनोपरुद्धं वाहयतश्चिकित्सकोपरुद्धं वा द्वादशपणो दण्डः ॥ ५२ ॥ क्रियामैपज्यसङ्गेन व्याधिवृद्धौ प्रतीकारद्विगुणो दण्डः ॥ ५३ ॥ तदपराधेन वैलोम्ये पत्रमूल्यं दण्डः ॥ ५४ ॥ तेन गोमण्डलं खरोष्ट्रमहिषमजाविकं च व्याख्यातम् ॥ ५५ ॥

इन कर्मचारियों में जो जिस दिन अपना काम न करे-उस दिन का उसका वेतन काट लिया जावे। नीराजना 'अन्वोत्सव' और चिकित्सा के लिए रोके हुए अश्वों को जो जोत देता है, उसपर चारह पण दण्ड होना उचित है। अश्व की चिकित्सा क्रम के विरुद्ध होने या व्याधि के बढ़जाने पर चिकित्सा करने पर इस प्रमाद का अश्वाध्यक्ष को चिकित्सा में हुए व्यय से दुगुना दण्ड होना चाहिए। प्रमाद से रोग बढ़ने पर चिकित्सा ठीक हुई-तो भी अश्व के मूल्य का अश्वाध्यक्ष पर दण्ड होना चाहिए। इसी तरह गो मण्डल, खर, ऊंट भैंसे, बकरी और भेड़ की व्यवस्था है। समझ लेनी चाहिए ॥ ५१-५५ ॥

द्विरह्नः स्नानमश्वानां गन्धमाल्यं च दापयेत् ।

कृष्णसंधिषु भूतेज्याः शुक्लेषु स्वस्तिवाचनम् ॥ ५६ ॥

शरद और ग्रीष्म ऋतु में अश्वों को दो बार स्नान कराया जावे। उसके अनन्तर उसे गन्ध और माला भी पहनानी चाहिए। कृष्ण पक्ष में अश्वों के निमित्त भूतबलि और शुक्ल पक्ष में उनके निमित्त स्वस्तिवाचन होना चाहिए ॥ ५६ ॥

नीराजनामाश्वयुजे कारयेन्नवमे ऽहनि ।

यात्रादाववसाने वा व्याधौ वा शान्तिके रतः ॥ ५७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे अश्वाध्यक्षः त्रिंशो ऽध्यायः ॥ ३० ॥

आदित एकपञ्चाशः ॥ ५१ ॥

आश्विन शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को अश्वों का निरोजनोत्सव करना चाहिए। इसी प्रकार यात्रा के आरम्भ, समाप्ति व्याधि और शान्ति पाठ के समय में भी अश्ववाध्यक्ष निरोजना करवावे ॥ ५७ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में अश्ववाध्यक्ष के कर्तव्यों के निर्णय का तीसरा अध्याय पूरा हुआ।



इत्तीसवां अध्याय

४६वां प्रकरण

हस्त्यध्यक्ष

राजकीय हाथियों के अफसर को हस्त्यध्यक्ष कहते हैं। अब इस प्रकरण में उसके कर्मों का निरूपण किया जाता है।

हस्त्यध्यक्षो हस्तिवनरक्षां दम्यकर्मक्षान्तानां हस्तिहस्तिनीकलभानां शाला-
स्थानशय्याकर्मविधायवसप्रमाणं कर्मस्वायोगं बन्धनोपकरणं सांग्रामिकमलंकारं
चिकित्सकानीकस्थोपस्थयुक्वर्गं चानुतिष्ठेत् ॥ १ ॥

हस्त्यध्यक्ष, [हाथियों का अफसर] हाथियों के वन की रक्षा, शिक्षा के ग्रहण करने में समर्थ, हाथी, हाथिनी और उनके युवा बच्चों को शाला, स्थान [खुली जगह] शयन स्थान, कर्म (शिक्षा के स्थान) विद्या भक्ष्य बनाने के स्थान, ईख आदि हरे भोजन के प्रमाण का अनुभव प्राप्त करे और इन हाथियों को अनेक युद्धोपयोगी कर्मों को सिखलाने का प्रबन्ध भी करता रहे। इन गजों के बांधने की रस्सी, सांकल आदि तथा संग्राम के उपयोगी अलङ्कार, गज चिकित्सक, सेना या स्थान पर सेवा करने वाले सेवक वर्ग का ज्ञान भी हस्त्यध्यक्ष को आवश्यक है ॥१॥

हस्त्यायामद्विगुणोत्सेधविष्कम्भायामां हस्तिनीस्थानाधिकां सप्रग्रीवां कुमा-
रीसंग्रहां प्राङ्मुखीमुदङ्मुखीं वा शालां निवेशयेत् ॥ २ ॥ हस्त्यायामचतुरश्र-
श्लक्ष्णालानस्तम्भफलकान्तरकं मूत्रपुरीषोत्सर्गस्थानं निवेशयेत् ॥ ३ ॥ स्थानस-
मशय्यामर्धापाश्रयां दुर्गे सांनाह्योपवाह्यानां ग्रहिर्दम्यव्यालानाम् ॥ ४ ॥

हाथी की लम्बाई चौड़ाई दुगुनीसे लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई, गजशाला के स्थान की होनी चाहिए। हाथिनी के बांधने के स्थान को और भी अधिक रखा जावे। इस गजशाला में वरामदा सुन्दर बनना चाहिए। हाथियों के खूँटे के ऊपर की लकड़ी

कुमारी कहाती है, इस गजशाला में वे कुमारी बड़े सुचारु ढंग से बनी होनी चाहिए। इस शाला का प्रधान द्वार पूर्व या उत्तर को होवे हाथी की लम्बाई चौड़ाई के अनुसार चौकोर, चिकना एक गज बन्धन का स्थान हो, इसी स्थान के सामाने तरुते सेढ़का हुआ मूत्र और पुरीष [लीद] का स्थान बनवाया जावे। इसी स्थान के सहस्र सुन्दर शयन स्थान हो, जिसकी चौड़ाई साढ़े चार हाथ हो। युद्ध के उपयोगी या रथ में जोड़े जाने वाले हाथियों की शाला दुर्ग के भीतर हो और युवक हाथी तथा उन्मत्त हाथियों के रहने का स्थान दुर्ग से बाहर होवे ॥२४॥

प्रथमसप्तमावष्टमभागावहनः स्नानकालौ तदनन्तरं विधायाः पूर्वाहणे व्यायामकालः पश्चाहनः प्रतिपानकालः ॥५॥ रात्रिभागौ द्वौ स्वप्नकालौ त्रिभागः सवेशनौत्थानकः ॥ ६ ॥ ग्रीष्मे ग्रहणकालः, विंशतिवर्षो ग्राह्यः ॥ ७ ॥ त्रिको मूढो मत्कुणो व्याधितो गर्भिणी धेनुका हस्तिनी चाग्राह्याः ॥८॥ सप्तरत्निरुत्सेधो नवायामो दश परिणाहः प्रमाणतश्चत्वारिंशद्वर्षो भवत्युत्तमः ॥ ९ ॥ त्रिंशद्वर्षो मध्यमः ॥ १० ॥ पञ्चविंशतिवर्षो ऽवरः ॥ ११ ॥ तयो पादावरो विधाविधिः ॥ १२ ॥

दिन के आठ भागों में प्रथम और सातवां भाग हाथी के दो बार स्नान करने का होना चाहिए इसके अनन्तर हाथी को पका हुआ भोजन खाने को दिया जावे। दो पहर से पूर्व ही हाथी को व्यायाम (गज शिक्षा) करानी उचित है और दोपहर के बाद उसे कुछ पीने को देना है। रात के तीन भागों में दो भाग हाथी के सोने के हैं और एक भाग लेटने उठने में व्यतीत होना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में हाथी पकड़े जा सकते हैं बीस वर्ष तक की आयु के हाथी पकड़ने योग्य हैं। त्रिक (दूध पीने वाला) मूढ (हाथिनी के से दांत वाला) मत्कुण [दांतों से रहित] व्याधित [रोगी] गर्भिणी और दूध पिलाने वाली हाथिनी नहीं पकड़नी चाहिए। सात हाथ ऊंचा, नौ हाथ लम्बा, दश हाथ मोटा और चालीस वर्ष की अवस्था वाला हाथी सर्व श्रेष्ठ होता है। तीस वर्ष का मध्यम और पच्चीस का कनिष्ठ होता है। मध्यम और कनिष्ठ को पौना और आधा क्रम से पका भोजन देना चाहिए ॥५-१२॥

अरत्नौ तण्डुलद्रोणोऽर्धाढकं तैलस्य सर्पिषस्त्रयः प्रस्थाः दशपलं लवणस्य मांसं पञ्चाशत्पलिकं रसस्याढकं द्विगुणं वा दध्नः पिण्डकं दनार्थं चारं दशपलिकं मद्यस्य आढकं द्विगुणं वा पयसः प्रतिपानं गात्रावसेकस्तैलप्रस्थः शिरसो ऽष्टभागः प्रादीपिकश्च यवसस्य द्वौ भारौ सपादौ शण्यस्य शुष्कस्यार्धतृतीयो भारः कडङ्कर-

स्यानियमः ॥ १३ ॥ सप्तारत्निना तुल्यभोजनो ऽष्टारत्नित्यरालः ॥ १४ ॥
यथाहस्तमवशेषः पडरत्निः पञ्चारत्निश्च ॥ १५ ॥ क्षीरयावसिको विक्रः क्रीडार्थं
ग्राह्यः ॥ १६ ॥ संजातलोहिता प्रतिच्छन्ना संलिप्तपक्षा समकक्ष्याप्यतिकीर्णमांसा
समतल्पतला जातद्रोणिकेति शोभाः ॥ १७ ॥

पूरे सात हाथ के ऊंचे हाथी को एक द्रोण चांवल, आधा आढ़क तेल, तीन प्रस्थ घी, दस पल नमक, पचास पल मांस, सूखे दाने भिगोने को एक आढ़क मांस आदि का रस, इससे दुगुना दो आढ़क दही, दश पल गुड़, एक आढ़क मद्य, दो आढ़क दूध, शरीर में लगाने को एक सेर तेल, शिर में लगाने और रात में दीपक जलाने को आधा २ कुडव पृथक् तेल होना चाहिए। गन्ने आदि हरित भोजन के सवा दो भार [पचास तुला] सूखे घास के साढ़े तीन भार (सत्तर तुला) तथा पत्ते आदि का कुछ नियम नहीं, ये जितने आवश्यक हों, दिए जावें। आठ हाथ ऊंचा हाथी अत्यराल कहाता है। इसका भी सात हाथ ऊंचे हाथी के बराबर ही भोजन आदि की व्यवस्था है। छः हाथ और पांच हाथ के हाथी को एक चौथाई कम करके भोजन देना उचित है। विक्र (दूध पीने वाला) हाथी का बच्चा, क्रीड़ा के निमित्त पकड़ा जा सकता है, उसको दूध और हरी घास (हरा गन्ना आदि) भोजन को देना उचित है। हाथियों की सात अवस्था है। लोहित से उत्पन्न होने वाली हाथी की शोभा को सञ्जात लोहिता, कुछ २ मांस की शोभा को प्रतिच्छन्ना, अधिक मांस की वृद्धि को संलिप्तपक्षा, सब अवयव मांस से भर जाने-पर होने वाली शोभा को समकक्ष्या, ऊंचे नीचे मांस से संयुक्त शोभा को प्यतिकीर्ण मांसा, पीठ की हड्डी पर मांस चढ़ा आने पर उत्पन्न शोभा को समतल्पतला और रीढ़ की हड्डी के इधर उधर भी मांस छा जाने से होने वाली शोभा को जातिद्रोणिका कहा जाता है ॥१३-१७॥

शोभावशेन व्यायामं भद्रं मन्दं च कारयेत् ।

मृगसंकीर्णलिङ्गं च कर्मस्वतुवशेन वा ॥ १८ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे हस्तध्यक्ष एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

आदितो द्विपञ्चाशः ॥ ५२ ॥

इन अवस्थाओं के अनुसार ही तीव्र, मध्यम और मन्द हाथियों को व्यायाम 'क्रवायद्' कराना चाहिए। जिन हाथियों में मिलावटी लक्षण हो, उनको युद्ध आदि की शिक्षा में ऋतु के अनुसार व्यायाम कर्म में लगाना चाहिए ॥१८॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रन्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में हस्त्यध्यक्ष के कर्मों

के वर्णन का इकतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

वत्तीसवां अध्याय

५०वां प्रकरण

हस्तिप्रचार ।

यह अध्याय हस्त्यध्यक्ष के अन्तर्गत है । इसमें हाथियों की गति और उनके भेद के विषय में वर्णन किया जाता है ।

कर्मस्कन्धाः चत्वारो दम्यः सांनाह्य औपवाह्यो व्यालश्च ॥ १ ॥
तत्र दम्यः पञ्चविधः ॥ २ ॥ स्कन्धगतः स्तम्भगतो वारिगतो अवपात-
गतो यूथगतश्चेति ॥ ३ ॥ तस्योपविचारो विक्रमः ॥ ४ ॥

दम्य, सांनाह्य, औपवाह्य और व्याल इस प्रकार कर्म भेद से हाथी, चार प्रकार के होते हैं । इनमें दम्य के पांच भेद हैं [१] स्कन्धगत [२] स्तम्भगत, [३] वारिगत, [४] अवपातगत और [५] यूथगत । जो हाथी अपने स्कन्ध पर सवारी देदे-वह स्कन्धगत है । जो स्तम्भ पर बांधने को सहन करले, वह स्तम्भगत कहाता है । हाथियों के पकड़ने के स्थानमें जो सरलता से पहुँच जाय-वह वारिगत कहाता है । हाथियों के पकड़ने के गड्ढों पर जो हाथी ले जाये-जा सके-वे अवपातगत हैं और जो हाथिनियों के यूथ में घूमते हैं, वे यूथगत कहाते हैं । ये युवक हाथी, कुछ सरल होते हैं, जो इस प्रकार वश में आ जाते हैं, इनको युद्ध विद्या सिखाई जा सकती है ॥१-४॥

सांनाह्यः सप्तक्रियापथः ॥ ५ ॥ उपस्थानं संवर्तनं संयामं वधावधो हस्ति-
युद्धं नागरायणं सांग्रामिकं च ॥ ६ ॥ तस्योपविचारः कक्ष्याकर्म ग्रैवेयकर्म यूथ-
कर्म च ॥ ७ ॥ औपवाह्यो ऽष्टविधः ॥ ८ ॥ आचरणः कुञ्जरौपवाह्यः धोरण
आधानगतिको यष्ट्युपवाह्यस्तोत्रोपवाह्यः शुद्धोपवाह्यो मार्गायुक्श्चेति ॥ ९ ॥
तस्योपविचारः शारदकर्म हीनकर्म नारोष्कर्म च ॥ १० ॥

सांनाह्य [युद्धोपयोगी] हाथी के उपस्थान (ध्वज रस्सी आदि कूदना) संवर्तन (संकेत के साथ सोना उठना) संयाम (सीधे टेढ़े चल देना) वधावध [सूँड दांत आदि से शत्रु का मारना] हस्ति युद्ध [हाथियों से युद्ध करना] नागरायण [दुर्ग के द्वार तोड़ना] और सांग्रामिक [युद्ध करना] ये सात युद्ध के मार्ग हैं । हाथी के रस्सी बांधना, गले आदि में आभूषण पहनाना और उसके यूथ के अनुसार उसे युद्ध शिवा देना-इसका प्रत्येक हस्त्यध्यक्ष या हस्तिवाहक को योग्यता के साथ विचार करना चाहिए । आचरण [अगला या पिछला अङ्ग उठा कर चलना] कुञ्जरौपवाह्य [दूसरे हाथी के साथ चलना] धोरण 'धीरे २ एक और

कार्य करने वाला' आधानगतिक 'कई चाल चलने वाला' यष्ट्युपावाह्य 'लकड़ी के संकेत पर चलना' तोत्रोपवाह्य 'काटेंदार लोहे के संकेत पर चलना' शुद्धोपवाह्य 'संकेत मात्र से चलदेना' और मार्गायुक्त 'शिकार के समय स्वयं काम कर दिखाना' यह आठ औपवाह्य हाथी के भेद हैं। मोटे हाथियों को कृश, अग्नि मन्द वालों की तीव्र अग्नि, और अस्वस्थों के स्वास्थ्य की रक्षा-करनी चाहिए। अपरिश्रमी हाथियों को व्यायाम द्वारा श्रम तथा संकेत के द्वारा चलना सिखाना भी अत्यन्त आवश्यक है ॥ ५-१० ॥

व्याल एकक्रियापथः ॥ ११ ॥ तस्योपविचार आयम्यैकरत्नः कर्मशङ्कितो ऽवरुद्धो विषमः प्रभिन्नः प्रभिन्नविनिश्चयो मदहेतुविनिश्चयश्च ॥ १२ ॥ क्रियाविपन्नो व्यालः ॥ १३ ॥ शुद्धः सुव्रतो विषमः सर्वदोषप्रदुष्टश्च ॥ १४ ॥ तेषां बन्धनोपकरणमनीकस्थप्रमाणम् ॥ १५ ॥ आलानग्रैवेयकच्यापारायणपरिक्षेपोत्तरादिकं बन्धनम् ॥ १६ ॥ अङ्कुशवेणुयन्त्रादिऽमुपकरणम् ॥ १७ ॥ वैजयन्तीक्षुरप्रमालास्तरणकुथादिकं भूषणम् ॥ १८ ॥ वर्मतोमरशरावापयन्त्रादिकः सांग्रामिकालंकारः ॥ १९ ॥

दुष्ट हाथी तो एक ही ढंग पर चलता है। उसको रोक कर रखना चाहिये। यह सिखाने पर बड़ा चौकता है। यह बड़े उद्धृत स्वभाव का अपनी इच्छानुसार काम करने वाला होता है। यह स्वल्प मदस्त्रावी, अधिक मदस्त्रावी तथा मदके विकारों से युक्त होने से इसका बश में करना कठिन है जो हाथी युद्ध आदि समय में काम भिगाड़ दे - वह व्यल कहाता है। केवल मार बैठने वाला, चलने में गड़बड़ उत्पन्न कर देने वाला, इन दोनों दोषों से युक्त तथा हाथी के सारे दोषों से युक्त इस प्रकार व्याल हाथी भी कई ढंग से चलता है। इनके बन्धन आदि का प्रमाण हाथियों के कुशल शिक्षकों पर निर्भर होना चाहिये। आलान 'गजबन्धन' ग्रैवेयक 'गले की जंजीर' पारायण (हाथी पर चढ़ते समय सहारा लेने की रस्सी) परिक्षेप (हाथी के पैर की रस्सी) उत्तर (गले की दूसरी रस्सी) - ये वस्तुएँ हाथियों के बाधने के काम में आती हैं। अंकुश, वेणु (बांस का दण्ड) यन्त्र 'अम्बारी' आदि भी हाथी के उपकरण 'सामिग्री' हैं। हाथों के ऊपर लगाने की ध्वजा वैजयन्ती क्षुर प्रमाला (आभूषण विशेष) आस्तरण लम्बदा-होदे के नीचे रहने वाला) कुथा (झूल) आदि हाथी के भूषण माने जाते हैं। वमं [कवच] तोमर [शस्त्र] शरावाप [बाणों का स्थान] यन्त्र (भिन्न २ प्रकार के अस्त्र यन्त्र) ये हाथी के युद्ध के अलङ्कार हैं ॥ ११-१९ ॥

चिकित्सकानीकस्थारोहकाधोरणहस्तिपक्रौपचारिकविधापाचकयावसिकपा-
दपाशिककुटीरक्षकौपशायिकादिरौपस्थायिकवर्गः ॥ २० ॥ चिकित्सककुटीरक्षवि-

घाषाचकाः प्रस्थौदनं स्नेहप्रसृतिं क्षारलवणयोश्च द्विपलिकं हरेयुः ॥ २१ ॥ दश-
पलं मांसस्यान्यत्र चिकित्सकेभ्यः ॥ २२ ॥ पथि व्याधिकर्ममदजराभितप्तानां चिकि-
त्सकाः प्रतिकुर्युः ॥ २३ ॥ स्थानस्याशुद्धिर्यस्य सस्याग्रहणं स्थले शायनमभागे
घातः परारोहणमकाले यानमभूमावतीर्थेऽवतारणं तरुपण्ड इत्यत्ययस्थानानि
॥ २४ ॥ तमेषां भक्तवेतनादाददीत ॥ २५ ॥ ॥

चिकित्सकः (गजवैद्य) अनीकस्थ (हाथियों का शिक्तक) आरोहक (गजासेही) आधोरण
(गज के कार्यो को जानने वाला) हस्तिपक (हथवान) औपचारिक (हाथी का सईस) विधा-
पाचक (हाथी का भोजन बनाने वाला) यावसिक (हरा घास गन्ने आदि लाने वाला) पाद-
पाशक (पैर में सांकल डालने वाला) कुटीरक्तक (गज शाला का रक्तक) औपशायिक
'शयन शाला का रक्तक' आदि हाथी की सेवा करने वाले कर्मचारियों की गणना है। चिकि-
त्सक, कुटी रक्तक, और अन्न पाचकों को एक २ सेर चावल तेल तथा घृत एक अञ्जली
गुड़ और लवण दो दो पल मिलने चाहिए। कुटी रक्तक और विधा 'अन्न' पाचक
को दश २ पल मांस दिया जावे। मार्गगमन, व्याधि, युद्ध कर्म मद और जरासे दुःखी
हाथियोंकी चिकित्सा करना गज वैद्य का कार्य है। हाथी के स्थान को शुद्धन करना, हरे गन्ने
आदि न लाना, जमीन पर सुलाना, मर्म स्थलों पर चोट मार देनी, अनधिकारी को हाथी
पर चढ़ा लेना, असमय सवारी लेना, कुस्थान और कुतीर्थ (जल प्रदेश) में उतार देना तथा
पेड़ों के भुन्डों में हाथियों को ले जाना ये सब कार्य उन कार्य कर्ताओं पर दण्ड के कराने के
कारण हैं। यह दण्ड उनके भत्ते और वेतन से काटा जा सकता है ॥ २०-२५ ॥

तिस्रो नीराजनाः कार्याश्चतुर्मास्यर्तुसंधिषु । १ ।

भूतानां कृष्णसंधीज्याः सेनात्यः शुक्लसंधिषु ॥ २६ ॥ १ ।

चार २ महीनों की ऋतु सन्धियों में हाथियों के तीन निराजनोत्सव कराने चाहिए।
कृष्ण पक्ष की सन्धि 'अमावस्या' में भूतों को बलि और शुक्ल पक्ष की सन्धि 'पूर्णिमा' में
स्कन्द की पूजा कराना उचित है इस से हाथियों का कल्याण रहता है ॥ २६ ॥

दन्तमूलपरीणाहद्विगुणं प्रोज्ज्मय कल्पयेत् । २ ।

अब्दे द्वयर्धे नदीजानां पञ्चाब्दे पर्वतौकसाम् ॥ २७ ॥ १ ।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे हस्तिप्रचारो द्वाविंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

आदितः त्रिपञ्चाशः ॥ ५३ ॥

हाथी के दाँत में जितनी मोटाई हो-उससे दुगुना हिस्सा छोड़ कर उसे काट लेना चाहिए । जो हाथी नदी-प्रांत के हों, उनके दाँई और जो पर्वत-प्रांत के हों-उनके पाँच साल में दाँत कटने चाहिए ॥ २७ ॥

इति श्री कौटिलीय-अर्थ शास्त्रान्तर्गत-अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में हाथियों की गति-के बांध कराने का वत्तीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

॥ २७ ॥

तेतीसवां अध्याय

५०-५१वाँ प्रकरण

रथाध्यक्ष पत्यध्यक्ष, तथा सेनापतिप्रचार

सेना-के-रथों के अध्यक्ष को रथाध्यक्ष पैदल सेना के अध्यक्ष को पत्यध्यक्ष, तथा सम्पूर्ण सेना के अधिपति को सेनापति कहते हैं । इस अध्याय में क्रम से इनके कार्यों का वर्णन किया जावेगा ।

अश्वाध्यक्षेण रथाध्यक्षो व्याख्यातः ॥ १ ॥ स रथकर्मन्तान्कारयेत् ॥ २ ॥ दशपुरुषो द्वादशान्तरो रथः ॥ ३ ॥ तस्मादेकान्तरावरा आपडन्तरादिति सप्त-रथाः ॥ ४ ॥ देवरथपुष्परथसांग्रामिकपारियाणकपरपुराभियानिकवैनयिकांश्च रथा-न्कारयेत् ॥ ५ ॥ इष्वस्त्रप्रहरणावरणोपकरणकल्पनाः सारथिरथिकरथ्यानां च कर्मस्वा-योगं विद्यात् ॥ ६ ॥ आकर्मभ्यश्च भक्तवेतनं भूतानामभूतानां च योग्यारक्षानुष्ठान-मर्थमानकर्म च ॥ ७ ॥

जो नियम अश्वाध्यक्ष के पूर्व में कहे गए-वे ही नियम रथाध्यक्ष के सम्भन्ध में चाहिये । अर्थात् उसी तरह रथशाला आदि की रचना करावे । वह जितने भी नये पुराने रथों के कार्य हैं-उन सबको करे, करवावे । दस पुरुषों के बैठने योग्य बारह हाथ लम्बा रथ होना चाहिए । इन में एक २ हाथ कम करते जाने से सात प्रकार के रथ बन जाते हैं । देवों के उत्सवों में काम आने वाला रथ देवरथ, विवाह आदि मङ्गल कार्यों में व्यवहार में आने वाला रथ पुष्परथ, संग्राम के योग्य रथ सांग्रामिक, साधारण यात्रा के उपयोगी परि-माणिक शत्रु पर चढ़ाई के उपयोगी रथ पर पुराभियानिक, और अश्व आदि की शिक्षा के उपयोगी रथ वैनयिक कहते हैं । रथाध्यक्ष इन सब तरह के रथों को तैयार करावे । बाण, धनुष आदि अस्त्र, रथ के ऊपर डालने के आवरण, रस्सी आदि उपकरण, तथा सारथि, रथिक 'योद्धा' और रथ के अश्वों की सारी विधियों का रथाध्यक्ष को अनुभव होना

चाहिए । कर्म की समाप्ति तक काम करने वाले शिल्पियों के भत्ते और वेतन तथा ठेकेपर काम करने वाले मजदूरों की रक्षा के योग्य धन के दान की विधि का जानने वाला रथाध्यक्ष होना योग्य है ॥ १-७ ॥

एतेन पत्यध्यक्षो व्याख्यातः ॥ ८ ॥ स मौलभृतश्रेणिमित्रामित्राटवीय-
लानां सारफल्गुतां विद्यात् ॥ ९ ॥ निम्नस्थलप्रकाशकूटखनकाकाशदिवारात्रि-
युद्धव्यायामं च विद्यात् ॥ १० ॥ आयोगमयोगं च कर्मसु ॥ ११ ॥

पत्यध्यक्ष का भी यही दृढ़ है । वह पत्यध्यक्ष मूल सेना भृत सेना 'वेतन भोगी सेना' श्रेणिवल, 'भिन्न स्थानों पर नियत सेना' मित्र सेना, शत्रु सेना और वनवासियों की सेना का सार और असारता का ज्ञान रखे । नीचे ऊंचे प्रदेश, समप्रदेश, और सन्मुख युद्ध तथा कूट, खनक 'खाई' आकाश, दिन और रात में होने वाले युद्धों का भी पत्यध्यक्ष को भली प्रकार अनुभव होना चाहिए । युद्ध कर्म में कैसे प्रवृत्त होना, और कैसे पीछे हट जाना-ये सब पत्यध्यक्ष के जानने की वस्तु हैं ॥ ८-११ ॥

तदेव सेनापतिः सर्वयुद्धप्रहरणविद्याविनीतो हस्त्यश्वरथचर्यासंपुष्टश्चतुरङ्गस्य
बलस्यानुष्ठानाधिष्ठानं विद्यात् ॥ १२ ॥ स्वभूमिं युद्धकालं प्रत्यनीकमभिन्नमे-
दनं भिन्नसंधानं संहतभेदनं भिन्नवधं दुर्गवधं यात्राकालं च पश्येत् ॥ १३ ॥

अश्वध्यक्ष से लेकर पत्यध्यक्ष तक जो युद्ध के कार्य बताए गए-उन सारे युद्ध और उन में काम में आने वाले सारे शस्त्रों के चलाने का सेनापति को ज्ञान होना अत्यावश्यक है । हाथी, अश्व, रथ आदि के चलाने में भी सेनापति को निपुण होना चाहिए । इस प्रकार अपनी चतुरङ्गिणी सेना के कर्तव्य अकर्तव्य का उसे पूरा ज्ञान होना आवश्यक है । अपनी भूमि, युद्ध का समय, शत्रु की सेना, शत्रु के व्यूह को तोड़ना, विखरी हुई सेना इकट्ठा करना, संगठित शत्रु बल का तोड़ देना, विखरी हुई शत्रु सेना का वध, दुर्ग का नाश और चढ़ाई के समय का ज्ञान भी सेनापति को करना होता है ॥ १२-१३ ॥

तूर्यध्वजपताकाभिर्व्यूहसंज्ञाः प्रकल्पयेत् ।

स्थाने याने प्रहरणे सैन्यानां विनये रतः ।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे रथाध्यक्षः पत्यध्यक्षः सेनापतिप्रचारश्च

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ आदितः चतुष्पञ्चाशः ॥ ५४ ॥

सेना की शिक्षा में तत्पर सेनापति बाजे ध्वज और पताकाओं से अपनी सेना के संकेते नियत करे और इनही संकेतों के द्वारा वह युद्ध में ठहरने, चढ़ाई करने या शस्त्र चलाने के कार्य का सम्पादन करता रहे ॥ १४ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में रथाध्यक्ष
प्रत्यक्ष और सेनापति के कर्मों के वर्णन का तेतीसवां अध्याय पूरा हुआ ।



चौतीसवां अध्याय

५२-५३वां प्रकरण

मुद्राध्यक्ष और विवीताध्यक्ष

राजकीय मुहर लगाकर पत्र 'परवाना' देने वाला मुद्राध्यक्ष और पशुओं के चरने के जंगल के अध्यक्ष को विवीताध्यक्ष कहते हैं । अब उनके कर्मों का विवेचन किया जाता है ।

मुद्राध्यक्षो मुद्रां मापकेण दद्यात् ॥ १ ॥ समुद्रो जनपदं प्रवेष्टुं निष्क्रमितुं
वा लभेत ॥ २ ॥ द्वादशपणममुद्रो जानपदो दद्यात् ॥ ३ ॥ कूटमुद्रायां पूर्वः
साहसदण्डः ॥ ४ ॥ तिरोजनपदस्योत्तमः ॥ ५ ॥ विवीताध्यक्षो मुद्रां पश्येत्
॥ ६ ॥ भयान्तरेषु च विवीतं स्थापयेत् ॥ ७ ॥

एक मापक 'छोटा सिक्का' लेकर मुद्राध्यक्ष विदेशी व्यापारी आदिको अपने देश में घूमने के आज्ञापत्र पर राजकीय मुद्रा 'मुहर' लगादे । इसी मुद्रा से व्यापारी इस देश में घुस सकता है, और सकुशल लौट सकता है । अपने ही देश का निवासी किसी व्यापार आदि में आवश्यक मुहर को न लगवावे-तो उसपर बारह पण 'रुपया' दण्ड होना चाहिए । यदि उसने झूठी मुहर बना ली तो उस पर पूर्व साहस प्रथम कोटिका दण्ड होना चाहिए । यदि इन कार्यों का कर्ता विदेशी व्यापारी हो-तो उसपर उत्तम साहस दण्ड होना उचित है । विवीताध्यक्ष 'जंगलात का अफसर' प्रत्येक व्यक्तिकी मुहर देखा करे । जो स्थान भय जनक हैं- उन्हीं स्थानों पर-विवीताध्यक्ष अपनी चौकी बैठावे ॥ ७ ॥

चोरव्यालभयान्निम्नारण्यानि शोधयेत् ॥ ८ ॥ अनुदके कूपसेतुबन्धोत्सा-
नस्थापयेत्पुष्पफलवाटांश्च ॥ ९ ॥ लुब्धकश्चगणिनः परिव्रजेयुररण्यानि ॥ १० ॥

चोर और हिंसक जन्तुओं के भय स्थान गहरे बनों का खोज करवाता रहे । जल हीन प्रदेश में कुवे, तालाब या कच्चे कुवे बनवावे तथा पुष्प और फलों से युक्त बोग बगीचे यत्र तत्र लगवा देने उचित है । लुब्धक 'शिकारी' और कुत्ते रखने वाले राजकीय नौकर रात दिन भयावह जंगलों की छान बीन करते रहें ॥ ८-१० ॥

तत्करामित्राभ्यागमे शङ्खदुन्दुभिशब्दमग्राह्याः कुर्युः शैलवृक्षविरुद्धा वा
शीघ्रवाहना वा ॥ ११ ॥ अमित्राद्वीसंचारं च राज्ञो गृहकपोतैर्मुद्रायुक्तैर्हारयेयुः
धूमनिपरंपरया वा ॥ १२ ॥

चोर और शत्रु के आने पर शङ्ख और दुन्दुभियों को वृक्ष पर चढ़ कर इस ढङ्ग से
से बजावे, कि वे लोग उसे न पहचान सके और अन्तपाल को सूचना मिल जावे, या शीघ्र
गामी अश्वों से अन्तपाल को विनीताध्यक्ष सूचना कर देवे। शत्रु की चढ़ाई बन्द हो जाने
पर पालतू कबूतर के गले में मुहर लगा हुआ पत्र बांध कर शीघ्र सजा को सूचना करे अथवा
धूम और अग्नि के परम्परागत संकेतों 'लालटेन के संकेतों' द्वारा सूचना देवे ॥ ११-१२ ॥

द्रव्यहस्तिवनजीवः वर्तिनी चोस्स्तरणम् ।

साश्रपतिवाहं गोरक्षं व्यवहारं च कारयेत् ॥ १३ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे मुद्राध्यक्षो विनीताध्यक्षः चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

॥ ३४ ॥ आदितः पञ्चपञ्चाशः ॥ ५५ ॥

चन्दन आदि उत्तम २ वस्तु के वन और हस्तिवन की उपयोगी वस्तु वर्तनी 'मार्ग-
शुल्क' चोर से रक्षा, सार्थी 'गिरोह' का पार कर देना, गो रक्षा तथा उपयुक्त वस्तुओं के
क्रय विक्रय का प्रबन्ध करना विनीताध्यक्ष का ही कार्य है ॥ १३ ॥

इति श्रीकौटिलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में मुद्राध्यक्ष और
विनीताध्यक्ष के कर्मों के निरूपण का चौतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



पैंतीसवाँ अध्याय

५४-५५वाँ प्रकरण

समाहर्ताका कार्य, गृहपति वैदेहक तथा तापस के वेश में गुप्तचर ।

दुर्ग, जज पद खान, वन आदि की सारी आमदनी को इकट्ठा करने वाला समाहर्ता
कहाता है । प्रथम इसके कर्मों का निरूपण करके फिर गृहपति, वैदेहक और तापसवेशधारी
गुप्तचरों के कर्तव्यों का वर्णन किया जावेगा ।

समाहर्ता चतुर्धा जनसदं विभज्य ज्येष्ठमध्यमकनिष्ठविभागेन ग्रामाग्रं परिहा-
रकमायुधीयं धान्यपशुहिरण्यकुप्यविष्टिकप्रतिकरमिदमेतावदिति निबन्धयेत्
॥ १ ॥ तत्प्रदिष्टः पञ्चग्रामी दशग्रामी वा गोपश्चिन्तयेत् ॥ २ ॥

समाहर्ता, अपने देश को चार भागों में बांटकर, फिर उसके ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ-ये तीन भाग करे। यह ज्येष्ठ कनिष्ठ विभाग उपज और मनुष्य गणना के आधार पर होना चाहिए। इनमें जिन गांवों में उत्तम आमदनी है, उनको तथा दान में किये हुए गांवों को पृथक् २ समाहर्ता लिखे। सेना शस्त्र आदि के व्यय में लगे हुए गांवों का भी रजिस्टर में लेख रखे। धान्य, पशु, सुवर्ण, कुप्य (चन्दन आदि) विष्टि (बेगार) कर, प्रतिकर (शुल्क) इतना है-यह सब कुछ निबन्ध [रजिस्टर] में लिख लेवे। समाहर्ता द्वारा नियत किया हुआ पांच या दस गांवों का एक २ गोप [चौधरी-पटेल] इन गांवों की देख रखे रखे ॥१२॥ ।

सीमावरोधनं ग्रामाग्रं कृष्ठाकृष्टस्थलकेदारारामपण्डवाटवनवास्तुचैत्यदे-
वगृहसेतुबन्धश्मशानसतूप्रपापुण्यस्थानविहीतपथिसंख्यानेन क्षेत्राग्रं, तेन सीमा
क्षेत्राणां च मर्यादारण्यपथिप्रमाणसंप्रदानविक्रयानुग्रहपरिहारनिबन्धान्कारयेत्
॥ ३ ॥ गृहाणाञ्च करदाकरदसंख्यानेन ॥ ४ ॥ तेषु चैतावचातुर्वर्ण्यमैतावन्तः
कर्पकगोरक्षकवैदेहकक्राहकर्मकरदासाश्चैतावच्च द्विपदचतुष्पदमिदं च हिरण्यविष्टि-
शुल्कदण्डसमुत्तिष्ठतीति ॥ ५ ॥ ।

अच्छी आर्थवाले गांव की सीमा, कृष्ट (खेती होने योग्य खेत) अकृष्ट (बंजर) स्थल (ऊंची भूमि), केदार (धानों के खेत) आराम (बगीचे) पण्ड (केले के खेत) वाट (ईख के खेत) वन, [लकड़ी के जङ्गल] वास्तु [गांव की भूमि] चैत्य [गांव के बगीचे] देवालय, सेतुबन्ध [तालाब आदि] श्मशान, सतूप्र [सदावर्त स्थान] प्रपा [त्याऊ] पुण्यस्थान [पवित्र स्थान] विहीत [चरागाह] और रथ आदि के मार्गों के सहित खेत, तथा इसी के अनुसार खेतों की सीमा, उनकी मर्यादा, वन, वन के मार्गों के प्रमाण, सम्प्रदान [जोतने] देने को दिया जाना, विक्रय [बेच देना] अनुग्रह-लगाने मुआफ़ी परिहार [मुआफ़ी] आदि सारी बातों को समाहर्ता, अपने निबन्ध [रजिस्टर] में दर्ज करे। गांव के घरों का भी कर देने वाले-या किसी प्रकार के कर नहीं देने वाले लोगों के उल्लेख के साथ उल्लेख होना उचित है। इन घरों में इतने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं। इतने किसान, ग्वाल, व्यापारी, शिल्पी, कर्मक [मजदूर] और सेवा धृति करने वाले लोग बसते हैं-यह सब कुछ समाहर्ता के रजिस्टर में होना चाहिए। इसी तरह इतने पत्नी, इतने मनुष्य चौपाये हैं, इनसे इतना सुवर्ण, विष्टि (बेगार) शुल्क (टैक्स) और दण्ड प्राप्त होता है-यह भी लिखा जावे ॥३-५॥ ।

कुलानां च स्त्रीपुरुषाणां बालवृद्धकर्मचरित्राजीवव्ययपरिमाणं विद्यात् ॥ ६ ॥
एवं च जनपदचतुर्भागं स्थानिकः चिन्येत् ॥ ७ ॥ गोपस्थानिकस्थानेषु प्रदेशारः
कार्यकरणं बलिग्रग्रहं च कुर्युः ॥ ८ ॥

समाहर्ता, प्रत्येक कुल के स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, काम, उनके चरित्र, आजीविका और खरच का परिमाण भी जानता रहे। इसी तरह जनपद के चतुर्थांश की देख रेख स्थानिक नामक अध्यक्ष करता रहे। गोप और स्थानिक अधिकारियों को प्रदेशा नामक अधिकारी अपने २ कार्य करते हुए भी इनको अपना टैक्स वसूल करने में सहायता पहुंचावें ॥ ६-८ ॥

समाहर्तृप्रदिष्टाश्च गृहपतिकव्यञ्जना येषु ग्रामेषु प्रणिहितास्तेषां ग्रामाणां
क्षेत्रगृहकुलाग्रं विद्युः ॥ ९ ॥ मानसंजाताभ्यां क्षेत्राणि भोगपरिहाराभ्यां गृहाणि
वर्णकर्मभ्यां कुलानि च ॥ १० ॥ तेषां जंघाग्रनायव्ययौ च विद्युः ॥ ११ ॥
प्रस्थितागतानां च प्रवासकारणमनर्थ्यानां च विद्युः ॥ १२ ॥

समाहर्ता की आज्ञानुसार गृहपति (गृहस्थ) के रूप में रहने वाले गुप्तचर, जिन गावों में नियुक्त हों-वे उन गावों के खेत और कुलों का सारा वृत्तान्त बता दें। ये गुप्तचर, क्षेत्रों की नांप और उपज, घरों के कर की वसूली और मुआफ़ी तथा परिवारों के वर्ण और कामों को अच्छी तरह जानते रहें। ये ही गुप्तचर उन घरों के मनुष्य पशु आदि की गणना का भी व्योरा रखते रहें। जो परदेश गए या परदेश से आकर बसे, उनके अने जाने के कारण, दुष्ट स्त्री पुरुष तथा शत्रु के गुप्तचरों की देख भाल भी ये ही गुप्तचर रखें ॥ ९-१२ ॥

एवं वैदेहकव्यञ्जनाः स्वभूमिजानां राजपण्यानां खनिसेषुवनकर्मान्तिक्षेत्र-
जानां परिमाणमर्थं च विद्युः ॥ १३ ॥ परभूमिजातानां वारिस्थलपथोपयातानां
सारफल्गुपण्यानां कर्मसु च शुल्कवर्तन्यातिवाकिगुल्मतरदेयभागभक्तपण्यागार-
प्रमाणं विद्युः ॥ १४ ॥

व्यापारी वेश में रहने वाले गुप्तचर, अपने देश में उत्पन्न राजकीय वस्तु, तथा खान, सेतु, वन कारखानों और खेतों में उत्पन्न राजकीय वस्तुओं के परिमाण (नांप तोल) और मूल्य का पता रखें। दूसरे देश में उत्पन्न जल-मार्ग तथा स्थल मार्ग से अपने देश में आना, सार और असार वस्तुओं के क्रय विक्रय होने वाले परिमाण और मूल्य का भी ये ही गुप्तचर ज्ञान रखे। इसी तरह शुल्क (टैक्स) वर्तनी (मार्ग शुल्क) अतिवाहिक (वाहनों का टैक्स) गुल्म (मार्ग रक्षक टैक्स) तर [नाव का शुल्क] भांग

[साथियों का भाग] भक्त [बैल आदि का भोजन] तथा पण्यगार [बाजारी टैक्स] अदा किया गया या नहीं इन सब बातों का ये ही गुप्तचर पता रखते रहें ॥१३-१४॥

एवं समाहर्तृप्रदिष्टास्तापसव्यञ्जनाः कर्षकगोरक्षकवैदेहकानामध्यक्षाणां च शौचाशौचं विद्वुः ॥ १५ ॥ पुराणचोरव्यञ्जनाश्चान्तेवासिनश्चैन्यचतुष्पथशून्यप-
दोदपाननदीनिपानतीर्यायतनाश्रमारण्यशैलवनगहनेषु स्तेनाभिन्नप्रवीरपुरुषाणां च प्रवेशनस्थानगमनप्रयोजनान्युपलभेरन् ॥ १६ ॥

इसी तरह समाहर्ता की आह्वा में रहते हुए तपस्वी गुप्तचर, किसान, ग्याले, व्यापारी और अध्वक्षों की ईमानदारी या बेईमानी का पता रखें। पुराने चोरों के वेष में रहने वाले इन गुप्तचरों के अन्तेवासी (उस्मेदवार) गांव के बगीचे, चौराहे, निजन स्थान, तालाब नदी आदि, तीर्थ स्थान, आश्रम, वन, पर्वत और बने जङ्गलों में रहकर चोर, शत्रु तथा शत्रु के वीर पुरुषों के आने, ठहरने जाने आदि का पूरा पता रखें ॥१५-१६॥

समाहर्ता जनपदं चिन्तयेदेवमुत्थितः ।

चिन्तयेयुश्च संस्थास्ताः संस्थाश्चान्याः स्वयोनयः ॥ १७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे समाहर्तृप्रचारो गृहपतिवैदेहकतापसव्यञ्ज-
नप्रणिधयश्च पञ्चविंशो ऽध्यायः ॥ ३५ ॥

आदितः षट्षाशः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार बड़ी सावधानी से रहने वाला, समाहर्ता (कलक्टर) राष्ट्र की भलाई का विचार करता रहे। इसी तरह समाहर्ता से नियुक्त किये हुए गोप आदि अधिकारी तथा स्वयं बने हुए संघ भी राष्ट्र की भलाई के प्रबन्ध में सहायता करें ॥१७॥

इति श्रीकौटिलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचार अधिकरण में समाहर्ता के कर्म और गृहपति आदि गुप्तचरों के कर्तव्यों के निरूपण का पैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

पैंतीसवां अध्याय

५६ वां प्रकरण

नागरिक का कार्य ।

नगर के प्रबन्धकर्ता को नागरिक कहते हैं। इस प्रकरण में उसी के कर्तव्यों का निरूपण किया जावेगा ।

समाहर्तृवन्नागरिको नगरं चिन्तयेत् ॥ १ ॥ दशकुलीं गोपो विंशतिकुलीं
चत्वारिंशत्कुलीं वा ॥ २ ॥ स तस्यां स्त्रीपुरुषाणां जातिगोत्रनामकर्मभिः जया-
ग्रमायव्ययौ च विद्यात् ॥ ३ ॥ एवं दुर्गचतुर्भागं स्थानिकश्चिन्तयेत् ॥ ४ ॥
धर्मावसथिनः पाषण्डिपथिकानावेद्य वासयेयुः ॥ ५ ॥ स्वप्रत्ययांश्च तपस्विनः
श्रोत्रियांश्च ॥ ६ ॥ कारुशिल्पिनः स्वकर्मस्थानेषु स्वजनं वासयेयुः ॥ ७ ॥ वैदे-
हकाश्चान्योन्यं स्वकर्मस्थानेषु पण्यानामदेशकालविक्रेतांस्वकरणं च नि-
वेदयेयुः ॥ ८ ॥

समाहर्ता, जिस प्रकार सारे राष्ट्र के प्रबन्ध का विचार करता है, नागरिक अध्यक्ष केवल नगर के प्रबन्ध की चिन्ता करे। नागरिक भी एक गोप नामक कर्मचारी की नियुक्ति करे-जो दस, बीस या चालीस कुल का प्रबन्ध करता है। यह गोप इन कुलों के स्त्री पुरुष, जाति, गोत्र, नाम, काम, चलने फिरने वाले पशु और आय तथा व्यय का भी ज्ञान रखे। इसी प्रकार दुर्ग के चतुर्थ भाग का प्रबन्ध स्थानिक करे। धर्मशालाओं के निरोक्षक, स्थानिकों को ऐसे पथिकों की सूचना देते रहें, जो पाखण्डी हों, जब स्थानिक की मन्जूरी हो जावे तो इन धूर्तों को धर्मशाला में धर्माध्यक्ष ठहरने दे। हां? जिनको धर्माध्यक्ष स्थानिक जानता है-या जो, सच्चे तपस्वी और वेदपाठी हों-उनको त्रिना स्थानिक की मन्जूरी लिए भी धर्माध्यक्ष ठहरा सकता है। जो कर्म करने वाले शिल्पी [कारीगर] हैं, वे अपने कारखानों में आने वाले शिल्पियों को ठहरा लेंगे। व्यापारी लोग, विदेशी व्यापारी को अपनी दुकानों पर ठहरा सकते हैं, परन्तु जो वस्तु देशकाल के विपरीत हो, उसे बेचे या पराई वस्तु का व्यवहार करें-तो इसकी सूचना नागरिक [अध्यक्ष] को वे अवश्य कर दें ॥१-८॥

शौण्डिकपाकमांसिकौदनिकरूपाजीवाः परिज्ञातमावासयेयुः ॥ ९ ॥ अति-
व्ययकर्तारिमत्याहितकर्माणं च निवेदयेयुः ॥ १० ॥ चिकित्सकः प्रच्छन्नव्रणप्रती-
कारकारयितारमपथ्यकारिणं च गृहस्वामी च निवेद्य गोपस्थानिकयोर्मुच्येतान्यथा
तुल्यदोषः स्यात् ॥ ११ ॥ प्रस्थितागतौ च निवेदयेत् ॥ १२ ॥ अन्यथा रात्रिदोषं
भजेत् ॥ १३ ॥ क्षेमरात्रिषु त्रिपणं दद्यात् ॥ १४ ॥

मद्य विक्रेता, पके मांस या चावल आदि पका अन्न बेचने वाले और वैश्याएँ, अपने जान पहचान के पुरुष को ही अपने पास ठहरने दें। जो पुरुष अत्यन्त व्यय कर रहा हो-या अनुचित कर्म में प्रवृत्त हो-उसकी सूचना गोप या स्थानिक को ये पुरुष कर दें। जो चिकित्सक, छुपी रीति से लगे हुए घाव आदि की चिकित्सा करता हुआ नागरिक या

स्थानिक को सूचना देदे तथा अनुचित कर्म करने वाले पुरुष की-गृहस्वामी नागरिक को सूचना करदे-तो उनका कोई अपराध नहीं है-यदि वे सूचना न करें-तो दोष के भागी माने जावेंगे। घर से जाने वाले और आने वाले अतिथि की घर का स्वामी नागरिक को सूचना देवे। यदि सूचना न दी और रात में उन्होंने कुछ अपराध (जुर्म) कर लिया-तो इसका गृहस्वामी भी अपराधी माना जावेगा। यदि अभ्यागतों ने रात में कोई जुर्म नहीं किया, परन्तु गृहस्वामी ने सूचना भी नहीं दी, तो भी गृहस्वामी पर सूचना नहीं देने का तीन पण दण्ड होना चाहिए ॥६-१४॥

पथिकोत्पथिकाश्च बहिरन्तश्च नगरस्य देवगृहपुण्यस्थानवनशमशानेषु सत्रण-
मनिष्टोपकरणमुद्धाण्डीकृतमाविग्रमतिस्वप्नमध्वक्लान्तमपूर्वं वा गृहणीयुः ॥ १५ ॥
एवमभ्यन्तरे शून्यनिवेशवेशनशोण्डिकौदनिकपाकमांसिक वृत्तपाषण्डावासेषु
विचयं कुर्युः ॥ १६ ॥

व्यापारी आदि के वेश में मार्ग में घूमने वाले, तथा ग्वाले आदि के रूप में मार्ग छोड़ कर जंगल में घूमने वाले गुप्तचर, नगर के बाहर या नगर के देवालय, धर्मशाला, वन या शमशान में किसी व्रण वाले, विप्र शस्त्र आदि अनुचित साधन से युक्त, अधिक भारधारी, ध्वजाये हुए, अत्यन्त सोने वाले, मार्ग की थकान से युक्त तथा अजीव से ढंग के मनुष्य को देखकर उसकी सूचना नागरिक को देवें। इसी प्रकार नगर के भीतर भी शून्य स्थान, शिल्पशाला, मद्य की दुकान, चावल और पके मांस की दुकान, जुआ एवं पाषण्डी साधुओं के स्थानों की भी ये लोग खोज रखें ॥१५-१६॥

अग्निप्रतीकारं च ग्रीष्मे मध्यमयोरह्नश्चतुर्भागयोः ॥ १७ ॥ अष्टभागे
ऽग्निदण्डः ॥ १८ ॥ बहिरधिथयणं वा कुर्युः ॥ १९ ॥ पादः पञ्चघटीनां, कुम्भ-
द्रोणीनिश्रेणीपरशुशूर्पाङ्कुशकचग्रहणीद्वीतीनां चाकरणे ॥ २० ॥ तृणकटच्छन्ना-
न्यपनयेत् ॥ २१ ॥ अग्निजीविन एकस्थान् वासयेत् ॥ २२ ॥ स्वगृहप्रद्वारेषु
गृहस्वामिनो वसेयुरसंपातिनो रात्रौ ॥ २३ ॥ रथ्यासु कटव्रजाः सहस्रं तिष्ठेयुः
॥ २४ ॥ चतुष्पथद्वारराजपरिग्रहेषु च ॥ २५ ॥

ग्रीष्म ऋतु में दिन के आठ भाग में, वीच के चार भागों में (फूस के घरों में) आग जलाने का निषेध रहना चाहिए। जो कोई इस आग्रा का प्रतिपालन न करे, उसपर अग्नि लग जाने पर हानि का अठगुना दण्ड होना चाहिए, अथवा आग जलाने मात्र पर एक मुद्रा का आठवां भाग दण्ड होना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो घर से बाहर आग जला कर अपना कार्य किया जा सकता है। जो पांच बड़ी तक मध्याह्न में आग

जलाता रहे, उसपर चौथाई पण का दण्ड हो। जो मनुष्य, ग्रीष्म ऋतु में मटकी, नांद, नसेनी, कुल्हाड़ी, छाज, अंकुश, (कौंचा, कचप्रहणी, (फूस खेंचने की डंगी) और चमड़े की मशक का प्रबन्ध न रखे, उस पर भी एक पण का चौथाई दण्ड होना चाहिए। इस समय घास फूस और चटाई की बनी हुई भौपड़ियां उठा देने की उचित है। अग्नि के द्वारा जीविका करने वाले मनुष्यों को नगर के एक ओर बसाया जावे। रात में कहीं न जाकर घर के मालिक अपने घर के द्वारों पर ही शयन करें। गली या बाजारों में सहस्रों की संख्या में जल से भरे घड़ों का प्रबन्ध रहे। इसी तरह चौराहा, नगर के प्रधान द्वार और राज्य कार्यालयों पर भी जल का प्रबन्ध रहना चाहिए ॥१७-२५॥

प्रदीप्तमनभिधावतो गृहस्वामिनो द्वादशपणो दण्डः ॥ २६ ॥ षट्पणोऽ-
वक्रयिणः ॥ २७ ॥ प्रमादादीप्तेषु चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ २८ ॥ प्रादीपि-
कोऽग्निना वध्यः ॥ २९ ॥ पांसुन्यासे रथ्यायामष्टभागो दण्डः ॥ ३० ॥ पक्को-
दकसंनिरोधे पादः ॥ ३१ ॥ राजमार्गे द्विगुणः ॥ ३२ ॥ पुण्यस्थानोदकस्थान-
देवगृहराजपरिग्रहेषु पणोत्तरा विष्टादण्डाः ॥ ३३ ॥ मृत्रेण्वर्धदण्डाः ॥ ३४ ॥
भैषज्यव्याधिभयनिमित्तमदण्डयाः ॥ ३५ ॥

यदि अपने घर में आग लग गई हो और उसे देखकर भी जो आलस्यादि के बश में उसे बुझाने को नहीं दौड़े-उन पर चारह पण दण्ड होना चाहिए। जो भाड़ा देकर घर में रहता है, और आग लगने पर नहीं दौड़ता, उसको छः पण दण्ड दिया जावे। जिसकी असावधानी से आग लगे, उसपर चौवन पण उचित है। यदि कोई आग लगाता पकड़ा जावे, तो उसको आग में जलाकर मार दिया जावे। जो गलियों में कूड़ा करकट ढाले-उसपर पण का आठवां भाग दण्ड किया जावे। जो पानी कीचड़ से गलियों को गन्दा करे-उसपर चौथाई दण्ड पण होना चाहिए। राज मार्ग [प्रधान सड़क] को गन्दी करने वाले मनुष्य पर आधा पण दण्ड किया जावे। राज मार्ग धर्मशाला, तीर्थ आदि पवित्र स्थान, जलस्थान, देवालय, और राज्य कार्यालयों पर जो कोई मनुष्य मलोत्सर्ग कर दे, उसपर क्रम से एक एक पण बढ़ाते हुए दण्ड होना चाहिए। मृत्रोत्सर्ग करने वाले पर इसका आधा दण्ड है। राजमार्ग में एक पण, पुण्य स्थान में दो पण, जल स्थान में मलोत्सर्ग करने पर तीन पण दण्ड देना चाहिए। औषध, रोग, भय आदि के कारण इन स्थानों पर किसी का मल निकल जावे-तो उनको दण्ड न दिया जावे ॥२६-३५॥

मार्जारश्चनकुलसर्पप्रेतानां नगरस्यान्तरुत्सर्गे त्रिपणो दण्डः ॥ ३६ ॥
खरोष्ट्राश्चतराश्वपशुप्रेतानां षट्पणः ॥ ३७ ॥ मनुष्यप्रेतानां पञ्चाशत्पणः ॥ ३८ ॥

मार्गविपर्यासे शत्रुद्वारादन्यतः शत्रुनिर्णयने पूर्वः साहसदण्डः ॥३६॥ द्वाःस्थानां
द्विशतम् ॥ ४० ॥ श्मशानादन्यत्रन्यासे दहने च द्वादशपणो दण्डः ॥ ४१ ॥

मरे हुए विलाव, कुत्ता, नौला और सांप को नगर में डालने वाले पर तीन पण दण्ड का विधान है। यदि गधे, ऊँट, खच्चर और घोड़े आदि पशुओं को नगर में डाल दवे-तो डालने वाले पर छः पण दण्ड की व्यवस्था है। यदि अपने मृतक को कोई नगर में पड़ा सड़ने देगा-उस पर भी पचास पण दण्ड होगा। मृतक के ले जाने के मार्ग के बदलने और नियत द्वार को छोड़कर नगर के दूसरे द्वार से ले जाने वाले पुरुष पर पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए। जो द्वार रक्तक, मृतक को अपने द्वार पर न रोके उन पर दसौ रुपया जुर्माना किया जावे। श्मशान से अन्यत्र कहीं रखने या जलाने वाले पर बारह पण दण्ड का विधान है ॥३६-४१॥

विपणनालिकमुभयतोरात्रं यामतूर्यम् ॥ ४२ ॥ तूर्यशब्दे राज्ञो गृहाभ्याशे
सपादपणमक्षयताडनं प्रथमपश्चिमयामिकम् ॥ ४३ ॥ मध्यमयामिकं द्विगुणं,
बहिश्चतुर्गुणम् ॥४४॥ शङ्कनीये देशे लिङ्गं पूर्वापदाने च गृहीतमनुयुञ्जीत ॥४५॥
राजपरिग्रहोपगमने नगररक्षारोहणे च मध्यमः साहसदण्डः ॥ ४६ ॥ सूतिका-
चिकित्सकप्रेतप्रदीपयाननागरिकतूर्यप्रेक्षाग्निनिमित्तं मुद्राभिश्चाग्राह्याः ॥ ४७ ॥

रात के पूर्व और अन्त भाग की छः २ बड़ी छोड़कर तुरी आदि बाजे का शब्द कर देना चाहिए। जब यह बाजे का शब्द हो जावे, तो राजमहल के समीप इस समय जो घूमता मिले-उस पर सवा पण दण्ड होना चाहिए। यह दण्ड निषिद्ध समय की प्रथम और अन्तिम घड़ियों के लिए ही है। यदि इस समय के मध्य भाग अधरात्रि के समीप राजमहल के समीप कोई पुरुष घूमता मिले-तो उसपर दुगुना और नगर से बाहर वन में घूमने वाले पर चौगुना दण्ड होता उचित है। शङ्का के योग्य स्थान पर पकड़े हुए शस्त्र आदि किसी चोरी आदि के साधन से सम्पन्न अथवा पूर्व में चोरी के अपराध में पकड़े गए, पुरुष से उसके वहां आने के विषय में प्रश्न करने-चाहिए। जो कोई पुरुष, राज्य कार्यालयों या नगर की रक्षा की भीति [दीवार] पर चढ़ता पकड़ा जावे-तो उस पर मध्यम साहस दण्ड होवे। यदि कोई पुरुष इस निषिद्ध समय में भी सूतिका [बच्चे उत्पन्न कराने को दाई के बुलाने को जाते हुए] चिकित्सक [बैद्य बुलाने] प्रेत [मुर्दा उठाने] दीपक [लालटेन] लेकर चलते हुए, नागरिक, के पास जाने, बाजा, बजवाने, नाटक देखने और आग आदि के बुझाने को जो आवे-जावे-उसपर कोई दण्ड नहीं है। जिनके पास मुहर लगा हुआ आज्ञा पत्र विद्यमान है-उनको भी न पकड़े ॥४२-४७॥

चाररात्रिषु प्रच्छन्नविपरीतवेपाः प्रव्रजिता दण्डशस्त्रहस्ताश्च मनुष्या दोषतो
दण्डयाः ॥ ४८ ॥ रक्षिणामवार्यं वारयतां वार्यं चावारयतामक्षणाद्विगुणो दण्डः
॥ ४९ ॥ स्त्रियं दासीमधिमेहयतां पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५० ॥ अदासीं मध्यमः
॥ ५१ ॥ कृतावरोधामुत्तमः ॥ ५२ ॥ कुलस्त्रियं वधः ॥ ५३ ॥

जिन महोत्सव आदि की खूली रात्रियों में छुपे २ या स्त्री आदि का वेप बनाकर घूमते हुए, तथा संन्यासी, दण्ड शस्त्रधारी, मनुष्य पकड़े जावें-उनके अपराध का निर्णय करके उनको दण्ड दिया जावे। जो रक्षक [पहरेदार] नहीं रोकने योग्य पुरुषों को रात में रोक दें-और रोकने योग्य पुरुषों को न रोकें-तो उनपर निषिद्ध समय के नियत दण्ड से दुगुना दण्ड होना चाहिए। जो पुरुष किसी दासी स्त्री के साथ व्यभिचार के अपराध में पकड़ा जावे-उसपर प्रथम साहस दण्ड होवे। अदासी-साधारण स्त्री से व्यभिचार करे-तो मध्यम दण्ड होवे। किसी की भार्या से व्यभिचार करे-तो उत्तम साहस दण्ड का विधान है। तथा जो कुल स्त्री को भ्रष्ट कर दे-उसका वध कर देना चाहिए ॥४८-५३॥

चेतनाचेतनिकं रात्रिदोषमंशंसतो नागरिकस्य दोषानुरूपो दण्डः ॥५४॥
प्रमादस्थाने च ॥ ५५ ॥ नित्यमुदकस्थानमार्गभूमिच्छन्नपथवप्रप्राकाररक्षावेक्षणं
नष्टप्रस्मृतापसृतानां च रक्षणम् ॥ ५६ ॥ बन्धनागारे च बालवृद्धव्याधिताना-
थानां च जातनक्षत्रपौर्णमासीषु विसर्गः ॥ ५७ ॥ पुण्यशीलाः समयानुवद्धा वा
दोषनिष्क्रयं दद्युः ॥ ५८ ॥

चेतन या अचेतन किसी से भी सम्बन्ध रखने वाले अपराध की जो पुरुष नागरिक अध्यक्ष को उसकी सूचना न देवे-उसपर उस अपराध के अनुसार दण्ड होना चाहिए। प्रमाद करने पर नगर रक्षकों पर भी यही दण्ड उचित है। नागरिक, 'नगर कोतवाल' नित्य जल स्थान, मार्ग भूमि, छन्न पथ 'छुपे सुरङ्ग आदि' वप्र 'सफील' प्राकार 'परकोटे' रक्षा 'वुर्ज खाई आदि' स्थानों की अच्छी तरह देख भाल करता रहे। जो कोई वस्तु खोई हुई, भूली हुई, गिरी हुई मिले-उसकी उसके स्वामी के आने तक रक्षा करे। बन्धनागार (जेलखाने) से बालक, वृद्ध, रोगी और अनाथों को राजा की वर्ष गांठ, शुभ नक्षत्र और पूर्णमासी आदि पर्व पर छोड़ दिया जाया करे। अच्छे चाल चलन वाले, प्रतिज्ञा करने को तत्पर [मुचलके देने वाले] पुरुष अपने अपराध का हरजाना देकर छुटकारा पा सकते हैं ॥५४-५८॥

दिवसे पञ्चरात्रे वा बन्धनस्थान् विशोधयेत् ।

कर्मणा कायदण्डेन हिरण्यानुग्रहेण वा ॥ ५९ ॥

अपूर्वदेशाधिगमे युवराजाभिषेचने ।

पुत्रजन्मनि वा मोक्षो बन्धनस्य विधीयते ॥ ६० ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे नागरिकप्रणिधिः प्रट्त्रिंशो ऽध्यायः ॥ ३६ ॥

आदितः सप्तपञ्चाशः ॥ ५७ ॥

प्रति दिन या पांचवे दिन-इस प्रकार अपराध का निष्क्रय लेकर अपराधी छोड़े जाने चाहिए। कुछ काम कराकर, वैत आदि शरीर का दण्ड देकर या जुर्माना आदि लेकर अपराधी दोषानुसार छोड़े जा सकते हैं। राजा की इच्छा है-वह बिना कुछ लिए अपने अनुग्रह से भी छोड़ सकता है। किसी नये देश के जीतने, युवराज के अभिषेक और राज पुत्र की उत्पत्ति के समय कैदियों को छोड़ देने का समय माना गया है ॥ ५६-६० ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार नामक अधिकरण में नागरिक

[नगर कोतवाले] के अधिकारों के वर्णन का छत्तीसवां अध्याय और

प्रारम्भ से सत्तावनवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ। यहीं पर अध्यक्ष

प्रचार अधिकरण भी समाप्त हो गया।



तृतीय-अधिकरण

धर्मस्थीय



प्रथम अध्याय

५७-५८वां प्रकरण

व्यवहार की स्थापना और विवाद का लेखन

इस प्रकरण में व्यवहार 'दीवानी मुकदमे सन्बन्धी लेख आदि' तथा विचार 'फौज-दारी मुकदमों' का विचार किया जावेगा ।

धर्मस्थास्त्रयस्त्रयोऽमात्या जनपदसंधिसंग्रहद्रोणमुखस्थानीयेषु व्यावहारिका-
नर्थान्कुयुः ॥ १ ॥ तिरोहितान्तरगारनक्तारण्योपध्युपहरकृतांश्च न्यवहारान्प्रतिपे-
धयेयुः ॥ २ ॥ कर्तुः कारयितुश्च पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३ ॥ श्रोतृणामेकैकं
प्रत्यर्धदण्डाः ॥ ४ ॥ श्रद्धेयानां तु द्रव्यव्यपनयः ॥ ५ ॥ परोक्षेणाधिकर्णग्र-
हणमवक्तव्यकरा वा तिरोहिताः सिद्धयेयुः ॥ ६ ॥ दायनिक्षेपोपनिधिविवाहयुक्ताः
स्त्रीणामनिष्कासिनीनां व्याधितानां चामूढसंज्ञानामन्तरगारकृताः सिद्धयेयुः ॥ ७ ॥

तीन धर्माध्यक्ष 'न्यायाधीश' और तीन अमात्य, देश सीमा प्रान्त, संग्रहण 'दशगाँव' द्रोण मुख 'चार सौ गाँव' और स्थानीय 'आठसौ गाँवों' के प्रधान भूत स्थान' में परस्परों के व्यवहारों 'मुकदमे सन्बन्धी लेखों' की व्यवस्था करें । छुपाकर घर के भीतर रात वन, छल तथा एकान्त में किए गए व्यवहार सन्बन्धी लेखों को प्रमाणित न माना जावे । इस प्रकार जो व्यवहार करे या करवावेगा, उसपर पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए । जो इस प्रकार के लेखों की चर्चा सुनकर भी राज्य को सूचना न दे, उन प्रत्येक को पूर्व साहस दण्ड का आधा दण्ड होना चाहिए । जो इस तरह के व्यवहार के पत्र लिखने का समर्थ न करते हों, उनपर द्रव्य दण्ड 'जुरमाना' होना उचित है । नहीं कहने योग्य व्यवहारों को यदि छुपाकर किया गया और परोक्ष रूपसे किसी ने सुन भी लिया-तो भी उनका पत्र प्रमा-णित माना जावेगा और सूचना नहीं देने वाले पर कोई दण्ड न होगा । जो घर से नहीं निकलने

REFERENCE

BOOK

३ अवि०]

सिद्धि-संक्षेप-व्याख्या

(२३३)

वाली स्त्रियों तथा संज्ञाहीन 'अचेत' नहीं हुए रोगियोंने जो घर के भीतर छुपे २ दायभाग धरोहर, निधि, 'गिरवी' और विवाह सम्बन्धी लेख 'विना स्टाम्प' साधारण कागज पर भी लिख लिए-तो भी वे सिद्ध समझे जावेंगे-नाजायज नहीं होंगे । ॥ १-७ ॥

साहसानुप्रवेशकलहविवाहराजनियोगयुक्ताः पूर्वरात्रव्यवहारिणां च रात्रि-
कृताः सिद्धयेयुः ॥ ८ ॥ सार्धत्रजाश्रमव्याधचाराणां मध्येष्वरण्यचराणामरण्य-
कृताः सिद्धयेयुः ॥ ९ ॥ गूढाजीविषु चोपधिकृताः सिद्धयेयुः ॥ १० ॥ मिथः
समवाये चोपहरकृताः सिद्धयेयुः ॥ ११ ॥ अतोऽन्यथा न सिद्धयेयुः ॥ १२ ॥
अपाश्रयवद्भिश्च कृताः पितृमता पुत्रेण पित्रा पुत्रवता निष्कुलेन भ्रात्रा कनिष्ठे-
नाविभक्तांशेन पतिमत्या पुत्रवत्या च स्त्रिया दासाहितकाभ्यामप्राप्तातीतव्यव-
हाराभ्यामभिशस्तप्रव्रजितव्यङ्गव्यसनिभिश्चान्यत्र निसृष्टव्यवहारेभ्यः ॥ १३ ॥

साहस के साथ अनुचित रीति से किसी के घर में घुस जाना, झगड़ा कर बैठना, विवाह, राजा की आज्ञा से होने वाले कार्य, रात के पूर्व भाग में काम धन्धे करने वाले-लोगों के व्यवहारों पर न्यायाधीशों को विचार करना चाहिए। साथ बनाकर चलने वाले, आश्रम वासी, वानप्रस्थी, व्याध 'शिकारी' गुप्तचर और वनवासी लोगों के वन में किए हुए व्यवहारों पर भी विचार किया जा सकता है। गुप्त रूप से व्यवहार करने वाले जुआरी आदि के छल पूर्वक लिखे लिखाए गए लेखों के आधार पर भी मुकदमों की सुनाई हो सकेगी। परस्पर समझौता होने पर एकान्त में किए गए व्यवहार 'पत्र व्यवहार आदि' भी सिद्ध 'जायज' समझने उचित है। इनके अतिरिक्त पूर्वोक्त स्थानों में किए गए व्यवहारों पर विचार ही नहीं कहना चाहिए अर्थात् इस किस्म के लेख नाजायज होने चाहिए। जिन कामों के करने की मन्जूरी सरकार से मिल गई है, उनके अतिरिक्त निराश्रय, पुरुष, जीवित पिता के पुत्र, पुत्र वाले पिता, कुलहीन, सम्पत्ति के भाग नहीं पाए हुए छोटे भाई पति और पुत्रवती स्त्री, दास और प्रतिनिधि 'एवजी' मनुष्य अप्राप्त व्यवहार 'नावालिग' अतीत व्यवहार 'अतिवृद्ध' लोकनिन्दित, सन्यासी लंगड़े, लड़े आदि तथा विपत्ति में कसे हुए मनुष्यों द्वारा किए गए व्यवहारों को उचित (जायज) नहीं मानना चाहिए है ॥ ८-१३ ॥

तत्रापि क्रुद्धेनार्तेन मत्तेनोन्मत्तेनापगृहीतेन वा कृता व्यवहारा सिद्ध-
येयुः ॥ १४ ॥ कर्तृकारयितृश्रोतृणां पृथग्यथोक्ता दण्डाः ॥ १५ ॥ स्वे स्वे तु वर्गे
देशे काले च स्वकरणकृताः संपूर्णचाराः शुद्धदेशा दृष्टरूपलक्षणप्रमाणगुणाः
सर्वव्यवहाराः सिद्धयेयुः ॥ १६ ॥ पश्चिमं त्वेषां करणमादेशाधिबर्जं श्रद्धेयम् ॥ १७ ॥
इति व्यवहारस्थापना ॥ १८ ॥

यदि राजा ने भी आज्ञा देदी हो-तो भी क्रोधी, व्याकुल, मत्त (जनूनी) उन्मत्त (पागल) अपगृहीत (पकड़े हुए अपराधी) द्वारा किए गए व्यवहार (कार्य) भी सिद्ध (जायज) नहीं हैं। इस प्रकार के लेख बनाने, बनवाने और उनको सुनकर सूचना नहीं देने वाले पुरुषों पर पूर्वोक्त पृथक् २ दण्ड समझना चाहिए। अपनी २ जाति, देश, काल और प्रकृति के अनुकूल सादे शुद्ध व्यवहार, उचित समझने चाहिए, यदि उनके स्वरूप लक्षण, प्रमाण तथा गुणों पर भली प्रकार दृष्टि डालली गई हो। सारांश यह है कि बल पूर्वक किए गए कार्यों को छोड़ कर अन्य सारे व्यवहार के कार्य लेख आदि उचित माने जा सकते हैं, चाहे सरकारी कागज पर न लिखे गए हों ! यहाँ एक व्यवहार (मुकदमों के लेख आदि) की स्थापना (विचार) की गई है ॥ १४-१८ ॥

संवत्सरमृतुं मासं पक्षं दिवसं करणमधिकरणमृणं वेदकावेदकयोः कृतसमर्थवस्थयोर्देशग्रामजातिगोत्रनामकर्माणि चाभिलिख्य वादिप्रतिवादिप्रश्नानर्थानुपूर्यान्निवेशयत् ॥ १६ ॥ निविष्टांश्चावेक्षते ॥ २० ॥ निबद्धं पादमुत्सृज्यान्यं पादं संक्रामति ॥ २१ ॥ पूर्वोक्तं पश्चिमेनार्थेन नाभिसंधत्ते ॥ २२ ॥ परवाक्यमनभिग्राह्यमभिग्राह्यावतिष्ठते ॥ २३ ॥ प्रतिज्ञाय देशं निर्दिशेत्पुक्ते न निर्दिशति ॥ २४ ॥ हीनदेशमदेशं वा निर्दिशति ॥ २५ ॥ निर्दिष्टोद्देशादन्यं देशमुपस्थापयति ॥ २६ ॥ उपस्थिते देशे ऽर्थवचनं नैवमित्यपव्ययते ॥ २७ ॥ साक्षिभिरवधृतं नेच्छति ॥ २८ ॥ असंभाष्ये देशे साक्षिमिर्मिथः संभाषते ॥ २९ ॥ इति परोक्तहेतवः ॥ ३० ॥

जब कोई न्यायाधीशों के सम्मुख मुकदमा आवे-तो उसका संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष दिवस, जिसके द्वारा हुआ उसका नाम और जहाँपर हुआ हो- वह स्थान, ऋण, अपने २ पक्ष के साक्षी, प्रति साक्षी, उनके देश, ग्राम, जाति, गोत्र, नाम और कर्मों को लिख कर वादी प्रति वादी के प्रश्न (जिरह) उनके तत्त्वार्थ, सबको अपने निवेश पत्र 'मिसल' में लिखे अन्त में उनपर न्यायाधीश अच्छी तरह विचार करे। जो प्रकरण गत सिलसिले को छोड़ कर दूसरी ओर चला जाता है। जिसका पूर्व कथन पश्चिम कथन से नहीं मिलता। दूसरे के नहीं मानने योग्य वचन को मान बैठे। जो ऋण आदि देश के बताने की एक बार प्रतिज्ञा करके फिर टाल मटोल करने लगे। जब बहुत पूछा जावे-तो किसी साधारण देश या प्रदेश का नाम ले देता है या कहे हुए देश को बता कर फिर बदल जाता है। स्थान बताकर भी धन के ग्रहण के बताने का जब समय आता है-तो उससे इन्कार कर देता है। जो साक्षियों से कही गई बात को स्वीकार नहीं करता। जो नहीं भाषण करने योग्य

स्थान में आकर अपने या दूसरे के साक्षियों से गुप्त चुपचाते करता है—वह पराजित समझना चाहिए—ये सारी बातें पराजित करने के कारण हैं ॥ १६-३० ॥

परोक्तदण्डः पञ्चबन्धः ॥ ३१ ॥ स्वयंवादिदण्डो दशबन्धः ॥ ३२ ॥
 पुरुषभृतिरष्टाङ्गः ॥ ३३ ॥ पथि भक्तमर्थविशेषतः ॥ ३४ ॥ तदुभयं नियम्यो
 दद्यात् ॥ ३५ ॥ अभियुक्तो न प्रत्यभियुज्जीत ॥ ३६ ॥ अन्यत्र कलहसाहससार्थ-
 समवायेभ्यः ॥ ३७ ॥ न चाभियुक्ते ऽभियोगोऽस्ति ॥ ३८ ॥ अभियोक्ता चेत्प्र-
 त्युक्तस्तदहरेव न प्रतिब्रूयात्परोक्तः स्यात् ॥ ३९ ॥ कृतकार्यविनिश्चयो ह्यभियोक्ता
 नाभियुक्तः ॥ ४० ॥ तस्याप्रतिब्रुवतस्त्रिरात्रं सप्तरात्रमिति ॥ ४१ ॥ अत ऊर्ध्वं
 त्रिपणावराध्यं द्वादशपणपरं दण्डं कुर्यात् ॥ ४२ ॥ त्रिपक्षादूर्ध्वमप्रतिब्रुवतः
 परोक्तदण्डं कृत्वा यान्यस्य द्रव्याणि स्युस्ततोऽभियोक्तारं प्रतिपादयेदन्यत्र
 प्रत्युपकरणेभ्यः ॥ ४३ ॥ तदेव निष्पततो ऽभियुक्तस्य कुर्यात् ॥ ४४ ॥ अभियो-
 क्तुर्निष्पातसमकालः परोक्तभावः ॥ ४५ ॥ प्रेतस्य व्यसनिनो वा साक्षिवचन-
 मसारमभियोक्तारं दण्डयित्वा कर्म कारयेत् ॥ ४६ ॥ अधिवासकामं प्रवेशयेत्
 ॥ ४७ ॥ रक्षोघ्नरक्षितं वा कर्मणा प्रतिपादयेत् ॥ ४८ ॥ अन्यत्र ब्राह्मणादिति ॥ ४९ ॥

पराजित पुरुष को देयधन का पांचवां भाग राज्य को दण्ड रूप में देना पड़ेगा । जो मिथ्या वादी, सरकार में आकर पुकारे और झूटा निकले-उसपर देयधन का दसवां भाग दण्ड होना चाहिए । कर्मचारियों के वेतन का आठवां भाग तथा दूसरे पक्ष का जो भोजन आदि में विशेष व्यय हुआ हो, इन दोनों व्ययों को हारने वाला ही देवे । कलह (मारपीट) डाका, व्यापारी तथा कम्पनियों के मुकदमों को छोड़ कर अपराधी से किसी बात का दण्ड नहीं लिया जा सकता और न अभियुक्त पर कोई मुकदमा चलाया जा सकता है । अभियोक्ता (मुस्तगीस) से जब कुछ पूछा जावे और वह उस दिन उत्तर न देवे-तो उसको पराजित समझना चाहिए, क्योंकि वह तो सोचविचार कर दावा करता है, परन्तु अभियुक्त [अपराधी या प्रतिवादी] दूसरे दिन भी उत्तर दे सकता है, क्योंकि वह प्रश्नों का उत्तर पूर्व में ही कैसे सोच सकता है । इसको उत्तर [जवाबदावा] देने को तीन दिन या सात दिन की छुट्टी [मुहलत] मिलनी चाहिए । जब तीन या सात दिन की नियत अवधि में भी वह उत्तर न दे-तो उसपर प्रति दिन के हिसाब से तीन पण से लेकर बारह पण तक [हर्जाने] का दण्ड किया जा सकता है । यदि इस तरह करने पर भी तीन पक्ष से अधिक समय हो जावे-और वह कोई उत्तर न दे-तो उसपर पराजित होने का दंड करके इसका सारा माल कुर्क करके वादी को दिला दिया जावे-उसके लिए केवल खाने पीने आदि की सामग्री छोड़ी जा सकती है । यदि अभियुक्त

(वादी या मुस्तगीस) झूठा सिद्ध हो जावे-तो अभियुक्त का सारा हर्जाना वादी का माल, कुर्क करके अभियुक्त को दिला दिया जावे । अभियुक्त को यह दंड उससे प्रश्न करते ही और उसका ठीक २ उत्तर न देते ही हो जाना चाहिए-उसे कुछ भी मुहलत मिलने की आवश्यकता नहीं है । यदि प्रतिवादी या अभियुक्त मर जावे या कहीं विपत्ति में पड़ जावे तो एक तरफा साक्षी लेकर उसका सार असार जानकर यदि अभियोक्ता मिथ्यावादी सिद्ध हो-तो उसपर सरकारी दंड करके उससे उचित कार्य कराया जावे । यदि वह नगर में सेवा करना मान ले, तो उसे नगर में जाया जा सकता है । उसके पास अधिक धन हो-तो राजसों के नाश करने के यत्न, इसके द्वारा करवाये जावे । ब्राह्मणों से यह काम नहीं करवाया जा सकता । यदि बड़ा अपराधी हो-तो उसे राजसों को बलि भी चढ़ाया जा सकता है ॥ ४२-४६ ॥

चतुर्वर्णाश्रमस्यायं लोकस्याचाररक्षणात् ।

नश्यतां सर्वधर्माणां राजा धर्मप्रवर्तकः ॥ ५० ॥

चारों वर्ण, चारों आश्रम, और संसार के सारे मनुष्यों के आचार का रक्षक होने से राजा सारे नष्ट होते हुए धर्मों का प्रवर्तक माना गया है ॥ ५० ॥

धर्मश्च व्यवहारश्च चरित्रं राजशासनम् ।

विवादार्थश्चतुष्पादः पश्चिमः पूर्ववाधकः ॥ ५१ ॥

तत्र सत्ये स्थितो धर्मो व्यवहारस्तु साक्षिणु ।

चरित्रं संग्रहे पुंसां राज्ञामाज्ञा तु शासनम् ॥ ५२ ॥

धर्म, व्यवहार- चरित्र और राजा शासन-ये चार विवाद (मुकदमे) के पाद माने गए हैं-इन में सब से पिछला राज शासन सब से अधिक बलवान है । अर्थात् धर्म आदि सारी बातें किसी मुकदमे के निबटाने में राजाज्ञा की बराबर नहीं होती है, क्योंकि धर्म तो सत्य, व्यवहार 'मुकदमा' साक्षी, चरित्र, संग्रहण आदि स्थानों में प्रसिद्ध रहता है । इस से राजा की आज्ञा ही सर्वोपरि शासन है ॥ ५१-५२ ॥

राज्ञः स्वधर्मः स्वर्गाय प्रजा धर्मेण रक्षितुः ।

अरिचतुर्वा क्षेप्तुर्वा मिथ्यादण्डमतो ऽन्यथा ॥ ५३ ॥

धर्म के साथ प्रजा की रक्षा करना राजा का अपना धर्म है, इसी से राजा को स्वर्ग को प्राप्ति होती है । जो राजा-प्रजा की रक्षा नहीं करता या व्यर्थ पीड़ा पहुंचाता है, उस को मिथ्याभाषी पुरुष की बराबर दंड होना चाहिए ॥ ५३ ॥

दण्डो हि केवलो लोकं परं चेमं च रक्षति ।

राज्ञा पुत्रे च शत्रौ च यथादोषं समं धृतः ॥ ५४ ॥

दंड ही इस लोक और परलोक की रक्षा करता है इसी से राजा-पुत्र और शत्रु को उसके दोष के अनुसार दंड दिया करता है ॥ ५४ ॥

अनुशासद्वि धर्मेण व्यवहारेण संस्थया ।

न्यायेन च चतुर्थेन चतुरन्तां महीं जयेत् ॥ ५५ ॥

जो राजा, धर्म, व्यवहार, चरित्र और चतुर्थ न्याय के अनुसार प्रजा का पालन करता है, वह चारों समुद्र से घिरी हुई इस पृथ्वी के शासन करने में समर्थ होता है ॥ ५५ ॥

संस्थया धर्मशास्त्रेण शास्त्रं वा व्यावहारिकम् ।

यस्मिन्नर्थे विरुध्येत धर्मणार्थं विनिर्णयेत् ॥ ५६ ॥

चरित्र, धर्मशास्त्र, व्यावहारिक शास्त्र, 'कानून' का जहां विरोध हो वहाँ धर्मानुसार न्याय से ही उनका निर्णय करना चाहिए ॥ ५६ ॥

शास्त्रं विप्रतिपद्येत धर्मन्यायेन केनचित् ।

न्यायस्तत्र प्रमाणं स्यात्तत्र पाठो हि नश्यति ॥ ५७ ॥

यदि धार्मिक न्याय के सन्मुख व्यावहारिक शास्त्र का विरोध हो-तो वहां न्याय 'धर्म' ही प्रमाण है, ऐसे स्थान पर राज्य शासन का निषेध कर देना चाहिए ॥ ५७ ॥

दृष्टदोषः स्वयंवादः स्वपक्षपरपक्षयोः ।

अनुयोमार्जयं हेतुः शपथश्चार्थसाधकः ॥ ५८ ॥

जिसके वाद में प्रत्यक्ष दोष हों । जो अपने और परपक्ष के विषय में अपने दोष को स्वयं स्वीकार करले । सीधी तरह से किए गए प्रश्न 'जिरह' हेतु 'प्रमाण' और शपथ-ये बातें झगड़े के निबटाने में बड़ी सहायक हैं ॥ ५८ ॥

पूर्वोत्तरार्थव्याघाते साक्षिवक्तव्यकारणे ।

चारहस्ताच्च निष्पाते प्रदेष्टव्यः पराजयः ॥ ५९ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे विवादपदनिबन्धः प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥

आदितो ऽष्टपञ्चाशः ॥ ५८ ॥

जब वादी और प्रति वादी के विवाद में परस्पर बड़ा विरोध हो, तथा साक्षी कथन और गुप्तचरों को कारण मानकर उस विवाद का न्यायाधीश को निर्णय 'फैसला' करना चाहिए । इसी के अनुसार न्यायाधीश, जयपराजय की आज्ञा जारी करे ॥ ५९ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में व्यवहार और विवाद
'दीवानी और फौजदारी' के मुकदमों के विषय के वर्णन का पहिला
अध्याय समाप्त हुआ ।



द्वितीय अध्याय

विवाह धर्म, स्त्रीधन और आधिपदेनिक ।

५६वां प्रकरण

विवाह

विवाह के धर्म, उसमें दिया हुआ कन्यादान (स्त्रीधन) तथा पति दूसरा विवाह करे-तो स्त्री को देय धन की व्यवस्था का अर्थ इस प्रकरण में वर्णन किया जाता है ।

विवाहपूर्वो व्यवहारः । ॥ १ ॥ कन्यादानं कन्यामलंकृत्य ब्राह्मो विवाहः
॥ २ ॥ सहधर्मचर्या प्राजापत्यः ॥ ३ ॥ गोमिथुनादानादार्षः ॥ ४ ॥ अन्तर्वे-
द्यामृत्विजे दानादैवः ॥ ५ ॥ मिथःसमवायाद्गान्धर्वः ॥ ६ ॥ शुल्कादानादासुरः
॥ ७ ॥ प्रसह्यादानाद्राक्षसः ॥ ८ ॥ सुप्तमत्तादानात्पैशाचः ॥ ९ ॥ पितृप्रमाणा-
श्रत्वारः पूर्वे धर्म्याः ॥ १० ॥ मातापितृप्रमाणाः शेषाः ॥ ११ ॥ तौ हि शुल्क-
हरौ दुहितुः ॥ १२ ॥ अन्यतराभावे ऽन्यतरो वा ॥ १३ ॥ अद्वितीयं शुल्कं
स्त्री हरेत् ॥ १४ ॥ सर्वेषां प्रीत्यारोपणमप्रतिषिद्धम् ॥ १५ ॥

संसार के सारे व्यवहारों का विवाह के अनन्तर ही आरम्भ होता है । किसी की कन्या का सन्तानोत्पत्ति निमित्त ग्रहण करना विवाह माना गया है । कन्या को आभूषण वस्त्र आदि से अलंकृत करके जो कन्या का दान किया जाता है, इसे ब्राह्मविवाह कहते हैं । वर और कन्या, दोनों साथ २ रहकर संसार यात्रा करने की प्रतिज्ञा करके, वर जब कन्या ग्रहण करता है, तो प्राजापत्य विवाह कहाता है । वर-कुल से गौ का जोड़ा लेकर जो कन्या दान किया जाता है, वह आर्ष विवाह है । [यह गौ मिथुन कन्या निमित्त या विवाह व्यय निमित्त समझना चाहिए] वेदी के समीप बैठ कर किसी याज्ञिक तपस्वी के लिए कन्या दान कर देना दैव विवाह है । जब वर और कन्या दोनों प्रसन्नता पूर्वक मिल बैठे-तो यह गान्धर्व विवाह कहाता है । कन्या के पिता आदि को धन देकर जो विवाह किया जाता है, वह आसुर विवाह है । बल पूर्वक कन्या का छीन लेना राक्षस विधि है । सोती और नशा आदि से उन्मत्त हुई कन्या से विवाह कर लेना पिशाच विवाह कहाता है ।

पिता की इच्छा के अनुकूल होने से प्रथम के ब्राह्म आदि चार विवाह धर्म सम्मत हैं । अन्य चार विवाह, माता पिता के स्वार्थ पर अवलम्बित हैं, इनमें दोनों माता और पिता, कन्या के शुल्क [मोल] के अधिकारी होते हैं, क्योंकि वे ही दोनों अपनी कन्या पर शुल्क ले सकते हैं, इन दोनों माता पिता में से एक न हो-तो-जो हो वह कन्या के शुल्क का अधिकारी है यदि दोनों माता पिता नष्ट हो गए हों-तो इस शुल्क का अधिकारी वही कन्या मानी जावेगी । इन सारे विवाहों में वर और कन्या की प्रीति (मन्जूरी) की बड़ी आवश्यकता है, यदि बल-पूर्वक किये हुए विवाह के अनन्तर वर या कन्या प्रसन्न न हो-तो विवाह नहीं माना जा सकता है ॥१-१५॥

स्त्री धन ।

वृत्तिरावध्यं वा स्त्रीधनम् ॥ १६ ॥ परद्विसाहस्रा स्थाप्या वृत्तिः ॥१७॥
आवध्यानियमः ॥ १८ ॥ तदात्मपुत्रस्तुषभमंणि प्रयासाप्रतिविधाने च भार्याया
भोक्तुमदोषः ॥ १९ ॥ प्रतिरोधकन्याधिदुर्भिक्षभयप्रतीकारे धर्मकार्ये च पत्युः
॥ २० ॥ संभूय वा दंपत्योर्मिथुनं प्रजातयोस्त्रिवर्षोपभुक्तं च धर्मिष्ठेषु विवाहेषु
नानुयुज्जीत ॥ २१ ॥ गान्धर्वासुरोपभुक्तं सवृद्धिकमुभयं दाप्येत ॥ २२ ॥ राज्ञ-
सपैशाचोपभुक्तं स्तेयं दद्यात् ॥ २३ ॥ इति विवाहधर्मः ॥ २४ ॥

जो वर की ओर से कन्या को धन दिया जाता है अर्थात् वस्त्र आभूषण आदि चढ़ाए जाते हैं, वह स्त्री धन कहाता है । यह दो प्रकार का है, वृत्ति और आवध्या, नकद रुपये को वृत्ति और आभूषण आदि को आवध्य कहते हैं । वृत्ति (नकद रुपया) दो हजार से अधिक होना चाहिए और आभूषण आदि आवध्य धन का कोई नियम नहीं है । यदि पति विदेश चला गया और स्त्री का कोई प्रबन्ध कर गया-तो स्त्री उस धन में से अपने पुत्र, पुत्रवधू आदि का पालन पोषण कर सकती है । कुटुम्ब पर आई हुई विपत्ति, व्याधि, दुर्भिक्ष, किसी भय प्रतीकार में तथा धर्म कार्य में पति भी उस स्त्री धन में से व्यय [खर्च] कर सकता है इसमें दोष नहीं माना जाता । यदि उन वर और कन्या के विवाह के अनन्तर दो बच्चे उत्पन्न हो गए या उनके धार्मिक विवाह को तीन वर्ष व्यतीत हो चुके-तो वे दोनों मिलकर उस धन का व्यय कर सकते हैं । यदि किसी ने गान्धर्व और आसुर विवाह किये, उनसे राज्य की ओर से जो स्त्री धन नियत किया गया, यदि वे खर्च कर डाले-तो उनसे व्याज सहित जमा करवा लेना चाहिए । जिन्होंने राजस या पैशाच विवाह किया हो और वे स्त्री धन को उड़ा दें-तो उनको चोरी का दण्ड मिलना चाहिए । यहां तक विवाह के धर्मों के विषय में विवेचना की गई ॥१६-२४॥

मृते भर्तरि धर्मकामा तदानीमेवांस्थाप्याभरणं शुल्कशेषं च लभेत ॥२५॥
 लब्ध्वा वाविन्दमाना सवृद्धिकमुभयं दाप्येत ॥ २६ ॥ कुटुम्बकामा तु श्वशुरप-
 तिदत्तं निवेशकाले लभेत ॥ २७ ॥ निवेशकालं हि दीर्घप्रवासे व्याख्यास्यामः
 ॥ २८ ॥ श्वशुरप्रातिलोभ्येन वा निविष्टा श्वशुरपतिदत्तं जीयेत ॥ २९ ॥ ज्ञाति-
 हस्तादभिमृष्टायां ज्ञातया यथागृहीतं दद्यात् ॥ ३० ॥ न्यायोपगतायाः प्रतिपत्ता
 स्त्रीधनं गोपायेत् ॥ ३१ ॥ पतिदायं विन्दमाना जीयेत ॥ ३२ ॥ धर्मकामा
 भुञ्जीत ॥ ३३ ॥

यदि किसी स्त्री का पति मर जावे, और वह अपने जीवन को पूर्व पति की स्मृति में ही धर्मानुसार व्यतीत करना चाहे, तो उसको वे आभूषण और नकद रुपया शीघ्र मिल जाना चाहिए। यदि उस धन को पाकर वह फिर विवाह करना चाहे, तो उससे वह धन व्याज सहित वापिस लेना उचित है। जो केवल सन्तान के निमित्त ही कुछ दिन को विवाह करना चाहे-तो वह विवाह के समय श्वशुर और पति के दिए हुए धन को पा सकती है। ऐसी स्त्री का विवाह काल क्या है, यह बात दीर्घप्रवास प्रकरण में लिखी जावेगी। यदि कोई स्त्री अपने श्वशुर की इच्छा के विरुद्ध विवाह करना चाहती है, तो श्वशुर और पति के दिए हुए धन के लेने का उसको हक नहीं है। यदि उसका स्त्री धन बन्धु बान्धवों के पास है, तो वे उस धन को इस समय वापिस कर दें। क्योंकि अब जो न्याय पूर्वक स्त्री की रक्षा करेगा, वही उस स्त्री धन की रक्षा का भी अधिकारी है। यदि स्त्री पुनर्विवाह करना चाहती है, तो वह अपने पति का दाय भाग नहीं पा सकती। यदि वह धर्मानुसार पूर्व पति के नाम पर ही जीवन व्यतीत करती है, तो उसे अपने पति का दाय भाग (हिस्सा) मिल सकेगा ॥२५-३३॥

पुत्रवती विन्दमाना स्त्रीधनं जीयेत ॥३४॥ तत्तु स्त्रीधनं पुत्राहरेयुः ॥३५॥
 पुत्रभरणार्थं वा विन्दमाना पुत्रार्थं स्फातीकुर्यात् ॥ ३६ ॥ बहुपुरुषप्रजानां
 पुत्राणां यथापितृदत्तं स्त्रीधनमवस्थापयेत् ॥ ३७ ॥ कामकारणीयमपि स्त्रीधनं
 विन्दमाना पुत्रसंस्थं कुर्यात् ॥ ३८ ॥ अपुत्रा पतिशयनं पालयन्ती गुरुसमीपे
 स्त्रीधनमायुःक्षयाद्भुञ्जीत ॥ ३९ ॥ आपदर्थं हि स्त्रीधनम् ॥ ४० ॥ ऊर्ध्वं दायदं
 गच्छेत् ॥ ४१ ॥

यदि कोई पुत्रवती विधवा होने पर विवाह करना चाहती है, तो वह स्त्री धन को नहीं पा सकती, क्योंकि उस धन के अधिकारी उसके पुत्र हैं। यदि कोई स्त्री अपने पुत्रों के भरण पोषण के निमित्त विवाह करना चाहे, तो उस धन को अपनी सन्तान के नाम

सरकारी तौर पर सुरक्षित कर दे । यदि किसी स्त्री के पृथक् २ सन्तान, पृथक् २ विवाहित पतियों से हुई हैं, तो वह स्त्री उन २ पिताओं के दिए हुए स्त्री धन को उनके पुत्रों के नाम सुरक्षित करादे । अपनी इच्छानुसार खर्च करने को प्राप्त हुए स्त्री धन को भी इस दशा में वह अपने पुत्रों को देदे । जिस स्त्री के पुत्र नहीं है और वह अपने पति के नाम पर बैठी हुई धर्म-पूर्वक जीवन व्यतीत करती है-तो वह अपने किसी पूज्य सम्बन्धी के पास रहकर अपने स्त्री धन का आयुपर्यन्तभोग कर सकती है । उसको देने का अधिकार नहीं है, उसके मरने पर उसके हक्कदार उसे प्राप्त करलें ॥३४-४१॥

जीवति भर्तरि मृतायाः पुत्रा दुहितरश्च स्त्रीधनं विभजेरन् ॥ ४२ ॥

अपुत्राया दुहितरः ॥ ४३ ॥ तदभावे भर्ता ॥ ४४ ॥ शुल्कमन्वाधेयमन्यद्रा

वन्धुभिर्दत्तं वान्धवा हरेयुः ॥ ४५ ॥ इति स्त्रीधनकल्पः ॥ ४६ ॥ -

पति के जीवित रहने पर यदि स्त्री मर जाय, तो उस स्त्री धन को पुत्र और पुत्री बांट लें । यदि उसके कोई पुत्र न हों-तो उसकी पुत्रियां ही उस स्त्री धन को बांट सकती हैं । यदि उस दम्पती के कोई सन्तान न हो और स्त्री मर जावे, तो उस धन का पति अधिकारी है । जो कुछ स्त्री का शुल्क या घोरोहर के ढंग पर तथा अन्य किसी प्रकार का ऐसा ही धन स्त्री के पास हो-तो उसके वान्धव उस धन के ग्रहण करने के अधिकारी हैं । यहां तक स्त्री धन के विषय में विचार किया गया है ॥४२-४६॥

वर्षाण्यष्टावप्रजायमानामपुत्रां वन्ध्यां चाकांक्षेत ॥ ४७ ॥ दश निन्दुं

द्वादश कन्याप्रसविनीम् ॥ ४८ ॥ ततः पुत्रार्थी द्वितीयां विन्देत ॥ ४९ ॥

तस्यातिक्रमे शुल्कं स्त्रीधनमर्धं चाधिवेदनिकंदद्यात् ॥ ५० ॥ चतुर्विंशतिपणपरं

च दण्डम् ॥ ५१ ॥ शुल्कस्त्रीधनमशुल्कस्त्रीधनायांतत्प्रमाणमाधिवेदनिकमनुरूपं

च वृत्तिं दत्त्वा बह्वीरपि विन्देत ॥ ५२ ॥ पुत्रार्था हि स्त्रियः ॥ ५३ ॥

यदि किसी स्त्री के सन्तान न होने से अपुत्रवती या वन्ध्या हो तो उसका पति आठ वर्ष प्रतीक्षा करे, यदि किसी के मृत सन्तान हों-तो दस और कन्या ही कन्या उत्पन्न हों-तो बारह वर्ष प्रतीक्षा करे-उसके अनन्तर वह पुत्र का अभिलाषी द्वितीय विवाह कर सकता है । जो इस आज्ञा के विरुद्ध करे-उस को कन्या शुल्क स्त्री धन, तथा द्वितीय विवाह सम्बन्धी धन-सब कुछ देना पड़ेगा । और राज्य की ओर से उस पर बीस पण दण्ड होगा । कोई भी पुरुष, अपनी पूर्व स्त्री को शुल्क धन और स्त्री धन तथा जिस के पास शुल्क या स्त्री धन न हो-उसको आधिवेदनिक (द्वितीय विवाह का शुल्क) के रूप में इन्हीं सब की बराबर का रुपया देकर द्वितीय विवाह कर सकता है । इस तरह वह कितने भी विवाह करे, क्योंकि स्त्री तो केवल सन्तान उत्पत्ति के साधन हैं ॥ ४७-५३ ॥

तीर्थसमवाये चासां यथाविवाहं पूर्वोदां जीवत्पुत्रां वा पूर्वं गच्छेत् ॥५४॥
 तीर्थगूहनागमने पणवतिर्दण्डः ॥ ५५ ॥ पुत्रवतीं धर्मकामां वन्ध्यां विन्दुं नीर-
 जस्कां वा नाकामामुपेयात् ॥ ५६ ॥ न चाकामः पुरुषः कुष्ठिनीउन्मत्तां वा
 गच्छेत् ॥ ५७ ॥ स्त्री तु पुत्रार्थमेवंभूतं वोपगच्छेत् ॥ ५८ ॥

यदि बहुत स्त्रियों के पति की कई स्त्रियाँ एक दम ऋतुमति हो जावे-तो पति प्रथम विवाहिता या पुत्रवती के पास जावे । यदि कोई किसी स्त्री के ऋतुकाल को टलाकर उसमें गमन नहीं करता-तो उसपर छियानवें पण (मुद्रा) दण्ड होना चाहिए । जो पुरुष व्रताचारव्रती पुत्रवती, वन्ध्या, विन्दु (मृत पुत्रोत्पादन करने वाली) रजोहीन स्त्रियाँ यदि संभोग की इच्छा न करे-तो उनके पास न जावे । काम से पागल हुए बिना पुरुष, कुष्ठिनी या उन्मत्त (पागल) स्त्री के साथ संसर्ग न करे । भार्या, पुत्रोत्पत्ति की लालसा से कुप्री या उन्मत्त (पुरुष) के साथ भी संसर्ग कर सकती है ॥ ५४-५८ ॥

नीचत्वं परदेशं वा प्रस्थितो राजकिन्चिपी ।

प्राणाभिहन्ता पतितस्त्याज्यः झ्रियो ऽपि वा पतिः ॥ ५९ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे विवाहसंयुक्ते विवाहधर्मः स्त्रीधनकल्प

आधिवेदनिकं द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥

आदितः एकोनपण्डितमो ऽध्यायः ॥ ५९ ॥

कोई भी स्त्री-नीच, परदेश में गए हुए (जिनके आने की आशा न हो) राजा से सजा पाए हुए, प्राणघात की चेष्टा करने में लग्न, पतित (ईसाई, मुसलमान आदि हो जाने वाले) तथा नपुंसक पति को छोड़ सकती है ॥ ५९ ॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत

अधिकरण में विवाह धर्म,

स्त्रीधन और द्वितीय विवाह के सम्बन्ध के धन की व्यवस्था का दूसरा

अध्याय समाप्त हुआ ।

तृतीय अध्याय

५६ वां प्रकरण

इस प्रकरण में भी विवाह से संबन्ध रखने वाली शुश्रूषा पालन पोषण आदि की व्यवस्था का वर्णन होगा ।

द्वादशवर्षा स्त्री प्राप्तव्यवहारा भवति ॥ १ ॥ षोडशवर्षः पुमान् ॥ २ ॥
अत ऊर्ध्वमशुश्रूषायां द्वादशपणः स्त्रिया दण्डः पुंसो द्विगुणः ॥ ३ ॥ भर्मण्या-
यामनिर्दिष्टकालायां त्रासाच्छादनं वाधिकं यथापुरुषपरिवापं सविशेषं दद्यात्
॥ ४ ॥ निर्दिष्टकालायां तदेव संख्याय बन्धं च दद्यात् ॥ ५ ॥ शुल्कस्त्रीधनाधि-
वेदनिकानामनादाने च ॥ ६ ॥ श्वशुरकुलप्रविष्टायां विभक्तायां वा नाभियोज्यः
पतिः ॥ ७ ॥ इति भर्म ॥ ८ ॥

बारह वर्ष की स्त्री और सोलह वर्ष का पुरुष प्राप्त व्यवहार (मुकदमे के योग्य अर्थात् बालिग) माने जावेंगे, बारह और सोलह वर्ष की अवस्था के ऊपर जो कोई भी स्त्री और पुरुष, राजा के कानून को ध्यान से नहीं सुनेगा-उनमें स्त्री पर बारह पण और पुरुष पर चौबीस पण दण्ड होना चाहिए, यदि किसी स्त्री के भरण पोषण का काल नियत नहीं है तो उसको भोजन वस्त्र या अपनी आमदनी और परिवार के अनुसार अधिक भी नियत कर सकता है । यदि किसी स्त्री का समय नियत है, तो उसके देय धन की संख्या नियत करके बन्धन पूर्वक दे देना चाहिए । तथा जिसने शुल्क, स्त्रीधन या आधिवेदनिक (द्वितीय विवाह का शुल्क) कुछ भी ग्रहण नहीं किया-उसको भी एक नियत रक्तम बांध देनी चाहिए । यदि स्त्री अपने पितृकुल (पीहर) में रहने लग जावे-या अपने को पृथक् रखने लगे-तो उसके भरण पोषण का भार पति पर नहीं है-यहां तक शुश्रूषा और भरण पोषण की व्यवस्था का वर्णन किया गया ॥ १-८ ॥

नग्रे विनग्रे न्यङ्गे ऽपितृके ऽमातृक इत्यनिर्देशेन विनयग्राहणम् ॥ ९ ॥
वेणुदलरज्जुहस्तानामन्यतमेन वा पृष्ठे विराधातः ॥ १० ॥ तस्यातिक्रमे वाग्दण्ड-
उपाख्यदण्डाभ्यामर्धदण्डाः ॥ ११ ॥ तदेव स्त्रिया भर्तारि प्रसिद्धायामदोषायामीर्ष्याया
बाह्यविहारेषु द्वारेष्वत्ययो यथानिर्दिष्टः ॥ १२ ॥ इति पाख्यम् ॥ १३ ॥

यदि स्त्री आज्ञा न मानती हो-तो पति-नंगी, अधनंगी, लंगड़ी, लूली, बाप मरी, मां मरी आदि गाली न देकर उसे नम्रता पूर्वक रहने की प्रथम शिक्षा देवे। यदि इस प्रकार शिक्षा देने पर भी वह कथित बात पर ध्यान न देवे-तो उसके बांस की पतली लकड़ी [खपड़ी] रस्सी या तीन थप्पड़ पीठ में मारे जा सकते हैं। यदि फिर भी वह न माने तो वाग्दण्ड और पारुष्य दण्ड का आधा दण्ड उनको दिया जा सकता है। (वाग्दण्ड और पारुष्य दण्ड का वर्णन आगे किया जावेगा) इसी प्रकार यद्यपि स्त्री अदोष है, परन्तु भर्ता से ईर्ष्या (पर स्त्री गमन आदि के कारण) के कारण वह ब्राह्म विहार (बाहर के घूमने के स्थान) या द्वार पर कोई कुचेष्टा करे-तो उसका दण्ड बताया गया है। यहां तक कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई ॥ ६-१३ ॥

भर्तारं द्विपती स्त्री सप्तार्तवान्यमण्डयमाना तदानीमेव स्थाप्याभरणं निधाय भर्तारमन्यया सह शयानमनुशयीत ॥ १४ ॥ भिक्षुक्यन्वाभिज्ञातिकुलाना- मन्यतमे वा भर्ता द्विषन्स्त्रियमेकामनुशयीत ॥ १५ ॥ दुष्टलिङ्गे मैथुनापहारे सवर्णापसर्पोपगमे वा मिथ्यावादी द्वादशपणं दद्यात् ॥ १६ ॥ अमोक्ष्या भर्तुर- कामस्य द्विषती भार्या ॥ १७ ॥ भार्यायाश्च भर्ता ॥ १८ ॥ परस्परं द्वेषान्मोक्षः ॥ १९ ॥ स्त्रीविप्रकाराद्वा पुरुषश्चेन्मोक्षमिच्छेद्यथागृहीतमस्यै दद्यात् ॥ २० ॥ पुरुषविप्रकाराद्वा स्त्री चेन्मोक्षमिच्छेन्नास्ये यथा गृहीतं दद्यात् ॥ २१ ॥ अमोक्षो धर्मविवाहानामिति ॥ २२ ॥ प्रतिषिद्धा स्त्री दर्पमद्यक्रीडायां त्रिपणं दण्डं दद्यात् ॥ २३ ॥ दिवा स्त्रीप्रेक्षाविहारगमने षट्पणो दण्डः ॥ २४ ॥ पुरुषप्रेक्षाविहार- गमने द्वादशपणः ॥ २५ ॥ रात्रौ द्विगुणः ॥ २६ ॥

भर्ता से द्वेष करने वाली स्त्री सात ऋतु तक अपने पति से द्वेष करके यदि वह दूसरे को चाहती रहे-तो वह अपना स्त्रीधन आदि भर्ता को सौंपकर अपने भर्ता को दूसरे विवाह की छुट्टी देकर आप उस से पृथक् हो जावे। यदि भर्ता अपनी स्त्री से द्वेष रखता है, तो वह उसे सन्यासिनी होने या स्त्रीधन के रक्षक तथा अपने बन्धु बाँधव के मध्य में अकेली रहने की छुट्टी (फारगती) देदे। यदि पति के शरीर पर मैथुन आदि के चिन्ह सपष्ट हों, अथवा किसी अपनी सवर्ण स्त्री के पास गमन करके भी मैथुन का अप- लाप करे-तो उस मिथ्या वादी पति से स्त्री को बारह पण दिलाने चाहिए, यदि स्त्री भर्ता से द्वेष करती है, परन्तु पति उसको छोड़ना नहीं चाहता तो इस दशा में स्त्री को छुटकारा नहीं दिया जा सकता। यदि बिना अपराध पति स्त्री को छोड़ना चाहता है, और स्त्री छोड़ना नहीं चाहती है-तो भी पति पत्नी पृथक् २ नहीं हो सकते हैं। यदि दोनों परस्पर द्वेष करने

लगे-तो उनको शीघ्र छुटकारा मिल सकता है । यदि स्त्री की किसी बुराई के कारण पुरुष उसे छोड़ना चाहता है-तो जो स्त्रीधन आदि उसका है, वह उसे फौरन देदे । पुरुष की किसी बुराई (दोष) के कारण स्त्री पुरुष को छोड़ना चाहती है, तो उसको उस स्त्रीधन आदि का कुछ भाग नहीं मिल सकता है । धर्म पूर्वक किए गए ब्राह्म आदि चारों विवाहों में छोड़ना (तलाक) जायज नहीं है । त्यागी हुई स्त्री अभिमान युक्त और निर्लज्ज होकर जो मद्य पीवे या क्रीड़ा करे -तो उसपर तीन पण (स्वर्ण मुद्रा) दण्ड होना चाहिए । यदि कोई स्त्री, दिनमें भी स्त्रियों के नाटक घर और क्रीड़ा स्थानों में जावे-तो उनपर छः पण (स्वर्ण मुद्रा) दण्ड होना चाहिए । यदि पुरुषों के प्रेक्षा गृह में या विहारस्थल में कोई उद्दण्ड स्त्री पहुंच जावे-तो उसपर बारह पण और रात में चौबीस पण दण्ड कहा गया है ॥ १४-२६ ॥

सुप्तमत्तप्रव्रजने भर्तुरदाने च द्वारस्य द्वादशपणः ॥२७॥ रात्रौ निष्कासने द्विगुणः ॥ २८ ॥ स्त्रीपुंसयोर्मैथुनार्थेनाङ्गविचेष्टायां रहोऽश्लीलसंभाषायां वा चतुर्विंशतिपणः स्त्रिया दण्डः ॥ २९ ॥ पुंसो द्विगुणः ॥ ३० ॥ केशनीवीदन्त-नखावलम्बनेषु पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३१ ॥ पुंसो द्विगुणः ॥ ३२ ॥ शङ्कितस्थाने संभाषायां च पणस्थाने शिफादण्डः ॥३३॥ स्त्रीणां ग्राममध्ये चण्डालः पक्षान्तरं पञ्चशिफा दद्यात् ॥३४॥ पणिकं वा प्रहारं मोक्षयेत् ॥३५॥ इत्यतिचारा ॥३६॥

यदि कहीं अन्य सोने, नशा करने या बाहर चले जाने पर फिर लौटकर आए हुए पति को जो स्त्री द्वार नहीं खोले-उसपर बारह पण दण्ड होना चाहिए । यदि कोई स्त्री अपने पति को रात में बाहर निकालदे-तो उसपर चौबीस पण दण्ड होवे । मैथुन के निमित्त स्त्री और पुरुषों के संकेत करने पर अथवा एकान्त में अश्लील भाषण करने पर स्त्री को चौबीस पण का दंड है और पुरुष पर अड़तालीस पण दंड होना चाहिए । केश, नावी (नाड़ा) दांत [जोर से चुम्बन लेना] नखावलम्बन [स्तन आदि पर हाथ गेरना] आदि में से स्त्रीकुछ कर बैठे-तो उसपर पूर्व साहस दंड हो और पुरुष पर इससे दुगुना दंड होना चाहिए । यदि स्त्री पुरुष शङ्कित स्थान में बात चीत करते पाये जावे-तो उनको पण दंड न देकर उनपर कौड़े लगवाए जावे । यदि कौड़े लगाने हों-ता गांव के मध्य में चांडाल, एक स्त्री के एक पक्ष में पाँच कौड़े मार सकता है । यदि इन प्रहारों के बदले जुर्माना कर दिया जावे-तो यह प्रहार मुआफ किए जा सकते हैं । यहां तक अनाचार के विषय में नियमों का वर्णन किया गया ॥ २७-३६ ॥

प्रतिषिद्धयोः स्त्रीपुंसगोरन्योपकारे क्षुद्रकद्रव्याणां द्वादशपणो दण्डः ॥३७॥ स्थूलकद्रव्याणां चतुर्विंशतिपणः ॥३८॥ हिरण्यसुवर्णयोश्चतुष्पञ्चाशत्पणः स्त्रिया

दण्डः ॥ ३६ ॥ पुंसो द्विगुणः ॥ ४० ॥ त एवागम्ययोरर्धदण्डाः ॥ ४१ ॥ तथा
प्रतिषिद्धपुरुषव्यवहारेषु च ॥ ४२ ॥ इति प्रतिषेधः ॥ ४३ ॥

यदि रोके जाने पर भी स्त्री पुरुष परस्पर छोटी मोटी वस्तु देते लेते रहे-तो उन पर वारह पण दंड होना उचित है। यदि वे बड़ी २ चीजें दें-लेवें-तो उनपर चौबीस पण दंड होना चाहिए [रोकने पर ऐसा करना व्यभिचार सूचक है] यदि वे सोना या सोने के आभूषण देवे-लेवें-तो स्त्री पर चौवन पण दंड और पुरुष पर एक सौ आठ पण दण्ड होना योग्य है। यदि स्त्री पुरुष अवतक अपने नहीं मिलने का प्रमाण देदे-तो भी उन पर आधा दण्ड अवश्य होना चाहिए-सम्भव है, वे आगे मिलने की चेष्टा करते हों। यही दंड पुरुषों को परस्पर व्यवहार रोकने पर भी व्यवहार जारी रखने के दोष में दंड है, क्योंकि जिनपर शङ्का है, उनको रोकने पर भी व्यवहार रखना अपराध का कारण माना जावेगा। यहाँ तक उपकार या व्यवहार के प्रतिषेध के नियमों की व्याख्या हुई ॥ ३७-४३ ॥

राजद्विष्टातिचाराभ्यामात्मापक्रमणेन च ।

स्त्रीधनानीतशुल्कानामस्वाम्यं जायते स्त्रियाः ॥ ४४ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीयेऽधिकरणे विवाहसंयुक्ते शुश्रूषाभर्मपारुष्यद्वेषातिचारा
उपकारव्यवहारप्रतिषेधाश्च तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

आदितः षष्ठितमः ॥ ६० ॥

राजा के द्वेष, आचार के उल्लंघन आत्मापक्रमण [आवारगद] कर लेने पर कोई भी स्त्री, स्त्रीधन, अनीत धन [पति के दूसरे विवाह के समय प्राप्त धन] तथा शुल्क अर्थात् अपने विवाहके समय प्राप्त धन पर अपना प्रभुत्व नहीं रख पाती हैं अर्थात् इस धन पर उस का अधिकार नहीं रह जाता है ॥ ४४ ॥

इति श्रीकौटिलीयअर्थशास्त्रन्तर्गत अभ्यक्त प्रचार अधिकरण में विवाह सम्बन्धी
शुश्रूषाआदि के वर्णन का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ।

ॐ नमः शिवाय

चौथा अध्याय

५६वां प्रकरण

इस प्रकरण में भी विवाह सम्बन्धी निष्पत्तन आदि का वर्णन किया जावेगा ।

पतिकुलान्निष्पतितायाः स्त्रियाः षट्पणो दण्डोऽन्यत्र विप्रकारात् ॥ १ ॥
 प्रतिषिद्धायां द्वादशपणः ॥ २ ॥ प्रतिवेशगृहातिगतायाः षट्पणः ॥ ३ ॥ प्राति-
 वेशिकभिक्तुकवैदेहकानामवकाशभिक्षापण्यादाने द्वादशपणो दण्डः ॥ ४ ॥ प्रति-
 षिद्धानां पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५ ॥ परगृहातिगतायां चतुर्विंशतिपणः ॥ ६ ॥ पर-
 भार्यावकाशदाने शत्यो दण्डोऽन्यत्रापद्भ्यः ॥ ७ ॥

यदि स्त्री के साथ कोई अत्याचार न हुआ हो और वह पति कुल से किसी भी कारण से भाग कर चली आवे-तो उसपर छः पण दण्ड होना चाहिए। पति के रोकने पर भी यदि स्त्री मौका पाकर भाग निकले-तो उसपर बारह पण दण्ड होना चाहिए। यदि भागकर पड़ोसी के घर में जा छुपे तो छः पण दण्ड होना चाहिए। पति की आज्ञा के बिना पड़ोसी को घर में स्थान, भिक्षक को भिक्षा और व्यापारी को माल बेच देने पर स्त्री को बारह पण दण्ड देना चाहिए। यदि जिनका आना जाना रोका जा चुका-उनके साथ स्त्री ये व्यवहार करे-तो उसपर पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए। यदि स्त्री, दूर के घरों तक दौड़ लगाने लग जावे-तो उसपर चौबीस पण दण्ड देना योग्य है। यदि किसी अन्य स्त्री पर कोई आपत्ति नहीं है और उस स्त्री को अपने घर में जो स्त्री ठहरा लेती है, तो उसपर सौ पण दण्ड होना चाहिए ॥१-७॥

वारणाज्ञानयोर्निर्दोषः ॥ ८ ॥ पतिविप्रकारात् पतिज्ञातिसुखावस्थग्रामिका-
 न्वाधिभिक्तुकीज्ञातिकुलानामन्यतममपुरुषं गन्तुमदोष इत्याचार्याः ॥ ९ ॥ सपुरुषं
 वा ज्ञातिकुलं कुतो हि साध्वीजनस्य छलं सुखमेतदवबोद्धुमिति कौटल्यः ॥१०॥
 प्रेतव्याधिव्यसनगर्भनिमित्तमप्रतिषिद्धमेव ज्ञातिकुलगमनम् ॥ ११ ॥ तन्निमित्तं
 वारयतो द्वादशपणो दण्डः ॥ १२ ॥ तत्रापि गूहमाना स्त्रीधनं जीयेत ॥ १३ ॥
 ज्ञातयो वा छादयन्तः शुल्कशेषम् ॥ १४ ॥ इति निष्पतनम् ॥ १५ ॥

यदि स्त्री मना करती रहे और वह आने वाली स्त्री चली आवे-तथा अपने पति के रोकने की आज्ञा का पता न हो-तो इस दशा में उस स्त्री पर कोई दण्ड नहीं होगा। पति के निकाल देने पर पति के बान्धव, सुखी लोग, गांव के पटेल, अपने धन के निरीक्षक, संन्यासिनी तथा अपने सम्बन्धियों में से किसी के घर चली जाने पर कोई भी स्त्री, दूषित नहीं मानी जावेगी ऐसा पूर्वाचार्यों का मत है। कौटल्य के मत में पुरुषों से भरे हुए भी बन्धु-बान्धवों के घरों पर साध्वी स्त्री जा सकती है, क्योंकि यदि स्त्री का कोई छल होगा-तो वह इस तरह पहचाना जा सकेगा। मृत्यु, बीमारी, आपत्ति और गर्भ

निमित्त दशा में कोई भी स्त्री अपने बन्धु बान्धवों के कुल में जा सकता है-इसमें उसको रोक टोक नहीं है। यदि कोई पुरुष, ऐसे समय में भी स्त्री को सम्बन्धियों के यहां जाने से रोकता है, तो उसपर बारह पण दण्ड होना चाहिए। यदि स्त्री स्वयं जाने से अपने आपको छुपा ले-तो उसका स्त्री धन [बन्धु-बान्धवों के पास सुरक्षित धन] उनके ही पास रहेगा। यदि बन्धु-बान्धव, उत्सव के समय पर अपनी बहन बेटी को न बुलावे-तो उनको देयधन का शेष धन नहीं देना चाहिए। यहां तक स्त्री के निष्पतन [निकल जाने] की व्यवस्था का वर्णन हुआ ॥८-१५॥

पतिकुलान्निष्पत्य ग्रामान्तरगमने द्वादशपणो दण्डः स्थाप्याभरणलोपश्च ॥ १६ ॥ गम्येन वा पुंसा सहप्रस्थाने चतुर्विंशतिपणः सर्वधर्मलोपश्चान्यत्र भर्म-
दानतीर्थगमनाभ्याम् ॥ १७ ॥ पुंसः पूर्वः साहसदण्डस्तुल्यश्रेयसः ॥ १८ ॥
पापीयसो मध्यमः ॥ १९ ॥ बन्धुरदण्डयः ॥ २० ॥ प्रतिषेधे ऽर्धदण्डः ॥ २१ ॥

पति कुल से निकल कर दूसरे गांव में पहुंच जाने पर स्त्री पर बारह पण दण्ड होवे और उसका सुरक्षित धन तथा आभरण आदि भी जप्त कर लिए जावे। यदि स्त्री गम्य (मैथुन के योग्य) पुरुष के निकल जावे-तो उसपर चौबीस पण का दण्ड हो और उसके सारे धर्म [पति के साथ यज्ञ आदि करने] का नाश समझना चाहिए। पालन पोषण, दान, तीर्थगमन के निमित्त ऐसे पुरुष के साथ जाने पर भी शंका नहीं माननी चाहिए। यदि कुलीन पुरुष पूर्वोक्त अपराधों में से किसी एक को करे-तो उसे पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए। और नीचजाति वाले पुरुष को मध्यम दण्ड है। बन्धु-बान्धव अपनी बहन बेटी के आने पर अदण्डय हैं। यदि उनको रोक दिया जावे और वे फिर भी अपनी कन्या आदि को आने दे-तो उनपर आधा दण्ड होगा ॥१६-२१॥

पथि व्यन्तरे गूढदेशाभिगमने मैथुनार्थेन शङ्कितप्रतिषिद्धाभ्यां वा पथ्यनु-
सारेण संग्रहणं विद्यात् ॥ २२ ॥ तालापचार चारणमत्स्यबन्धकलुब्धकगोपालक-
शौण्डिकानामन्येषां च प्रसृष्टस्त्रीकाणां पथ्यनुसरणमदोषः प्रतिषिद्धे वा नयतः
पुंसः स्त्रियो वा गच्छन्त्यास्त एवार्धदण्डाः ॥ २४ ॥ इति पथ्यनुसरणम् ॥ २५ ॥

शंका के योग्य और प्रतिषिद्ध [रोके हुए] पुरुष के साथ गमन करते हुए मार्ग, जङ्गल और गुप्त स्थान में मैथुन की अभिलाषा से जाती हुई स्त्री को भागने के अपराध में पकड़ लेना चाहिए। गाने बजाने वाले, कथक, भाट, मछियारे, शिकारी, ग्वाले, कलवार, तथा इसी तरह के अन्य पुरुषों की स्त्रियों के मार्ग में अकेली मिल जाने पर भी यह अपराध निश्चित नहीं माना जावेगा। जिनको परस्पर मिलने या ले जाने का निषेध

कर दिया गया है, वे यदि स्त्री को ले जाते हों या स्त्री उनके साथ आप्रह से जाती हों-तो उनपर आधा दण्ड होना चाहिए । यहां तक भागने के अपराध का वर्णन हुआ ॥२२-२५॥

हस्वप्रवासिनां शूद्रवैश्यक्षत्रियब्राह्मणानां भार्याः संवत्सरोत्तरं कालमाकांक्षेन्नप्रजाताः संवत्सराधिकं प्रजाताः ॥२६॥ प्रतिविहिता द्विगुणं कालम् ॥२७॥ अप्रतिविहिताः सुखावस्था विभृयुः परं चत्वारि वर्षाण्यष्टौ वा ज्ञातयः ॥२८॥ ततो यथादत्तमादाय प्रभृच्चैयुः ॥२९॥

थोड़े समय को बाहर गए हुए शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मणों की स्त्रियां एक संवत्सर तक अपने पतियों के आने की प्रतीक्षा करे । यदि उनके पति अन्न का प्रवन्ध करके विदेश गए हों-तो दो वर्ष तक उनकी प्रतीक्षा करे । यदि आगे तक चलने वाली आजीविका का प्रवन्ध कर गए हों-तो चार वर्ष प्रतीक्षा करे यदि उनके पति उनका प्रवन्ध नहीं कर गए-तो सुखी [मालदार] भाई बन्धु उसकी चार वर्ष या आठ वर्ष तक पालना कर दें इसके अनन्तर वे अपना धन लेकर उसे [दूसरे विवाह के लिए] स्वतन्त्र कर दें ॥२६-२९॥

ब्राह्मणमधीयानां दशवर्षाण्यप्रजाता द्वादश प्रजाता राजपुरुषमायुः क्षयादाकाङ्क्षेत ॥ ३० ॥ सवर्णतश्च प्रजाता नापवादं लभेत ॥ ३१ ॥ कुटुम्बद्विलोपे वा सुखावस्थैर्विमुक्ता यथेष्टं विन्देत जीवितार्थम् ॥ ३२ ॥ आपद्रता वा धर्मविवाहात्कुमारी परिग्रहीतारमनाख्याय प्रोषितं श्रूयमाणं सप्ततीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥ ३३ ॥ संवत्सरं श्रूयमाणमाख्याय ॥ ३४ ॥ प्रोषितमश्रूयमाणं पञ्चतीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥ ३५ ॥ दश श्रूयमाणम् ॥ ३६ ॥ एकदेशदत्तशुल्कं त्रीणि तीर्थान्यश्रूयमाणम् ॥ ३७ ॥ श्रूयमाणं सप्ततीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥ ३८ ॥ दत्तशुल्कं पञ्चतीर्थान्यश्रूयमाणम् ॥ ३९ ॥ दश श्रूयमाणम् ॥ ४० ॥ ततः परं धर्मस्थैर्विसृष्टा यथेष्टं विन्देत ॥ ४१ ॥

पढ़ने के निमित्त गए हुए ब्राह्मण की अपुत्रवती नववधू दश वर्ष और पुत्रवती बारह वर्ष तक प्रतीक्षा करे । यदि कोई राज्य कार्य के निमित्त बाहर गया है तो उसकी आयु भर प्रतीक्षा करनी होगी । इस समय यदि उसके सवर्ण से सन्तान उत्पन्न हो जावे-उसकी निन्दा नहीं करनी चाहिए अर्थात् उससे कोई दण्ड नहीं लेना चाहिए । कुटुम्ब की सम्पत्ति के नाश या धन धान्य पूर्ण जेठ देवों से अपमानित होने पर अपने जीवन के निर्वाह के निमित्त स्त्री अपना दूसरा विवाह कर सकती है । धर्म विवाह होने पर आपत्ति में फँस जाने के कारण कुमारी, [अक्षतयोनि] बिना कहकर गए हुए पते वाले पति की सात ऋतुधर्म तक प्रतीक्षा करे । यदि कहकर गया हो-तो एक वर्ष तक उसकी प्रतीक्षा

करले और विदेश गए हुए बिना पते वाले पति की पांच मासिक धर्म तक प्रतीक्षा करे-यता होने पर दश मासिक धर्म तक उसकी वाट देखे। विवाह के शुल्क का एक भाग चुका देने वाले लापते पति की तीन ऋतु, काल तक और पते वाले की सात ऋतु तक एवं सारे दिये हुए शुल्क और बिना पते वाले पति की पांच ऋतु, पते वाले की दस तक वह कुमारी [अक्षत योनि स्त्री] प्रतीक्षा करे। इसके बाद, प्रत्येक स्त्री धर्माधिकारियों से आज्ञा लेकर अपनी इच्छानुसार दूसरा विवाह कर सकती है ॥३०-४१॥

तीर्थोपरोधो हि धर्मवध इति कौटल्यः ॥ ४२ ॥ दीर्घप्रवासिनः प्रव्रजितस्य प्रेतस्य वा भार्या सप्ततीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥ ४३ ॥ संवत्सरं प्रजाता ॥ ४४ ॥ ततः पतिसौदर्यं गच्छेत् ॥ ४५ ॥ बहुषु प्रत्यासन्नं धार्मिकं भर्मसमर्थं कनिष्ठभार्यवा ॥ ४६ ॥ तदभावेऽप्यसौदर्यं सपिण्डं कुल्यं वासन्नम् ॥ ४७ ॥ एतेषां एष एव क्रमः ॥ ४८ ॥

कौटल्य का मत है, कि ऋतुकाल का उपरोध (उल्लंघन) कर जाना धर्म का लोप है। लम्बे काल तक को विदेश गए-सन्यासी, मरे हुए की स्त्री सात ऋतु तक चुपरहकर फिर अपना पुनर्विवाह कर सकती है। यदि उसके कोई बच्चा हो-तो वह एक वर्ष तक चुपरह कर उसके सहोदर भाई के साथ विवाह करले-पति के अनेक सहोदर भाई हो-तो उनमें जो अधिक समीप धार्मिक और भरण पोषण में समर्थ, भार्याहीन छोटा भाई हो-तो उसके साथ उसका विवाह कर देना चाहिए, यदि सहोदर भाई न हो-तो समान गोत्र वाले, सात पीढ़ी में कुटुम्बी पति के छोटे भाई के साथ विवाह कर सकती है। इन भाइयों के विषय में यही क्रम है ॥ ४२-४८ ॥

एतानुत्क्रम्य दायदान्वेदने जातकर्मणि ।

जारस्त्रीदातृवेत्तारः संग्राताः संग्रहात्ययम् ॥ ४९ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीयेऽधिकरणे विवाहसंयुक्ते निष्पतनं पथ्यनुसरणं हस्वप्रवासः

दीर्घप्रवासश्च चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ विवाहसंयुक्तं समाप्तम् ।

आदित एकषष्टितमः ॥ ६१ ॥

इन कुटुम्बियों को छोड़कर विवाह के सम्बन्ध में यदि स्त्री पुरुष अन्य के साथ विवाह करने को उद्यत हो-तो वह जार [वर] स्त्री विवाह कराने वाला या विवाह में सम्मिलित होने वाले पुरुष दंड के भागी होते हैं ॥ ४९ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में निष्पतन आदि के

वर्णन का चौथा अध्याय समाप्त हुआ ।

पांचवां अध्याय

६०वां प्रकरण

दाय विभाग ।

इस प्रकरण में दाय भाग (वटवारे) के अधिकारों का वर्णन किया जावेगा ।

अनीश्वराः पितृमन्तः स्थितपितृमातृकाः पुत्राः ॥ १ ॥ तेषामूर्ध्वं पितृतो
दायविभागः पितृद्रव्याणां स्वयमार्जितमविभज्यमन्यत्र पितृद्रव्यादुत्थितेभ्यः ॥ २ ॥
पितृद्रव्यादविभक्तोपगतानां पुत्राः पौत्रा वा चतुर्थादित्यंशभाजः ॥ ३ ॥ तावद-
विच्छिन्नः पिण्डो भवति ॥ ४ ॥ विच्छिन्नपिण्डाः सर्वे समं विभजेरन् ॥ ५ ॥
अपितृद्रव्या विभक्तपितृद्रव्या वा सहजीवन्तः पुनर्विभजेरन् ॥ ६ ॥ यतश्चोत्तिष्ठेत
स ह्यंशं लभेत ॥ ७ ॥

माता पिता दोनों या केवल पिता के जीवित रहने पर पुत्र अपनी पैतृक सम्पत्ति के अधिकारी नहीं हो सकते । जब माता पिता का देहान्त हो जावे-तो पितृ पितामहादि से चली आती हुई सम्पत्ति या पिता के धन का पुत्र वटवारा करलें । अपने २ कमाए हुए द्रव्य को परस्पर नहीं बांटा जा सकता है, यदि वह द्रव्य पिता के द्रव्य के द्वारा कमाया गया है, तो उसमें भी विभाग होने चाहिए । पिता के द्रव्य को नहीं बांटने वाले पुरुषों के पुत्र और पौत्र चार पीढ़ी तक अपने पिता की संख्या के अनुसार विभाग कर सकेंगे, क्योंकि चार पीढ़ी तक पिंड [पीढ़ी] छिन्न भिन्न नहीं होती । जब चार पीढ़ी से आगे सन्तान चल पड़े और आगे जाकर वटवारा हो-तो पुत्र पौत्र भी अपनी २ संख्या के अनुसार विभाग कर सकते हैं । जिनको पिता की सम्पत्ति न मिली या जो पिता को सम्पत्ति का भाग ले चुके, यदि ये सब फिर साथ रहने लगे-तो फिर अपनी सारी सम्पत्तिको मिलाकर बांट सकते हैं । परन्तु इसमें उनका ही अंश होगा, जो भाई इस सम्पत्ति के बढ़ाने में सहयोग देते रहे होंगे ॥ १-७ ॥

द्रव्यमपुत्रस्य सोदर्या आतरः सहजीविनो वा हरेयुः कन्याश्च रिक्थम्
॥ ८ ॥ पुत्रवतः पुत्राः दुहितरो वा धर्मिष्ठेषु विवाहेषु जाताः ॥ ९ ॥ तदभावे
पिता धरमाणः ॥ १० ॥ पित्रभावे आतरो आतृपुत्राश्च ॥ ११ ॥ अपितृका वह-
वोऽपि च आतरो आतृपुत्राश्च पितुरेकमंशं हरेयुः ॥ १२ ॥ सोदर्याणामनेकपि-
तृकाणां पितृतो दायविभागः पितृआतृपुत्राणां पूर्वं विद्यमाने नापरमवलम्बन्ते
॥ १३ ॥ ज्येष्ठे च कनिष्ठमर्धग्राहिणम् ॥ १४ ॥ जीवद्विभागे पिता नैकं विशेषयेत्

॥१५॥ न चैकमकारणान्निर्विभजेत ॥ १६ ॥ पितुरसत्यर्थे ज्येष्ठाः कनिष्ठाननुगृह्णीयुरन्यत्र मिथ्यावृत्तेभ्यः ॥ १७ ॥ प्राप्तव्यवहाराणां विभागः ॥ १८ ॥ अप्राप्तव्यवहाराणां देयविशुद्धं मातृवन्धुषु ग्रामवृद्धेषु वा स्थापयेद्युर्व्यवहारप्रापणात्प्रेषितस्य वा ॥१९॥ संनिविष्ट समसंनिविष्टेभ्यो नैवेशनिकं दद्युः ॥२०॥

अपुत्र पुरुष के द्रव्य को उसके सहोदर भ्राता ले सकेंगे, सहोदरों के अभाव में जो उसके साथ कमाते रहे हैं, वे उस धन के भागी हैं। उस पुरुष के कन्या हो-तो वह नकद द्रव्य को छोड़ कर आभूषण आदि सम्पत्ति की अधिकारिणी होगी। जिन्होंने धर्मकी रीति से विवाह किया है उनके पुत्र और पुत्र के अभाव में पुत्रियाँ अपने पिता के धन के स्वामी हैं। यदि कोई सन्तान न हो और पिता जीवित हो-तो पुत्र के धन का पिता अधिकारी है। यदि पिता भी न रहा हो-तो पिता के भ्राता [ताऊ चाचा] या उसके पुत्र, उस धन के अधिकारी बने। यदि पिता नहीं है, और पिता के अनेक भ्राता या उनके पुत्र विद्यमान हैं-तो वे उस सम्पत्ति को बराबर बांट लें। एक माता से अनेक पिताओं के द्वारा पृथक् २ विवाह से जो सन्तान उत्पन्न हो-वह अपने २ के धन के अनुसार विभाग करले, क्योंकि पिता के भ्राताओं [उपपिता] के पुत्रों के पूर्व से विद्यमान होने से पीछे होने वाले पिता के धन का वे कैसे अधिकार पा सकते हैं। यदि एक पिता के दो भाई हों-तो ज्येष्ठ के रहने पर भी कनिष्ठ को आधा देना पड़ेगा। यदि पिता जीवित है और बांट देना चाहता है, तो किसी को अधिक नहीं दे सकता है और न बिना कारण किसी को दायभाग से पृथक् कर सकता है। पिता की सम्पत्ति न होने पर बड़े भाई छोटी की रक्षा करें-यदि उनका आचरण खराब होने लगे-तो वे उनको घर से निकाल भी सकते हैं। जब पुत्र प्राप्त व्यवहार [बालिग] हो जावे, तब ही सम्पत्ति का बटवारा उचित है। यदि कुछ बालिग और कोई नाबालिग या विदेश गया हो तो नाबालिग की सम्पत्ति का भाग उसके माता के बन्धु [मामा आदि] या ग्राम के सेठ साहूकार के सुरक्षित करवादी जाये, जब तक वह बालिग हो यही विदेश गए हुए पुरुष के विषय में व्यवस्था है, कि वह जबतक आवे उसकी सम्पत्ति कहीं सुरक्षित रखदी जावे। जिनका विवाह हो गया-वे अपने अविवाहित छोटे भाइयों को उनके विवाह का व्यय पृथक् देवें ॥ ८-२० ॥

कन्याभ्यश्च प्रादानिकम् ॥२१॥ ऋणरिक्थयोः समो विभागः ॥२२॥ उदपात्रा-
एयपि निष्किंचना विभजेरन्नित्याचार्याः ॥२३॥ छलमेतदिति कौटिल्यः ॥ २४ ॥

सतोऽर्थस्य विभागो नासत एतावानर्थः सामान्यस्तस्यैतावान्प्रत्यंश इत्यनुभाष्य
ब्रुवन्सन्निषु विभागं कारयेत् ॥ २५ ॥

कन्याओं के रहने पर उनके विवाह और प्रादानिक [दहेज] का धन भी सुरक्षित
करा दिया जावे। ऋण और अभूषण आदि भी समान बाँटे जाने चाहिए। आचार्य
कहते हैं, कि यदि बाँटने वाले साधारण मनुष्य हैं, तो पानी पीने आदि के वर्तन भी बाँट
लें। कौटल्य आचार्य के मत में इस तरह गुप्त चुप बाँटने में छल हो जाने की सम्भावना
है। विद्यमान सम्पत्ति का विभाग होता है, अविद्यमान का नहीं। इतना धन इनके पास
है, इतना इनका पृथक् २ अंश हुआ, यह इनको बताकर और योग्य साथियों के सन्मुख
सारी व्यवस्था को रख कर इन का बटवारा करे ॥२१-२५॥

दुर्विभक्तमन्योन्यापहृतमन्तर्हितमविज्ञातोत्पन्नं वा पुनर्विभजेरन् ॥ २६ ॥
अदायादकं राजा हरेत्स्त्रीवृत्तिप्रेतकार्यवर्जमन्यत्र श्रोत्रियद्रव्यात् ॥ २७ ॥ तत्रै-
विधेभ्यः प्रयच्छेत् ॥ २८ ॥ पतितः पतिताज्ञातः क्लीवश्चानंशाः ॥ २९ ॥
जडोन्मत्तान्वकुष्ठिनश्च ॥ ३० ॥ सति भार्यायै तेषामपत्यमतद्विधं भागं हरेत्
॥ ३१ ॥ ग्रासाच्छादनमितरे पतितवर्जाः ॥ ३२ ॥

यदि किसी वस्तु का ठीक विभाग नहीं हुआ या किसीने उसे छपट लिया या छुपा
लिया तथा जानकारी में न आई और फिर प्रकट हुई है-तो उसका फिर बटवारा हो जाना
चाहिए। जिसके कोई कुटुम्बी न रहा हो, उस धन को राजा अपने कोष में डाल सकता है,
परन्तु स्त्री के निर्वाह और प्रेतक्रिया के निमित्त धन को छोड़ दे तथा वेदपाठी [वेद के
ज्ञाता] के धन को राजा अपने कोष में न डाले, किन्तु उस धन को वेद विद्या के जानने
वालों की सभा में देदे। पतित [धर्मच्युत] तथा पतित से उत्पन्न और नपुंसक-इस धन के
भाग के अधिकारी नहीं हो सकते। जड़ उन्मत्त, अन्धे और कुष्ठी भी दायभाग के
अधिकारी नहीं हैं। जो धन भार्या के निमित्त छोड़ा है, वे उस धन का यथा योग्य
विभाग पा सकते हैं। जड़ उन्मत्त आदि पुत्र भी अपने पिता की सम्पत्ति में भोजन
आच्छादन का व्यय पाने के अधिकारी हैं पतित को भोजन आच्छादन भी नहीं
मिलना चाहिए ॥२६-३२॥

तेषां च कृतदाराणां लुप्ते प्रजनने सति ।

सृजेयुः बान्धवाः पुत्रांस्तोषामंशान् प्रकल्पयेत् ॥ ३३ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे दायविभागे दायक्रमः पञ्चमो ऽध्यायः ॥५॥

आदितो द्विषष्टितमः ॥ ६२ ॥

यदि इन भाइयों का विवाह हो गया और विवाह के अनन्तर वे नपुंसक हुए हों, यदि उनके बान्धवों ने उन स्त्रियों में सन्तान उत्पन्न की है-तो वह सन्तान अपने दायभाग की अधिकारिणी हो सकेगी ॥३३॥

इति श्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में दायकम का पांचवां अध्याय समाप्त हुआ ।

ॐ नमः शिवाय

छठा अध्याय

६०वां प्रकरण

अंश विभाग ।

इस प्रकरण में अंशों के भेदों की व्यवस्था की गई है ।

एकस्त्रीपुत्राणां ज्येष्ठांशः ॥ १ ॥ ब्राह्मणानामजाः क्षत्रियाणामश्वा वैश्यानां गावः शूद्राणामवयः ॥ २ ॥ काणलिङ्गास्तेषां मध्यमांशः ॥ ३ ॥ भिन्नवर्णाः कनिष्ठांशः ॥ ४ ॥ चतुष्पदाभावे रत्नवर्जानां दशानां भागं द्रव्याणामेकं ज्येष्ठो हरेत् ॥ ५ ॥ प्रतिमुक्तस्वधापाशो हि भवति ॥ ६ ॥ इत्यौशनसां विभागः ॥ ७ ॥

एक स्त्री के पुत्रों में ज्येष्ठ का हिस्सा इस प्रकार है, कि ब्राह्मणों में बकरे, क्षत्रियों में अश्व, वैश्यों में बैल और शूद्रों में मँढ़े-बड़े पुत्र को मिलने चाहिए । उन पशुओं में जो काणलिङ्ग [यज्ञानुपयोगी] हों-वे मध्यम पुत्र को और रंग बिरंगे छोटे पुत्र को मिलने चाहिए । यदि किसी के चतुष्पद न हों-तो रत्नादि छोड़कर सारी सम्पत्ति का दशवां भाग ज्येष्ठ लड़के को अधिक मिलना चाहिए, क्योंकि पिता आदि के श्राद्ध में ज्येष्ठ को ही अधिक व्यय करना है । यह उशनस [शुक्र] आचार्य का मत है ॥१-७॥

पितुः परिवापाद्यानमाभरणं च ज्येष्ठांशः ॥ ८ ॥ शयनासनं भुक्तकांस्यं च मध्यमांशः ॥ ९ ॥ कृष्णं धान्यायसं गृहपरिवापो गोशकटं च कनिष्ठांशः ॥ १० ॥ शेषाणां द्रव्याणामेकद्रव्यस्य वा समो विभागः ॥ ११ ॥ अदायादा भगिन्यः मातुः परिवापाद्भुक्तकांस्याभरणभगिन्यः ॥ १२ ॥ मानुषहीनो ज्येष्ठस्तृतीयमंशं ज्येष्ठांशल्लभेत ॥ १३ ॥ चतुर्थमन्यायवृत्तिः ॥ १४ ॥ निवृत्तधर्म-कार्यो वा कामाचारः सर्वं जीयेत ॥ १५ ॥

पिता की सम्पत्ति में सवारी और आभूषण ज्येष्ठ पुत्र का भाग है। शयन आसन और खाने पीने के कांसी के पात्र मध्यम के तथा काला अन्न, लोहा, अन्य धरों के समान, बैल-गाड़ी, यह सब छोटे पुत्र का अंश है। शेष द्रव्य या एक मकान आदि सम्पत्ति का समान विभाग होना उचित है। जिन बहनों को दायभाग में अधिकार नहीं है, वे कांसी के वर्तन और आभूषण ले सकती हैं। यदि बड़ा लड़का मनुष्योचित चरित्र से गिर गया है, तो वह अपने भाग का तृतीयांश पा सकता है। यदि वह अन्याय से वृत्ति करता है, तो उसको अपने भाग में से चतुर्थांश ही मिलना चाहिए। जिसने धर्म कार्य छोड़ दिए या जो कामाचार होकर धूमता है-वह अपना सारा हिस्सा खो बैठता है ॥८-१५॥

तेन मध्यमकनिष्ठौ व्याख्यातौ ॥ १६ ॥ तयोर्मानुषोपेतो ज्येष्ठांशादधं लभेत ॥ १७ ॥ नानास्त्रीपुत्राणां तु संस्कृतासंस्कृतयोः कन्याकृतक्रियाभावे चैकस्याः पुत्रयोर्यमयोर्वा पूर्वजन्मना ज्येष्ठभावः १८ ॥ सूतमागधव्रात्यरथकाराणामैश्वर्यतो विभागः शेषास्तमुपजीवेयुः ॥१९॥ अनीश्वराः समविभागा इति ॥२०॥ चातुर्वर्ण्यपुत्राणां ब्राह्मणीपुत्रश्चतुरोऽशान्दरेत् ॥२१॥ क्षत्रियापुत्रस्त्रीनंशान् ॥२२॥ वैश्यापुत्रौ द्वावंशौ ॥ २३ ॥ एकं शूद्रापुत्रः ॥ २४ ॥ तेन त्रिवर्णद्विवर्णपुत्रविभागः क्षत्रियवैश्ययोर्व्याख्यातः ॥ २५ ॥

यही व्यवस्था मध्यम और कनिष्ठ की समझनी चाहिए। इन दोनों में जो मनुष्यता के गुणों से सम्पन्न है, वह बचे हुए ज्येष्ठ के भाग का आधा भाग ले सकता है। अनेक स्त्रियों के पुत्रों में जिसके साथ विवाह संस्कार हुआ उसका पुत्र पीछे उत्पन्न होने पर भी ज्येष्ठ माना जावेगा। अन्य भुक्त विवाहिता और कन्या विवाहिता में कन्या का पुत्र ज्येष्ठ है। यमज [जोड़ले] उत्पन्न होने वाले पुत्रों में प्रथम उत्पन्न पुत्र ज्येष्ठ कहावेगा। सूत, मागध व्रात्य [संस्कारहीन] और रथकारों में जो कुछ योग्य हो-वही लड़का धन का भाग प्राप्त करे-शेष पुत्र उसके आश्रय से अपनी वृत्ति चलावे। यदि उन में कोई विशेष योग्यता वाला न हो-तो वे अपने पिता की सम्पत्ति बराबर बांट सकते हैं। यदि किसी के चारों वर्ण की स्त्री हों-तो उसमें ब्राह्मणी के पुत्र को सम्पत्ति के चार भाग, क्षत्रिय स्त्री के पुत्र को तीन भाग, वैश्य स्त्री पुत्र को दो भाग और शूद्र के पुत्र को एक भाग मिलना उचित है। इसी प्रकार पीछे के तीन वर्ण [क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र] तथा दो वर्ण [वैश्य और शूद्र] के विषय जान लेना चाहिए ॥१६-२५॥

ब्राह्मणस्थानन्तरापुत्रस्तुल्यांशः क्षत्रियवैश्ययोरर्धांशः ॥ २६ ॥ तुल्यांशो
वा मानुषोपेतः ॥ २७ ॥ तुल्यातुल्ययोरेकपुत्रः सर्वं हरेत् ॥ २८ ॥ बन्धुश्च
विभृयात् ॥ २९ ॥ ब्रह्मणानां तु पारशवस्तृतीयमंशं लभेत् ॥ ३० ॥ द्वावंशौ
सपिण्डः कुल्यो वासन्नः स्वधादानहेतोः ॥ ३१ ॥ तदभावे पितुराचार्योऽन्ते-
वासी वा ॥ ३२ ॥

यदि ब्राह्मण के ब्राह्मणी से उत्पन्न पुत्र बराबर का भाग वांट लेवे तो क्षत्रिया
वैश्या की सन्तान को आधा भाग मिल सकेगा । यदि वे मानुषोपेत [मनुष्योचित के]
उत्तम गुणों से युक्त हों-तो बराबर का भाग भी पा सकते हैं । यदि समान वर्ण या
असमान वर्ण की स्त्री में एक ही पुत्र हो-तो वह अपने पिता के सारे धन को ग्रहण
कर सकेगा । उसको अपने बन्धु बान्धवों का पालन करना पड़ेगा । ब्राह्मण से शूद्रा में
उत्पन्न, अपने पिता की सम्पत्ति में तीसरा भाग पा सकेगा । पिता के श्राद्धादि काम का
अधिकारी होने से सपिण्ड कुलीन या नजदीकी, पिता की सम्पत्ति में दो भाग अधिक
लेगा । इन सबके न होने पर श्राद्धादि के निमित्त सुरक्षित भाग को पिता का आचार्य या
विद्यार्थी उस धन को ग्रहण करे ॥२६-३२॥

क्षेत्रे वा जनयेदस्य नियुक्तः क्षेत्रजं सुतम् ।

मातृबन्धुः सगोत्रो वा तस्मै तत्प्रदिशेद्धनम् ॥ ३३ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे दायविभागोऽशविभागः षष्ठो

ऽध्यायः ॥ ६ ॥ आदितस्त्रिषष्टितम् ॥ ६३ ॥

इस पुरुष की स्त्री में कोई नियुक्त होकर यदि क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न करे, उस पुत्र, तथा
माता के बन्धु या सगोत्री भी पुत्र के अभाव में उस धन के अधिकारी हैं ॥३३॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में दाय के अंश

विभाग का छठा अध्याय समाप्त हुआ ।

सातवां अध्याय

६०वां प्रकरण

पुत्र विभाग

अब पुत्रों के विषय में व्यवस्था दी जाती है।

परपरिग्रहे वीजमुत्सृष्टं क्षेत्रिण इत्याचार्याः ॥ १ ॥ माता भस्त्रा यस्य
रेतस्तस्यापत्यमित्यपरे ॥ २ ॥ विद्यमानमुभयमिति कौटल्यः ॥ ३ ॥

अन्य के क्षेत्र [स्त्री] में डाले हुए वीज का अधिपति क्षेत्री [उसका पति] ही होता है-ऐसा आचार्य का मत है। माता तो भस्त्रा (चर्म की पिटारी) है, उसमें जो अपना वीर्य डालेगा, उसका ही पुत्र होगा ऐसा अन्य आचार्यों का मत है। कौटल्य के मत में वे दोनों ही उसके पिता माने जाने चाहिए ॥ १-३ ॥

स्वयंजातः कृतक्रियायामौरसः ॥ ४ ॥ तेन तुल्यः पुत्रिकापुत्रः ॥ ५ ॥
सगोत्रेणान्यगोत्रेण वा नियुक्तेन क्षेत्रजातः क्षेत्रजः पुत्रः ॥ ६ ॥ जनयितुरसत्य-
न्यस्मिन्पुत्रे स एव द्विपितृको द्विगोत्रो वा द्वयोरपि स्वधारिष्वभाग्भवति ॥ ७ ॥
तत्सधर्मा बन्धूनां गृहे गूढजातस्तु गूढजः ॥ ८ ॥ बन्धुनोत्सृष्टोऽपिविद्धः संस्कर्तुः
पुत्रः ॥ ९ ॥ कन्यागर्भः कानीनः ॥ १० ॥ सगर्भोऽढायाः सहोदः ॥ ११ ॥
पुनर्भूतायाः पौनर्भवः ॥ १२ ॥ स्वयंजातः पितृबन्धूनां च दायादः ॥ १३ ॥
परजातः संस्कर्तुरेव न बन्धूनाम् ॥ १४ ॥ तत्सधर्मा मातापितृभ्यामद्भिर्मुक्तो दत्तः
॥ १५ ॥ स्वयं बन्धुभिर्वा पुत्रभावोपगत उपगतः ॥ १६ ॥ पुत्रत्वेनाङ्गीकृतः
कृतकः ॥ १७ ॥ परिक्रीतः क्रीत इति ॥ १८ ॥

अपनी विवाहित स्त्री में उत्पन्न पुत्र औरस कहाता है। अपनी लड़की से पुत्र लेने की प्रतिज्ञा करके विवाह करने पर जो पुत्र उत्पन्न हो-वह भी औरस के तुल्य ही माना जाता है। नियुक्त सगोत्र अथवा अन्य गोत्री से अपनी स्त्री में उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज कहाता है। यदि उत्पन्न करने वाले के कोई पुत्र नहीं है, तो वही क्षेत्रज पुत्र उसका भी अधिकारी होगा। उसके दो पिता के दो गोत्र होंगे। वह दोनों के श्राद्धादि कर्म का कर्त्ता और धनका अधिकारी होता है। इन्हीं के समान गूढजपुत्र है, जो पति के विदेश जाने पर बान्धवोंने गुप्त रूप उत्पन्न कर दिया हो, यदि इस गूढज पुत्र को बन्धु बान्धव फैंक फाँक दे, जो उसका संस्कार या पालन करें-उसका वह अपविद्ध पुत्र है। कन्या के गर्भ से उत्पन्न कानीन कहाता है। गर्भवती के साथ विवाह करने पर विवाह के अनन्तर उत्पन्न पुत्र सहोद कहाता है। पुनर्विवाह की स्त्री का पुत्र पौनर्भव होता है। जो अपने आपको अन्य को अपेण

करदे वह स्वयं जात पुत्र है । वह पिता और बान्धवों के धन का भागी होता है । जिस को बन्धु बान्धव देदे-वह पर जात है, वह संस्कार करने वाले (पालन कर्ता) के धन का ही भागी होता है, बांधवों का नहीं होता । माता पिता संकल्प द्वारा जिस पुत्र को प्रदान करदे-वह दत्तक कहाता है, यह भी औरसादि के तुल्य ही है । जो स्वयं या बन्धुओं द्वारा पुत्र भाव से स्वीकार कराया गया वह उपगत, जिसको पुत्र रूप से अङ्गिकार किया वह कृतक और जिसको रुपये से खरीदा-वह क्रीत होता है ॥ ४-१८ ॥

औरसे तूत्पन्ने सवर्णास्तृतीयांशहराः ॥ १९ ॥ असवर्णा ग्रासाच्छादन-
भागिनः ॥ २० ॥ ब्राह्मणक्षत्रिययोरनन्तरापुत्राः सवर्णा एकान्तरा असवर्णाः
॥ २१ ॥ ब्राह्मणक्षत्रिययोरनन्तरापुत्राः सवर्णा एकान्तरा असवर्णाः ॥ २१ ॥
ब्राह्मणस्य वैश्यायामम्बष्ठः ॥ २२ ॥ शूद्रायां निपादः पारशवो वा ॥ २३ ॥
क्षत्रियस्य शूद्रायामुग्रः ॥ २४ ॥ शूद्र एव वैश्यस्य ॥ २५ ॥ सवर्णास्तु चैषाम-
चरितव्रतेभ्यो जाता व्रात्याः ॥ २६ ॥ इत्यनुलोमः ॥ २७ ॥

औरसपुत्र के उत्पन्न होने पर सवर्ण अन्य पुत्र तीसरे हिस्से के भागी होते हैं असवर्ण पुत्र केवल भोजन और वस्त्र के अधिकारी हैं । ब्राह्मण और क्षत्रिय के अपनी २ सवर्ण भार्या में उत्पन्न पुत्र (अनन्तरा पुत्र) सवर्ण होते हैं । एकान्तरा (दूसरे वर्णोत्पन्न) असवर्ण हैं । ब्राह्मण के वैश्या में उत्पन्न अम्बष्ठ शूद्रा में निपाद या पारशव, पुत्र होता है । क्षत्रिय द्वारा शूद्रा में उग्र, और वैश्य द्वारा शूद्रा में शूद्र ही उत्पन्न होता है । सवर्णा स्त्रियों में जो संस्कार से हीन सन्तान उत्पन्न हो-वह व्रात्य कहाती है । यहां तक अनुलोम पुत्रों की चर्चा की गई ॥ १९-२७ ॥

शूद्रादायोनवक्षत्तचण्डालाः ॥ २८ ॥ वैश्यान्मागधवैदेहकौ ॥ २९ ॥
क्षत्रियात्सूतः ॥ ३० ॥ पौराणिकस्त्वन्यः सूतो मागधश्च ब्रह्मक्षत्राद्विशेषः ॥ ३१ ॥
त एते प्रतिलोमाः स्वधर्मातिक्रमाद्राज्ञः संभवन्ति ॥ ३२ ॥

शूद्र द्वारा वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण कन्या में उत्पन्न क्रमसे आयोगव, क्षत्ता और चाण्डाल पुत्र उत्पन्न होते हैं । वैश्य द्वारा क्षत्रिया और ब्राह्मणी में उत्पन्न मागध और वैदेहक पुत्र होते हैं । क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न सूत कहाता है । पुराणों में जो सूत जी का वर्णन आता है, वह इस से पृथक् है । मागध भी वहां दूसरे ही हैं । ये ब्रह्म और क्षत्रियों से भी श्रेष्ठ माने गए हैं । ये राजा के विपरीत धर्म के ग्रहण से उत्पन्न होते हैं, अतएव प्रतिलोम कहाते हैं ॥ २८-३२ ॥

उग्रान्नैषाद्यां कुक्कुटः ॥ ३३ ॥ विपर्यये पुल्कसः ॥ ३४ ॥ वैदेहिकायाम-
म्बुष्टाद्वैणः ॥ ३५ ॥ विपर्यये कुशीलवः ॥ ३६ ॥ क्षत्तायामुग्राच्छ्वपाक इत्येते
चान्तरालाः ॥ ३७ ॥ कर्मणा वैरयो रथकारः ॥ ३८ ॥ तेषां स्वयोनौ विवाहः
॥ ३९ ॥ पूर्वापरगामित्वं वृत्तानुवृत्तं च स्वधर्मं स्थापयेत् ॥ ४० ॥ शूद्रसधर्माणो
वा ॥ ४१ ॥ अन्यत्र चण्डालेभ्यः ॥ ४२ ॥ केवलमेवं वर्तमानः स्वर्गमाप्नोति
राजा नरकमन्यथा ॥ ४३ ॥ सर्वेषामन्तरालानां समो विभागः ॥ ४४ ॥

उग्र नामक पुरुष से निषादी में उत्पन्न कुक्कुट, और निषाद द्वारा उग्रा स्त्री में पुल्कस
पुत्र उत्पन्न होता है। अम्बुष्ट द्वारा वैदेहिक स्त्री में वैण और वैदेहिक द्वारा अम्बुष्ट स्त्री
में कुशील पुत्र उत्पन्न माना जाता है। उग्रद्वारा क्षत्ता में श्वपाक होता है। इसी तरह
अन्य भी अवान्तर जाति समझ लेनी चाहिए। काम करने के कारण वैण का पुत्र ही रथ-
कार माना जाता है, उनका अपनी ही योनि में विवाह माना जाता है। पूर्व [उपर] अपर
[नीचे] गमन करने और धर्म का निर्णय करने में ये अपने पूर्वजों के अनुसार ही अनुगमन
करें। चाण्डालों को छोड़ कर सब सङ्कर जातियाँ शूद्र तुल्य माननी चाहिए। इस प्रकार
अपनी प्रजा की व्यवस्था करता हुआ राजा स्वर्ग पाता है और वर्ण धर्म का लोप करने
वाला नरक जाता है। समस्त अन्तर जातियों में सम्पत्ति का समान भाग माना गया है ॥ ३३-४४ ॥

देशस्य जात्या संघस्य धर्मो ग्रामस्य वापि यः ।

उचितस्तस्य तेनैव दायधर्मं प्रकल्पयेत् ॥ ४५ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीयेऽधिकरणे दायविभागे पुत्रविभागः सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दायविभागः समाप्तः । आदितश्चतुःषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

देश, जाति, समाज, और ग्रामकी जो रीति चली आती हो, उसी के अनुसार उस
देश आदि के दायभाग की व्यवस्था करनी चाहिए ॥ ४५ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्याय प्रचार अधिकरण में पुत्र विभाग
के निरूपण का सातवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



आठवां अध्याय

६१ वां प्रकरण

गृह वास्तुक

इस प्रकरण में गृहवास्तुक या अचल सम्पत्ति के विषय में विचार किया जावेगा।

सामन्तप्रत्यया वास्तुविवादाः ॥ १ ॥ गृहं क्षेत्रमारामः सेतुबन्धस्तटा-
कमाधारो वा वास्तुः ॥ २ ॥ कर्णकोलायससंबन्धाऽनुगृहं सेतुः ॥ ३ ॥ यथासे-
तुभोगं वेश्मकारयेत् ॥ ४ ॥ अभूतं वा परकुड्यादविक्रम्य ॥ ५ ॥ द्वावरत्नीत्रिपदी
वा देशबन्धं कारयेत् ॥ ६ ॥ अवस्करभ्रममुदपानं पानगृहोचितमन्यत्र सूतिकाकू-
पादानिर्दशाहादिति ॥ ७ ॥ तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥ ८ ॥

वास्तु (जायदाद) के भागों [मुकदमों] का निर्णय सामन्त (गांव के मुखिया) के अधीन होना चाहिए। घर, खेत, बाग बगीचे, तालाब, बन्ध और पड़त भूमि, ये सब वास्तु कहाते हैं। कोनों में लोहे की छड़ गाड़ कर जो प्रत्येक घर की सीमा बनाली जाती है अर्थात् अपनी २ अधिकृत भूमि पर तार गाड़ लिए जाते हैं-यह सेतु कहाता है। जिस भूमि की जितनी सीमा है, उतना ही वह स्वामी मकान बना सकता है, उसे मकान बनाते समय इस सेतु के कारण दूसरे की भूमि पर अधिकार करने का अवसर नहीं मिल सकता है। नया मकान दूसरे की भीत को बिना दबाए बनाना उचित है। दो हाथ से कुछ कम या तीन पद अपने मकान का आसार बनावे। दश दिन के लिए बनाये हुए सूतिका घर को छोड़कर अन्य स्थानों शौच (पाखाना) जाने का स्थान, कूआ और पानगृह [पानी पीने के योग्य घाट] अवश्य बनने चाहिए। जो अपने मकान बनाते समय ये दो वस्तु न बनावे, उसपर पूर्व साहस दण्ड होना उचित है ॥१-८॥

तेनेन्धनावघातनकृतं कल्याणकृत्येष्वामोदकमार्गाश्च व्याख्याताः
॥ ९ ॥ त्रिपदीप्रतिक्रान्तमध्यधर्मरत्नि वा प्रवेश्य गाढप्रसृतमुदकमार्गं प्रस्रवणं
प्रघातं वा कारयेत् ॥ १० ॥ तस्यातिक्रमे चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ ११ ॥
एकपदीं प्रतिक्रान्तमरत्नि वा चक्रिचतुष्पदस्थानमग्निष्ठमुदञ्जरस्थानं रोचनीकुड्नीं
वा कारयेत् ॥ १२ ॥ तस्यातिक्रमे चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ १३ ॥

इसी तरह विवाह आदि मङ्गल कृत्यों में इन्धना वघातन (मट्टी) आदि का स्थान और कुल्ले आदि के जल बहने की मोरियां होनी चाहिए। तीन पद या डेढ़ अरत्नि

चौड़ी उत्तमता से बनी हुई कीचड़ और जल के निकलने योग्य नाली प्राघात [बम्बा] बना देना चाहिए। जो मकान में ऐसी नाली न बनावे-उसपर चौबिस पण दण्ड होना उचित है। एक पद चौड़ी या एक अरत्ति चौड़ी नाली बनाकर चार खम्भों की एक अग्निशाला बनाई जावे, जिसमें जल आटा पीसने को चक्की और धान्य आदि कूटने को आखली आदि होवे। इस नियम को नहीं मानने वाले पर चौबीस पण दण्ड है ॥६-१३॥

सर्ववास्तुकयोः प्राक्षिप्तकयोर्वा शालयोः किष्कुरन्तरिका त्रिपदी वा ॥१४॥
तयोश्चतुरंगुलं नीत्रान्तरं समारूढकं वा ॥१५॥ किष्कुमात्रं माणिद्वारमन्तरिकायां
खण्डफुल्लार्थमसंपातं कारयेत् ॥ १६ ॥ प्रकाशार्थमल्पमूर्ध्वं वातायनं कारयेत्
॥ १७ ॥ तदवसिते वेश्मनि च्छादयेत् ॥ १८ ॥ संभूय वा गृहस्वामिनो यथेष्टं
कारयेद्युरनिष्टं वारयेयुः ॥१९॥ वानलटयाश्चोर्ध्वमाहार्यभोगकटप्रच्छन्नमवमर्शभित्ति
वा कारयेद्वर्षावाधामयात् ॥ २० ॥ तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥ २१ ॥

सारे मकान जिनमें छप्पे आदि लगे हों-या न लगे-हों उनमें मकानों एक किष्कु [ढिड़ फुट] या तीन पद का अन्तर [फासला] होना चाहिए। उनमें चार अंगुल मोटी छत्त और सीढ़ी होनी उचित हैं। एक किष्कु मात्र [ढेड फुट] गली में आगि द्वार (खिड़की की सी) होनी चाहिए, जिसको कभी २ खोला जा सके। उसमें आमतौर से आना-जाना बन्द हों। प्रकाश आने के लिए ऊपर की ओर वातायन [उजालदान] भी रखाने उचित हैं। उनसे ऊपर घर को छत्त से पाट देवे। पड़ौसी मिलकर अपने २ सुख के अनुसार मकान बनाले, जो कुछ दुःखदायी बात हो-उसे न करे। वानलटया (सब से ऊपर की छत्त) के ऊपर उत्तम २ चटाइयों से छपाई हुई, दीवारों के साथ एक मौपड़ी सी (बरसाती) बनाई जा सकती है, इससे छत्त पर सोने से वर्षा से रक्षा हो जाती है। ऐसा नहीं करने वाले पर पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए ॥१४-२१॥

प्रतिलोमद्वारवातायनवाधायां च ॥ २२ ॥ अन्यत्र राजमार्गरथ्याभ्यः
॥२३॥ खातसोपानप्रणालीनिश्रेयवस्करभागैर्वर्हिर्वाधायां भोगनिग्रहे च परकुड्य-
मुदक्रेनापन्नतो द्वादशपणो दण्डः ॥ २४ ॥ मूत्रपुरीषोपघाते द्विगुणः ॥ २५ ॥
प्रणालीमोक्षो वर्षति ॥ २६ ॥ अन्यथा द्वादशपणो दण्डः ॥ २७ ॥ प्रतिषिद्धस्य
च वसतो निरस्यतश्चावक्रयणम् ॥२८॥ अन्यत्र पारुष्यस्तेयसाहससंग्रहणमिथ्या-
भोगेभ्यः ॥ २९ ॥

जो कोई पुरुष उलट पलट दरवाजा या खिड़की निकाले, उसपर भी प्रथम साहस दण्ड होना चाहिए। राजमार्ग पर दरवाजा बनाने पर व्यर्थ किसी को क्लेश हो-तो इसपर

दण्ड नहीं दिया जा सकता है। गड्ढा, सीढ़ी, नाली, ऊपर की सीढ़ी, और शौचालय आदि का स्थान बनाकर आने जाने वालों को कष्ट और दूसरे के सुख में बाधा डाले या पानी से दूसरे की भीत को हानि पहुंचावे, उसपर बारह पण दण्ड होना चाहिए तथा मूत्र पुरीष की नाली से कष्ट दे-तो चौबीस पण दण्ड नियत है। वर्षा ऋतु में प्रत्येक मोटी नाली खुली होनी चाहिए, जो मोरी रोककर पानी द्वारा किसी को हानि पहुंचावे उसपर बारह पण दण्ड होना उचित है। किरायेदार को मकान खाली कर देने की कहने पर भी जो मकान खाली न करे और जो किराया देने पर भी एक दम खाली करवावे-उन दोनों पर भी बारह पण दण्ड होना चाहिए। कठोर व्यवहार चोरी, ढाका, व्यभिचार और मिथ्या व्यवहार (छल) का प्रयोग होने पर एक दम मकान छोड़ा या खाली कराया जा सकता है ॥ २२-२६ ॥

स्वयमभिप्रस्थितो वर्षावक्रयशेषं दद्यात् ॥ ३० ॥ सामान्ये वेश्मनि साहाय्यमप्रयच्छतः सामान्यमुपरुन्धतो भोगानिग्रहे द्वादशपणो दण्डः ॥ ३१ ॥ विनाशयतस्तद्विगुणः ॥ ३२ ॥

यदि किरायेदार स्वयं मकान छोड़े-तो वह वर्षभर का शेष (सब क्रय) किराया चुका दे। धर्म शाला आदि सामान्य स्थानों में सहायता न देने वाले या सर्व साधारण के उपभोग में आने से रोकने वाले को बारह पण दण्ड होना चाहिए। यदि ऐसी सार्वजनिक सेवा की वस्तु का जो विनाश करे, उसपर बारह पण दण्ड होना चाहिए ॥ ३०-३२ ॥

कोष्ठकाङ्गणवर्जानामग्निकुट्टनशालयोः ।

विवृत्तानां च सर्वेषां सामान्ये भोग इष्यते ॥ ३३ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीयेऽधिकरणे वास्तुके गृहवास्तुकमष्टमो अध्यायः ॥८॥

आदितः पञ्चषष्टिरध्यायः ॥ ६५ ॥

कोठे और आँगन को छोड़कर अग्नि शाला और धान्य आदि कूटने की शाला, तथा अन्य खुले स्थानों को सर्व साधारण जनता अपने व्यवहार में ला सकती है ॥ ३३ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में आठवां अध्याय समाप्त हुआ ।



नौवां अध्याय

६१वां प्रकरण

वास्तु-विक्रय

इस प्रकरण में मकानों के बिकने की व्यवस्था का वर्णन है।

ज्ञातिसामन्तधनिकाः क्रमेण भूमिपरिग्रहान्क्रेतुमभ्याभवेयुः ॥ १ ॥ ततो
ऽन्ये बाह्याः सामन्तचत्वारिंशत्कुल्या गृहप्रतिमुखे वेश्म श्रावयेयुः ॥ २ ॥
सामन्तग्रामवृद्धेषु शेत्रमारामं सेतुबन्धं तटाकमाधारं वा मर्यादासु यथासेतुभोग-
मनेनार्धेण कः क्रेता इति त्रिराघुषितवीतमव्याहतं क्रेता क्रेतुं लभेत ॥ ३ ॥

जाति के लोग सामन्त (गांव का मुखिया) या धनिक लोग ही भूमि खरीद सकते हैं। यदि ये लेना स्वीकार न करें-तो अन्य गांव के सामन्त या उनके चालोस कुल उस भूमि को खरीदें घर के सन्मुख ही नीलाम के ढङ्ग पर घर के दाम उद्घोषित किये जावे। सामन्त (गांव का मुखिया तहसीलदार, ज़ादि) या गांव के वृद्ध चौधरियों के सन्मुख ही खेत, बगीचे, सीमाबन्ध स्थान, तालाब और आधार भूमि (कुछ बनाने योग्य भूमि) जैसी जिसकी कीमत है, उसीके अनुसार मर्यादा पूर्वक “इस मूल्य में कौन इसका खरीदने वाला है” इस प्रकार तीन बोली वालें। जब कोई आगे बोली न बढ़ावे-तो बोली लगाने वाला वे रोक टोक उस भूमि को खरीद ले ॥ १-३ ॥

स्पर्धितयोर्वा मूल्यवर्धने मूल्यवृद्धिः सशुल्का कोशं गच्छेत् ॥ ४ ॥
विक्रयप्रतिक्रोष्टा शुल्कं दद्यात् ॥ ५ ॥ अस्वामिप्रतिकोशे चतुर्विंशतिपणो दण्डः
॥ ६ ॥ सप्तरात्रादूर्ध्वमनभिसरतः प्रतिक्रुष्टो विक्रीणीत ॥ ७ ॥ प्रतिक्रुष्टाति-
क्रमे वास्तुनि द्विशतो दण्डः ॥ ८ ॥ अन्यत्र चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ९ ॥
इति वास्तुविक्रयः ॥ १० ॥

जब दो मनुष्यों में किसी जायदाद पर बहस छिड़ जावे और बोली अधिक बढ़ जावे-तो सरकारी टैक्स के साथ बड़ी बढ़ी हुई कीमत सरकारी कोष में पहुंचनी चाहिए मकान का खरीदने वाला सरकारी टैक्स अदा करे। मकान के स्वामी के न रहने पर जो मकान पीछे से नीलाम किया जावे, तो करने कराने वाले पर चौबीस पण दण्ड होना उचित है। यदि सात दिनका नोटिस निकलने पर भी मकान का मालिक न आवे-तो प्रति क्रुष्ट (मकान का नीलाम करने वाला) उसपर बोली बुलवा सकता है। यदि मकान पर बोली लगाकर मकान को न लेवे-तो उसपर दोसौ पण दण्ड होना चाहिए। मकान के

अतिरिक्त नीलाम की बोली बोलकर न लेने वाले पर चार सौ पण दण्ड होवे । यहां तक सकान के बेचने के नियमों की व्यवस्था की गई है ॥ ४-१० ॥

सीमविवादं ग्रामयोरुभयोः सामन्ताः पञ्चग्रामी दशग्रामी वा सेतुभिः
स्थावरैः कृत्रिमैर्वा कुर्यात् ॥ ११ ॥ कर्पकगोपालवृद्धकाः पूर्वभुक्तिका वा बाह्याः
सेतूनामनभिज्ञा ब्रह्म एको वा निर्दिश्य सीमसेतून्विपरीतवेपाः सीमानं नयेयुः
॥ १२ ॥ उद्दिष्टानां सेतूनामदर्शने सहस्रं दण्डः ॥ १३ ॥ तदेव नीते सीमा-
पहारिणां सेतुच्छिदां च कुर्यात् ॥ १४ ॥ प्रनष्टसेतुभोगं वा सीमानं राजा
यथोपकारं विभजेत् ॥ १५ ॥

यदि गांवों की सीमाका झगड़ा हो जावे-तो दोनों गांवों के मुखिया या पांच और दस गांवों के मुख्य पुरुष उनके सेतु [तारवन्दी] या स्थान [पर्वत आदि] तथा कृत्रिम (बनावटी मीढ़ा) आदि द्वारा वे उस का निर्णय करें। गांव के किसान, ग्वाल, वृद्ध या पूरे में उस जगह खेती आदि करने वाले तथा बाहर के लोग जो सीमा की मर्यादा के नहीं जानने वाले हैं, वे विपरीत वेप बना कर सीमा का पता लगावे और ये सब मिलकर अपने गांवकी सीमा को निश्चित करले। बनी हुई सीमा परिधि (सेतु) को नहीं देखने वाले निर्णायकोंपर एक सहस्र पण दण्ड होना चाहिए। यही दण्ड उस पुरुष को दिया जाना चाहिए, जो सीमाके कृत्रिम चिन्ह या सेतु (तार आदि) को नष्ट करे। यदि सीमा के चिन्हों का विल्कुल लोप हो जावे-तो राजा इस तरह उसका विभाग करे-जिस से सब के उपकार की सम्भावना हो ॥ ११-१५ ॥

क्षेत्रविवादं सामन्तग्रामवृद्धाः कुर्युः ॥ १६ ॥ तेषां द्वैधीभावे यतो ब्रह्मः
शुचयोऽनुमता वा ततो नियच्छेयुः ॥ १७ ॥ मध्यं वा गृहीयुः ॥ १८ ॥
तदुभयं परोक्तं वास्तु राजा हरेत् ॥ १९ ॥ प्रनष्टस्वामिकं च यथोपकारं वा
विभजेत् ॥ २० ॥ प्रसह्यादाने वास्तुनि स्तेयदण्डः ॥ २१ ॥ कोरणादाने
प्रयासमाजीवं च परिसंख्याय बन्धं दद्यात् ॥ २२ ॥ मर्यादापहरणे पूर्वः साहस-
दण्डः ॥ २३ ॥ मर्यादाभेदे चतुर्विंशतिपणः ॥ २४ ॥ तेन तपोवनविवीतमहा-
पथश्मशानदेवकुलयजनपुरयस्थानविवादा व्याख्याताः ॥ २५ ॥ इति मर्यादा-
स्थापनम् ॥ २६ ॥

खेतों के झगड़ों का निर्णय गांव के मुखिया या गांव के वृद्ध पुरुष करें। यदि उन में मत भेद रह जावे-तो उन में बहुत से धार्मिक पुरुष प्रजा की अनुमति से उनका निर्णय कर

दें या सब मिलकर मध्यस्थ स्वीकार करें-जो निर्णय (फैसला) करदे । यदि इन दोनों वादी प्रति वादी, दोनों की ही वह भूमि या मकान हो-तो राजा उसपर अधिकार करले । जिसका स्वामी भी नष्ट हो गया, उसको प्रजा के उपकार की दृष्टि से राजा चाहे, जिसे वाँट दे । जो बल पूर्वक किसी की भूमि को कोई छीने-उस पर चोरी का दण्ड होना चाहिए । यदि कोई किसी कारण से किसी की भूमि पर अधिकार करता है, तो भू स्वामी के परिश्रम और ऋण से अधिक धन उस भू स्वामी को दिलाया जावे । यदि कोई किसी के मकान की सीमा (हद) को दवाले-तो उसपर पूर्व साहस की व्यवस्था है और मर्यादा की सीमा नष्ट करे-तो उस पर चौबीस पण दण्ड होना चाहिए । इस व्यवस्था के अनुसार ये तपोवन, विव्रीत (चरागाह) बड़ी २ सड़कें, श्मशान, देवालय, भजनस्थान, धर्म शाला आदि के विवादों का निर्णय कर लेना चाहिए । यहां तक क्षेत्र आदि की सीमा का वर्णन हुआ ॥ १६-२६ ॥

सर्व एव विवादाः सामन्तप्रत्ययाः ॥ २७ ॥ विव्रीतस्थलकेदार पण्डवल-
वेश्मवाहनकोष्ठानां पूर्वं पूर्वमावाधं सहेत ॥ २८ ॥ ब्रह्मसोमारण्यदेवयजनपुण्य-
स्थानवर्जाः स्थलप्रदेशाः ॥ २९ ॥ आधारपरिवाहकेदारोपभोगैः परक्षेत्रकृष्टबीज-
हिंसायां यथोपधातं मूल्यं दद्युः ॥ ३० ॥ केदारारामसेतुबन्धानां परस्परहिंसायां
हिंसाद्विगुणो दण्डः ॥ ३१ ॥ पश्चान्निविष्टमधरतटाकं नोपरितटाकस्य
केदारमुदकेनाप्लावयेत् ॥ ३२ ॥ उपरिनिविष्टं नाधरतटाकस्य पूराप्लावं
कारयेदन्यत्र त्रिवर्षोपरतकर्मणः ॥ ३३ ॥ तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३४ ॥
तटाकवामनं च ॥ ३५ ॥

सब तरह के विवादों (मुकदमों) का निर्णय सामन्त (गाँव के मुखिया) कर सकते हैं । चरागाह, स्थल, खेत, खलिहान, मकान और घुड़साल आदि का निर्णय पूर्व की अपेक्षा पिछले का प्रथम करना उचित है । ब्रह्मारण्य, सोमारण्य, (सोम रस खेंचने का स्थान) देवालय यज्ञशाला, धर्मशाला आदि को छोड़ कर सारे प्रदेश स्थल के तुल्य मानने चाहिए । जलाशय नाली, क्यारी आदि के बनाने से किसी पड़ोसी के बीज का नाश हो जावे-तो उस हर्जाने के अनुसार उसको मूल्य दिलाया जावे । केदार (क्यारी) बगीचा, सेतु बन्ध (तार आदि से सीमा) के नाश कर देने पर हर्जाने से दुगुना दण्ड होना चाहिए पीछे के बने हुए नीचे के तालाब से ऊपर के तालाब की क्यारी को न सींचे । ऊपर के तालाब से नीचे के तालाब को न भरे-यदि तीन वर्ष तक नीचे का तालाब खाली पड़ा रहा हो-तो भरा जा सकता है । इन नियमों के उल्लंघन करने वाले को पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए और तड़ाग का पानी निकलवा देना उचित है ॥ २७-३५ ॥

पञ्चवर्षोपरतकर्मणः सेतुबन्धस्य स्वाम्यं लुप्येतान्यत्रापद्भ्यः ॥ ३६ ॥
 तटाकसेतुबन्धानां नवप्रवर्तने पाञ्चवर्षिकः परिहारः ॥ ३७ ॥ भग्नेत्सृष्टानां
 चातुर्वर्षिकः ॥ ३८ ॥ समुपारूढानां त्रैवर्षिकः ॥ ३९ ॥ स्थलस्य द्वैवर्षिकः स्वात्मा-
 धाने विक्रये च ॥ ४० ॥ वातप्रावृत्तिमनदीनिबन्धायतनतटाककेदारारामपण्डवपानां
 सस्यपर्णभांगोत्तरिकमन्येभ्यो वा यथोपकारं दद्युः ॥ ४१ ॥ प्रक्रयावक्रयाधिभा-
 गभोगानिसृष्टोपभोक्तारश्चैषां प्रतिकुर्युः ॥ ४२ ॥ अप्रतीकारे हीनद्विगुणो दण्डः ॥ ४३ ॥

यदि किसी पर कोई आपत्ति आ जावे-तो पाँच वर्ष तक तड़ाग के बिना काम पड़े रहने पर भी अधिकार रह सकता है अन्यथा उसके अधिकार का लोप हो जाता है। यदि कोई नया तालाब या सेतुबन्ध किया जावे-तो पाँच वर्ष तक उसका राजकीय शुल्क मुआफ़ रहना चाहिए यदि टूटे फूटे ठीक करवावे-तो उसपर चार वर्ष तक टैक्स मुआफ़ रहे। बने हुए पर कुछ और बनवाया जावे-तो तीस वर्ष तक उस से कोई उसका सरकारी टैक्स नहीं लिया जावे। स्थल भूमि को गिरवी रखने या बेचने पर नये स्वामी से दो वर्ष तक टैक्स नहीं लेना चाहिए। वायु से चलने वाले रहट या नदी, बन्ध, तड़ाग, क्यारी- आराम [वगीचे] फुलवाड़ियों या ऐसी अन्य चीजों पर उनकी उपज के अन्न, पत्ते, फूल आदि लिए जावे-या जिस से प्रजा को कष्ट न हो-इतना सरकारी टैक्स लेना चाहिए मूल्य, सालाना बन्धन, या किराया, उपज का भाग, या खाने पीने की छुट्टी देकर किसान लोग उनके स्वामी का भी प्रत्युपकार करते रहें। जो इस प्रकार इन तड़ाग आदि बनाने वालों का उपकार न करें-या उन स्थानों की मरम्मत न करवावे-तो उनपर उस नुकसान से दुगुना दण्ड होना चाहिए ॥ ३६-४३ ॥

सेतुभ्यो मुञ्चतस्तोयमपारे पट्पणो दमः ।

पारे वा तोयमन्येषां प्रमादेनोपरुन्धतः ॥ ४४ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे वास्तुके वास्तुविक्रयः सीमाविवादः क्षेत्रविवादः

मर्यादास्थापनं बाधाबाधिकं नवमो ऽध्यायः ॥ ६ ॥

आदितः पट्पण्डितमो ऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सेतुओं से पानी छोड़ने पर जितना पानी लेना चाहिए उस से अधिक लेने वाले पर छः पण दण्ड होना चाहिए तथा जो ठीक जल ले रहा है और अधिक समझकर यदि उस का पानी रोक दे-तो इस मूल का उसको भी इतना ही दण्ड होना उचित है।

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में मकान बेचने आदि
के नियमों के वर्णन का नवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

दसवाँ अध्याय

६१-६२वाँ प्रकरण

इस अध्याय में पशुओं के चरने, खेत के मार्ग रोकने आदि के दण्ड के विषय में
वर्णन किया जावेगा तथा समय के लोप नहीं करने का विचार किया जावेगा ।

कर्मोदकमार्गमुचितं रुन्धतः कुर्वतो ऽनुचितं वा पूर्वः साहस दण्डः ॥१॥
सेतुकूपपुण्यस्थानचैत्यदेवायतनानि च परभूमौ निवेशयतः पूर्वानुवृत्तं धर्मसेतुमा-
धानं विक्रयं वा नयतो नाययतो वा मध्यमः साहसदण्डः श्रोतृणामुत्तमः ॥ २ ॥
अन्यत्र भग्नोत्सृष्टात् ॥ ३ ॥ स्वाम्यभावे ग्रामाः पुण्यशीला वा प्रतिकुर्युः ॥४॥
पथिप्रमाणं दुर्गनिवेशे व्याख्यातम् ॥ ५ ॥ क्षुद्रपशुमनुष्यपथं रुन्धतो द्वादशपणो
दण्डः ॥ ६ ॥ महापशुपथं चतुर्विंशतिपणः ॥७॥ हस्तिक्षेत्रपथं चतुष्पञ्चाशत्पणः
॥ ८ ॥ सेतुवनपथं षट्छतः ॥ ९ ॥ श्मशानग्रामपथं द्विशतः ॥ १० ॥ द्रोणमु-
खपथं पञ्चशतः ॥ ११ ॥ स्थानीयराष्ट्रविवीतपथं साहस्रः ॥ १२ ॥

काम धन्वे और जल के उचित मार्गों के रोकने वाले या अनुचित रीति पर निकाल देने
वालेपुरुष पर पूर्व साहस दण्ड होना चाहिये । जो पुरुष दूसरे की भूमि की सीमा, कूप पुण्यस्थान,
चैत्य (गाँव के वगीचे) देवालय को दूसरे की भूमि बनादे या पूर्व से बने हुये धर्म स्थान को
गिरवी रखदे, बेच दे अथवा विक्रय दे-तो मध्यम दण्ड देना चाहिये । और जो पुरुष इस
कार्यवाही को सुनकर देखते रहें-उनको उत्तम साहस दण्ड देना उचित है । यदि वह धर्म
स्थान दूट फूट गया हो और उस से धर्म कार्य किया जा रहा हो-तो उनपर दण्ड नहीं होना
चाहिए । यदि किसी धर्मशाला आदि स्थानों का स्वामी न रहे, तो गाँव के धार्मिक जन
उसकी मरम्मत करा दें । मार्ग कितना कैसा होना चाहिए, यह दुर्ग निवेश में वर्णन
कर दिया है । छोटे पशु और मनुष्यों के मार्ग को कोई रोक दे-तो उसपर चौबीस पण
दण्ड होगा । हाथो और खेत के मार्ग रोकने पर चौबीस, सेतु और वन के मार्ग रोकने पर
छः सौ पण, श्मशान और ग्राम के मार्ग रोकने पर दो सौ द्रोण मुख स्थान के रोकने पर

पांच सौ स्थानीय राष्ट्र और वनजर स्थानों के मार्ग रोकने पर एक महान्न पण दण्ड होना उचित है ॥ १-१२ ॥

अतिकर्षणे चैषां दण्डचतुर्था दण्डाः ॥ १३ ॥ कर्षणे पूर्वोक्ताः ॥ १४ ॥
क्षेत्रिकस्याक्षिपतः क्षेत्रमुपवासस्य वा त्यजतो बीजकाले द्वादशपणो दण्डः ॥ १५ ॥
अन्यत्र दोषोपनिपाताविषहेभ्यः ॥ १६ ॥ करदाः करदेष्वाधानं विक्रयं वा कुर्युः
॥ १७ ॥ ब्रह्मदेयिका ब्रह्मदेयिकेषु ॥ १८ ॥ अन्यथा पूर्वः साहसदण्डः ॥ १९ ॥
करदस्य वाऽकरदग्रामं प्रविशतः ॥ २० ॥ करदं तु प्रविशतः सर्वद्रव्येषु प्राकाम्यं
स्यात् ॥ २१ ॥ अन्यत्रागारात् ॥ २२ ॥ तदप्यस्मै दद्यात् ॥ २३ ॥

यदि इन स्थानों के मार्गों को कोई जोत जात कर नष्ट करने की चेष्टा करे-तो उनपर इस दण्ड का चतुर्थांश दण्ड होना चाहिए। जो इसे अपने खेत का भाग कर जोत डाले-तो भी यही दण्ड उचित है। खेत का स्वामी अन्यत्र रहने लगे और समय पर खेत में बीज न डाले-तो उसपर बारह पण दण्ड होवे। यदि खेत में कोई दोष हो, बाहरी विपत्ति आ गई हो या वो नहीं सकता हो-और वह न वो सके-तो कोई दोष नहीं है। कर [लगान] देने वाले, कर देने वालों के ही अपनी भूमि को गिरवी रख सकता है या बेच सकता है। जिन को भूमि ब्राह्मण की रीति पर दान में मिली है, वह ब्राह्मण अपनी भूमि ऐसे ही ब्राह्मणों के गिरवी रख सकता है। यदि वन नियमों का कोई उल्लंघन करता है-तो उसपर पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए। जो कर देने वाला नहीं कर देने वाले के ग्राम में चला जावे, उसपर भी यही दण्ड होना उचित है। यदि फिर वह पुरुष कर देने वाले गांव में आ बसे-तो उसको उसके सारे अधिकार दे देने चाहिए, परन्तु उसका मकान उसको शीघ्र नहीं मिलना चाहिए। जब उचित समझा जावे-तब उसको उसका मकान सौंपा जावे ॥ १३-२३ ॥

अनादेयमकृपतो ऽन्यः पञ्चवर्षाण्युपभुज्यप्रयासनिष्क्रयेण दद्यात् ॥ २४ ॥
अकरदाः परत्र वसन्तो भोगमुपजीवेयुः ॥ २५ ॥ ग्रामार्थेन ग्रामिकं व्रजन्तमुपवासाः
पर्यायेणानुगच्छेयुरननुगच्छन्तः पणार्धपणिकं योजनं दद्यात् ॥ २६ ॥ ग्रामिकस्य
ग्रामादस्तेनपारदारिकं निरस्यथतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ २७ ॥ ग्रामस्योत्तमः ॥ २८ ॥
निरस्तस्य प्रवेशा ह्यधिगमने व्याख्यातः ॥ २९ ॥ स्तम्भैः समन्ततो ग्रामाद्धनुः-
शतापकृष्टमुपशालं कारयेत् ॥ ३० ॥ पशुप्रचारार्थं विवीतमालवनेनोपजीवेयुः
॥ ३१ ॥ विवीतं भक्षयित्वावसृतानामुष्टमहिषाणां पादिकं रूपं गृह्णीयुः ॥ ३२ ॥

गवाश्चखराणां चार्धपादिकम् ॥३३॥ क्षुद्रपशूनां षोडशभागिकम् ॥३४॥ भक्षयित्वा
निषण्णानामेत् एव द्विगुण दण्डः ॥ ३५ ॥ परिवसयां चतुर्गुणाः ॥ ३६ ॥
ग्रामदेवचृपावा अनिर्दशाहा वा घेनुरुक्षाणो गोवृषाश्चादण्डयाः ॥ ३७ ॥

जो पुरुष आप किसी खेत को न जोते-दूसरा बिना किसी लगान के उसे ठीक करले
तो वह पांच वर्ष तक उसका उपयोग करके परिश्रम का मूल्य लेकर फिर उसके स्वामी को
उसकी भूमि लौटा दे । जो पुरुष किसी भूमि का कर नहीं देते-उनको मुआफ़ी में भूमि मिली
है-वह दूसरे गांव में रहता हुआ भी अपनी भूमि का भोग के अधिकारी है । गांव के काये
के निमित्त जब गांव का मुखिया, बाहर, जावे-तो वहां के रहने वाले, नम्बरदार उसके पीछे
जावें । जो नहीं जावे, वह डेढ़ पण प्रति भोजन के हिसाब से दण्ड देवे । जब गांव का
मुखिया, गांव से चंर और व्यभिचारी के अतिरिक्त किसी को निकाले-तो उस पर
चौबीस पण दंड होना चाहिए । यदि गांव के लोग, किसी को निकाले-तो उनपर उत्तम
साठस दंड हों । निकाले हुए का प्रवेश भी इसी दंड से समझे । यदि उसे कोई न बसने दे-
तो उसपर पूर्वांश दंड हो । पशुओं के प्रचार [बूमने] के लिए चरागाह, घास फूस कटवाकर
बनवायी जावें । चरागाह में चरका, घरपर गए हुए ऊंट मेंसों का कर एक चौथाई पण कम
होना चाहिए । गाय, बड़े और गधों पर आधा पण और क्षुद्र पशु भेड़ बकरी पर पण
का सोलहवां भाग लिया जावे । जो चराकर उसी स्थान पर बैठे-तो उनपर दुगुना कर होगा
जो रात में ये वहीं निवास करें-तो उन से चौगुना कर लेना चाहिए । गांव के देवता का
सांड, दश दिन की व्याई हुई गाय, गौओं में रहने वाले सांडों से कोई कर नहीं
होना चाहिए ॥ २४-३७ ॥

सस्यभक्षणे सस्योपवातं निष्पत्तितः परिसंख्याय द्विगुणं दापयेत् ॥३८॥
स्वामिनश्चानिवेद्य चारयतो द्वादशपणो दण्डः ॥ ३९ ॥ प्रमुञ्चतश्चतुर्विंशतिपणः
॥ ४० ॥ पालिनामर्द्धदण्डः ॥ ४१ ॥ तदेव षण्ड भक्षेण कुर्यात् ॥ ४२ ॥
वाटभेदे द्विगुणः ॥ ४३ ॥ वेश्मखलवलयगतानां च धान्यानां भक्षेण हिंसा-
प्रतीकारं कुर्यात् ॥ ४४ ॥ अभयवनमृगाः परिगृहीता भक्षयन्तः स्वामिनो निवेद्य
यथावध्यास्तथा प्रतिपेद्व्याः ॥ ४५ ॥ पशवो रश्मिप्रतोदाभ्यां वारयि-
तव्याः ॥ ४६ ॥ तेषामन्यथा हिंसायां दण्डपारुष्यदण्डः ॥ ४७ ॥ प्रार्थयमाना
दृष्टापराधा वा सर्वोपायैर्नियन्तव्याः ॥ ४८ ॥ इति क्षेत्रपथहिंसाः ॥ ४९ ॥

यदि किसी का पशु किसी किसान के खड़े अनाज को खा जावे, तो जो आगे चल
कर उत्पन्न होता-उसका दुगुना उस से खेत के स्वामी को दिलवाया जावे, जो अपने पशु

को दूसरे के खेत में चोरी से चरावे, उस पर बारह दंड होना चाहिए। जो अपने पशुको किसी के खेत में चरने को छोड़ दे, तो उसपर चौबीस पण दंड होवे। खेतों की रखवाली करने वालों पर आधा दंड होगा कि उन्होंने क्यों नहीं खेतों की रक्षा की। यदि साँड खेत में चर जावे-तो भी रखवाले पर दंड होना ही चाहिए। यदि साँड दीवार तोड़ कर घुस गया-तो रखवाले पर दुगुना दंड हो। घर, खलिहान, और राशि के स्थान पर यदि साँड आदि कोई पशु अन्न को चर जावे-तो जो अन्न का नुकसान हुआ उतना दंड होना उचित है। अभय वन के मृग आकर यदि खेती को खावे-तो इस बात की रखवाला स्वामी को सूचना दे और उन मृगों को इस प्रकार से हटावे, कि उनकी हिंसा न हो सके। पशुओं को रस्सी या कोड़े से हटाना चाहिए, उनको यदि और कठोर तरह से हटाया गया-तो उन पर दंड की कठोरता का दंड होना चाहिए। यदि निकालते हुए या पूर्व में किसी पशु ने मनुष्य को मारने की चेष्टा की तो उसे किसी भी तरह से हटाया जा सकता है। यहां तक क्षेत्र [खेत] मार्ग के नाश करने के विषय में व्यवस्था बांधी गई है ॥ ३८-४६ ॥

कर्पकस्य ग्राममभ्युपेत्याकुर्वतो ग्राम एवात्यय हरेत् ॥ ५० ॥ कर्माकरणे कर्मवेतनद्विगुणं हिरण्यदानं प्रत्यंशद्विगुणं भक्ष्यपेयदाने च प्रवहणेषु द्विगुणमंशं दद्यात् ॥ ५१ ॥ प्रेक्षयामनंशदः स्वस्वजगो न प्रेक्षेत ॥ ५२ ॥ प्रच्छन्नश्रवणोक्षणे च सर्वहिते च कर्मणि निग्रहेण द्विगुणमंशं दद्यात् ॥ ५३ ॥

यदि कोई मनुष्य, गांव में आकर भी खेती न करे-तो उसपर गांव के लोग अपनी ओर से जुर्माना करें। काम करने के समय काम न करे तो उसपर काम के वेतन का दुगुना दंड हो। समाज के कार्यों में उचित चन्दा नहीं देने वाले पर दुगुने चन्दे का दंड होना उचित है और इसी तरह खाने पीने की उचित गोष्ठी या उत्सव पर सवारी का चन्दा न दे-तो उसपर भी दुगुना दण्ड होवे। किसी खेल नम शे में जो चन्दा न दे, उसके कुटुम्ब के लोग उस तमाशे को न देख सकें। यदि वे छुपकर सुन लें या सर्व हितकारी काम में सहायता न करें-तो उसपर दुगुने चन्दा लेना योग्य है ॥ ५०-५३ ॥

सर्वहितमेकस्य ब्रुवतः कुर्युराज्ञाम् ॥ ५४ ॥ अकरणे द्वादशपणो दण्डः ॥ ५५ ॥ तं चेत्संभूय वा हन्युः पृथगेषामपराधं द्विगुणो दण्डः ॥ ५६ ॥ उपहन्तृषु विशिष्टः ब्रह्मणतश्चैषां ज्येष्ठं नियम्येत ॥ ५७ ॥ प्रावाणेषु चैषां ब्रह्मणा नाकामाः कुर्युः ॥ ५८ ॥ अंशं च लभेरन् ॥ ५९ ॥ तेन देशजाति-कुलसंधानां समयस्यानपाकर्म व्याख्यातम् ॥ ६० ॥

जो सब के हित की बात कहे, उसकी बात को सारे गांव के लोग माने । जो उस की आज्ञा में न चले, उसपर बारह पण दंड होना उचित है । यदि उसी आज्ञा को बहुत से लोग इकट्ठे ही नष्ट कर दें-तो पृथक् २ इनको यथापराध दुगुना दंड होना चाहिए । उस की आज्ञा पंचातरों कोई प्रतिष्ठ ब्राह्मण हो, तो उनमें सब से बड़े नेता पर दंड किया जावे । यदि सवारी आदि लेकर किसी कार्य [मेले आदि] में जाने की ब्राह्मण की इच्छा न होवे-तो उसको छोड़ दिया जावे, परन्तु व्यय का भाग ब्राह्मण भी देवे । इस से देश, जाति, कुल और समाज के नियमों की व्यवस्था के उल्लंघन की भी व्यवस्था समझ लेनी चाहिए ॥ ५४-६० ॥

राजा देशहितान्सेतून्कुर्वतां पथि संक्रमात् ।

ग्रामशोभाश्च रक्षाश्च तेषां प्रियहितं चरेत् ॥ ६१ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे वास्तुके विवीतक्षेत्रपथहिंसा दशमोऽध्यायः

॥ १० ॥ वास्तुकं समाप्तम्

राजा राजकीय भागों पर धर्म शाला आदि उत्तम २ स्थानों को पुरुष बनावे तथा जो गांव की शोभा और रक्षा के कार्य करे, उनके कल्याण में तत्पर होता रहे ॥ ६१ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में चरागाह आदि के वर्णन का दसवां अध्याय समाप्त हुआ ।



ग्यारहवां अध्याय

६३वां प्रकरण

ऋण लेना

इस प्रकरण में ऋण के लेने-देने के प्रकारों का वर्णन किया जावेगा ।

सपादपण धर्म्या मासवृद्धिः पणशतस्य ॥ १ ॥ पञ्चपणा व्यावहारिकी ॥ २ ॥ दणपणा क्रान्तिरकारणाम् ॥ ३ ॥ विंशतिपणा सामुद्राणाम् ॥ ४ ॥ ततः परं कर्तुः कारयितुश्च पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५ ॥ श्रोतृणामेकैकं प्रत्यर्धदण्डः ॥ ६ ॥ राजन्ययोगक्षेमवहे तु धनिकधारणिकयोश्चरित्रमपेक्षेत ॥ ७ ॥

एक रुपये पर मासवृद्धि [व्याज] सवा रुपये से अधिक नहीं लेना चाहिए यह धर्म की व्यवस्था है । विदेशी व्यापारियों से सौ रुपये पर पांच रुपये भी व्याज हो सकता है ।

जंगल में रहने वाले वनवासी भील आदि से दस रुपया सैंकड़ा व्याज लिया जा सकता है। समुद्र के मार्ग से व्यापार करने वालों से प्रतिशत बीस रुपया तक व्याज लेले। इस से अधिक व्याज लेने और दिलवाने वाले पर प्रथम साहस दण्ड होना चाहिए। इस प्रकार के व्याज में सहायता करने वाले प्रत्येक पुरुष को पूर्वोक्त से आधा दण्ड होना चाहिए। किसी ऋण पर राज्य का सुख दुःख निर्भर हो, तो ऐसे समय में ऋण देने और लेने वाले पर राजा अपनी निगरानी रखे ॥ १-७ ॥

धान्यवृद्धिः सस्यनिष्पत्तावुपाधावरं मूल्यकृता वर्धेत ॥ ८ ॥ प्रक्षेपवृद्धि-
रुदयादर्धं संनिधानसन्ना वार्षिकी देया ॥ ९ ॥ चिरप्रवासस्तम्भप्रविष्टो वा
मूल्यद्विगुणं दद्यात् ॥ १० ॥ अकृत्वा वृद्धिं साधयतो वर्धयतो वा मूल्यं वा
वृद्धिमारोप्य श्रावयतो बन्धचतुर्गुणो दण्डः ॥ ११ ॥

धान्यकी वृद्धि का व्याज हो तो, जब अन्न उत्पन्न हो-उस समय तक मूल रकम से आधे से अधिक व्याज नहीं होना चाहिए। बेचे हुए माल पर नकद रकम न मिलने पर जो व्याज लगेगा, वह प्रक्षेप वृद्धि होता है। यह व्याज लाभ की मूल रकम से आधा होना चाहिए, जिसका हिसाब एक वर्ष में होना उचित है। यदि चिरकाल तक विदेश चला गया और रकम को चुकता नहीं किया, तो उसके मूल रकम से दुगुना व्याज देना होगा। जो ऋण देने वाला-अभी व्याज की रकम चढ़ी नहीं है और चढ़ी बता दे या कम मूल्य को अधिक बतावे तथा व्याज को मूल रकम बता कर मांगे तो उसपर मूल धन का चौगुना दण्ड होगा ॥ ८-११ ॥

तुच्छचतुरश्रावणायामभूतचतुर्गुणः ॥ १२ ॥ तस्य त्रिभागमादाता दद्यात्
॥ १३ ॥ शेषं प्रदाता ॥ १४ ॥ दीर्घसत्त्रव्याधिगुरुकुलोपरुद्धं बालमसारं वा
नर्णमनुवर्धेत ॥ १५ ॥ मुच्यमानमृणमप्रतिगृणहतो द्वादशगुणो दण्डः ॥ १६ ॥
कारणापदेशेन निवृत्तवृद्धिकमन्यत्र तिष्ठेत् ॥ १७ ॥ दशवर्षोपेक्षितमृणमप्रतिग्राह्य-
मन्यत्र बालवृद्धव्याधितव्यसनिप्रोपितदेशत्यागराज्यविभ्रमेभ्या ॥ १८ ॥

जो कोई इस प्रकार की ऋण की रकम को छोटे या बड़े पुरुषों को बढ़ाकर सुनावे तो उनको बढ़ाकर सुनाई हुई रकम का चौगुना दण्ड हो और उसमें तीन भाग ऋण लेने वाला [अधमर्ण] और एक भाग ऋण देने वाला [उत्तमर्ण] प्रदान करे। लम्बे यज्ञ, रोग, और गुरुकुल में रुके हुए बालक या शक्ति हीन पुरुष पर ऋण का व्याज नहीं लगाया जा सकता। ऋण का चुकता करने को दी जाने वाली रकम को यदि ऋण दाता न ले और कर्जदार को उलझाये ही रखना चाहे तो उसपर बारह गुण दण्ड होना चाहिए। यदि नहीं लेने

में कोई कारण बतावे-तो वह रकम कहीं अन्य स्थान पर जमा करदेनी चाहिए, इस के पीछे उसपर व्याज नहीं होगा । ऋण [कर्ज] की मियाद दस वर्ष की होती है, इसके अनन्तर कोई भी ऋण दाता अपने ऋण के लेने का अधिकारी नहीं हो सकता । बालक, वृद्ध व्याधिग्रस्त, विपत्ति निमग्न, विदेशगत, देश त्यागी, और राज्य की उथल पुथल में फंसा हुआ व्यक्ति दस वर्ष के उपरान्त भी अपनी रकम को वसूल कर सकता है ॥ १२-१८ ॥

प्रेतस्य पुत्राः कुसीदं दद्युः ॥ १९ ॥ दायादा वा रिक्थहराः सहग्राहिणः प्रतिभुवो वा ॥ २० ॥ न प्रातिभाव्यमन्यदसारं बालप्रातिभाव्यम् ॥ २१ ॥ असंख्यातदेशकालं तु पुत्राः पौत्रा दायादा वा रिक्थं हरमाणा दद्युः ॥ २२ ॥ जीवितविवाहभूमिप्रातिभाव्यमसंख्यात देशकालं तु पुत्राः पौत्रा वावहेयुः ॥ २३ ॥ नानर्णसमवाये तु नैकं द्वौ युगपदभिवदेयातामन्यत्र प्रतिष्ठमानात् ॥ २४ ॥ तत्रापि गृहीतानुपूर्व्या राजश्रोत्रियद्रव्यं वा पूर्वं प्रतिपादयेत् ॥ २५ ॥

यदि ऋण का लेने वाला [अधमण] मृत्यु को प्राप्त हो जावे-तो उस ऋण के देने वाले मृतक के पुत्र होंगे । यदि पुत्र न हों-तो उसकी सम्पत्ति के लेने वाले- कुटुम्बी, साथी या प्रति भू [जामिन] उस ऋण को चुकावें । इनके अतिरिक्त अन्य कोई भी इस ऋण के देने का जिम्मेवार नहीं है । बालक को जामिन बनाना व्यर्थ है । जिस धन में देश काल की अवधि नहीं है, उस ऋण को पुत्र, पौत्र, कुटुम्बी और उसके शेष धन के लेने वाले पुरुष उसके ऋण को चुकावे । जीविका, विवाह, भूमि के सम्बन्ध में यदि किसी ने जमानत देदी हो और उस में देश काल की अवधि न हो-तो उस जमानत का रुपया भी पुत्र या पौत्रों को चुकाना पड़ेगा । जब किसी व्यक्ति पर कई व्यक्तियों का ऋण हो-तो उस एक कर्जदार पर अनेक उत्तमर्ण [कर्ज देने वाले] एक दम दावा नहीं कर सकते । यदि वह कहीं छोड़कर भाग रहा हो-तो उसपर एक दम भी दावे कर सकते हैं । इस ऋण का चुकता यथा क्रम से होना चाहिए । पूर्व में ऋण देने वाले का पूर्व में ऋण चुकाना योग्य है । राजा या श्रोत्रिय [वेदनिष्ठ] ब्राह्मण का भी देय द्रव्य शेष हो-तो उसका सर्व प्रथम चुकता करवाना चाहिए ॥ १९-२५ ॥

दम्पत्योः पितापुत्रयोः आतृणां चाविभक्तानां परस्परकृतमृणमसाध्यम् ॥ २६ ॥ अग्राह्याः कर्मकालेषु कर्षका राजपुरुषाश्च ॥ २७ ॥ स्त्री चाप्रतिश्राविणी पतिकृत-मृणमन्यत्र गोपालकाद्रसीतिकेभ्यः ॥ २८ ॥ पतिस्तु ग्राह्यः ॥ २९ ॥ स्त्रीकृत-मृणमप्रतिविधाय प्रोपित इति संप्रतिपत्तावुत्तमः ॥ ३० ॥ असंप्रतिपत्तौ तु साक्षिणः प्रमाणम् ॥ ३१ ॥

पति पत्नी, पिता पुत्र और विना बंटें हुए भाइयों का परस्पर लिया हुआ ऋण, मुकदमे के योग्य नहीं है। काम के समय पर किसान और राज्य कर्मचारी ऋण के संबंध में गिरफ्तार नहीं करवाए जा सकते। पति का ऋण यदि भार्या न चुकाना चाहिए, तो उसे उस ऋण के चुकाने को मजबूर नहीं किया जा सकता। हां ? गोपालक और अर्थसीतिक [स्त्रियों को साथ रखकर मजबूरी करने वाले] पुरुष की स्त्रियाँ भी उनके पतियों के ऋण के चुकाने की जिम्मेवार हैं। स्त्रियों का ऋण पति को अवश्य चुकाना पड़ेगा। स्त्रों के ऋण को बिना चुकाये बहाने से विदेश को चला जावे, और यह सिद्ध हो जावे-तो उसपर उत्तम साहस दण्ड होना चाहिए। यदि यह बात सिद्ध न हो मके-तो साक्षियों पर दंड होना चाहिए ॥ २६-३१ ॥

प्रात्ययिकाः शुचयो ऽनुमता वा ज्यवरा अर्थ्याः ॥ ३२ ॥ पदानुमतां वा द्वौ ॥ ३३ ॥ ऋणं प्रति न त्वेवैकः ॥ ३४ ॥

विश्वासी, पवित्र चरित्र और दोनों पक्ष के माने हुए कम से कम तीन साक्षी होने उचित है अथवा दोनों पक्ष के सम्मत्तता दो ही साक्षी पर्याप्त हैं। ऋण के निणेत्य में एक साक्षी नहीं हो सकता है ॥ ३२-३४ ॥

प्रतिषिद्धाः स्यालसहायाबद्धधनिकधारणिकवैरिन्यङ्गवृतदण्डाः ॥ ३५ ॥
पूर्वे चाव्यवहार्याः ॥ ३६ ॥ राजश्रोत्रियग्रामभृतकुष्ठित्रिणिनः पतितचण्डालकुत्सित-
कर्माणो ऽन्धबधिरमूकाहंवादिनः स्त्रीराजपुरुषाश्चान्यत्र स्ववर्गेभ्यः ॥ ३७ ॥
पारुष्यस्तेयसंग्रहणेषु तु वैरिस्यालसहायवर्जाः ॥ ३८ ॥ रहस्यव्यवहारेणैका स्त्री
पुरुष उपश्रोता उपद्रष्टा वा साक्षी स्याद्राजतापसवर्जम् ॥ ३९ ॥

साला, सहायक, आवद्ध [किमी का क्रीत दास] धनिक [ऋणदाता] धारणिक [ऋण लेने वाला] शत्रु, अङ्ग हीन और राज्य से सजा पाया हुआ साक्षी होने के योग्य नहीं हैं। किसी कारण से पूर्वाक्त भी साक्षी होने के योग्य नहीं रह सकते हैं। राजा, वेद वक्ता ब्राह्मण, गांव का साहूकार, कुष्ठी, ब्रण वाला, पतित, चंडाल, कुत्सित काम करने वाला, अन्ध बधिर, मूक [गूंगे] अहंकारी, स्त्री और राज पुरुष ये अपने वर्ग को छोड़ कर अन्यत्र साक्षी नहीं बन सकते हैं। कठोर व्यवहार, चोरी और व्यभिचार के भगड़ों में वैरी, साला और सहायक को छोड़कर अन्य साक्षी माने जा सकते हैं। एकान्त के गुप्त व्यवहारों में अकेली स्त्री या उन घटनाओं का देखने सुनने वाला अकेला पुरुष भी साक्षी हो सकता है। राजा या तपस्वी के वेश में रहने वाला गुप्तचर साक्षी नहीं हो सकता है ॥ ३५-३९ ॥

स्वामिनो भृत्यानामृत्विगाचार्याः शिष्याणां मातापितरौ पुत्राणां चानि-
ग्रहेण साक्ष्यं कुर्युः ॥ ४० ॥ तेषामितरे वा ॥ ४१ ॥ परस्पराभियोगे चैषामुत्तमाः
परोक्ता दशवन्धं दद्यु रवराः पञ्चवन्धम् ॥ ४२ ॥ इति साक्ष्यधिकारः ॥ ४३ ॥

स्वामी नौकरो ऋत्विक् और आचार्य शिष्यों और माता पिता पुत्रों के वे रोक टोक साक्षी हो सकते हैं। इसी तरह भृत्य आदि भी स्वामी आदि के साक्षी हो सकते हैं। जब इन का परस्पर अभियोग चल पड़े, तो स्वामी आदि उत्तम जन यदि पराजित होवे, वे अपने धन का दसवाँ भाग और क्षत्र भृत्य आदि हारने पर पांचवाँ भाग देवे। यहां तक साक्षी के विषय में विचार किया गया ॥ ४०-४३ ॥

ब्राह्मणोदकुम्भाग्निसकाशे साक्षिणः परिगृह्णीयात् ॥ ४४ ॥ तत्र ब्राह्मणं
त्रयात्सत्यं ब्रूहीति ॥ ४५ ॥ राजन्यं वैश्यं वा मा तवेष्टापूर्तफलं कपालहस्तः
शत्रुबलं भिक्षार्थं गच्छेरिति ॥ ४६ ॥ शूद्रं जन्ममरणान्तरे यद्वः पुण्यफलं
तद्राजानं गच्छेत् ॥ ४७ ॥ राज्ञश्च किल्बिषं युष्मान् ॥ ४८ ॥ अन्यथावादे दण्ड-
श्चानुबन्धः ॥ ४९ ॥ पञ्चादपि ज्ञायेत यथादृष्टश्रुतम् ॥ ५० ॥ एकमन्त्राः
सत्यमवहरतेत्यनवहरतां सप्तरात्रादूर्ध्वं द्वादशपणो दण्डः ॥ ५१ ॥ त्रिपक्षादूर्ध्व-
मभियोगं दद्युः ॥ ५२ ॥ साक्षिभेदे यतो बहवः शुचयोऽनुमता वा ततो निय-
च्छेयुः ॥ ५३ ॥ मध्यं वा गृह्णीयुः ॥ ५४ ॥

ब्राह्मण, जल का कुम्भ और अग्नि समीप, साक्षी को ले जाया जावे। वहाँ यदि साक्षी ब्राह्मण हो तो उससे कहना चाहिए कि तुम सच बोलो। राजन्य [क्षत्रिय] को कहना चाहिए, कि यदि तुम झूठ बोलोगे-तो तुमको शत्रुके सन्मुख कपाल [ठीकरा] लेकर भीख माँगनी पड़ेगी और वैश्य को कहना है, कि तुम यज्ञ और धर्मशाला आदि बनवाने के पुण्य के भागों न बनोगे। यदि साक्षी शूद्र हो-तो उस से कहा जावे, कि तुम्हारे जन्म जन्मान्तर का पुण्य राजा को चला जावेगा, जो तुम सच न कहोगे। इस प्रकार सब से कहो कि राजा का पाप तुमको लगेगा तथा झूठ बोलने पर दंड भी मिलेगा। तुम्हारे कहने के बाद भी मुकदमे की जांच की जावेगी। अब तुम सब लोग सत्य २ साक्षी दो-यदि वे सत्य न कहे तो उनको सात दिन रोके रखे-और फिर उनपर बारह पण दंड कर दिया जावे। यदि ये लोग डेढ़ महीने तक कुछ भी न बतावे-तो जिसके साक्षी कुछ न कहे-उसके विरुद्ध मुकदमा कर किया जावे। यदि साक्षियों के कथन में परस्पर भेद हो-तो जो पवित्र और दोनों ओर सम्मत श्रेष्ठ व्यक्ति हों उनके आधार पर अभियोग का निर्णय किया जावे या मध्यस्थ बनाया जावे ॥ ४४-५४ ॥

तद्वा द्रव्यं राजा हरेत् ॥ ५५ ॥ साक्षिणश्चेदभियोगादूनं ब्रूयुरतिरिक्तस्या-
भियोक्ता बन्धं दद्यात् ॥ ५६ ॥ अतिरिक्तं वा ब्रूयुस्तदतिरिक्तं राजा हरेत् ॥ ५७ ॥
वाल्लिण्यादभियोक्तुर्वा दुःश्रुतं दुर्लिखितं प्रेताभिनिवेशं वा समीक्ष्य साक्षिप्रत्ययमेव
स्यात् ॥ ५८ ॥ साक्षिवाल्लिरयेष्वेव पृथगनुपयोगे देशकालकार्याणां पूर्वमध्यमो-
त्तमा दण्डा इत्यौशनसाः ॥ ५९ ॥ कूटसाक्षिणो यमर्धमभूतं वा नाशयेयुस्तदश-
गुणं दण्डं दद्युरिति मानवाः ॥ ६० ॥ वाल्लिण्याद्वा विसंवादयतां चित्रो वात
इति बार्हस्पत्याः ॥ ६१ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ६२ ॥ श्रुवं हि साक्षिभिः श्रोतव्यम्
॥ ६३ ॥ अश्रुण्वतां चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ६४ ॥ ततो ऽधर्मज्ज्वाणाम् ॥ ६५ ॥

यदि दोनों पक्षों की कोई सम्पत्ति प्रमाणित न हो—तो उसको राजा अपने अधिकार में करले। यदि ऋण दाता वादी ने अधिक धन का दावा किया और वह साक्षियों से कम सिद्ध हुआ—तो अधिक बताई हुई रकम का पांचवां भाग अभियोक्ता सरकार में जमा कराके यदि साक्षियों से धन अधिक प्रमाणित होवे, तो वह धन भी सरकारी खजाने में दाखल किया जावे। वादी के मूर्ख होने या वेढगे तौर पर लिखने और सुनने के कारण या प्रेत के मर जाने से कुछ अटपट कह देने से जो वात साक्षियों से प्रमाणित हो उसी पर निर्णय होना चाहिए। साक्षी लोग अपनी मूर्खता से देश काल और काय को यदि ठीक २ न बता सकें—तो उन पर यथा योग्य प्रथम मध्यम या उत्तम साहस दण्ड होना चाहिए। जो झूठे साक्षी, झूठा दावा कराके धन का नाश करवावे, उनको इस धन से दश गुणा दण्ड होना चाहिए यह मनुजी का मत है। जो साक्षी अपनी शैतानी से मिथ्या भाषण करे—तो उनको बुरी तरह मरवाया जावे—यह बृहस्पति का मत है। कौटल्य आचार्य ऐसा नहीं मानते। वे तो कहते हैं, कि साक्षियों को सत्य बताना चाहिए। यदि साक्षी सत्य की स्थापना न करें—तो उन पर चौबीस पण दण्ड की व्यवस्था है जो साक्षी के विषय में कुछ न कहें—उनपर इससे आधा दण्ड होना चाहिए ॥ ५५-६५ ॥

देशकालाविदूरस्थान्साक्षिणः प्रतिपादयेत् ।

दूरस्थानप्रसारान्वा स्वामिवाक्येन साधयेत् ॥ ६६ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे ऋणादानं एकादशो ऽध्यायः ॥ ६६ ॥

आदितोऽष्टषष्ठितमः ॥ ६८ ॥

वादी, जहां तक हो सके देश काल से समीप के पुरुष कोही साक्षी बनावे। यदि न्यायाधीश दूरके साक्षियों को भी बुलाना चाहे—तो उनको समक्ष उपस्थित करदे ॥ ६६ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थ शास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में ऋणदान का ग्यारहवां
अध्याय समाप्त हुआ ।



बारहवां अध्याय

६४ वां प्रकरण

औपनिधिक

इस प्रकरण में उपनिधि के सम्बन्ध में वर्णन किया जावेगा । उपनिधि मुहर लगा-
कर रखी हुई वन्द धरोहर का नाम है ।

उपनिधिऋणेन व्याख्यातः ॥ १ ॥ परचक्राटविकाभ्यां दुर्गराष्ट्रविलोपे
वा प्रतिरोधकैर्वा ग्राम सार्धत्रजविलोपेचक्रयुक्ते नाशे वा ग्राममध्याग्न्युदकावाधे
वा किंचिदमोक्षयमाणे कुप्यमनिर्हार्यवर्जमेकदेशमुक्तद्रव्ये वा ज्वालावेगोपरुद्धे वा
नाथि निमग्नायां मुषितायां स्वयमुपरुद्धो नोपनिधिमभ्याभवेत् ॥ २ ॥

ऋण के नियमों के अनुसार ही उपनिधि के भी नियम समझने चाहिए । शत्रु के
आक्रमण या जंगली जातियों की चढ़ाई से दुर्ग और राष्ट्र में विस्रव मच जाने, चोर लुटेरों
से गांव, व्यापारियों के समूह और पशुओं के झुंडों के घेर लेने, गांव में आग लगने या
पानी की बाढ़ चली आने पर कुछ भी न बचने तथा कुल तांबा आदिधातु और कुछ
अन्य वस्तुओं के बचा लेने पर आग के बुझा देने पर भी एवं नाव के डूबने, सारे माल
की चोरी हो जाने पर धरोहर का रखने वाला स्वयं वच भी निकला, तो भी वह इस
धरोहर के देने का अधिकारी नहीं है ॥१-२॥

उपनिधिमोक्ता देशकालानुरूपं भोगवेतनं दद्यात् ॥ ३ ॥ द्वादशपणं च
दण्डम् ॥ ४ ॥ उपभोगनिमित्तं नष्टं वाभ्याभवेच्चतुर्विंशतिपणश्च दण्डः ॥ ५ ॥
अन्यथा वा निष्पतने ॥ ६ ॥ प्रेतं न्यसनगतं वा नोपनिधिमभ्याभवेत् ॥ ७ ॥
आधानविक्रयापव्ययनेषु चास्य चतुर्गुणपञ्चवन्धो दण्डः ॥ ८ ॥ परिवर्तने
निष्पतने वा मूल्यसमः ॥ ९ ॥

यदि कोई पुरुष किसी की उपनिधि (वस्तु की धरोहर) का व्यवहार करले, तो वह
देश काल के अनुसार उसके व्यवहार में लाने का मूल्य चुकावे और उस पर बारह पण
दण्ड होने चाहिए । यदि उपभोग करने पर नष्ट हुई है, तो उसे उस धरोहर का मूल्य

देना होगा और उस पर चौबीस पण दण्ड होगा नहीं तो इस तरह भोग २ कर तो प्रत्येक व्यक्ति धरोहर की वस्तु को नष्ट कर देगा। धरोहर की वस्तु रखकर कोई विदेश चला गया या विपनि में फंस गया और धरोहर की वस्तु नष्ट हो गई-तो वह उसका देनदार नहीं है। यदि कोई धरोहर की वस्तु को गिरवी रखदे, बेचदे किसी तरह उसका अपव्यय कर डाले-तो उसको चतुर्गुण मूल्य देना होगा, और उस पर पचगुना दण्ड होगा। यदि धरोहर की वस्तु बदली गई या नष्ट हो गई-तो मूल्य मात्र चुकाना होगा। ॥३-६॥

तेन आधिप्रणाशोपभोगविक्रयाधानापहारा व्याख्याताः ॥ १० ॥ नाधिः
सोपकारः सीदेन्न चास्य मूल्यं वर्धेत ॥ ११ ॥ निरुपकारः सीदेन्मूल्यं
चास्य वर्धेत ॥ १२ ॥ उपस्थितस्याधिमप्रयच्छतो द्वादशपणो दण्डः ॥ १३ ॥
प्रयोजकासंनिधाने वा ग्रामवृद्धेषु स्थापयित्वा निष्क्रयमाधि प्रतिपद्येत ॥ १४ ॥

जो नियम धरोहर की वस्तु के विषय में बताया गए-वे ही नियम गिरवी रखी हुई वस्तु के नाश, भोग, विक्रय, गिरवी रख देने या छुपा लेने पर सम्झने चाहिए। यदि धरोहर (आभूषण आदि) किसी उपकार (सहायता) के निमित्त की गई है, तो उसको तोड़ना बर्नवाना नहीं चाहिए। इस धरोहर पर व्याज नहीं बढ़ता है। गिरवी के रूप में रखी हुई धरोहर व्यापार में लार्ई जा सकती है और उसपर मूल्य व्याज भी बढ़ता है। किसी पुरुष के पास धरोहर विद्यमान है और वह उसे देने में आनाकानी करे-तो उसपर बारह पण दण्ड होना चाहिए। यदि धरोहर का भोगने वाला बाहर है और पत्र आदि से धरोहर [गिरवी जवर] का तक्काजा कर रहा है, या मांग कर बाहर चला गया है, तो धरोहर देने वाला गांव के वृद्ध पुरुषों को उस धरोहर को सौंप कर आप उसका मूल चुकाकर उद्धृत हो जावे ॥१०-१३॥

निवृत्तवृद्धिको वाधिस्तत्कालकृतमूल्यस्तत्रैवावतिष्ठेत ॥ १५ ॥ अनाशवि-
नाशकरणाधिष्ठितो वा धारणकसंनिधाने वा विनाशभयादुद्रतार्धं धर्मस्थानुज्ञातो
विक्रीणीत ॥ १६ ॥ आधिपालप्रत्ययो वा ॥ १७ ॥ स्थावरस्तु प्रयासभोग्यः
फलभोग्यो वा प्रक्षेपवृद्धिमूल्यं शुद्धमाजीवं मूल्यक्षयेणोपनयेत् ॥ १८ ॥ अनिसृ-
ष्टोपभोक्ता मूल्यशुद्धमाजीवं वन्धं च दद्यात् ॥ १९ ॥ शेषमुपनिधिना व्याख्यातम्
॥ २० ॥ एतेनादेशो ऽन्वाधिश्च व्याख्यातौ ॥ २१ ॥

जब गिरवी आभूषणों पर व्याज बन्द हो गया-तो उसी समय उसकी मूल रकम और व्याज का हिसाब हो जाना चाहिए और रुपया नहीं चुकाया गया है, तो वह आभू-

पण साहूकार के पास ही रहना चाहिए। यद्यपि किसी गिरवी वस्तु के गलवाने या बेचने का साहूकार को अधिकार नहीं है, तो भी यदि गिरवी वस्तु के साहूकार के पास नष्ट होने का भय हो-या उसपर व्याज बहुत बढ़ गया हो न्यायाधीश की आज्ञा लेकर साहूकार उसे बेच सकता है। आधिपाल (गिरवी के मामलों की देख रेख करने वाला सरकारी अधिकारी) के कथनानुसार कहीं रखी या बेजी जा सकती है। जो कोई स्थावर सम्पत्ति धरती जोतने बोनने के परिश्रम से फल देती है या जिसका किराया लिया जाता है, उसपर गिरवी रखने की मूल रकम और व्याज लिया जा सकता है-या आजीवन शुद्ध मूल रकम व्याज छोड़कर चुका देवे। जैसी शर्त हो, कर लिया जावे, परन्तु ये चीजें बेचीं न जावे। आज्ञा के बिना गिरवी वस्तु का उपभोग करने वा जीवन भर शुद्ध रकम और व्याज के देने का अधिकारी है और उसे कुछ हरजाना भी देना पड़ेगा। शेष सारी बातें, उपनिधि (धरोहर) को भाँति गिरवी धरोहर में भी समझ लेनी चाहिए। इसी तरह किसी वस्तु के आई गई कर देने या एक स्थान से दूसरे स्थान पर गिरवी रखने के नियम समझ लेने चाहिए ॥१५-२१॥

सार्थोनान्वाधिहस्तो वा प्रदिष्टां भूमिमप्राप्तश्चौरैर्भग्नोत्सृष्टो वा नान्वा-
धिमभ्यावेत् ॥ २२ ॥ अन्तरे वा मृतस्य दायदोऽपि नाभ्यामवेत् ॥ २३ ॥
शेषमुपनिधिना व्याख्यातम् ॥ २४ ॥ याचितकमवक्रीतकं वा यथाविधं गृह्णीयु-
स्तथाविधमेवार्पयेयुः ॥ २५ ॥ भ्रैषोपनिपाताभ्यां देशकालोपरोधि दत्तं नष्टं
विनष्टं वा नाभ्यामवेयुः ॥ २६ ॥ शेषमुपनिधिना व्याख्यातम् ॥ २७ ॥

किसी साहूकार ने गिरवी के आभूषण किसी को देकर किसी नियत स्थान पर भेजा वह वहाँ न पहुँच सका और उसे बीच में ही चोरों ने छुट लिया, तो वह बीच का पुरुष, उस धन के देने का अधिकारी नहीं है। यदि वह मध्य का पुरुष मध्य में ही कहीं मर जावे, तो उसके वन्धु-बान्धव उस रकम के देने के जिम्मेवार नहीं हैं। शेष बातें उपनिधि के समान समझो उधार मांगी हुई और किराये पर ली हुई वस्तु, जैसे ली जावे, वैसे ही लौटा देनी चाहिए। किसी आकस्मिक घटना या विपत्ति से देशकाल की प्रतिज्ञा से दं हुई वस्तु नष्ट हो जावे, या खो जावे, तो उधार लेने वाला वस्तु के देने का जिम्मेवार नहीं समझना चाहिए। शेष बातें, उपनिधि (धरोहर वस्तु) के तुल्य ही समझो ॥२२-२७॥

वैय्यावृत्यविक्रयस्तु ॥ २८ ॥ वैय्यावृत्यकरा यथादेशकालं विक्रीणानाः
परयं यथाजातमूल्यमुदयं च दद्याः ॥ २९ ॥ शेषमुपनिधिना व्याख्यातम्
॥ ३० ॥ देशकालातिपातने वा परिहीणं संप्रदानकालिकेनार्पणं मूल्यमुदयं च

दद्युः ॥ ३१ ॥ यथासंभाषितं वा विक्रीणाना नोदयमधिगच्छेयुः ॥ ३२ ॥ मूल्य-
मेव दद्युः ॥ ३३ ॥ अर्घ्यपत्ने वा परिहीणं यथापरिहीणमूल्यमूनं दद्युः ॥ ३४ ॥
सांव्यवहारिकेषु वा प्रात्ययिकेष्वराजवाच्येषु भ्रेषोपनिपाताभ्यां नष्टं विनष्टं वा
मूल्यमपि न दद्युः ॥ ३५ ॥ देशकालान्तरितानां तु पणानां न्यव्ययशुद्धं
मूल्यमुदयं च दद्युः ॥ ३६ ॥ पण्यसमवायानां च प्रत्यंशम् ॥ ३७ ॥ शेषमुप-
निधिना व्याख्यातम् ॥ ३८ ॥ एतेन वैय्यावृत्यविक्रयो व्याख्यातः ॥ ३९ ॥
निक्षेपश्चोपनिधिना ॥ ४० ॥

अब फुटकर वस्तु बेचने के नियमों की व्याख्या की जावेगी । फुटकर में वस्तु बेचने वाले, देशकाल की प्रतिज्ञा के अनुसार बेची हुई वस्तुओं के मूल्य और व्याज का थोक व्यापारी के पास पहुंचाते रहें । इसके नियम भी उपनिधि के तुल्य ही जानो । यदि देशकाल की प्रतिज्ञा के अनुसार कोई वस्तु नहीं ली गई और वस्तु के दाम उतर गए तो देने के समय जो मूल्य होगा-वही देना चाहिए । हां ? जो उसपर लाभ देना है-वह दोनों अवस्था में देना पड़ेगा । यदि किसी की प्रतिज्ञा-जितने में खरीदा-उतने में ही बेचने की है-तो उसपर थोक व्यापारी को लाभ की रकम नहीं दी जा सकती । हां ? मूल्य अवश्य देना पड़ेगा । यदि बेचने के समय मूल्य गिर जावे-तो गिरे हुए मूल्य के अनुसार उतने ही कम दाम देवे । व्यवहार के विश्वास या राज विसय आदि अचानक आपात्त से कोई वस्तु नष्ट होजावे या बिगड़ जावे, तो छोटा व्यापारी थोक व्यापारी को मूल्य भी न देवे । देशकाल की प्रतिज्ञा से लिए मालपर छीजन और खर्च काटकर थोक व्यापारी की रकम और उसका लाभ अवश्य देना पड़ेगा । जो अनेक वस्तु ली हों-तो उनमें प्रत्येक का छीजन और खर्च काटकर मूल्य और लाभ दिया जावे । शेष बातें उपनिधिके तुल्य जानो । इसी प्रकार शेष व्यापारी से लेकर बेचे हुए माल की व्याख्या जानो निक्षेप (खुली धरोहर) के नियम उपनिधि(बन्द धरोहर) के समान ही जानो ॥ २८-४० ॥

तमन्येन निक्षिप्तमन्यस्यार्पयतो हीयेत ॥ ४१ ॥ निक्षेपापहारे पूर्वापदानं
निक्षेप्तारश्च प्रमाणम् ॥ ४२ ॥ अशुचयो हि कारवः ॥ ४३ ॥ नैषां करणपूर्वो
निक्षेपधर्मः ॥ ४४ ॥ करणहीनं निक्षेपमपव्ययमानं गूढभित्तिन्यस्तान्साक्षिणो
निक्षेप्तो रहस्यप्रणिपातेन प्रज्ञापयेत् ॥ ४५ ॥ वनान्ते वा मध्यप्रवहणे विश्वासेन
रहसि वृद्धो व्याधितो वैदेहकः कश्चित्कृतलक्षणं द्रव्यमस्य हस्ते निक्षिप्यापगच्छेत्
॥ ४६ ॥ तस्य प्रति देशेन पुत्रो भ्राता वाभिगम्य निक्षेपं याचेत् ॥ ४७ ॥

दाने शुचिरन्यथा निक्षेपं स्तेयदण्डं च दद्यात् ॥ ४८ ॥

यदि अन्य की धरोहर को अन्य को दे देवे तो उसका नुकसान देने वाला भोगेगा । यदि धरोहर के खा जाने का मुकदमा हो-तो पूव में धरोहर खाने वाले उसका प्रमाण दे-या धार्मिक पुरुष हो तो उनकी बात ही प्रमाण मानली जावे । शिल्पी लोग प्रायः ठीक २ सत्य बात नहीं कहते-इससे उनसे प्रमाण लेना चाहिए । ये लोग किसी सिखावट के आधार पर धरोहर नहीं रखते हैं । यदि किसी लेख के बिना रखी गई है, और उसको साहूकार ने नष्ट विनष्ट कर दिया है-तो भीत के पीछे छुपाकर साक्षियों को धरोहर रखने वाला अपनी धरोहर का रहस्य सुनवादे । वन या नाव में कोई वृद्ध, रोगी, या व्यापारी एकान्त में विश्वास के साथ चिन्ह बनाकर कोई वस्तु धरोहर नहीं देने वाले शिल्पी के हाथ में रखवावे । इसी वृद्ध की आज्ञा का हवाला देकर उसका पुत्र या भाई जाकर उस धरोहर को मांगे-यदि उसने लौटा दी-तो उसे शुद्ध समझना चाहिए अन्यथा उस से पूव की धरोहर और दण्ड लेना उचित है ॥ ४१-४८ ॥

प्रव्रज्याभिमुखो वा श्रद्धेयः कश्चित्कृतलक्षणं द्रव्यमस्य हस्ते निक्षिप्य प्रतिष्ठेत ॥ ४९ ॥ ततः कालान्तरागतो याचेत ॥ ५० ॥ दाने शुचिरन्यथा निक्षेपं स्तेयदण्डं च दद्यात् ॥ ५१ ॥ कृतलक्षणेन वा द्रव्येण प्रत्यानयेदेनम् ॥ ५२ ॥ बालिशजातीयो वा रात्रौ राजदायिकोऽङ्गणभीतः सारमस्य हस्ते निक्षिप्यापगच्छेत् ॥ ५३ ॥ स एनं बन्धुना अगारगतो याचेत ॥ ५४ ॥ दाने शुचिरन्यथा निक्षेपं स्तेयदण्डं च दद्यात् ॥ ५५ ॥

कोई सन्यास लेने का बहाना बनाकर श्रद्धालु पुरुष धरोहर खा जाने वाले पुरुष के पास चिन्ह वाली वस्तु रखकर चला जावे, फिर कुछ काल में आकर उसे मांगे । यदि देदे-तो वह पुरुष शुद्ध है और न देवे-तो उस से पूव धरोहर दिला दी जावे और उसे चोरी का दण्ड हो । जब इसको पकड़ा जावे-तो चिन्ह युक्त वस्तु इसके साथ ही ले आनी चाहिए । कोई मूर्ख बुद्धि सा पुरुष, रात में राजकीय पुरुषों से भयभीत सा हुआ इसके पास आभूषण आदि रखकर चल देवे । वही पुरुष अपने किसी बन्धु के साथ इसके घर आकर याचना करे । यदि इसने देदी-तो यह शुद्ध है-नहीं दी-तो उससे पूव भगड़े की धरोहर लेकर और इसे चोरी का दण्ड देना होगा ॥ ४९-५५ ॥

अभिज्ञानेन चास्य गृहे जनमुभयं याचेत ॥ ५६ ॥ अन्यतरादाने यथोक्तं पुरस्तात् ॥ ५७ ॥ द्रव्यभोगानामागमं चास्यानुयुञ्जीत ॥ ५८ ॥ तस्य चार्थस्य

व्यवहारोपलिङ्गनमभियोक्तुश्चार्थसामर्थ्यम् ॥ ५६ ॥ एतेन मिथः समवायो व्याख्यातः ॥ ६० ॥

दो वस्तुओं के चिन्ह करके उन्हें पृथक् २ पुरुष रखकर आवें-यदि वह एक को लोटा दे-और एक को न लोटावे-तो भी वही दण्ड होगा । इस पुरुष की द्रव्य की आमदनी और खर्च की भी खोज लगानी चाहिए । धरोहर रखने वाले पुरुष के व्यापार और कमाए धन की तहकीकात की जावे, कि यह इतनी धरोहर रखने की योग्यता भी रखता है या नहीं । इसी तरह साझे के व्यापारों की छान बीन हो सकती है ॥ ५६-६० ॥

तस्मात्साक्षिमदच्छन्नं कुर्यात्सम्यग्भिभाषितम् ।

स्वे परे वा जने कार्यं देशकालाग्रवर्णितः ॥ ६१ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे औपनिषिकं द्वादशो ऽध्यायः ॥ १२ ॥

आदित एकोनसप्ततिः ॥ ६६ ॥

इन सब भगड़ों को देखकर पुरुष जितने काम करे-वह सन्नियों के सन्मुख खुल्लम खुल्ला करने चाहिए जिनका कोई लेख आदि भी हो । देश काल और ब्राह्मणादि उत्तम वर्णों की सन्निधि में अपने और विदेशी जनों की सान्नी में ही ये काम करने उचित है ॥ ६१ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में धरोहर गिरवी माल आदि के नियमों के निरूपण का बारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



तेरहवां अध्याय

६५वा प्रकरण

दास कर्मकरकल्प

इस प्रकरण में दास और कर्मकर (मजदूरों) के कामों के विषय में वर्णन किया जावेगा ।

उदरदासवर्जमार्यप्राणमप्राप्तव्यवहारं शूद्रं विक्रयाधानं नयतः स्वजनस्य द्वादशपणो दण्डः ॥ १ ॥ वैश्यं द्विगुणः ॥ २ ॥ क्षत्रियं त्रिगुणः ॥ ३ ॥ ब्राह्मणं चतुर्गुणः ॥ ४ ॥ परजनस्य पूर्वमध्यमोत्तमवधा दण्डाः क्रेतृश्रोतृणां च ॥ ५ ॥ भ्लेच्छानामदोषः प्रजां विक्रेतुमाधातुं वा ॥ ६ ॥ न त्वेवार्यस्य दासभावः ॥ ७ ॥

जो कोई व्यक्ति अप्राप्त व्यवहार (नावालिग) शूद्र को बेचे या गिरवी रखे-तो उस बेचने वाले उस कुटुम्बी पर बारह पण दण्ड होना चाहिए । हां ? जिनकी जन्म से ही दास-वृत्ति है और जो आर्य जाति के प्राण भूत है, ऐसं शूद्रों को सेवा कार्य के लिए भेजने में किसी पर दण्ड नहीं है । जो पुरुष वैश्य को बेचे या गिरवी रखे- उसपर चौबिस पण जो क्षत्रिय को बेचे या गिरवी रखे, उसपर छत्तीस पण और नावालिग ब्राह्मण को बेचे या गिरवी रखे-उसपर अड़तालीस पण दंड होना चाहिए- जो कोई, परिवार से अन्य जन चुराकर शूद्र वच्चों को बेचे या गिरवी रखे तो उनपर पूर्व-मध्यम या उत्तम साहस दंड होना चाहिए-यहां तक कि अपराध की ऊंची कोटि होने पर अपराधी को बध दंड भी दिया जा सकता है । यही दंड उसके सहायक को होगा । म्लेच्छ लोग अपनी सन्तान को बेचे या गिरवी रखें-तो उनपर यह दंड नहीं होगा, उन में यह रीति प्रचलित है, परन्तु जाति में कभी दास प्रथा को प्रचलित नहीं होने देना चाहिए ॥ १-७ ॥

अथ वार्यमाधाय कुलबन्धन आर्याणामापदि निष्क्रयं चाधिगम्य बालं साहाय्यदातारं वा पूर्वं निष्क्रीणीरन् ॥ ८ ॥ सकृदात्माधाता निष्पतितः सीदेत् ॥ ९ ॥ द्विरन्येनाहितकः ॥ १० ॥ सकृदुभौ परविषयाभिमुखौ ॥ ११ ॥ वित्ता-पहारिणो वा दासस्यार्यभावमपहरतो ऽर्धदण्डः ॥ १२ ॥ निष्पतितप्रेतव्यसनि-नामाधाता मूल्यं भजेत ॥ १३ ॥

यदि किसी समय आर्य कुल शत्रु के बन्धन में पड़ जावे या ऐसी ही कोई अन्य आपत्ति आ जावे-तो एक सन्तान को धन भिजवा देने की प्रतिज्ञा से आर्य पुरुष गिरवी रख आवे, और फिर धन चुराकर उत्तम सहायता देने वाले वच्चे को प्रथम छुड़ा ले जिस ने अपने आपको गिरवी रखा, वह भागे-तो उसे दंड होना चाहिए और अधिकारी पुरुष द्वारा गिरवी रखा हुआ दो बार मानने पर दंड का भागी है । ये दोनों प्रकार के दास यदि भागकर अन्य देश में आना चाहे-तो इनको दंड देना चाहिए या जीवन पर्यन्त दास बना देना चाहिए । आर्य भाव को छोड़ कर धन चुराकर भागने वाले पुरुष को आधा होना चाहिए । भागेहुए, मरेहुए और रोग आदि में फंसं हुए के गिरवी रखने को कहकर धन लाने वाले पुरुष को उस का धन लौटाना पड़ेगा ॥ ८-१३ ॥

प्रेतविएमूत्रोच्छिष्टग्राहणमाहितस्य नग्नस्तापनं दण्डप्रेषणमतिक्रमणं च स्त्रीणां मूल्यनाशकरम् ॥ १४ ॥ धात्रीपरिचारिकार्धसीतिकोपचारिकाणां च मोक्षकरम् ॥ १५ ॥

जो पुरुष मुर्दा, बिष्ठा, मूत्र और झूठन किसी दास से उठवावे, जो पुरुष, स्त्री दास को नंगी करके धूप में खड़ी करे या दंड दे या अन्य प्रकार से उसकी मान मर्यादा भंग करे-तो उसे बिना मूल्य दिलाए ही उस पुरुष या स्त्री को स्वतन्त्र करवा देना चाहिए । जो धाय, दासी और मजदूरनी जाति की स्त्री, तथा घरके भीतर सेवा कार्य करने वाली स्त्री के साथ उपर्युक्त अत्याचार करे-तो उस से सदा के लिए इन्हें मुक्त करवा दिया जावे ॥१४-१५॥

सिद्धमुपवारकस्याभिप्रजातस्यापक्रमणम् ॥ १६ ॥ धात्रीमाहितिकां वाकामां स्ववशामधिगच्छतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ १७ ॥ परवशां मध्यमः ॥ १८ ॥ कन्यामाहितिकां वा स्वयमन्येन वा दूषयतः मूल्यनाशः शुल्कं तत्तद्विगुणश्च दण्डः ॥ १९ ॥ आत्मविक्रयिणः प्रजामार्या विधात् ॥ २० ॥ आत्माधिगतं स्वामिकर्मविरुद्धं लभेत पित्र्यं च दायम् ॥ २१ ॥ मूल्येन चार्यत्वं गच्छेत् ॥ २२ ॥ तेनोदरदासाहितिको व्याख्यातो ॥ २३ ॥ प्रक्षेपानुरूपश्चास्य निष्क्रयः ॥ २४ ॥ दण्डप्रणीतः कर्मणा दण्डमुपनयेत् ॥ २५ ॥ आर्यप्राणो ध्वजाहृतः कर्मकालानुरूपेण मूल्यार्धेन वा विमुच्येत ॥ २६ ॥

यदि किसी मान्य व्यक्ति से पूर्वोक्त व्यवहार किया जावे, तो वह स्वयं भाग सकता है । धाय या रखी हुई अन्य स्त्री को जो बल पूर्वक अपने वश में करे, उसपर पूर्व साहस दण्ड की व्यवस्था है और जो अन्य के अधीन करना चाहे, उस पर मध्यम साहस दण्ड होना चाहिये । जो व्यक्ति गिरवी रखी हुई कन्या का कन्यात्व दूषित करे, या अन्य से करवावे-तो उसका मूल्य न दिलवाया जावे और कन्या को उस पुरुष से धन दिलवाया जावे और कन्या के धन से सरकारी धन दुगुना दण्ड दिया जावे, अपने आपको बेच देने वाले आर्य पुरुष की सन्तान को आर्य ही समझा जावे, उसे दास न माना जावे । जो आर्य-दास भाव को प्राप्त हो गया, वह स्वामी के अनुकूल कम करके अपना धन जोड़ सकता है और उसको अपने पिता के धन का भी भाग मिलेगा । जब वह दासभूत आर्य अपना मूल्य चुका दे तब फिर वह स्वतन्त्र या आर्य पदवी प्राप्त कर सकता है । इसी तरह उदर दास (दासी से उत्पन्न) और गिरवी रखे हुए अन्य दासों की व्यवस्था जान लेनी चाहिए । गिरवी रखने के समय जो धन दिया, वही उसके छुड़ाने के समय लिया जावेगा, अधिक नहीं । दण्ड के कारण जो दास भाव को प्राप्त हुआ वह कार्य करके अपने को मुक्त कर लेवे । आर्य प्राण (चूद) ध्वजा ले चलता हुआ यदि युद्ध में पकड़ा जावे-तो कुछ दिन काम करके या अन्य व्यक्ति से आधा मूल्य चुकाकर अपने को छुड़ा सकता है ॥१६-२६॥

गृहेजातदायागतवन्धक्रीतानामन्यतमं दासमूनाष्टवर्षं विवंधुमकामं नीचे
 कर्मणि विदेशे दासीं वा सगर्भमप्रतिविहितगर्भमर्भण्यां विक्रयाधानं नयतः पूर्वः
 साहसदण्डः क्रतुश्रोतृणां च ॥२७॥ दासमनुरूपेण निष्क्रयेण्यमकुवर्तो द्वादश-
 पणो दण्डः ॥ २८ ॥ संरोधश्चाकारणात् ॥२९॥ दासद्रव्यस्य ज्ञातयो दायादाः
 ॥ ३० ॥ तेषामभावे स्वामी ॥३१॥ स्वामिनोऽस्यां दास्यां जातं समातृक्रमदासं
 विद्यात् ॥३२॥ गृह्या चेत्कुटुम्बार्थचिन्तनी माता भ्राता भगिनी चास्या अदासाः
 स्युः ॥ ३३ ॥ दासं वा निष्क्रीय पुनर्विक्रयाधानं नयतो द्वादशपणो दण्डः ॥३४॥
 अन्यत्र स्वयंवादिभ्यः ॥ ३५ ॥ इति दासकल्पः ॥ ३६ ॥

घर में उत्पन्न, दाय भाग में आये हुए किसी प्रकार से प्राप्त या खरीदे हुए, बन्धुहीन
 आठ वर्ष से कम बच्चे को जो बल-पूर्वक दास कर्म में प्रवृत्त करता है या विदेश भेज देता
 है तथा गभवती दासी के गर्भ का प्रथम न करके विक्रय और आधान (बेचना और
 गिरवी) करता है, उस पर पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए । यही दण्ड उनके सहायकों को
 होना चाहिए । जब कोई दास भाव का मूल्य चुका दे और फिर भी उसे मुक्त न करे तो
 उस पुरुष पर बारह पण दण्ड होवे । और विना कारण दास बनाने वाले, पुरुष को संरोध
 (कैद) का दण्ड होना चाहिए । दास के द्रव्य के भागी, उसके बन्धु बान्धव होंगे । यदि
 कोई बन्धु-बान्धव न हो-तो उसका स्वामी ही उस धन का अधिकारी होगा । यदि किसी
 दासी में उसके स्वामी से सन्तान उत्पन्न हो जावे, तो उस माता और सन्तान को दासता से
 मुक्त कर दिया जावे । यदि वह अपने कुटुम्ब के भरण पोषण की चिन्ता घर की स्त्री
 होकर करने लगे-तो उसकी माता, भ्राता, बहन आदि को दासता से मुक्त कर दिया जावे ।
 जो किसी दास या दासी के छड़ाने के योग्य नियत धन को प्राप्त कर चुका और फिर भी
 बल-पूर्वक उनको बेचता या गिरवी रखता है उस पर बारह पण दण्ड होना चाहिए । हों
 यदि वे-स्वयं दास रहने की इच्छा प्रकट करे तो रह सकते हैं । यहां तक दासों के विषय में
 व्यवस्था की गई ॥२७-३६॥

कर्मकरस्य कर्मसंबन्धमासन्ना विद्यु ॥ ३७ ॥ यथा संभाषितं वेतनं लभेत
 ॥ ३८ ॥ कर्मकालानुरूपमसंभाषितवेतनः ॥ ३९ ॥ कर्षकः सस्यानां गोपालकः
 सर्पिषां वैदेहकः पण्यनामात्माना व्यवहृतानां दशभागमसंभाषितवेतनो लभेत
 ॥ ४० ॥ संभाषितवेतनस्तु यथासंभाषितम् ॥ ४१ ॥ कारुशिल्पिकुशीलवचि-
 कित्सकवाग्जीवनपरिचारकादिराशाकारिकवर्गस्तु यथान्यस्तद्विधः कुर्याद्यथा वा
 वृशलाः कल्पयेयुस्तथा वेतनं लभेत ॥ ४२ ॥

कर्मकर (नौकर या मजदूर) की मजदूरी को उसके साथी जानते रहें। उनका जो वेतन निश्चित हो जावे, वह उनको मिलता रहे। जिनका वेतन तय नहीं हुआ, उनका काम और समय देखकर वेतन देना चाहिए। जिसका वेतन नियत न हुआ हो, वह कृपक अनाज में, ग्वाला घृत में, व्यापारी वस्तुओं में दसवां भाग ले सकता है। जिसकी नौकरी खुल गई, उसको वह नियत वेतन ही मिलेगा। कारीगर, गाने बजाने वाले, वैद्य, कथावाचक, या वकील, नौकर चाकर, आदि परिश्रम से कमाने खाने वाले, लोगों को बाजार भाव के अनुसार देवे या बुद्धिमान् जैसा नियत कर दें, वैसा देते रहना चाहिए ॥३७-४२॥

साक्षिप्रत्ययमेव स्यात् ॥ ४३ ॥ साक्षिणामभावे यतः कर्म ततोऽनुयु-
ज्जीत ॥ ४४ ॥ वेतनादाने दशवन्धो दण्डः षट्पणो वा ॥ ४५ ॥ अपव्ययमाने
द्वादशपणो दण्डः पञ्चवन्धो वा ॥ ४६ ॥ नदीवेगज्वालास्तेनव्यालोपरुद्धः
सर्वस्वपुत्रदारात्मदानेनार्तस्त्रातारमाहूय निस्तीर्णः कुशलप्रदिष्टं-वेतनं दद्यात् ॥ ४७ ॥
तेन सर्वत्रार्तदानानुशया व्याख्याताः ॥ ४८ ॥

यदि विवाद हो जावे-तो साक्षियों पर निर्णय दिया जावे। यदि साक्षी न हों-तो काम को देखकर उनको मजदूरी दी जावे। नियत वेतन न देने पर दसवां भाग दण्ड या छः पण दण्ड होना चाहिए यदि वेतन, अपव्यय के कारण न दिया गया तो बारह पण या पच गुना दण्ड होना चाहिए। नदी के वेग, अग्नि, चोर सिंह आदि हिंसक जन्तुओं से घिरा हुआ पुरुष, सर्वस्व, पुत्र, दारा और अपने आपको भी प्रदान करदे और जब उसकी रक्षा हो, जावे-तो जो योग्य पुरुष उस रक्षक का वेतन नियत करवादे-वह देते रहना चाहिए। इसी प्रकार सर्वत्र दुःखी पुरुष का नियम समझना चाहिए ॥४३-४८॥

लभेत पुंश्चली भोगं संगमस्योपलिङ्गनात् ।

अतियाश्वा तु जीयेत दौर्मत्याविनयेन वा ॥ ४९ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीयेऽधिकरणे दासकर्मकरकल्पे दासकल्पः कर्मकरकल्पे

स्वाम्यधिकारः त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ आदितः

सप्ततिरध्यायः ॥ ७० ॥

वेश्या स्त्री अपने भोग के नियत धन को प्राप्त कर सकती है। यदि वह दुष्ट बुद्धि या अन्याय से अधिक ले लेती है, तो उसका वह अधिक धन छिनवा कर वापिस दिलवाना चाहिए ॥४९॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत, धर्मस्थीय अधिकरण में दास वृत्ति के विषय
का तेरहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ !

ॐ नमः शिवाय

चौदहवां अध्याय

६६वां प्रकरण

सम्भूय समुत्थानम् ।

अनेक व्यक्ति मिलकर जो काम करें, उसमें किस प्रकार अपना रवेतन ग्रहण कर
अब इस बात का विवेचन किया जावेगा ।

गृहीत्वा वेतनं कर्माकुर्वतो भृतकस्य द्वादशपणो दण्डः ॥ १ ॥ संरोधश्चा-
कारणात् ॥ २ ॥ अशक्तः कुत्सिते कर्मणि व्याधौ व्यसने वानुशयं लभेत ॥ ३ ॥
परेण वा कारयितुम् ॥ ४ ॥ तस्य व्ययं कर्मणा लभेत ॥ ५ ॥ भर्ता वा कारयितुं
नान्यस्तथा कारयितव्यो मया वा नान्यस्य कर्तव्यमित्यविरोधे भर्तुर कारयतो
भृतकस्याकुर्वतो वा द्वादशपणो दण्डः ॥ ६ ॥ कर्मनिष्ठापने भर्तुरन्यत्र गृहीतवेतनो
नासकामः कुर्यात् ॥ ७ ॥

जो नौकर वेतन लेकर भी अच्छी तरह काम न कर सके, उसपर बारह पण
दण्ड किया जावे । यदि किसी भी कारण के बिना केवल हराम खोरी के ढंग
पर जिसने काम न किया हो-उस को संरोध (क्रौंद) का दण्ड होना चाहिए ।
यदि नौकर किसी कठिन कार्य व्याधि, या विपत्ति में फंस गया हो-तो वह
अवकाश छुट्टी ले सकता है या किसी दूसरे को अपना प्रतिनिधि (ऐजन्टी) कर सकता है ।
उस प्रतिनिधि का व्यय उसी काम पर होगा । यदि नौकर भर्ता से यह निश्चय कराले, कि
तुम अन्य से काम नहीं करा सकोगे-और स्वामी भी नौकर से यह प्रतिज्ञा तय करले, कि
मैं अन्यत्र काम न करूंगा, यदि भर्ता और नौकर दोनों अपने २ बायदे को पूरा न करें-तो
उनपर बारह पण दण्ड होंगे । यदि किसी नौकर ने कर्म का ठेका ले लिया और उससे पूर्व
किसी दूसरे स्वामी का वेतन ले चुका है-तो वह पूर्व स्वामी के काम को करके ही दूसरे
काम पर आ सकेगा ॥१-७॥

उपस्थितमकारयतःकृतमेव विद्यादित्याचार्याः ॥ ८ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ९ ॥
॥ ९ ॥ कृतस्य वेतनं नाकृतस्यास्ति ॥ १० ॥ स चेदल्पमपि कारयित्वा न
कारयेत्कृतमेवास्य विद्यात् ॥ ११ ॥ देशकालातिपातनेन कर्मणामन्यथाकरणे वा

नासकामः कृतमनुमन्येत ॥ १२ ॥ संभाषितादधिकक्रियायां प्रयासं मोघं कुर्यात्
॥ १३ ॥ तेन संघभृता व्याख्याताः ॥ १४ ॥

यदि नौकर या मजदूर अपनी नौकरी पर आकर उपस्थित हो जावे और किसी कारण से उससे काम न लिया जावे, तो भी वह वेतन का अधिकारी है, यह आचार्यों का मत है। कौटिल्य का मत है, कि काम करने पर ही मजदूरी दी जावेगी बिना काम कोई वेतन नहीं दिया जा सकता। यदि मालिक थोड़ा काम करवाके सारा काम न करवावे- तो नौकर को सारे दिन का वेतन देना होगा। देशकाल का अतिक्रमण करके काम के करने या उलट पलट कर देने पर काम को पूरा किया हुआ नहीं माना जा सकता है। जितना काम करने को कहा-उससे अधिक कर देने पर वह करना व्यर्थ होगा। इसीसे संघ बनाकर काम करने वालों के नियमों की व्याख्या हो जाती है ॥८-१४॥

तेषामाधिः सप्तरात्रमासीत ॥ १५ ॥ ततोऽन्यधुपस्थापयेत् ॥ १६ ॥
कर्मनिष्पाकं च ॥ १७ ॥ न चानिवेद्य भर्तुः संघः किञ्चित्पहिरेदपनयेद्वा ॥ १८ ॥
तस्यातिक्रमे चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ १९ ॥ संघेन परिहृतस्यार्धदण्डः ॥ २० ॥
इति भृतकाधिकारः ॥ २१ ॥

मजदूरों का वेतन सात दिन रोका जा सकता है। यदि सात दिन में काम ठीक न होवे-तो वह ठेका दूसरे को दे दिया जावे और जो काम पूर्व में हो चुका-उसका वेतन दे देना उचित है। स्वामी को बिना सूचना दिए, सेवक न तो कुछ नष्ट करे और न कोई वस्तु ले जावे। इन नियमों के उल्लंघन करने पर चौबीस पण का दण्ड होना चाहिए। यदि संघ किसी वस्तु का अपहरण करे-तो आधा दण्ड किया जावे। यहां तक नौकरों के विषय में व्यवस्था की गई ॥१५-२१॥

संघभृताः संभूयसमुत्थातारो वा यथासंभाषितं वेतनं समं वा विभजेरन्
॥ २२ ॥ कर्षकवैदेहका वा सस्यपण्यारम्भपर्यवसानान्तरे सन्नस्य यथाकृतस्य
कर्मणः प्रत्यंशं दद्युः ॥ २३ ॥ पुरुषोपस्थाने समग्रमंशं दद्युः ॥ २४ ॥ संसिद्धे
तूद्धृतपण्ये सन्नस्य तदानीमेव प्रत्यंशं दद्युः ॥ २५ ॥ सामान्या हि पथि सिद्धि-
श्चासिद्धिश्च ॥ २६ ॥ प्रक्रान्ते तु कर्मणि स्वस्थस्यापक्रमतो द्वादशपणो दण्डः
॥ २७ ॥ न च प्राक्राम्यमपक्रमणे ॥ २८ ॥ चौरं त्वभयपूर्वं कर्मणः प्रत्यंशेन
ग्राहयेद्दद्यात्प्रत्यंशमभयं च ॥ २९ ॥ पुनः स्तेये प्रवासनमन्यत्र गमनं च ॥ ३० ॥

किसी संघ (कम्पनी) से इकट्ठी तनख्वाह पाने वाले या मिलकर ठेके पर काम करने वाले पुरुषों को जो रुपया मिले-उसमें से वे बराबर २ बांटले। किसान या व्यापारी, अन्न

ब्रोने और वस्तु खरीदने के समय से लेकर अन्न उत्पन्न होने या वस्तु विक्रय तक जो काम जिसने जितना किया, उसका अंश उसको अवश्य देवे। यदि अपने स्थान पर किसी दूसरे पुरुष को भी रख दिया जावे-तो भी उसे पूरा अंश प्राप्त हो सकेगा। यदि वस्तु बिक्रय अचुकी और उसका रुपया आचुका-तो फौरन साभी का हिसाब कर देना चाहिए। आगे के मार्ग में सफलता होना न होना अनिश्चित है, इससे साझे की बात अगली आमदनी पर नहीं लटकाई जा सकती। यदि काम आरम्भ कर दिया गया और उसमें काम करने वाला पुरुष स्वस्थ होने पर भी खसक गया हो-तो बारह पण दण्ड दिया जावेगा, क्योंकि इस तरह भाग जाने का किसी को अधिकार नहीं है। यदि किसी चोर साभी को अभय वचन के साथ यह कह दिया जावे, कि तुम रुपया का गमन सही २ बतादो-तो तुमको हिस्सा दे दिया जावेगा, और यदि वह सच बतादे, तो उसको उसका हिस्सा दे देना चाहिए और चोरी का भी उसे दण्ड नहीं दिया जा सकता। यदि फिर भी वह साझे की रकम उड़ादे, तो उसे निकाल दें या सत्य कहने पर फिर दूसरे स्थान पर बदल दे ॥२२-३०॥

महापराधे तु दूष्यवदाचरेत् ॥ ३१ ॥ याजकाः स्वप्रचार द्रव्यवर्जयथासं-
भाषितं वेतनं समं वा विभजेरन् ॥३२॥ अग्निष्टोमादिषु च क्रतुषु दीक्षणादूर्ध्वं
याजकः सन्नः पञ्चममंशं लभेत् ॥ ३३ ॥ सोमविक्रयादूर्ध्वं चतुर्थमंशम् ॥ ३४॥
मध्यमोपसदः प्रवर्ग्योद्वासनादूर्ध्वं द्वितीयमंशम् लभेत् ॥ ३५ ॥ मायादूर्ध्वं
मर्धमंशम् ॥ ३६ ॥ सुत्ये प्रातः सवनादूर्ध्वं पादोनमंशम् ॥ ३७ ॥ मध्यन्दि-
नात्सवनादूर्ध्वं समग्रमंशं लभेत् ॥३८॥ नीता हि दक्षिणा भवन्ति ॥३९॥

यदि किसी साभी ने फर्म के फेल हो जाने आदि की घटना खड़ी करदी-तो उस पर अपराधी का सा दण्ड होना चाहिए। यज्ञ कराने वाले पुरुष, अपने २ काम में आने वाली मिली हुई अपनी २ वस्तु के अतिरिक्त अपने निश्चय के अनुसार वेतन को समान भाग में बांट लें। यदि अग्निष्टोम आदि बड़े यज्ञों में साभी निश्चित होने पर और यज्ञ के आरम्भ होने पर कोई याजक बीमार हो जावे-तो उसे अपने अंश का पांचवां भाग मिले। यदि सोम विक्रय के अनन्तर बीमार होवे-तो चौथा अंश मिल सकेगा। मध्यमोपसत्, प्रवर्ग्योद्वासन नामक यज्ञ की विधि के अनन्तर दो भाग का अधिकारी हो जाता है। माय नामक विधि के अनन्तर आधे भाग को याजक प्राप्त कर सकता है। यदि सोम का रस निकाला जा चुका और प्रातः सवन की विधि हो चुकी, तो अपने भाग के बारह आने उसे मिलेंगे और मध्यन्दिन सवन को अनन्तर यज्ञ थोड़ा ही शेष रह जाता है, तब यदि याजक

बीमार हो जावे, तो उसे सारा भाग मिल जावेगा, क्योंकि यज्ञ का बहुत भाग व्यतीत हो जाने पर दक्षिणा सही हो जाती है ॥३१-३६॥

बृहस्पतिसवनवर्जं प्रतिसवनं हि दक्षिणा दीयन्ते ॥४०॥ तेनार्हगणदक्षिणा व्याख्याताः ॥ ४१ ॥ सन्नानामादशाहोरात्राच्छेषभृताः कर्म कुर्युः ॥ ४२ ॥ अन्ये वा स्वप्रत्ययाः ॥ ४३ ॥ कर्मण्यसमाप्ते तु यजमानः सीदेत् ॥ ४४ ॥ ऋत्विजः कर्म समाप्य दक्षिणां हरेयुः ॥ ४५ ॥ असमाप्ते तु कर्मणि याज्यं याजकं वा त्यजतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ४६ ॥

बृहस्पति सवन को छोड़कर प्रत्येक सवन में दक्षिणा दी जाती है। इसी से अर्हगण दक्षिणाओं के नियम भी समझ लेने चाहिए। सामी याजकों के प्रतिनिधि दश दिन तक प्रतिनिधि रह सकते हैं। अन्य पुरुष तो अपने २ काम के आप मालिक हैं, वे प्रतिनिधि नहीं हैं। यदि यज्ञ कर्म के असमाप्त होने पर ही यज्ञ को रोक दिया जावेगा-तो यजमान को अशुभकारी है। ऋत्विक् लोग कर्म समाप्त करा देने पर ही दक्षिणा के अधिकारी होते हैं। कर्म के बिना समाप्त हुए यजमान याजक को और याजक भगवान को द्वाड़ें-तो उन पर पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए ॥४०-४६॥

अनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः ।

सुरापो वृषलीभर्ता ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ ४७ ॥

प्रसत्प्रतिग्रहे युक्तः स्तेनः कुत्सितयाजकः ।

अदोषस्त्यक्तुमन्योन्यं कर्मसंकरनिश्चयात् ॥ ४८ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे दासकर्मकरकल्पे भृतकाधिकारः संभूयसमुत्थानं चतुर्दशो ऽध्यायः ॥ १४ ॥ आदितएकसप्ततिः ॥ ७१ ॥

सौ गाय रखने पर अन्यावान न करने वाला, और सहस्र गौ रखने पर यज्ञ का अकर्ता, सुरा पीने वाला, शूद्रपति, ब्रह्मघातक, गुरुपत्नी से गमन करने वाला, दुरेदान का लेने वाला, चोर, कुत्सित पुरुषों को यज्ञ कराने वाले व्यक्तियों के परस्पर त्याग देने पर भी कोई दोष नहीं है, क्योंकि इससे कर्म भ्रष्ट हो जाता है ॥४७-४८॥

इति श्रीकौटिलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में मिल कर काम करने वाले पुरुषों के नियम का चौदहवां अध्याय समाप्त हुआ ।

पन्द्रहवां अध्याय

६७ वां प्रकरण

विक्रीत क्रीतानुशयः ।

इस प्रकरण में बेची वस्तु के नहीं बेचने आदि की व्यवस्था का वर्णन है ।

विक्रीय पण्यमप्रयच्छतो द्वादशपणो दण्डः ॥ १ ॥ अन्यत्र दोषोपनिपाता-
विषह्येभ्यः ॥ २ ॥ पण्यदोषो दोषः ॥ ३ ॥ राजचोराग्न्युदकवाध उपनिपातः
॥ ४ ॥ बहुगुणहीनमार्तकृतं वाविषह्यम् ॥ ५ ॥ वैदेहकानामेकरात्रमनुशयः ॥ ६ ॥
कर्षकाणां त्रिरात्रम् ॥ ७ ॥ गोरक्षकाणां पञ्चरात्रम् ॥ ८ ॥ व्यामिश्राणामुत्तमानां च
वर्णानां विवृत्तिविक्रये सप्तरात्रम् ॥ ९ ॥ आतिपातिकानां पण्यानामन्यत्राविक्र-
यमित्यविरोधेनानुशयो देयः ॥ १० ॥

जो व्यक्ति वस्तु बेचकर प्रदान न करे, तो उसपर बारह पण दण्ड होना चाहिए ।
यदि सौदे में कोई दोष हो या अचानक कोई भ्रंश खड़ी हो गई हो या उनके बेचने की
असामर्थ्य हो-तो उसे दण्ड नहीं हो सकता है । विक्रेय वस्तु में दोष होने को यहां दोष कहा
गया है । राजा, अग्नि, चोर या जल की अकस्मात् उत्पन्न हुई बाधा को उपनिपात कहते
हैं । किसी वस्तु में बहुत ही गुण हीनता, या दुःख दाय होना इस वस्तु की असामर्थ्य
(अविसह्य) कहाता है । । क्रय-विक्रय करने वाले व्यापारियों का सौदा एक रात में अनुशय
(साई) हो सकता है । इसी तरह किसानों का तीन, गौ रक्षकों का पाच दिन में सौदा लौट
सकता है । मिले हुए उत्तम पुरुषों का भूमि आदि का सौदा सात दिन में लौटाया जा सकता
है । जो चीजें, बिगड़ सकती हैं, उनको अन्यत्र नहीं बेचने के रोकने में अवश्य अनुशय
(साई) होना चाहिए ॥ १-१० ॥

तस्यातिक्रमे चतुर्विंशतिपणो दण्डः पण्यदशभागो वा ॥ ११ ॥ क्रीत्वा
पण्यमप्रतिगृह्णातो द्वादशपणो दण्डः ॥ १२ ॥ अन्यत्र दोषोपनिपाताविष-
ह्येभ्यः ॥ १३ ॥ समानश्चानुशयो विक्रेतुरनुशयेन ॥ १४ ॥ विवाहानां तु त्रयाणां
पूर्वेषां वर्णानां पाणिग्रहणात्सिद्धमुपावर्तनम् ॥ १५ ॥ शूद्राणां च प्रकर्मणः ॥ १६ ॥
वृत्तपाणि ग्रहणयोरपि दोषमौपशायिकं दृष्ट्वा सिद्धमुपावर्तनम् ॥ १७ ॥ न
त्वेवाभिप्रजातयोः ॥ १८ ॥

इस नियम के उल्लंघन करने वाले पुरुषों को चौबीस पण या विक्रेय वस्तु का
दसवां भाग दण्ड होना चाहिए । वस्तु खरीद कर जो ग्रहण नहीं करता, उसपर बारह पण
दण्ड की व्यवस्था है । यदि वस्तु में दोष, राजा विसव आदि उपनिपात और वस्तु का

दुःखदायी होना सिद्ध न हो । यदि खरीदने वाले को अनुशय (वयाना) दिया गया हो-तो उसके भी यही नियम हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इन तीनों वर्ण के विवाह में पाणिग्रहण के अनन्तर उलट फेर नहीं हो सकता है-इससे पूर्व उलट पलट हो सकता है । शूद्रों के फेरे पड़ने तक उलट पलट हो सकती है । यदि कन्या और वर का पाणिग्रहण हो चुका और उनमें शयन के समय कुछ त्रुटि सिद्ध हो जावे-तो उनका विवाह सम्बन्ध तोड़ा जा सकता है । सन्तान हो जाने पर सम्बन्ध नहीं टूट सकता ॥११-१८॥

कन्यादोषमौपशायिकमनाख्याय प्रयच्छतः कन्यां पणवतिर्दण्डः शुल्कस्त्री धनप्रतिदानं च ॥ १९ ॥ वरयितुर्वा वरदोषमनाख्याय विन्दतो द्विगुणः ॥ २० ॥ शुल्कस्त्रीधननाशश्च ॥ २१ ॥ द्विपदचतुष्पदानां तु कुष्ठव्याधितानामशुचीनामुत्साहस्वास्थ्यशुचीनामाख्याने द्वादशपणो दण्डः ॥ २२ ॥ आत्रिपक्षादिति चतुष्पदानामुपावर्तनम् ॥ २३ ॥ आसंवत्सरादिति मनुष्याणाम् ॥ २४ ॥ तावता हि कालेन शक्यं शौचाशौचौ ज्ञातुमिति ॥ २५ ॥

जो पुरुष कन्या के गुप्त दोष को छुपाकर विवाह कर देता है, उसपर द्वियानवे पण दण्ड होना चाहिए तथा उससे, शुल्क स्त्री धन उलटा ले लेवे । इसी प्रकार वर के सम्भोग सम्बन्धी दोष छुपाकर विवाह कर दिया जावे, तो दुगुना दण्ड हो । उसका दिया हुआ शुल्क और स्त्री धन नष्ट माना जावे । द्विपद [मनुष्य या पक्षी] और चतुष्पद [चौपायों] के कोढ़, व्याधि और अन्य दोषों को छुपाकर उत्साह स्वास्थ्य तथा दोष रहित बताने पर बारह पण दण्ड होना चाहिए । चौपाये तीन पक्ष तक लौटाये जा सकते हैं । मनुष्यों को एक संवत्सर में उलटा फेरा जा सकता है । इतने समय में इनकी दोषता या निर्दोषता जानी जा सकती है ॥१९-२५॥

दाता प्रतिगृहीता च स्यातां नोपहतौ यथा ।

दाने क्रये वानुशयं तथा कुर्युः सभासदः ॥ २६ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीयेऽधिकरणे विक्रीतक्रीतानुशयः पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

आदितो द्विसप्ततितमः ॥ ७२ ॥

देने लेने वाला, जिस प्रकार दुःखी न हो सके, उसी तरह दान, क्रय या अनुशय [व्याने] की राजा के सभासद पुरुष व्यवस्था करें ॥२६॥

इति श्रीकौटिलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में क्रय विक्रय और व्याने के सम्बन्ध के नियमों की व्यवस्था का पन्द्रहवां अध्याय समाप्त हुआ ।

सौलहवां अध्याय

६८-७२ वां प्रकरण

दत्तस्यानपाकर्म, अस्वामिविक्रयः, स्वस्वामिसम्बन्धः

इस प्रकरण में दी हुई वस्तु का जो प्रदान न करे और स्वामी न होने पर वस्तु को बेचदे इनके नियम तथा किसका वस्तु पर अधिकार होना चाहिए इसके नियमों की व्याख्या की जावेगी ।

दत्तस्याप्रदानमृणादानेन व्याख्यातम् ॥ १ ॥ दत्तमप्यपहार्यमेकत्रानुशयं वर्तेत ॥ २ ॥ सर्वस्वं पुत्रदारमात्मानं वा प्रदायानुशयिनः प्रयच्छेत् ॥ ३ ॥ धर्मदानमसाधुषु कर्मसु चौपधातिकेषु वार्थदानमनुपकारिष्वपकारिषु वा कामदानमनर्हेषु च यथा च दाता प्रतिगृहीता च नोपहतौ स्यातां तथानुशयं कुशलाः कल्पयेयुः ॥ ४ ॥

किसी वस्तु के देने की प्रतिज्ञा करके न देने में ऋण के नहीं देने के नियम ही लागू होते हैं । दिया हुआ धन यदि किसी कारण से न दिया जा सके तो उसको एक स्थान में धरोहर के ढंग पर रखदेवे । जब समय आवे, तब दाता अपना सर्वस्व पुत्र, स्त्री और अपने तक को बन्धन में डालकर दान का रुपया चुका देना चाहिए । असाधु पुरुष और नाशकारी कर्म में धर्म पूर्वक दान, अनुपकारी या अपकारी पुरुषों की नीति में चूक कर किया हुआ दान, वेश्या आदि अयोग्य जन में काम कृमि के निमित्त किए हुए दान को दाता या प्रति गृहीता का जिस प्रकार अकल्याण न हो, उस तरह कुशल पुरुष कहा रखवा दे । १-४ ॥

दण्डभयादाक्रोशभयादनर्थभयाद्वा भयदानं प्रतिगृह्णातः स्तेय दण्डः प्रयच्छतश्च ॥ ५ ॥ रोषदानं परहिंसायाम् ॥ ६ ॥ राज्ञामुपरि दर्पदानं च ॥ ७ ॥ तत्रोत्तमो दण्डः ॥ ८ ॥ प्रातिभान्वं दण्डशुल्कशेषमाक्षिकं सौरिकं कामदानं च नाकामः पुत्रो दायादो वा रिक्थहारो दद्यात् ॥ ९ ॥ इति दत्तस्यानपाकर्म ॥ १० ॥

दण्ड, निन्दा और अनर्थ का भय देकर जो दान पत्र लिखवात या दान लेता है उसको चोरी का दण्ड होना चाहिए या जो किसी को दण्ड देने, निन्दा कराने या अनर्थ उत्पत्ति के लिए कुछ देता है, उसे भी चोरी का दण्ड होवे । पर हिंसा के लिए दिया हुआ दान रोष दान कहाता है इसका भी वही दण्ड है । राजाओं से बढ़कर अभिमान

पूर्वक जो दान दिया जाता है, उसमें उत्तम दण्ड की व्यवस्था है। व्यर्थ कार्य के निमित्त लिय हुआ ऋण, दण्ड और शुल्क का शेष, जुए में हारा हुआ धन, सुरापान का ऋण, काम तृप्ति के निमित्त वेश्या आदि के देने के लिए हुए ऋण को पुत्र या धन लेने वाला कुटुम्बी यदि न चाहे-तो उस ऋण को न चुकावे। यहां तक दान की हुई वस्तु के न देने के सम्बन्ध में वर्णन किया गया ॥ ५-१० ॥

अस्वामिविक्रयस्तु ॥ ११ ॥ नष्टापहतमासाद्य स्वामी धर्म स्थेन ग्राहयेत् ॥ १२ ॥ देशकालातिपत्तौ वा स्वयं गृहीत्वोपहरेत् ॥ १३ ॥ धर्मस्थश्चस्वामिन मनुयुञ्जीत कुतस्ते लब्धमिति ॥ १४ ॥ स चेदाचारक्रमं दर्शयेत् न विक्रेता तस्य द्रव्यस्याति सर्गेण मुच्येत ॥ १५ ॥ विक्रेता चेद्दृश्येत मूल्यं स्तेयदण्डं च ॥ १६ ॥ स चेदपसारमधिगच्छेदपसरेदापसारक्षयादिति क्षये मूल्यं स्तेयदण्डं च दद्यात् ॥ १७ ॥ नाष्टिकं च स्वकरणं कृत्वा नष्टप्रत्याहतं लभेत ॥ १८ ॥ स्वकरणाभावे पञ्चवन्धो दण्डः ॥ १९ ॥ तच्चद्रव्यं राजधर्म्यं स्यात् ॥ २० ॥

जो मनुष्य जिस वस्तु का स्वामी न हो-अब उस विषय में वर्णन किया जाता है खोई हुई वस्तु को पाने वाले पुरुष को पकड़ कर स्वामी धर्माध्यक्ष के द्वारा उसको पकड़वा दे। यदि धर्मस्थ तक पहुंचने में देश काल बाधक हो तो स्वयं पकड़कर उसके पास लेजावे। धर्माध्यक्ष, उस वस्तु के नकली स्वामी बनने वाले से मालूम करे, कि तुमने यह वस्तु कहांसे प्राप्त की है। यदि वह वस्तु की प्राप्ति का ठीक २ क्रम बतावे, और विक्रेता को न बतावे अर्थात् वस्तु को मोल ली हुई न बतावे, तो उससे वस्तु दिलाकर उसे छोड़ दिया जावे। यदि वह उस वस्तु को मोल खरीदना बतावे और बेचने वाले को सामने लावे-तो उसको मूल्य लौटवाकर बेचने वाले को चोरी का दण्ड होवे। यदि वह भी किसी दूसरे मनुष्यसे खरीदी बतावे, तो इस परम्परा में अन्त में जिसने उस वस्तु को प्रथम बेचा है, उस से मूल्य दिलाकर उसे ही चोरी का दण्ड देना उचित है। नष्ट हुई वस्तु को उसका स्वामी प्रमाण उपस्थित करके ही वापिस ले सकता है। यदि उसका स्वामी प्रमाण न कर सके-तो उसके मूल्य का पांचवाँ भाग दण्ड में देवे। उस वस्तु को राज्य के कोष में डलवादी जावे ॥ ११-२० ॥

नष्टापहतमनिवेद्योत्कर्षतः स्वामिनः पूर्वः साहस दण्डः ॥ २१ ॥ शुल्क-स्थाने नष्टापहतोत्पन्नं तिष्ठेत् ॥ २२ ॥ त्रिपक्षादूर्ध्वमनभिसारं राजा हरेत्स्वामी वा ॥ २३ ॥ स्वकरणेन पञ्चपणिकं द्विपदरूपस्य निष्क्रयं दद्यात् ॥ २४ ॥

चतुष्पणिकमेकखुरस्य द्विपणिकं गोमहिषस्य पादिकं क्षुद्रपशूनां रत्नसारफल्गु-
कुप्यानां पञ्चकं शतं दद्यात् ॥ २५ ॥

जो पुरुष अपनी नष्ट हुई वस्तु की राज्य के अधिकारी को सूचना (रिपोर्ट) न देकर स्वयं छीने-तो उसे पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए । यदि कोई नष्ट (खोई हुई या चुराई हुई वस्तु) सरकारी मनुष्यों को मिले तो उसे शुल्क स्थान में रखवा देना चाहिए , तीन पक्ष के अनन्तर यदि उसका कोई स्वामी न आवे, तो उसे राजा रख लेवे या प्रमाण उपस्थित करके उसका मालिक ले जावे । जब स्वामी अपना प्रमाण देदे, तो (दास दासी) मनुष्य के छुड़ाने का पांच पण सरकारी शुल्क देवे । एक खुर वाले घोड़े आदि के लिए चार पण, दो खुर वाली गाय भैंस के निमित्त दो पण, भेड़ बकरी का एक पण, रत्न, सार (उत्तम वस्तु) फल्गु (रसहीन) और कुप्य (धातु, वस्तुओं पर प्रतिशत पांच पण छुड़ाने का शुल्क देना पड़ेगा ॥ २१-२५ ॥

परचक्राटवीभृतं तु प्रत्यानीय राजा यथास्वं प्रयच्छेत् ॥ २६ ॥ चोरहृत-
मविद्यमानं स्वद्रव्येभ्यः प्रयच्छेत् ॥ २७ ॥ प्रत्यानेतुमशक्तो वा स्वयंग्राहेणाहृतं
प्रत्यानीय तन्निष्क्रयं वा प्रयच्छेत् ॥ २८ ॥ परविषयाद्वा विक्रमेणानीतं यथा-
प्रदिष्टं राज्ञा भुञ्जीतान्यत्रार्यप्राणेभ्यो देवब्राह्मणतपस्विद्रव्येभ्यश्च ॥ २९ ॥
इत्यस्वामिविक्रयः ॥ ३० ॥

दूसरे देश के राजा या जंगली मनुष्यों द्वारा अपहृत प्राणियों को राजा लाकर जिस के हों-उनको देदेवे । यदि वस्तु चोर चुरा ले गए और राजा वापिस न ला सका तो राजा अपने कोष से उसका मूल्य प्रदान करे । जब राजा स्वयं चोरों से वस्तु न मंगवा सके-तो अन्य मनुष्यों द्वारा उन वस्तुओं को मंगवावे और उसका मूल्य स्वयं चुकावे । यदि अन्य देश को विजय किया है, तो वहां जो लूट में धन प्राप्त हुआ, उसे राजा की आज्ञा के अनुसार मनुष्य ग्रहण कर सकता है । यदि वह धन आर्य प्राण (शूद्र) देव, ब्राह्मण और तपस्वियोंका हो-तो उसे वापिस लौटा दे । यहां तक जो स्वामी न हो, और वस्तु को बेचदे-उसके विषय में विवेचन किया गया है ॥ २६-३० ॥

स्वस्वामिसंबन्धस्तु ॥ ३१ ॥ भोगानुवृत्तिरुच्छिन्नदेशानां यथास्वद्रव्या-
णाम् ॥ ३२ ॥ यत्स्वं द्रव्यमन्यैर्भुज्यमानं दशवर्षाण्युपेक्षेत हीयेतास्य ॥ ३३ ॥
अन्यत्र बालवृद्धव्याधितन्यसनिप्रोषितदेशत्यागराज्यविभ्रमेभ्यः ॥ ३४ ॥ विंश-
तिवर्षोपेक्षितमनवसितं वास्तु नानुयुज्यते ॥ ३५ ॥

अब किस वस्तु पर किसका किस तरह अधिकार मानना चाहिए-इसका वर्णन किया जाता है । अपने कब्जे से निकलकर जो सम्पत्ति दूसरे के अधिकार में चली गई-तो उस का भोग ही पर्याप्त प्रमाण है । इसी तरह अन्य द्रव्यों की भी यथा योग्य व्यवस्था जानो । जो अपनी सम्पत्ति को दस वर्ष तक अन्य से भोगता देखता है, तो फिर उस पर से उस का अधिकार नष्ट हो जाता है । यदि वह सम्पत्ति बालक, वृद्ध, रोगी, व्यसनी, विदेशी, देश त्यागी की हो या राज्य विसर्ग के समय में दवाई गई हो तो उसपर दश वर्ष का अधिकार (कब्जा) पर्याप्त नहीं माना जावेगा । यदि किसी मकान या भूमि को बीस वर्ष तक भोगते देखकर भी जो कुछ नहीं करता, तो इसके बाद उसपर से उसका अधिकार नष्ट हुआ मानो ॥ ३१-३५ ॥

ज्ञातयः श्रोत्रियाः पाण्डा वा राज्ञामसंनिधौ परवास्तुषु विवसन्तो न भोगेन हरेयुः ॥ ३६ ॥ उपनिधिमाधिं निधिं निक्षेपं स्त्रियं सीमानं राजश्रोत्रिय-द्रव्याणि च ॥ ३७ ॥ आश्रमिणः पाण्डा वा महत्यवकाशे परस्परम बाधमाना वसेयुः ॥ ३८ ॥ अल्पां बाधां सहेरन् ॥ ३९ ॥ पूर्वागतो वा वासपर्यायं दद्यात् ॥ ४० ॥ अप्रदाता निरस्येत ॥ ४१ ॥

बन्धु बान्धव, वेदपाठी, पाण्डा, राजा के पास न होने या कहीं दूर चले जाने पर दूसरे के मकान में रहते हुए भी रहने वाले का अधिकार नहीं होता है । उपनिधि (बन्धु धरोहर) आधि (गिरवी) निधि (कोप) निक्षेप (धरोहर) स्त्री, सीमा, राजा और वेदपाठी ब्राह्मण की भूमि या सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं कर सकता है । आश्रमानुसार संन्यास लेने वाले या विनाशास्त्र कपड़े रंगे हुए पंथार्थ साधु खुले विशाल स्थान में रह सकते हैं, परन्तु वे परस्पर लड़ाई झगड़ा न करें । यदि इनको कोई थोड़ा कष्ट भी हो-तो भी ये सहन कर लें । प्रथम आया हुआ व्यक्ति पीछे आने वाले को यथा योग्य स्थान दे देवे । यदि स्थान देने पर झगड़ा करे-तो पूर्व आये हुए को वहां से निकाल दें ॥ ३६-४१ ॥

वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणात्माचार्यशिष्यधर्मभ्रातृसमानतीर्थ्या रिक्थभाजः ॥ ४२ ॥ क्रमेण विवादपदेषु चैषां यावन्तः पणाः दण्डास्तावती रात्रिः क्षपणाभिपेकाग्रिकार्यमहाकण्डवर्धनानि राजश्वरेयु ॥ ४३ ॥ अहिरण्यसुवर्णाः पाण्डाः साधवस्ते यथास्वमुपवासव्रतैराराधयेयुः ॥ ४४ ॥ अन्यत्र पारुष्यस्ते-यसांहससंग्रहणेभ्यः ॥ ४५ ॥ तेषु यथोक्ता दण्डाः कार्याः ॥ ४६ ॥

वानप्रस्थी, संन्यासी, और ब्रह्मचारियों की सम्पत्ति के स्वामी उनके आचार्य, शिष्य, धर्म-भ्राता या सहाध्यायी होते हैं । यदि इनमें किसी का झगड़ा हो और एक पर दण्ड होवे,

तो वह साधु उत्तनी रात, राजा के कल्याण के निमित्त, उपवास, स्नान, अग्नि होत्र तथा कठिन चान्द्रायण जैसे व्रतों का अनुष्ठान करे। धन सुवर्ण आदि अपने पास न रखने वाले पाषण्डी (पन्थाई) साधु भी यथा योग्य उपवास व्रत करके राजा की आराधना करें, परन्तु यदि इन्होंने मारपीट, चोरी, डाका या व्यभिचार किया हो तो उनको पूर्वोक्त दण्ड दिये जावेंगे ॥४२-४६॥

प्रव्रज्यासु वृथाचारान्राजा दण्डेन वारयेत् ।

धर्मो ह्यधर्मोपहतः शास्त्रारं हन्युपेक्षितः ॥ ४७ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये अधिकरणे अस्वामिविक्रयः स्वस्वामिसंवन्धः षोडशो

अध्यायः ॥ १६ ॥ आदितस्त्रिसप्ततिः ॥ ७३ ॥

राजा संन्यासियों में होने वाले दुष्ट आचारों को भी दण्ड के द्वारा दूर करे। अधर्म से दवाया हुआ या उपेक्षा किया हुआ धर्म, शासन करने वाले राजा को मार बैठता है ॥४७॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में अस्वामि विक्रय आदि

का सोलहवां अध्याय समाप्त हुआ ।

सत्रहवां अध्याय

७१वां प्रकरण

साहसम्

इस अध्याय में साहस डांके का वर्णन होगा ।

साहसमन्वयवत्प्रसभकर्म ॥ १ ॥ निरन्वये स्थेयमपव्ययने च ॥ २ ॥

रत्नसारफल्गुकुप्यानां साहसे मूल्यसमो दण्ड इति मानवाः ॥ ३ ॥ मूल्यद्विगुण इत्यौशनसाः ॥ ४ ॥ यथापराधमिति कौटल्यः ॥ ५ ॥ पुष्पफलशाकमूलकन्द-
पक्वान्नचर्मवेणुमृद्भाण्डादीनां चतुर्दशपणावरश्चतुर्विंशतिपणपरो
दण्डः ॥ ६ ॥

बलात्कार से सबके सम्मुख द्रव्य आदि का अपहरण साहस [डाका] कहाता है और छुपकर वस्तु का अपहरण कर लेना चोरी है। रत्न, सार फल्गु चन्दन आदि की लकड़ी कुप्य [धातु] के डाके में उनपर उनकी कीमत का जुरमाना होना चाहिए ऐसा मनु का मत है। मूल्य से दुगुना उशना आचार्य मानते हैं। कौटल्य का मत है, कि जैसा डाका देखा जावे, वैसा दण्ड हो। पुष्प, फल, शाक, मूल, कन्द, पक्वान्न, चर्म, वेणु, [वांस]

मिट्टी, के वर्तनों जैसी छोटी चीजों के डाके डालने वाले पर बारह पण से लेकर चौबीस पण तक दण्ड होना चाहिए ॥१-६॥

कालायसकाष्टरज्जुद्रव्यक्षुद्रपशुवाटादीनां स्थूलकद्रव्याणां चतुर्विंशति-
पणावरो ऽष्टचत्वारिंशत्पणावरो दण्डः ॥ ७ ॥ ताम्रवृत्तकंसकाचदन्तभाण्डादीनां
स्थूलद्रव्याणामष्टचत्वारिंशत्पणावरं पणावतिपरं पूर्वः साहसदण्डः ॥ ८ ॥
महापशुमनुष्यक्षेत्रगृहहिरण्यसुवर्णसूक्ष्मवस्त्रादीनां स्थूलकद्रव्याणां द्विशतावरः
पञ्चशतपरः मध्यमः साहसदण्डः ॥ ९ ॥ स्त्रियं पुरुषं वाभिपक्षः वध्नतो वन्धयतो वन्धं
वा मोक्षयतः पञ्चशतावरः सहस्रपर उत्तमः साहसदण्ड इत्याचार्याः ॥ १० ॥

लोहा, लकड़ी रस्सी आदि वस्तु, क्षुद्र पशु और वस्त्र आदि तथा स्थूल वस्तु आदि के बल पूर्वक अपहरण में चौबीस पण से लेकर अड़तालीस पण तक दण्ड होना चाहिए । तांबा पीतल, कांसी, कांच और दांत की बनी स्थूल वस्तुओं के अपहरण में अड़तालीस पण [मुद्रा] से लेकर छियानवें पण तक पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए । बड़े २ पशु, मनुष्य, खेत, मकान, हिरण्य, सुवर्ण और सूक्ष्म रेशमी वस्त्र जैसी उत्तम वस्तुओं के अपहरण में दो सौ पण से लेकर पांच सौ पण तक मध्यम दण्ड होना चाहिए । किसी स्त्री या मनुष्य को बल-पूर्वक रोक रखने या रखवा देने तथा राजा के कैदी को छुड़ाने वाले पुरुष पर पांच सौ से लेकर एक सहस्र पण तक उत्तम साहस दण्ड होना चाहिए ॥७-१०॥

यः साहसं प्रतिपत्तेति कारयति स द्विगुणं दद्यात् ॥ ११ ॥ यावद्विरण्य-
मुपयोक्ष्यते तावदास्यामीति स चतुर्गुणं दण्डं दद्यात् ॥ १२ ॥ य एतावद्विरण्यं
दास्यामिति प्रमाणमुद्दिश्य कारयति स यथोक्तं हिरण्यं दण्डं च दद्यादिति बार्ह-
स्पत्याः ॥१३॥ स चैत्कोपं मदं मोहं वापदिशेद्यथोक्तवदण्डमेनं कुर्यादिति कौट-
ल्यः ॥ १४ ॥

जो मनुष्य, डाके पड़ने को जानकर उनसे मिल जाता है या डाका डलवा देता है, उसपर दुगुना दण्ड होना चाहिए । जो डाकुओं से कहता है, कि तुम्हारी सहायता में जो धन व्यय होगा-वह मैं दूंगा-ऐसे पुरुष पर चौगुना दण्ड होना चाहिए । बृहस्पति आचार्य मानते हैं, कि जिस पुरुष ने जितने सुवर्ण मुद्रा व्यय की प्रतिज्ञा करके डाका डलवाया है, उससे उतना ही सुवर्ण छीन कर पूर्वोक्त दण्ड होना चाहिए । यदि वह अपराधी, इस कार्य को किसी कोप, मद या मोह से करना बतावे, तो उस पर पूर्वोक्त ही दण्ड होना चाहिए । ऐसा कौटल्य का मत है ॥११-१४॥

दण्डकर्मसु सर्वेषु रूपमष्टपणं शतम् ।

शतात्परे तु व्याजीं च विद्यात्पञ्चपणं शतम् ॥ १५ ॥

इन सारे दण्डों में प्रतिशत आठ पण सरकारी, कोष में जमा होवे-यह रूप कहाता है। यदि दण्ड की रकम सौ से कम है-तो उसपर पांच प्रतिशत व्याजी नामक टैक्स सरकार में दाखिल होवे ॥१५॥

प्रजानां दोषबाहुल्याद्राज्ञां वा भोवदोषतः ।

रूपव्याज्यावधर्मिष्ठे धर्मानुप्रकृतिः स्मृता ॥ १६ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे साहसं सप्तदशो ऽध्यायः ॥ १७ ॥

आदितश्चतुःसप्ततिः ॥ ७४ ॥

प्रजा में दोष बढ़ने का कारण हो जाने या राजा की नीयत में लोभ बढ़ने से रूप और व्याजी धर्म से हीन है। पूर्वोक्त दण्ड ही धर्मानुसार मानने चाहिए ॥१६॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में साहस के निरूपण का सत्रहवां अध्याय समाप्त हुआ ।



अठारहवां अध्याय

उत्तरां प्रकरण

वाक्पारुष्यम् ।

इस प्रकरण में गाली गलौज आदि वाक्पारुष्य के दण्ड की व्यवस्थाका वर्णन होगा ।

वाक्पारुष्यमुपवादः कुत्सनमभिभर्त्सनमिति ॥ १ ॥ शरीरप्रकृतिश्रुतवृत्ति-
जनपदानां शरीरोपवादेन काणखज्जादिभिः सत्ये त्रिपणो दण्डः ॥ २ ॥ मिथ्यो-
पवादे षट्पणो दण्डः ॥ ॥ शोभनाक्षिमन्त इति काणखज्जाद'नां स्तुतिनिन्दायां
द्वादशपणो दण्डः ॥ ४ ॥ कुष्ठोन्मादक्ल'व्यादिभिः कुत्सायां च ॥ ५ ॥ सत्यमि-
थ्यास्तुतिनिन्दासु द्वादशपणोत्तरा दण्डास्तुत्येषु ॥६॥ विशिष्टेषु द्विगुणः ॥७॥
हानेष्वर्यदण्डः ॥८॥ परस्त्राषु द्विगुणः ॥९॥ प्रमादमदमोहादिभिरर्थदण्डाः ॥१०॥

किसी को गाली देना, निन्दा करना या धमकाना वाक्पारुष्य कहाता है। शरीर प्रकृति (जाति) शास्त्र, जीविका और देश विषय को लेकर वाक्पारुष्य चलता है। शरीर को आश्रय बनाकर काणे, लंगड़े, लठ्ठे को काणा लंगड़े लठ्ठे कहने वाले पर तीन पण दण्ड

होवे । यदि क्राणा आदि न हो और काने की गाली दी जावे-तो दंड पर दण्ड होवे । जो काले को-नुम्हारी आंखें बड़ी सुंदर हैं, इस प्रकार व्याज नृति करके जो उपहास उड़ाता है उसपर बारह पर दण्ड होना चाहिए । कोढ़ी उन्माद और नपुंसक आदि कहकर जो निन्दा की जावे, इसपर भी बारह पर दंड की व्यवस्था है । यदि कोई व्यक्ति अपने दरावर वाले की सच्ची या झूठी स्तुति निन्दा करके उपहास करे-तो उसपर बारह पर से अधिक दण्ड होवे । यदि किसी उत्तम गुण वाले की निन्दा करे-तो दुगुना और छोटी प्रतिष्ठा वाले को ऐसे कटु वचन कहें-तो आधा दण्ड होना चाहिए । यदि किसी पराई स्त्री की इस प्रकार निन्दा करे तो दुगुना दण्ड हो । ये सारे कुवचन, किसी प्रमाद मद और मोह आदि के कारण कहे गए हों तो उनपर आधा दंड होना चाहिए ॥ १-१० ॥

कुष्ठोन्मादयोश्चिकित्सकाः संनिकृष्टाः पुमांसश्च प्रमाणम् ॥११॥ क्ववभावे
स्त्रियो मूत्रफेनमप्सु विष्टानिमज्जनं च ॥ १२ ॥ प्रकृत्युपवादे ब्राह्मणक्षत्रियवैश्य-
शूद्रान्तावसायिनामपरेण पूर्वस्य त्रिणोत्तराः दण्डाः ॥ १३ ॥ पूर्वशापरस्य
द्विषणाधराः ॥१४॥ कुत्राह्मणादिभिश्च कुत्सायाम् ॥ १५ ॥ तेन श्रुतोपवादो
वाग्जीवनानां कारुकुशीलवानां वृथ्युपवादः प्राञ्जूलकगान्धारादीनां च जनपदो-
पवादा व्याख्याताः ॥ १६ ॥

किसी के कुष्ठ और पागल होने को तद्दीक्षात में वैश्यों को प्रमाण मानना चाहिए या उनके सहचर उनकी बात बता सकते हैं । नपुंसक के ज्ञान करने में स्त्री प्रमाण है या उसके मूत्र में मागों का नहीं उठना तथा विष्टा का पानी में डूब जाना आदि भी नपुंसक के लक्षण माने गए हैं । ब्राह्मण आदि जाति को आधार बनाकर जो कटु वचन का प्रयोग किया जावे उसमें यदि चांडाल आदि शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण की निन्दा करे-तो उनपर क्रम से तीन पर बढ़ाते हुए दंड होना चाहिए । यदि ब्राह्मण आदि वर्ण नीचे की ओर कटु वचन का प्रयोग करें तो क्रम से दो पर बढ़ाते हुए दंड होना चाहिए । किसी ब्राह्मण को कुत्राह्मण आदि कहना कुत्सा या निन्दा कहाती है । इन ही नियमों के अनुसार विद्या वाली से जीवन वृत्ति शिल्पी तथा नटों की निन्दा करे-तथा प्राञ्जूलक या गान्धार आदि देशों को लेकर किसी की निन्दा की जावे-तो वही पूर्वाक्त दंड होना चाहिए ॥ ११-१६ ॥

यः परमेवं त्वां करिष्यामिति करणेनाभिमतस्यैदकरणे यस्तस्य करणे दण्ड-
स्ततोऽर्धदण्डं दद्यात् ॥१७॥ अशक्तः कोपं मदं मोहं वापदिशेद् द्वादश परं दण्डं
दद्यात् ॥१८॥ जातवैराग्यः शक्तश्चापकर्तुं यावज्जीविकावस्थं दद्यात् ॥ १९ ॥

जो पुरुष दूसरे को यह कहे, कि मैं तुझे ऐसा कर डालूंगा परन्तु करे नहीं-उस पर करने से आधा दंड होना चाहिए । जो हाथ पैर आदि के तोड़ने में असमर्थ पुरुष, कोप मद या मोह को ऐसा करने का कारण बतावे, तो उस पर चारह पण दंड होना चाहिए । यदि किसी का वैर बढ़ रहा है और वह हाथ पैर तोड़ने में समर्थ भी है, तो उसपर उस की आमदनी के अनुसार दंड होना चाहिए ॥ १७-१९ ॥

स्वदेशग्रामयोः पूर्वं मध्यमं जातिसंघयोः ।

आक्रोशादेवचैत्यानामुत्तमं दण्डमर्हति ॥ २० ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे वाक्पारुष्यं अष्टादशो ऽध्यायः ॥ १८ ॥

आदितः पञ्चसप्ततिः ॥ ७५ ॥

जो व्यक्ति अपने देश, गांव की निन्दा करे तो पूरे साहस दंड जाति और समाज की निन्दा करे-तो मध्यम साहस दंड तथा देवालियों की निन्दा करे-तो उसपर उत्तम साहस दंड होना चाहिए ॥ २० ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में वाक्पारुष्य के वर्णन का अठारहवां अध्यायसमाप्त हुआ ।



उन्नीसवां अध्याय

७३वां प्रकरण

दण्ड पारुष्यम्

इस प्रकरण में मार पीट के विषय में कानूनी व्यवस्था का निर्णय किया जावेगा ।

दण्डपारुष्यं स्पर्शनमवगूर्णं प्रहतमिति ॥ १ ॥ नाभेरधः कायं हस्तपङ्क भस्मपांसुभिरिति स्पृशतस्त्रिपणो दण्डः ॥ २ ॥ तैरेवामेध्यैः पादपृष्ठीवनिकाभ्यां च पटपणः छर्दिमूत्रपुरीषादिभिर्द्वादशपणः ॥ ३ ॥ नाभेरुपरि द्विगुणाः ॥ ४ ॥ शिरसि चतुर्गुणाः समेषु ॥ ५ ॥ विशिष्टेषु द्विगुणाः ॥ ६ ॥ हीनेष्वर्धदण्डाः ॥ ७ ॥ परस्त्रीषु द्विगुणाः ॥ ८ ॥ प्रमादमदमोहादिभिरर्धदण्डाः ॥ ९ ॥

किसी के शरीर पर कीचड़ आदि लगा देना, हाथ डालना, लकड़ी चलाना या मार देना-दंड पारुष्य नामक अपराध होता है । नाभि के नीचे शरीर पर हाथ डालने तथा कीचड़, भस्म, मिट्टी लगा देने पर-लगाने वाले पर तीन पण दंड किया जावे । यदि उप-युक्त वस्तु अपवित्र हो और लगादी जावे एवं पैर की ठोकर थूक खरार का स्पर्श कर

दिया जावे, तो छः पण दंड हो-वमन, मूत्र मलका स्पर्श कर देने पर वारह पण दंड की व्यवस्था है। यदि ये ही वस्तु नाभि से ऊपर लगा दी जावे-तो दुगुना दंड होना चाहिए। यदि ये ही वस्तु सिर पर डाल दी जावे-तो चौगुना दंड हो। ये समान जाति वालों की व्यवस्था है। बड़ी जाति वाले छोटी जाति पर ऐसा करें, तो आधा दंड हो। यदि पर स्त्री पर ऐसा कर दिया जावे, तो दुगुना दंड हो। किसी प्रमाद, मद और मोह से ऐसी बात हो जाने पर आधा दंड होना चाहिए ॥ १-६ ॥

पादवस्त्रहस्तकेशावलम्बनेषु पटपणोत्तरा दण्डाः ॥ १० ॥ पीडनावेष्टना-
ञ्जनप्रकर्षणाध्यासनेषु पूर्वः साहस दण्डः ॥ ११ ॥ पातयित्वापक्रमतोऽध-
दण्डाः ॥ १२ ॥ शूद्रो येनाङ्गेन ब्राह्मणमभिहन्यात्तदस्य च्छेदयेत् ॥ १३ ॥
अवगूर्णे निष्क्रयः स्पर्शोऽर्धदण्डः ॥ १४ ॥ तेन चण्डालाशुचयो व्या-
ख्याताः ॥ १५ ॥

यदि कोई अपराधी किसी के पैर, वस्त्र, हाथ और बाल पकड़ ले, तो क्रम से छः वारह, अठारह और चौबीस पण दंड होवे। किसी के पीड़ित कर देने, लपेट लेने, मुंह काला करने, रगड़ने या नीचे डाल कर चढ़ बैठने पर पूर्व साहस दंड होना चाहिए। जो कोई किसी को गिराकर भाग जावे-तो उसे आधा दंड होना उचित है। शूद्र जिस अङ्ग से ब्राह्मण को मारे उसका वही अङ्ग कटवा दिया जावे। यदि शूद्र-ब्राह्मण की ओर हाथ उठा दे-तो उसका जुर्माना लिया जावे और हाथ मार दे-तो पूर्वोक्त आधा पूर्व साहस दंड होवे। इसी तरह कोई चंडाल या अन्य अशुचि मनुष्य ऐसा करे-तो उसे भी यही दंड होवे ॥ १०-१५ ॥

हस्तेनावगूर्णे त्रिपणावरो द्वादशपणपरो दण्डः ॥ १६ ॥ पादेन द्विगुणः
॥ १७ ॥ दुःखोत्पादनेन द्रव्येण पूर्वः साहसदण्डः ॥ १८ ॥ प्राणावाधिकेन
मध्यमः ॥ १९ ॥ काष्ठलोष्टपाषाणलोहदण्डरज्जुद्रव्याणामन्यतमेन दुःखमशो-
णितमुत्पादयतश्चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ २० ॥ शोणितोत्पादने द्विगुणः
॥ २१ ॥ अन्यत्र दुष्टशोणितात् ॥ २२ ॥

यदि मारने को हाथ उठाया है, तो तीन पण से लेकर वारह पण तक दण्ड हो, जो पैर, उठाया है, तो इससे दुगुना और दुःख उत्पादक लट्ट आदि उठाया है, तो पूर्व साहस दण्ड तथा प्राणों को भय में डालने वाला खड्ग आदि कोई शस्त्र उठाया है, तो मध्यम साहस दण्ड की व्यवस्था है। काष्ठ, मिट्टी का ढेला, पत्थर, लोहा, दण्ड, रस्सी आदि वस्तुओं में से किसीका प्रहार कर दिया, परन्तु रक्त नहीं निकला, तो मारने वाले पर चौबीस

पण और रक्त निकल आया तो अड़तालीस पण दण्ड होना चाहिए। यदि प्रहार से कोई दूषित रक्त निकल पड़े तो यह दण्ड नहीं होगा ॥१६-२२॥

मृतकल्पमशोणितं घृतो हस्तपादपारंचिकं वा कुर्वतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ २३ ॥ पाणिपाददन्तभङ्गे कर्णनासाच्छेदने व्रणविदारणे च ॥ २४ ॥ अन्यत्र दुष्टव्रणभ्यः ॥ २५ ॥ सक्थिग्रीवामञ्जने नेत्रभेदने वा वाक्यचेष्टाभोजनोपरोधेषु च मध्यमः साहसदण्डः समुत्थानव्ययश्च देशकालातिपत्तौ कण्टकशोधनाय नीयेत ॥ २६ ॥

यदि किसी ने किसी के रक्त नहीं निकाला परन्तु मारते २ अधमरा कर दिया या हाथ पैरों के जोड़ ढीले कर दिये-तो अपराधी पर पूर्व साहस दण्ड हो। यदि हाथ, पैर, दांत तोड़ने, कान, नाक छेदने या क्षत (घाव) कर देने जांघ, ग्रीवा मरोड़ देने, आंख फोड़ देने, बोलने, फिरने और भोजन के साधन नष्ट कर देने पर मध्यम साहस दण्ड होना चाहिए। घाव किसी पुराने फोड़े का न हो। जिस व्यक्ति के चोट आई उसके नीरोग होने तक उसका हर्जाना भी अपराधी से दिलाया जावे। यदि देश काल की कोई रुकावट हो-तो कण्टकशोधन अगले ही प्रकरण में बताया गए दण्ड विधान का प्रयोग किया जावे ॥२३-२६॥

महाजनस्यैकं घृतो प्रत्येकं द्विगुणो दण्डः ॥ २७ ॥ पशुपितः कलहेऽनुप्रवेशो वा नाभियाज्य इत्याचार्याः ॥ २८ ॥ नास्त्यपकारिणो मोक्ष इति कौटल्यः ॥ २९ ॥ कलहे पूर्वागतो जयत्यक्षममाणो हि प्रधावतीत्याचार्याः ॥ ३० ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३१ ॥ पूर्व पश्चाद्वाभिगतस्य साक्षिणः प्रमाणम् ॥ ३२ ॥ असाक्षिके घातः कलहोपलिङ्गनं वा ॥ ३३ ॥ घाताभियोगमप्रतिब्रुवतस्तदहरेय पश्चात्कारः ॥ ३४ ॥ कलहे द्रव्यमपहरतो दशपणो दण्डः ॥ ३५ ॥

यदि बहुत से आदमी मिलकर एक व्यक्ति को मारे-तो पूर्वोक्त दण्ड का दुगुना दण्ड हो। यदि झगड़े को बहुत दिन बीत हो गये हों-तो उसका अभियोग नहीं चलना चाहिए, ऐसा आचार्य कहते हैं, परन्तु कौटल्य का मत है, कि अपकारी को कभी न छोड़े कितने दिन का पुराना झगड़ा हो, प्रमाणित होने पर दण्ड होना ही चाहिए। कलह में जो प्रथम न्यायालय में आता है, वही सच्चा समझना चाहिए क्योंकि वह दुःख को नहीं सह कर ही तो भागा आया है। कौटल्य का मत है, कि पूर्व या पीछे आने का कुछ नहीं। जिसका साक्षियों से प्रमाण हो-वही सच्चा समझना होगा। झगड़ा होने पर झूठा भी प्रथम भाग कर आ सकता है। किसी आदमी के साक्षी न होने पर झगड़ने के निर्णय के लिए मनुष्य के घाव देखने उचित है या कलह का सारा स्वरूप मालूम करना चाहिए।

चोट मारने के विषय में जो श्रम हो-यदि प्रार्थी उनका फौरन उत्तर न दे-तो उसको उसी दिन हटा देना चाहिए। भागड़े के समय कोई किसी की वस्तु को उठा ले जाय तो इसका दण्ड पण दण्ड होना योग्य है ॥२७-३५॥

क्षुद्रकद्रव्यहिंसायां तच्च तावच्च दण्डः ॥ ३६ ॥ स्थूलकद्रव्यहिंसायां तच्च द्विगुणश्च दण्डः ॥ ३७ ॥ वस्त्राभरणहिरण्यसुवर्णभाण्डहिंसायां तच्च पूर्वश्च साहसदण्डः ॥ ३८ ॥ परकुड्यमभिधातेन क्षोभयतस्त्रिपणो दण्डः ॥ ३९ ॥

यदि लड़ाई भागड़े में कोई किसी की छोटी मोटी वस्तु तोड़ फोड़ दे, तो उसका मूल्य मालिक को और उतना दण्ड सरकार को देवे। बड़ी वस्तु नष्ट करने में दुगुना दण्ड होगा। वस्त्र, आभूषण, हिरण्य, सुवर्ण या अन्य किसी उत्तम वस्तु के नष्ट कर देने पर पूर्व साहस दण्ड की व्यवस्था है। यदि कोई आघात से किसी की दीवार को गिराने की चेष्टा करे-तो उसपर तीन पण दण्ड हो ॥३६-३९॥

छेदनभेदने षट्पणः प्रतीकारश्च ॥ ४० ॥ दुःखोत्पादनं द्रव्यमस्य वेश्मनि प्रक्षिपतो द्वादशपणो दण्डः ॥ ४१ ॥ प्राणावाधिकं पूर्वः साहसदण्डः ॥ ४२ ॥ क्षुद्रपशूनां काष्ठादिमिर्दुःखोत्पादने पणो द्विपणो वा दण्डः ॥ ४३ ॥ शोणितोत्पादने द्विगुणः ॥ ४४ ॥ महापशूनामेतेष्वेव स्थानेषु द्विगुणो दण्डः समुत्थानव्ययश्च ॥ ४५ ॥

दीवार के तोड़ने फोड़ने पर छः पण दंड और उसकी लागत लेनी होगी। यदि कोई मनुष्य, किसी के घर में दुःख उत्पादक वस्तु फेंक दे, तो बारह पण दंड होवे। यदि प्राणों की बाधा करने वाले शस्त्र, सर्प आदि को फेंक देवे-तो पूर्व साहस दंड हो। यदि किसी ने किसी के क्षुद्र पशु के लकड़ी से मार दिया-तो एक पण या दो पण दंड होवे। यदि रक्त निकल आवे-तो दुगुना दंड हो। गाय, भैंस आदि बड़े पशुओं को दुःख उत्पादन कर देने में दुगुना दंड हो और उसके अच्छे होने में जो व्यय हो वह भी दिलाया जावे ॥४०-४५॥

पुरोपवनवनस्पतीनां पुष्पफलच्छायावतं प्ररोहच्छेदने षट्पणः ॥ ४६ ॥ क्षुद्रशाखाच्छेदने द्वादशपणः ॥ ४७ ॥ पीनशाखाच्छेदने चतुर्विंशतिपणः ॥ ४८ ॥ स्कन्धवधे पूर्वः साहसदण्डः ॥ ४९ ॥ समुच्छिन्नौ मध्यमः ॥ ५० ॥ पुष्पफलच्छायावद्गुल्मलतास्वर्धदण्डः ॥ ५१ ॥ पुण्यस्थानतपोवनशमशानद्रुमेषु च ॥ ५२ ॥

नगर के बगीचे के पुष्प, फल और छाया वाले वृक्षों के फूल फल या पत्ते तोड़ने वाले पर छः पण दंड हो। छोटी २ शाखा काटने पर बारह, बड़ी शाखा काटने पर चौबीस, बड़े

काटने पर पूर्व साहस दंड और पेड़ को जड़ से काट देने पर मध्यम साहस होना चाहिए। पुष्प, फल और छाया वाली छोटी २ लता झाड़ी के नाश करने पर इनसे आधा दंड हो। किसी पवित्र स्थान, तपोवन, श्मशान के वृक्षों के नष्ट करने पर भी यही दंड होना चाहिए ॥४६-५२॥

सीमवृक्षेषु चैत्येषु द्रुमेष्वालक्षितेषु च ।

त एव द्विगुणा दण्डाः कार्या राजवनेषु च ॥ ५३ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीयेऽधिकरणे दण्डपारुष्यमेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

आदितः पटसप्ततिः ॥ ७६ ॥

सीमा के वृक्ष, देवालयों के बगीचे के वृक्ष, राजा के किसी चिन्ह के निमित्त खड़े हुए वृक्ष तथा सरकारी बगीचे के वृक्षों को हानि पहुंचाने पर इससे दुगुना दंड होगा ॥५३॥

इति श्रीकौटलीय अर्थ शास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में मारपीट के कानूनों का उन्नीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।



बीसवां अध्याय

७४-७५वां प्रकरण

द्यूतसमाह्वयं और प्रकीर्णकानिच

इस अध्याय में द्यूत (जुआ) की व्यवस्था तथा अन्य छोटे मोटे अपराधों की व्यवस्था का वर्णन होगा ।

द्यूताध्यक्षो द्यूतमेकमुखं कारयेत् ॥ १ ॥ अन्यत्र दीव्यतो द्वादशपणो दण्डो गूढाजीविज्ञापनार्थम् ॥ २ ॥ द्यूताभियोगे जेतुः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३ ॥ पराजितस्य मध्यमः ॥ ४ ॥ नालिशजातीयो ह्येष जेतुकामः पराजयं न क्षमत इत्याचार्याः ॥ ५ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ६ ॥ पराजितश्चेद्विगुणदण्डः क्रियेत न कश्चन राजानमभिसरिष्यति ॥ ७ ॥ प्रायशो हि कितवाः कूटदेविन ॥ ८ ॥

द्यूताध्यक्ष, किसी स्थान पर जुआ खेलने की व्यवस्था करदे। जो उस स्थान के अतिरिक्त जुआ खेले-उसे बारह पण दंड हो। एक स्थान पर जुआ की छुट्टी देने से लुक छिप कर अपराध करने वालों का एक स्थान पर ही पता लग जावेगा। जब जुआ का कोई अभियोग सन्मुख आवे-तो जुए में जीतने वाले पर पूर्व साहस दंड और हारने वाले पर,

मध्यम साहस दंड होना चाहिए क्योंकि यह मूर्ख, दूसरे के जीतने को जुआ खेला और हार गया-तो भगड़ा करता है-ऐसा आचार्यों का मत है, परन्तु कौटल्याचार्य-ऐसा नहीं मानते, क्योंकि हारने वाले पर दुगुना दंड होगा-तो वेचारा फिर क्यों अपना भगड़ा राज्य में लावेगा । जुआ ही तो प्रायः छल बल से जुआरी खेलते ही हैं ॥१-न॥

तेषामध्यक्षाः शुद्धाः काकण्यक्षांश्च स्थापयेयुः ॥ ९ ॥ काकण्यक्षाणा-
मन्योपधाने द्वादशपणो दण्डः ॥ १० ॥ कूटकर्मणि पूर्वः साहसदण्डो जित-
प्रत्यादानमुपधास्तेयदण्डश्च ॥ ११ ॥ जितद्रव्यादध्यक्षः पञ्चकं शतमाददीत
काकण्यक्षारलाशलाकावक्रयमुदकभूमिकर्मक्रयं च ॥ १२ ॥ द्रव्याणामाधानं
विक्रयं च कुर्यात् ॥ १३ ॥ अक्षभूमिहस्तदोषाणां चाप्रतिषेधने द्विगुणो दण्डः
॥ १४ ॥ तेन समाह्वयो व्याख्यातः ॥ १५ ॥ अन्यत्र विद्याशिल्पस माह्वया-
दिति ॥ १६ ॥

जुआ के शुद्ध आचरण वाले अधिकारी द्यूत स्थान में कौड़ी और पासे रखवा दे । जो इन कौड़ी और पासों को बदल दे, उसपर वारह पण दंड हो । जो छल के साथ जुआ खेले उसपर पूर्व साहस दंड हो, जीता हुआ धन छीन लिया जावे और पासों के बदलने पर चोरी का दंड होना चाहिए । जीतने वाले जुआरी से अध्यक्ष, पांच प्रति सैकड़ा लेवे । कौड़ी, पासे, चमड़े की अरल [आसन] शलाका, जल, जमीन का किराया और सरकारी टैक्स भी उससे वसूल किया जावे । यदि आवश्यकता हो-तो जुआरियों के द्रव्य को गिरवी रखले या बेच देवे । यदि अध्यक्ष, पास, भूमि और हाथ के दोनों को न मिटावे-तो अध्यक्ष पर भी दुगुना दंड हो । यही व्यवस्था मुर्गा तीतर आदि के लड़ाने की शर्त के विषय में जाननी चाहिए, परन्तु विद्या और शिल्प की उन्नति की शर्त में यह नियम लागू नहीं है ॥९-१६॥

प्रकीर्णकं तु ॥ १७ ॥ याचितकावक्रीतकाहितकनिक्षेपकाणां यथादेश-
कालमदाने यामच्छायासमुपवेशसंस्थितीनां वा देशकालातिपातने गुल्मतरदेयं
ब्राह्मणं साधयतः प्रतिवेशानुप्रवेशयोरुपरि निमन्त्रणे च द्वादशपणो दण्डः ॥१८॥

इसके प्रकीर्ण (छोटे मोटे बिखरे हुए) अपराधों के विषय में लिखा जावेगा । मांगी हुई, किराये पर ली हुई, साधारण तौर पर रखी हुई या धरोहर रखी हुई, वस्तु को नियत देश काल पर न देने दिन या रात में किसी स्थान पर वस्तु देने को मिलने का

वायदा करके न मिले, छोटी २ नौका का ब्राह्मण से किराया मांगने, पड़ोसी या आने जाने वाले श्रोत्रिय को छोड़कर अन्य को बुलाने पर बारह पण दण्ड किया जावे ॥१७-१८॥

संदिष्टमर्थमग्रयच्छतो आतृभार्या हस्तेन लंघयतोरूपार्जीवामन्योपरुद्धां गच्छतः परवक्तव्यं पण्यं क्रीणानस्य समुद्रं गृहमुद्भिन्दतः सामन्तचत्वारिंश-
त्कुल्यावाधामाचरतश्चाष्टचत्वारिंशत्पणो दण्डः ॥ १९ ॥

देने की पतिज्ञा करके धन के न देने वाले, भाई की स्त्री पर हाथ डालने वाले, दूसरे की रुकी हुई वेश्या के पास जाने वाले, दूसरे के खरीदी हुई वस्तु को खरीदने वाले, राजकीय चिन्हों से युक्त घरों के दाहने वाले, सामन्तों के चालीस कुल तक पीड़ा पहुंचाने वाले पुरुष पर अड़तालीस पण दण्ड होना चाहिए ॥१९॥

कुलनीविग्राहकस्यापव्ययने विधवां छन्दवासिनीं प्रसह्यातिचरतश्चण्डाल-
स्यार्या स्पृशतः प्रत्यासन्नमापघ्ननभिधावतो निष्कारणमभिधावनं कुर्वतः शाक्या-
जीवकादीन्वृषलप्रव्रजितान्देवपितृकार्येषु भोजयतः शत्यो दण्डः ॥ २० ॥

कुल क्रमागत प्राप्त सम्पत्ति का व्यर्थ व्यय करने वाले, स्वच्छन्द रहने वाली विधवा से सम्भोग की चेष्टा करने वाले, चण्डाल होकर आर्य स्त्री के स्पर्श की चेष्टा के कर्ता, पड़ोसी पर आपत्ति आने पर भी उसकी सहायता न करने वाले, बिना कारण इधर उधर दौड़ने वाले, बौद्ध और शूद्र संन्यासियों को देव, पितृ कार्य में भोजन कराने वाले पुरुष पर सौ पण दण्ड होना चाहिए ॥२०॥

शपथवाक्यानुयोगमनिसृष्टं कुर्वतो युक्तकर्म चायुक्तस्य क्षुद्रपशुवृषाणां
पुंस्त्योपधातिनो दास्या गर्भमौषधेन पातयतश्च पूर्वः साहसदण्डः ॥ २१ ॥

धर्मस्थकी आज्ञा के बिना ही शपथ आदि दिलाकर निर्णय करने वाले- अनधिकारी को बल के भरोसे पर अधिकार देने वाले, क्षुद्र पशु, या बैलों को वधिया करने वाले तथा दासी के गर्भ को दवा से गिराने वाले पुरुष पर पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए ॥२१॥

पितापुत्रयोर्दम्पत्योभ्रातृभगिन्योर्मातुलभागिनेययोः शिष्याचार्ययोर्वा पर-
स्परमपतितं त्यजतः स्वार्थाभिप्रयातं ग्राममध्ये वा त्यजतः पूर्वः साहसदण्डः
॥ २२ ॥ कान्तारे मध्यमः ॥ २३ ॥ तन्निमित्तं श्रेष्यत उत्तमः सहप्रस्थायिष्व-
न्येष्वर्धदण्डाः ॥ २४ ॥ पुरुषमवन्धनीयं वन्धतो वन्धयतो वन्धं वा मोक्षयतो
वाल्मप्राप्तव्यवहारं वन्धतो वन्धयतो वा सहस्रदण्डः ॥ २५ ॥

पिता पुत्र, पति पत्नी, भाई बहन, मामा भानजा, और गुरु शिष्य, यदि इनमें कोई सा दूसरे को बिना पतित हुए त्यागता है, या जो साथ के संग चलते हुए पुरुष को गांव के

मध्य में छोड़कर चल देता है, उसपर पूर्व साहस दण्ड, यदि वन में छोड़े तो मध्यम साहस दण्ड होना चाहिए। यदि इन्हीं स्थानों पर डरा धमका कर उसें डाल जावे-तो डालने वालों को उत्तम साहस दण्ड हो तथा साथी के साथ चलने वालों के ऊपर आधा दण्ड होवे। जो पुरुष, निरपराध पुरुष को बांधे या बंधवावे या कैदी को छुड़ाने का प्रयत्न करे एवं ना बालिग लड़के को बांधे या बन्धवावे तो उस अपराधी को एक सहस्र पण का दण्ड दिया जावे ॥२२-२६॥

पुरुषापराधविशेषेणः दंडविशेषः कार्यः ॥ २६ ॥ तीर्थकरस्तपस्वी व्याधितः क्षुत्पिपासाध्वक्लान्तस्तिरोजानपदो दंडखेदी निष्किंचनश्चानुग्राह्याः ॥ २७ ॥ देवब्राह्मणतपस्विस्त्रीवालवृद्धव्याधितानामनाथानामनभिसरतां धर्मस्थाः कार्याणि कुर्युः ॥ २८ ॥ न च देशकालभोगच्छलेनातिहरेयुः ॥ २९ ॥ पूज्या विद्याबुद्धिपौरुषाभिजनकर्मातिशयतश्च पुरुषाः ॥ ३० ॥

जिस पुरुष का जैसा विशेष अपराध हो-वैसा दण्ड देना चाहिए। दानी तीर्थ यात्री, तपस्वी, बीमार, भूखा, प्यासा, थका हुआ, परदेशी, दण्ड से क्लान्त, और अशक्त पुरुष को हो सके तो कृपा-पूर्वक छोड़ देना चाहिए। देव, ब्राह्मण, तपस्वी, स्त्री, बालक, वृद्ध, रोगी, और अनाथ, राज्य में उपस्थित न भी हुए हों तो भी पता लगने पर धर्माधिकारी स्वयं पहुंच कर उनके दुःखों का प्रतीकार कर दें। देश काल आदि का बहाना करके कभी इनका धन न छीने, जो पुरुष, विद्या, बुद्धि, पौरुष, कुल और सेवा कार्यों में बड़े हुए हों-उनको सदा पूज्य माने और दण्ड के समय उनपर यथा शक्ति अनुग्रह दिखावे ॥२६-३०॥

एवं कार्याणि धर्मस्थाः कुर्यु रच्छलदर्शिनः ।

समाः सर्वेषु भावेषु विश्वास्या लोकसंप्रियाः ॥३१॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे च तसमाह्वयं प्रकीर्णकानि विंशो ऽध्यायः

॥२०॥ आदितः सप्तसप्ततिरध्यायः ॥ ७७ ॥ एतावता कौट-

लीयस्यार्थशास्त्रस्य धर्मस्थीयं तृतीयमधिकरणं समाप्तम् ॥३॥

इस प्रकार धर्माधिकारी, छल छोड़ कर धर्म कार्य करते रहें। ये सबको समान दृष्टि से देखते हुए पक्षपात हीन हों तथा सारे मनुष्य, इन का विश्वास करें और ये लोक के प्रेम पात्र बनें ऐसी इनकी चेष्टा होनी चाहिए ॥३१॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में द्यूत प्रसङ्ग और अन्य

अपराधों की व्यवस्था के निर्णय का बीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।



कण्टकशोधन-चतुर्थ अधिकरण

प्रथम अध्याय

७३वां प्रकरण

कारुक रक्षणम् ।

प्रजा के पीड़न करने वाले लोगों को कण्टक कहते हैं । इन प्रजा पीड़कों में कारुक (शिल्पी) भी माने गए हैं । शिल्पियों से किस प्रकार प्रजा की रक्षा की जावे-अब इस प्रकरण में यही बात बताई जावेगी ।

प्रदेष्टारस्त्रयस्त्रयो वामात्याः कण्टकशोधनं कुर्युः ॥१॥ अथ्यप्रतीकाराः कारु-
शासितारः संनिक्षेप्तारः स्ववित्तकारवः श्रेणीप्रमाणा निक्षेपं गृह्णीयुः ॥ २ ॥
विपत्तौ श्रेणी निक्षेपं भजेत ॥ ३ ॥ निर्दिष्टदेशकालकार्यं च कर्म कुर्युः ॥ ४ ॥
अनिर्दिष्टदेशकालकार्यापदेशं कालातिपातने पादहीनं वेतनं तद्विगुणश्च
दण्डः ॥ ५ ॥ अन्यत्र भेषोपनिपाताभ्याम् ॥६॥ नष्टं विनष्टं वाभ्याभवेयुः ॥७॥

तीन प्रदेष्टा (कण्टकशोधन के अधिकारी) या तीन अमात्य प्रजा के पीड़न करने वाले कण्टकों से प्रजा की रक्षा करें । शिल्पियों के शासक अपनी बनवाई हुई चीज के बना देने में समर्थ, लेन देन करने वाले अपने धन से ही दूसरे की वस्तु बनाकर पीछे दाम लेने वाले बहुत व्यक्तियों के मान्य शिल्पी ही किसी की वस्तु बनाने के द्रव्य की धरोहर रख सकते हैं । यदि मूल रकम का लेने वाला किसी मृत्यु आदि की विपत्ति में फँस जावे तो उस धरोहर को उसका सच्ची अदा करे । जो किसी देश काल की प्रतिज्ञा करने में आना कानी करे, और समय पर बनाकर वस्तु न दे-तो समय की देरी में उसका चौथाई वेतन (मजदूरी) काट लिया जावे, और उससे दुगुना दंड हो । यदि किसी हिसक प्राणी या दैवी विपत्तिके आजाने पर कोई समय पर काम न दे सका-तो उस पर कोई दंड न होगा । यदि कोई वस्तु बिगाड़ दी गई या खो गई तो कारीगर को वह देनी पड़ेगी । किसी अचानक विपत्ति से ऐसा हो जावे-तो कारीगर पर कोई दंड न होगा ॥ १-७ ॥

कार्यस्यान्यथाकरणे वेतननाशस्तद्विगुणश्च दण्डः ॥ ८ ॥ तन्तुवाया
दशैकादशिकं सूत्रं वर्धयेयुः ॥ ९ ॥ वृद्धिच्छेदे छेदद्विगुणो दण्डः ॥ १० ॥
सूत्रमूल्यं वानवेतनं क्षौमकौशेयानामध्यर्धगुणम् ॥ ११ ॥ पन्त्रोर्णाकम्बलतूलानां
द्विगुणम् ॥ १२ ॥ मानहीने हीनापहीनं वेतनं तद्विगुणश्च दण्डः ॥ १३ ॥
तुलाहीने हीनचतुर्गुणो दण्डः ॥ १४ ॥ सूत्रप रिवर्तने मूल्यद्विगुणः ॥ १५ ॥
तेन द्विपटवानं व्याख्यातम् ॥ १६ ॥

यदि कारीगर किसी काम को उलटा करदे-तो उसका वेतन नाश होगा, उसे कुछ मजदूरी नहीं मिलेगी और उसपर मजदूरी से दुगुना दण्ड भी हो सकता है। जुलाहा दस पल सूत पर एक पल और अधिक सूत लेवे। दस पल में एक पल छीजन जाती है। इस स अधिक छीज जावे तो छीजन से दुगुना दण्ड होवे। जितना सूत का मोल हो उतनी ही बुनने की मजदूरी होगी। रेशमीस्थूल सूदमवस्त्रों की बुनाई मूल्य से ड्योढ़ी मानी जाती है। यदि कपड़ा नाप में कम आया होवे-तो जितना नाप में कम हो उतना वेतन (मजदूरी) काट ली जावे और उस से दुगुना दण्ड हो। यदि सूत आदि तोल में कम बैठे-तो जितने मूल्य का सूत घटे-उस से चौगुना दण्ड हो। यदि सूत बदल दिया जावे, तो मूल्य से दुगुना दंड किया जावे। इसी तरह दुतई आदि की बुनाई के नियम भी जान लेने चाहिए ॥ ८-१६ ॥

ऊर्णा तूलायाः पञ्चपलिको विहननच्छेदो रोमच्छेदश्च ॥ १७ ॥ रजकाः
काष्ठफलकश्छाशिलासु वस्त्राणि नेनिज्युः ॥ १८ ॥ अन्यत्र नेनिजन्तो वस्त्रोप-
घातं षट्पणं च दण्डं दद्युः ॥ १९ ॥ मुद्गराङ्कादन्यद्वासः परिदधानास्त्रिपणं दण्डं
दद्युः ॥ २० ॥ परवस्त्रविक्रयावक्रयाधानेषु च द्वादशपणो दण्डः ॥ २१ ॥
परिवर्तने मूल्यद्विगुणो वस्त्रदानं च ॥ २२ ॥ मुकुलावदातं शिलापट्टशुद्धं धौत्रसू-
त्रवर्णं प्रमृष्टश्चेतं चैकरात्रोत्तरं दद्युः ॥ २३ ॥ पञ्चरात्रिकं तनुरागम् ॥ २४ ॥
षड्रात्रिकं नीलं पुष्पलाक्षामञ्जिष्ठारक्तम् ॥ २५ ॥ गुरुपरिकर्मयत्नोपचार्यं जात्यं
वासः सप्तरात्रिकम् ॥ २६ ॥ ततः परं वेतनहानिं प्राप्नुयुः ॥ २७ ॥

ऊन की धुनाई बुनाई में पांच २ पल रुंआं कम हो जाता है। अर्थात् सौ पल में दस पल घट जाता है। धोबी लोग, लकड़ी के तखते या चिकनी शिला पर कपड़ा धोवे। यदि अन्य स्थान पर धोवें और वस्त्र पर कोई आघात हो जावे-तो छः पण दण्ड होवे। मुद्गर के अङ्क से चिन्हित अन्य वस्त्र के पहनने वाले धोबी पर तीन पण दंड होवे। दूसरे के वस्त्र बेचने, किराए पर दे देने या गिरवी रख देने पर बारह पण दंड होवे। यदि धोबी वस्त्र बदल दे, तो दुगुना मूल्य का दंड और वस्त्र का मोल देना पड़ेगा। धोबी, फूल की

कली के सदृश श्वेत शिला के तुल्य स्वच्छ धुले हुए सूत के वण के तुल्य सलबट मेट कर एक वस्त्र को एक रात के हिसाब से धोकर देदेवे अर्थात् चार वस्त्र हों तो चार दिन में देवे या कली, शिला, सूत और श्वेत वस्त्र को क्रम से एक, दो, तीन और चार दिन में देवे। थोड़ी रङ्गत वाले को पांच दिन में, नीले रंग वाले पुष्प की तरह गहरे लाख और मजीठ के रङ्ग के कपड़े को छः दिन में देदेना चाहिए। बड़ी महनत से धुलने वाले रेशम, पशमीने आदि के वस्त्रों को सात दिन में धोकर दिया जा सकता है। यदि इस से आगे वस्त्र रखेगा-तो धोबी की धुलाई काट ली जावेगी ॥ १७-२७ ॥

श्रद्धेया रागविवादेषु वेतनं कुशलाः कल्पयेयुः ॥ २८ ॥ पराध्यानां पणो वेतनम् ॥ २९ ॥ मध्यमानामर्धपणः ॥ ३० ॥ प्रत्यवराणां पादः ॥ ३१ ॥ स्थूलकानां माषद्विमाषकम् ॥ ३२ ॥ द्विगुणं रक्तकानाम् ॥ ३३ ॥ प्रथमनेजने चतुर्भागः क्षयः ॥ ३४ ॥ द्वितीये पञ्चभागः ॥ ३५ ॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ३६ ॥ रजकैस्तुन्नवाया व्याख्याताः ॥ ३७ ॥

रङ्गत वाले कपड़ों की धुलाई के भागों में समझने वाले चतुर पुरुष इसकी मजदूरी का निपटारा करदे। अधिक कीमत के वस्त्रों की धुलाई का एक पण वेतन होगा। मध्यम मूल्य के वस्त्रों की धुलाई प्रति वस्त्र आधा पण और साधारण कपड़ों की चौथाई पण धुलाई होगी। मोटे कपड़ों की धुलाई मापा दो माषा का सिक्का होगा। लाल रंग के वस्त्रों की धुलाई दो या चार मासे का सिक्का समझना चाहिए। पहली धुलाई में कपड़े की कीमत का चार भाग क्षय हो जावेगा। दूसरी में पांच भाग, इसी तरह प्रत्येक धुलाई में एक भाग मूल्य का घटाए रहेगा। धोवियों के तुल्य तुन्नवाया (दर्जी) के भी नियम समझ लेने चाहिए ॥ २८-३७ ॥

सुवर्णकाराणामशुचिहस्ताद्रूप्यं सुवर्णमनाख्याय सरूपं क्रीणतां द्वादशपणो दण्डः ॥ ३८ ॥ विरूपं चतुर्विंशतिपणः ॥ ३९ ॥ चोरहस्तादष्टचत्वारिंशत्पणः ॥ ४० ॥ प्रच्छन्नविरूपं मूल्यहीनक्रयेषु स्तेयदण्डः ॥ ४१ ॥ कृतभाण्डोपधौ च ॥ ४२ ॥ सुवर्णान्मापकमपहरतो द्विशतो दण्डः ॥ ४३ ॥ रूप्यधरणान्मापकमपहरतो द्वादशपणः ॥ ४४ ॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ४५ ॥ वणोत्कर्षमपसारणां योगं वा साधयतः पञ्चशतो दण्डः ॥ ४६ ॥ तयोरपचरणे रागस्यापहारं विधात् ॥ ४७ ॥

दास या नौकर चाकरो से सुनार, चांदी सोना या उनके आभूषण बिना सुवर्णाभ्यक्त को सूचना दिए-खरीदे-तो उसपर बारह पण दण्ड होवे। जो अलंकार आदि

के रूप में नहीं बदले हुए सुवर्ण चोरी से खरीदता है, उसपर चौबीस पण दंड होवे । चोर के हाथ से सुवर्ण खरीदने वाले पर अड़तालीस पण दंड होवे । दूटे फूटे अलंकारों को थोड़े मोल पर खरीदने वाले पर भी चोरी का दंड होना चाहिए । बनी हुई वस्तु के बदल देने पर भी चोरी का ही दंड है । एक तोला सुवर्ण में से एक मासा अपहरण करने वाले सुनार पर बारह पण दंड होना उचित है । इसी तरह प्रत्येक मासे पर बारह पण बढ़ाने चाहिए । घटिया सुवर्ण का माल बनाकर उसपर मुलम्मा कर देने वाले, या खरे सोना चांदी में किसी अन्य तरह से खोट मिलाने वाले पर पांच सौ दंड हों । उनकी पहचान, उस आभूषण को आंच में देने से हो जावेगी ॥३८-४०॥

मापको वेतनं रूप्यधरणस्य ॥ ४८ ॥ सुवर्णस्याष्टभागः ॥ ४९ ॥
शिखाविशेषेण द्विगुणा वेतनवृद्धिः ॥ ५० ॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ५१ ॥
ताम्रवृत्तकंसवैकृन्तकारकूटकानां पञ्चकं शतं वेतनम् ॥ ५२ ॥ ताम्रपिण्डो दश-
भागः क्षयः ॥ ५३ ॥ पलहीने हीनद्विगुणो दण्डः ॥ ५४ ॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ५५ ॥

एक धरण (तोल) चांदी की वस्तु के बनाने की मजदूरी एक मासा अर्थात् सिक्के का सोलहवां भाग है । सुवर्ण के आभूषण बनवाने में सुवर्ण के मोल का आठवां भाग मजदूरी होगी । यदि कोई विशेष कारीगरी दिखावे-तो दुगुनी मजदूरी हो सकेगी । इसी तरह जैसी कोई कारीगरी करेगा-वैसी मजदूरी होगी । तांबा, सोसा, कांसी, लोहा, रांग, पीतल की बनवाई में लिए प्रतिशत पांच रुपये वेतन (मजदूरी) होगा । तांबे की वस्तु बनवाने दशवां भाग छीजन का समझना चाहिए । यदि फिर भी एक पल और अधिक छीछ जावे-तो उस मोल से दुगुना दण्ड हो । इसी प्रकार अधिक हानि पर दण्ड बढ़ा दिया जावेगा ॥४८-५५॥

सीसत्रपुपिण्डो विंशतिभागः क्षयः ॥ ५६ ॥ काकणी चास्य पलवेतनम् ॥ ५७ ॥
तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ५८ ॥ रूपदर्शकस्य स्थितां पणयात्रामकोप्यां कोपयतः
कोप्यामकोपयतो द्वादशपणो दण्डः ॥ ५९ ॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ६० ॥
कूटरूपं कारयतः प्रतिगृह्णतो निर्यापयतो वा सहस्रं दण्डः ॥ ६१ ॥ कोशे
प्रक्षिपतो वधः ॥ ६२ ॥

सीसा, और रांग की वस्तु बनवाने में बीसवां भाग छीज जाता है । इसमें प्रति पल की बनवाई एक काकणी (छोटा सिक्का) होगी । इस तरह प्रत्येक पल पर एक काकणी बढ़ती जावेगी । जो रूप्यों का परीक्षक, चलने वाले रूप्यों को न चलने और न चलने वालों को चलने दे-उसपर बारह पण दंड होना चाहिए । इसी तरह बड़े पणों

पर जुरमाने की रकम बढ़ा दी जावे । यदि कोई जाली सिक्के बनाकर चलावे या जो जाली सिक्के जानकर लेवे या उन्हें चलने देवे-तो उसपर एक सहस्र पण का दंड होवे । अच्छे सिक्कों के स्थान में जो पुरुष, सरकारी कोष में जाली सिक्के रख दे-उसको वध दंड की व्यवस्था है ॥५६-६२॥

अधरकपांसुधावकाः सारत्रिभागं लभेरन् ॥६३॥ द्वौ राजा रत्नं च ॥६४॥
रत्नापहार उत्तमो दण्डः ॥ ६५ ॥ खनिरत्ननिधिनिवेदनेषु षष्ठमंशं निवेत्ता
लभेत ॥ ६६ ॥ द्वादशमंशं भृतकः ॥ ६७ ॥ शतसहस्रादूर्ध्वं राजगामी निधिः
॥ ६८ ॥ ऊने षष्ठमंशं दद्यात् ॥ ६९ ॥ पौर्वपौरुषिकं निधिं जानपदः शुचिः
स्वकरणेन समग्रं लभेत ॥ ७० ॥ स्वकरणाभावे पञ्चशतो दण्डः ॥ ७१ ॥ प्रच्छ-
न्नादाने सहस्रम् ॥ ७२ ॥

खान से रत्न निकालने वाले, साफ करने वाले, खोदने फोड़ने वाले-रत्नों के मूल्य का तीसरा भाग वेतन में लेकर बांटलें । राजा उसके दो भाग ले या उस रत्न को ले लेवे । यदि कोई रत्न को उड़ा ले, तो उसपर उत्तम साहस दण्ड होना चाहिए यदि कोई रत्नों की खान या गड्ढे खजाने की राजा को सूचना देवे-तो उसे उस धन का छठा भाग मिलना चाहिए । यदि वह पुरुष राजा का इसी काम पर नौकर हो-तो उसको बारहवां अंश मिलना ठीक है । एक लाख से अधिक धन का स्वामी राजा होगा । इससे कम पर ही छठा भाग दिया जावेगा । यदि कोई खजाना किसी के पूर्वजों का लेख आदि से सिद्ध हो जावे, तो शुद्ध आचार वाला पुरुष, उस खजाने के पाने का अधिकारी है । यदि किसी पर लेख आदि न हों और व्यर्थ ही खजाने को अपना बनाना चाहे-तो उसपर पांच सौ पण दंड होवे । यदि वह चुपचाप खजाने को ले जावे-तो एक सहस्र मुद्रा दंड हो ॥६३-७२॥

भिषजः प्राणावाधिकमनाख्यायोपक्रममाणस्य विपत्तौ पूर्वः साहसदण्डः
॥ ७३ ॥ कर्मापराधेन विपत्तौ मध्यमः ॥७४॥ मर्मवधवैगुण्यकरणे दण्डपारुष्यं
विधात् ॥ ७५ ॥

यदि वैद्य राजा को बिना सूचना दिए ऐसे रोगी की चिकित्सा करे-जिसके मरजाने का भय हो और वह मरजावे, तो वैद्य को पूर्व साहस दंड होवे । यदि उसकी मृत्यु कुछ चिकित्सा के दोष से हुई हो तो मध्यम साहस दंड हो । यदि मर्म स्थान के काटने छेदन में वह अङ्ग बेकार हो जावे, तो दंड पारुष्य के नियमानुसार उस वैद्य पर भी दंड हो ॥७३-७५॥

सेनापति उनका कुछ उपकार करके उनसे अलग रहकर उनके मरवाने का प्रयत्न करता रहे, इसके अनन्तर राजा उन दुष्ट अधिकारियों को साधारण सेना और घातक अपने तीक्ष्ण पुरुष के साथ कहीं चढ़ाई पर भेजे और उसी तरह घातकों द्वारा आक्रमण करवाके मरवा दे। इन पिताओं के मारे जाने पर जो पुत्र राजा से द्वेष न करे या अपने पिता का बदला लेने का विचार न रखे-उसे उसके पिता का अधिकार दे दिया जावे। राजा की भक्ति करने वाले पुरुषों के कुल क्रमागत पुत्र, पौत्रों तक राज्य कार्य चला आता रहता है ॥ ६१-६६ ॥

स्वपक्षे परपक्षे वा तूष्णीं दण्डं प्रयोजयेत् ।

आयत्यां च तदात्वे च क्षमावानविशङ्कितः ॥ ६७ ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमेऽधिकरणे दण्डकर्मिकं प्रथमोऽध्यायः

आदित एकवृत्तिः ॥ ६१ ॥

क्षमा शील राजा बिना किसी संकोच के अपने और पर पक्ष के दुष्ट पुरुषों में ऐसे गुप्त मारण प्रयोगों का अवश्य व्यवहार करता रहे। यह वृत्तेमान और भविष्य में हितकारी है ॥ ६७ ॥

इति श्री कौटिलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत योगवृत्त अधिकरण में दुष्ट पुरुषों को गुप्त चुप दंड देने का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ ।



दूसरा अध्याय

६०वां प्रकरण

कोशाभिसंहरणम्

इस प्रकरण में कोश के बढ़ाने के प्रयत्नों का वर्णन किया जावेगा ।

कोशमकोशः प्रत्युत्पन्नार्थकृद्गुः संगृहणीयात् ॥ १ ॥ जनपदं महान्तमल्प-
प्रमाणं वा देवमातृकं प्रभूतधान्यं धान्यस्यांशं तृतीयं चतुर्थं वा याचेत् ॥ २ ॥
यथासारं मध्यमवरं वा दुर्गसेतुकर्मवणिक्पथशून्यनिवेशखनिद्रव्यहस्तिवनकर्मोप-
कारिणं प्रत्यन्तमल्पप्राणं वा न याचेत् ॥ ३ ॥ धान्यपशुहिरण्यादि निविशमानाय
दद्यात् ॥ ४ ॥

जिस राजा के कोश में धन नहीं है, वह धन की कठिनाई उपस्थित होने पर कोश को बढ़ावे। राष्ट्र का बड़ा भाग या छोटा भाग कैसा ही हो, यदि उस में अच्छी वर्षा और बहुत सा अन्न उत्पन्न होता है, उसमें प्रजा की इच्छा से तीसरा भाग या चौथा भाग अन्न

माँग ले। इसी प्रकार जहाँ मध्यम या थोड़ी अन्न की उत्पत्ति हो, वहाँ से भी यथा योग्य अन्न ग्रहण करे, परन्तु जो स्थान, दुर्ग, सेतु, कारखाने, सड़क, जंगल में भवन, खान, चंदन आदि लकड़ी हाथियों के वन के योग्य हो या सीमा के अन्न में या शक्ति हीन हो-उससे कुछ ग्रहण न करे। जो नये स्थानों में आकर वास करे, उस किसान को अन्न, बैल और नक़द रुपये की भी राजा कुछ सहायता करे ॥ १-४ ॥

चतुर्थमंशं धान्यानां बीजभक्तशुद्धं च हिरण्येन क्रीणीयात् ॥५॥ अरण्य-
जातं श्रोत्रियस्त्वं च परिहरेत् ॥ ६ ॥ तदप्यनुग्रहेण क्रीणीयात् ॥ ७ ॥ तस्या-
करणे वा समाहर्तुपुरुषा ग्रीष्मे कर्षकाणामुद्धार्य कारयेयुः ॥ ८ ॥ प्रमादावस्कन्न-
स्यात्ययं द्विगुणमुदाहरन्तो बीजकाले बीजलेख्यं कुर्युः ॥ ९ ॥ निष्पन्ने हरित-
पक्कादानं वारयेयुः ॥ १० ॥ अन्यत्र शाककट भङ्गमुष्टिभ्यां देवपितृपूजादानार्थं
गवार्थं वा ॥ ११ ॥ भिक्षुकग्रामभृतकार्थं च राशिमूलं परिहरेयुः ॥ १२ ॥

राजा इन किसानों का चतुर्थांश या बीज और खाने योग्य छोड़ कर सारा नक़द सुवर्ण द्वारा खरीद लेवे वन में जो वेद पाठी का धन हो, उसे राजा न छुवे। यदि आवश्यकता हो-तो कुछ ढीले भाव पर ब्राह्मण का अन्न खरीद ले। यदि वेद पाठी खेती न कर सके-तो राजकीय समाहर्ता (कलक्टर) उस भूमि को ग्रीष्म ऋतु में किसानों से जुतवादे जब बीज बोया जावे उस समय अधिकारी उसे लिखले और जो बीज किसान के प्रमाद से व्यर्थ जावे-किसान से उस का दुगुना बीज लिया जावे। जब श्रोत्रिय की खेती हरी भरी लहलहा जावे- तो उसको किसी को उजाड़ने न देवे। देव और पितृ पूजा तथा गौ के लिए साग और कटे हुए अन्न की पूली किसान ले भी सकता है। भिक्षुक और गांव के सेवक नाई धोबी के निमित्त अन्न में अवश्य अन्न छोड़े ॥५-१२ ॥

स्वसस्यापहारिणः प्रतिपातो ऽष्टगुणः ॥ १३ ॥ परसस्यापहारिणः पञ्चा-
द्वगुणः सीतात्ययः स्ववर्गस्य ॥ १४ ॥ बाह्यस्य तु वधः ॥ १५ ॥ चतुर्थमंशं
धान्यानां षष्ठं वन्यानां तूललाक्षाक्षौमवल्ककार्पासरौमकौशेयकौषधगन्धपुष्पफ-
लशाकपण्यानां काष्ठवेणुमांसवल्लूराणां च गृह्णीयुः ॥१६॥ दन्ताजिनस्यार्धम्
॥१७॥ तदनिसृष्टं विक्रीणानस्य पूर्वः साहसदण्डः ॥ १८ ॥ इति कर्षकेषु
प्रणयः ॥ १९ ॥

जो किसान अपने खेत के कुछ अन्न को राज पुरुषों के दिखानेसे पूर्व ही चुरा ले-तो उसे उसका अठगुना देना होगा। जो कोई अन्य के अन्न को चुराले-उससे पचास गुना दण्ड लिया जावे और जो अपने बराबर के किसान का हल आदि का नुकसान हुआ उसको

भी देवे । यदि चोरी करने वाला किसी अन्य राज्य का निवासी हो-तो उसका वध करवा दिया जावे । धान्यों का चतुर्थांश वन के अन्न काप षांश, रुई, लाख, पाट, वल्कल, कपास, ऊन, रेशम, औषध, गन्ध, पुष्प, फल, शाक, काष्ठ वांस, मांस, सूखे मांस आदि बेचने योग्य वस्तुओं का भी छठा ही भाग लेवे । हाथी दांत और चमड़े आदि का आधा मूल्य राजा मांग ले । जो राजा का भाग बिना दिए इन वस्तुओं को बेच डालता है, उसे पूर्व साहस दण्ड दिया जावे । यहां तक किसानों से प्रेम पूर्वक अन्न आदि लेने का वर्णन समाप्त हुआ ॥ १३-१६ ॥

सुवर्णरजतवज्रमणिमुक्ताप्रवालाश्वहस्तिपण्याः पञ्चाशत्कराः ॥ २० ॥
सूत्रवस्त्रताम्रवृत्तकंसगन्धभैषज्यशीधुपण्याश्चत्वारिंशत्कराः ॥ २१ ॥ धान्यरसलो-
हपण्याः शकटव्यवहारिणश्च त्रिंशत्कराः ॥ २२ ॥ काचव्यवहारिणो महाकारवश्च
विंशतिकराः ॥ २३ ॥ लुद्रकारवो वर्धकिपोषकाश्च दशकराः ॥ २४ ॥ काष्ठवेणु-
पापाणमृद्गाण्डपकान्नहरितपण्याः पञ्चकराः ॥ २५ ॥ कुशीलवा रूपाजीवाश्च
वेतनार्ध दद्याः ॥ २६ ॥ हिरण्यकरमकर्मण्यानाहारयेयुः ॥ २७ ॥ न चैषां कंचिद्-
पराधं परिहरेयुः ॥ २७ ॥ ते ह्यपरगृहीतमभिनीय विक्रीणीरन् ॥ २८ ॥ इति
व्यवहारिषु प्रणयः ॥ ३० ॥

सोना, चाँदी, हीरा, मणि, मोती, मूङ्गा, घोड़े और हाथी जैसी बेचने की चीजों पर पचासवां भाग सूत, कपड़ा, ताँबा, पीतल, कांसी, गन्ध, जड़ी बूटी और सुरा पर चालीसवां भाग, धान्य, रस, (तेल घी आदि) लोहे जैसी चीजों पर और गाड़ी के किरायों पर तीसवां भाग तथा कांच के व्यापारी और बड़े कारीगरों से बीसवां भाग, छोटे कारीगर खाती लुहार आदि से दसवां भाग, काठ, वांस, पत्थर, मिट्टी के वर्तन, पकी रसोई, हरे शाक आदि बेचने वाले से पाँचवां भाग, राजा ग्रहण करे । नट और वेश्या अपनी आमदनी का आधा भाग देवे । सुवर्ण (नक्रद रुपया) व्यापार नहीं करने वाले वनियों से लिया जावे और इनको किसी भी दण्ड में न छोड़ा जावे । ये लोग अपनी वस्तु को दूसरे की बता कर भी बेच देते हैं । यहां तक व्यापारियों से राजा को जो प्रेम पूर्वक लेना है, उसका वर्णन किया गया ॥ २०-३० ॥

कुक्कुटसूकरमर्ध दद्यात् ॥ ३१ ॥ लुद्रपशवः षड्भागम् ॥ ३२ ॥ गोमहि-
षाश्वतरखरोष्ट्राश्च दशभागम् ॥ ३३ ॥ बन्धकीपोषका राजप्रेष्याभिः परमरूपयौव-
नाभिः कोशं संहरेयुः ॥ ३४ ॥ इति योनिपोषकेषु प्रणयः ॥ ३५ ॥

सुरों और सूकर वाले से आधा भाग, भेड़ बकरी वाले से छठा भाग, गौ, भैंस, खच्चर,, गधे, ऊंट आदि से दशांश भाग, कोश वृद्धि को लेवे। वेश्याओं के अध्यक्ष, राजा की अत्यन्त सुन्दर दासियों से राज्य कोश को बढ़ावे। यहां तक पशु पालन करने वालों से राज्य कोश बढ़ाने के ढ़ैक्स का वर्णन किया गया ॥३१-३५॥

सकृदेव न द्विः प्रयोज्यः ॥ ३६ ॥ तस्याकरणे वा समाहर्ता कार्यमपदिश्य पौरजानपदान्भिचेत ॥ ३७ ॥ योगापुरुषाश्चात्र पूर्वमतिमात्रं दद्युः ॥ ३८ ॥ एतेन प्रदेशेन राजा पौरजानपदान्भिचेत ॥ ३९ ॥ कापटिकाश्चैनानल्पं प्रयच्छतः कुत्सयेयुः ॥ ४० ॥ सारतो वा हिरण्यमाढयान्याचेत ॥ ४१ ॥ यथोपकारं वा स्ववशा वा यदुपहरेयुः स्थानच्छत्रवेष्टनविभूषाश्चैषां हिरण्येन प्रयच्छेत् ॥ ४२ ॥

राजा ऐसा कर अपनी आयु में एक बार ही लेवे दुबारा कभी न लेवे। यदि ऐसा न किया जा सके-तो समाहर्ता (कलक्टर) किसी काम के बहाने पर और देश के व्यक्तियों से चन्दा मांगे। जो धनवान् सरकारी पुरुष है, वे इस में प्रथम अधिक धन चन्दे में देवे। इस प्रकार के बहाने से राजा, पुर और देश के मनुष्यों से चन्दा मांगे। यदि कोई थोड़ा चन्दा देवे-तो राजकीय गुप्तपुरुष, उसकी निन्दा करें। जो धनी पुरुष हैं, उनकी प्रतिष्ठा के अनुसार उनसे सुवर्ण ग्रहण किया जावे। जिनका उपकार किया या जो राजा के वश में हैं, वह जितना धन दे उतना उनसे लेकर उनको भी प्रतिष्ठा के लिए स्थान, छत्र, पगड़ी, आभूषण आदि उनके सुवर्ण क बदले में प्रदान करे ॥३६-४२॥

पापण्डसङ्घद्रव्यमश्रोत्रियभोग्यं देवद्रव्यं वा कृत्यकराः प्रेतस्य दग्धहृदयस्य वा हस्ते न्यस्तमित्युपहरेयुः ॥ ४३ ॥ देवताध्यक्षो दुर्गराष्ट्रदेवतानां यथास्वमेकस्थं कोशं कुर्यात् ॥ ४४ ॥ तथैव चापहरेत् ॥ ४५ ॥

जो धन किसी पन्थाई साधु का है और जिसमें वेदपाटी ब्राह्मण कुछ नहीं भोग पाते, उस देव द्रव्य को काम करने वाले राजकीय पुरुष “यह द्रव्य जले हृदय वाले प्रेत के हाथ में था” ऐसा कहकर धर्म के कायें में व्यय करदे। देवता अध्यक्ष, दुर्ग, राष्ट्र और देवों के द्रव्य को भिन्न २ एक स्थान पर सुरक्षित रखे और फिर राजा को समर्पित करदे ॥४३-४५॥

दैवतचैत्यं सिद्धपुण्यस्थानमौषादिकं वा रात्रावुत्थाप्य यात्रासमाजाभ्या-
माजीवेत् ॥ ४६ ॥ चैत्योपवनवृक्षेण वा देवताभिगमनमनार्तवपुष्पफलयुक्तं
ख्यापयेत् ॥ ४७ ॥ मनुष्यकरं वा वृक्षे स्तोभय रूपयित्वा सिद्धव्यञ्जनाः पौरजान
पदानां हिरण्येन प्रतिकुर्युः ॥ ४८ ॥ सुरङ्गायुक्ते वा कूपे नागमनियतशिरस्कं

हिरण्योपहारेण दर्शयेत् नागप्रतिमायामन्तरिक्षद्रायाम् ॥ ४६ ॥ चैत्यच्छिद्रे
वल्मीकच्छिद्रे वा सर्पदर्शनमाहारेण प्रतिबन्धसंज्ञं कृत्वा श्रद्धधानानां दर्शयेत् ॥ ४७ ॥

एक बगीचे में रात को एक वेदी बनवादी जावे और उसपर देवता स्थापित कर दिया जावे । यह बड़ा पुण्य स्थान है, इसमें देवता भूमि फोड़कर निकला है, इस तरह उस देवता के चैत्य (बगीचे) को प्रसिद्ध करे । फिर उसका मेला लगाकर जनता से धन बटोरे । देवता के चैत्य में किसी वृक्ष में किसी प्रकार उसकी ऋतु के बिना पुष्प फल लगावाकर उसके द्वारा देवता की बहुत प्रसिद्धि करके जनता से धन संग्रह करे और राजा को सौंप दे । किसी वृक्ष में सिद्ध रूपधारी कोई गुप्तचर राजस बनकर मनुष्य की भेंट मांगे फिर पुर और देश के लोगों से उसकी शान्ति के निमित्त धन इकट्ठा किया जावे । किसी सुरङ्ग युक्त कूप में कई शिर के सर्प को दिखाकर उसकी भेंट सुवर्ण चढ़ावे । उस नाग प्रतिमा में छेद हो कि जिसमें सारा रुपया भर जावे । देवता के बगीचे के किसी छिद्र में या वल्मीक में सर्प दर्शन कराकर आहार आदि से उसे पकड़कर श्रद्धालु पुरुषों को देवता की महिमा दिखावे और इस तरह धन इकट्ठा कर लिया जावे ॥ ४६-४७ ॥

अश्रद्धधाननामाचमनगोक्षणेष्टु रसमुपचाय्य देवताभिशापं त्रयान्तु
॥ ४१ ॥ अभित्यक्तं वा दंशयित्वा योगदर्शनप्रतीकारेण वा कोषाभिसंहरणं
कुर्यात् ॥ ४२ ॥ वैदेहकव्यञ्जनो वा प्रभृतपण्यान्तेवासी व्यवहरेत् ॥ ४३ ॥
स यदा पण्यमूल्ये निक्षेपप्रयोगैरुपचितः स्यात्तदैव राज्ञौ मोषयेत् ॥ ४४ ॥
एतेन रूपदर्शकः सुवर्णकारश्च व्याख्यातौ ॥ ४५ ॥

जो पुरुष इसपर श्रद्धा न रखे, उनको चरणामृत के साथ थोड़ा सा विष देवे, जिससे वे घूमे और सर्प देवता की महिमा प्रकट हो । जो देवता की निन्दा करें, उन्हें सांप से कटवा देवे, फिर औषधियां के योग से उनकी चिकित्सा करके देवता के महत्व की स्थापना करे और राजा के कोष को बढ़ावे । व्यापारी का वेष बनाकर गुप्तचर बहुत सी वस्तु और साथी लेकर व्यापार छेड़ दे । जब वह बेचने की चीजों के मूल्य पेशगी लेकर मालदार हो जावे या धरोहर आदि से उसके पास धन इकट्ठा हो जावे, तब रात को राजा चोरी करावे । इसी प्रकार राजा के सिक्कों का देखने वाला या सुवर्णाध्यक्ष भी राजा को धन सञ्चय करके देवे ॥ ४१-४५ ॥

वैदेहकव्यञ्जनो वा प्रख्यातव्यवहारः प्रवहणनिमित्तं याचितकमवकीर्तकं
वा रूपसुवर्णभाण्डमनेकं गृह्णीयात् ॥ ४६ ॥ समाजे वा सर्वपण्यसंदोहेन प्रभूतं

मोति ॥ ७० ॥ प्रतिपन्नं चैत्यस्थाने रात्रौ प्रभृतसुरामांसगन्धमपहारं कारयेत् ॥ ७१ ॥ एकरूपं चात्र हिरण्यं पूर्वनिखातं प्रेताङ्गं प्रेतशिशुर्वा यत्र निहितः स्यात्ततो हिरण्यमस्य दर्शयेदत्यल्पमिति च ब्रूयात् ॥ ७२ ॥ प्रभृतहिरण्यहेतोः पुनरुपहारः कर्तव्य इति स्वयमेवैतेन हिरण्येन श्रोभृते प्रभृतमौपहारिकं क्रीणी-हीति ॥ ७३ ॥ तेन हिरण्येनौपहारिकक्रये गृह्येत ॥ ७४ ॥

सिद्ध पुरुष के वेप में रहने वाला कोई गुप्तचर, छलने योग्य पुरुष को सुवर्ण बनाने की विद्या से लोभ युक्त करे और कहे, कि मैं अक्षय सुवर्ण बनाना, राजा को वश में करना, स्त्री के हृदय को खँचना, शत्रु को रोग ग्रस्त बनाना, आयु बढ़ाना, पुत्र उत्पन्न करना, जानता हूँ। जब उस पुरुष को विश्वास हो जावे, तो किसी देव स्थान के वगीचे में रात में उसे बहुत सी शराव, मांस, गन्ध, आदि की भेंट चढ़ावे। वहाँ से एक मुद्रा सुवर्ण पूर्व से गड़ा हुआ निकाल दे, जहाँ पर किसी प्रेत का अङ्ग हो या बच्चा गड़ा हो और कहे, कि यह तो बहुत थोथा सुवर्ण मिला, क्योंकि तुमने भेंट भी थोड़ी ही चढ़ाई है यदि तुमको अधिक सुवर्ण लेना है, तो अधिक भेंट चढ़ाओ। लो यह भी सुवर्ण लो और कल बहुत सी भेंट चढ़ाने को लाओ जब वह उस सुवर्ण से बाजार में चीजें खरीदे-तो उसे चोरी का बताने पर पकड़ लो और उसका सर्वस्व छीन लो ॥६६-७४॥

मातृव्यञ्जनाया वा पुत्रो मे त्वया हत इत्यवरूपितः स्यात् ॥ ७५ ॥ संसिद्धमेशस्य रात्रियागे वनयागे वनक्रीडायां वा प्रवृत्तायां तीक्ष्णा विशस्या-भित्यक्तमतिन येयुः ॥ ७६ ॥

कोई स्त्री किसी धनिक के पास जावे, कि तूने मेरे पुत्र को मारा है। रात्रियाग, वनयाग या वन क्रीड़ा के प्रवृत्त होने पर घातक पुरुष किसी मारने योग्य व्यक्ति को मारकर वहाँ डालदे। इस अपराध में उस धनिक को पकड़कर उसका सर्वस्व अपहरण कर लेना चाहिए ॥७५-७६॥

दूष्यस्य वा भृतकव्यञ्जनो वेतनहिरण्ये कूटरूपं प्रक्षिप्य प्ररूपयेत् ॥ ७७ ॥ कर्मकारव्यञ्जनो वा गृहे कर्म कुर्वाणस्तेन कूटरूपकारकोपकरणमपनिदध्यात् चिकित्सकव्यञ्जनो वा गरमगापदेशेन ॥ ७८ ॥ प्रत्यासन्नो वा दूष्यस्य सत्त्रो प्रणिहितमभिपेकभाण्डममित्रशासनं च कापटिकमुखेन आचक्षीत कारणं च ब्रूयात् ॥ ७९ ॥ एवं दूष्येष्वधार्मिकेषु च वर्तेत ॥ ८० ॥ नेतरेषु ॥ ८१ ॥

दूषित करने योग्य धनिक का नौकर अपने वेतन के रुपयों में जाली सिक्का मिलाकर राजा के यहां सूचना करे। कोई कारीगर जाली सिक्के के औजार भी उसके घर में रख देवे, जो कि इस धनिक के यहां पूर्व से काम कर रहा हो। इस प्रकार उसका धन छीन लेवे। वैद्य, विना उसे बताये धनिक को विष प्रदान करदे। उस विष को बरामद करके उसका सारा धन छीन लिया जावे। दूष्य व्यक्ति के पड़ोस में रहने वाला, सत्री नामक गुप्तचर अभिषेक की सामग्री और कपट लेख उसके घर में रखवादे। फिर उसपर यह अपराध लगाया जावे, कि यह शत्रु राजा को अभिषिक्त करना चाहता है। इस तरह सर्वस्व छीन लिया जावे। यह अनुचित उपाय राजा दुष्ट अधार्मिक पुरुषों के साथ ही करे-धार्मिक व्यक्ति के साथ कभी ऐसा आचरण न करे ॥७७-८१॥

पक्कं पक्कमिवारामात्फलं राज्यादवाप्नुयात् ।

आमच्छेदभयादामं वर्जयेत्कोपकारकम् ॥ ८२ ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमेऽधिकरणे कोशामिसंहरणं द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

आदितो दिनवतिः ॥ ६२ ॥

राजा दुष्ट पुरुषों से इस तरह धन को छीन ले, जैसे बगीचे से पके २ फल छीन लिये जाते हैं। और प्रजा के कोप का कारण होने से कच्चे फलों की तरह धार्मिक पुरुषों का धन बिल्कुल छोड़ देवे ॥८२॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रन्तर्गत योगवृत्त अधिकरण में कोश वृद्धि का दूसरा

अध्याय समाप्त हुआ ।



तीसरा अध्याय

६४वां प्रकरण

भृत्या भरणीयम्

इस प्रकरण में मृत्यों के मरण पोषण की विधि का वर्णन होगा ।

दुर्गजनपदशक्त्या भृत्यकर्म समुदयवादेन स्थापयेत् ॥१॥ कार्यसाधनसहेन वा भृत्यलाभेन शरीरमवेक्षेत ॥ २ ॥ न धर्मार्थौ षोडशेत् ॥ ३ ॥ ऋत्विगाचार्य-मन्त्रिपुरोहित सेनापतियुवराजराजमातृराजमहिष्योऽष्टचत्वारिंशत्साहस्राः ॥४॥ एतावता भरणे नानास्वाद्यत्वमकोपकं चैषां भवति ॥ ५ ॥

राजा दुर्ग और जन पर की शक्ति के अनुसार सेवकों पर धन व्यय करे, जिससे अपनी उन्नति हो सके। कार्य साधन में समर्थ सेवकों के लाभ से अपने राज्य की स्थिति की देख रेख रखे। राजा कोई ऐसा काम न कर, जिससे धर्म और अर्थ की हानि हो। ऋत्विक्, आचार्य मन्त्री, पुरोहित, सेनार्पित, युवराज, राजमाता, और राजमहिषी, इन सबके वेतन का अड़तालीस सहस्र पण प्रति वर्ष होना चाहिए। इतने वेतन से ये आराम से भोजन कर सकते हैं। और कुपित नहीं हो सकते हैं ॥१-५॥

दौवारिकान्तर्वेशिकप्रशास्तृसमाहर्तृसंनिधातारश्चतुर्विंशतिसाहस्राः ॥ ६ ॥
एतावता कर्मण्या भवन्ति ॥ ७ ॥ कुमारकुमारमातृनायकाः पौरव्यावहारिककामान्तिकमन्त्रिपरिषद्वाष्टान्तपालाश्च द्वादशसाहस्राः ॥ ८ ॥ स्वामिपरिवन्धवलसहाया ह्येतावता भवन्ति ॥ ९ ॥ श्रेणीमुख्या हस्त्यश्वरथमुख्याः प्रदेष्टारश्चाष्टसाहस्राः ॥ १० ॥ स्ववर्गानुकर्मिणो ह्येतावता भवन्ति ॥ ११ ॥

द्वारपाल, अन्तःपुर रक्षक, शास्त्राध्यक्ष, समाहर्ता संनिधाता (भंडाराध्यक्ष) को चौबीस पण सहस्र वार्षिक वेतन दिया जावे। कुमार, कुमारों की माता, सेना नायक नगर रक्षक, व्यापाराध्यक्ष, कृषिकाध्यक्ष, मन्त्रि परिषद् के वारह सभ्य, राष्ट्र और सीमा पालक, इनको वारह सहस्र सालाना वेतन दिया जावे। इतने वेतन से ये स्वामी के अनुचर और उसके बल के सहायक रहेंगे सजातीय शिल्पियों के मुख्य, हाथी, अश्व, रथों के नायक तथा प्रदेष्टा, इनको आठ सहस्र वार्षिक वेतन दिया जावे। इससे ये अपने साथियों को राजा का अनुचर बनाये रखेंगे ॥६-११॥

पन्थश्वरथहस्त्यध्यक्षा द्रव्यहस्तिवनपालाश्चतुःसाहस्राः ॥ १२ ॥ रथिकानीकचिकित्सकाश्चदमकवर्धकयो योनिपोषकाश्च द्विसाहस्राः ॥ १३ ॥ कार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकपौराणिकसूतमागधाः पुरोहितपुरुषाः सर्वाध्यक्षाश्च साहस्राः ॥ १४ ॥ शिल्पवन्तः पादाताः संख्यायकलेखकादिवर्गः पञ्चशताः ॥ १५ ॥

पैदल सेना का अध्यक्ष, अश्वारोही, रथारोही, गजारोही सेना के स्वामी, वन की वस्तु और हाथियों के वन के रक्षकों को चार सहस्र वार्षिक वेतन मिलना चाहिए। रथ सेना के चिकित्सक, अश्व शिक्षक, बड़ई, पशु पालक, अध्यक्षों को वार्षिक दो सहस्र पण मिलना उचित है। ज्योतिषी शकुन वादी, मुहुर्त बताने वाले पौराणिक, सूत, मागध पुरोहित इनके सेवक और सारे छोटे २ अध्यक्षों को एक सहस्र वार्षिक वेतन दिया जावे। शिल्पी चित्रकार खेलने वाले, हिसाब रखने वाले, लेखक आदि को पांच सौ प्रति वर्ष मिले ॥१२-१५॥

कुशीलवास्त्वर्धतृतीयशताः ॥ १६ ॥ द्विगुणवेतनाश्चैषा तूर्यकराः ॥ १७ ॥
 कारुशिल्पिनो विंशतिशतिकाः ॥ १८ ॥ चतुष्पदद्विपदपरिचारकपारिकर्मिकोपस्था-
 यिकपालकविष्टिवन्धकाः षष्ठिवेतनाः ॥ १९ ॥ कार्ययुक्तारोहकमाणवकशैल-
 खनकाः सर्वोपस्थायिन आचार्या विद्यावन्तश्च पूजावेतनानि यथाहं लभेरन्पञ्च-
 शतावरं सहस्रपरम् ॥ २० ॥ दशपणितो योजने दूतः मध्यमः ॥ २१ ॥ दशोत्तरे
 द्विगुणवेतन आयोजनशतादिति ॥ २२ ॥ समानविद्येभ्यस्त्रिगुणवेतनो राजा
 राजसूयादिषु क्रतुषु राज्ञः सारथिः साहस्रः ॥ २३ ॥ कापटिकोदास्थितगृहपति-
 कवैदेहकतापसव्यञ्जनाः साहस्राः ॥ २४ ॥ ग्रामभृतकसन्नितीक्ष्णरसदभिजुक्क्यः
 पञ्चशताः ॥ २५ ॥ चारसंचारिणोर्धतृतीयशताः प्रयासवृद्धवेतना वा ॥ २६ ॥

नटों को ढाई सौ पण वार्षिक मिले, इन में बाजे बजाने वाले या बनाने वाले को इस से दुगुना दिया जावे । साधारण कारीगरों को एक सौ बीस सालाना वेतन नियत होवे । पशु और मनुष्यों के परिचारक उनके मुखिया, स्नान आदि कराने वाले गौ आदि के पालक बेगारी प्रत्येक पुरुष को सालभर में साठ पण वेतन मिले । कार्य के समय रथ आदि का चलाने वाला, शिक्षा देने वाला, पत्थर पर नक्काशी करने वाले या सारे गाने आदि के आचार्य अपनी २ योग्यता के अनुसार पाँच सौ से लेकर एक सहस्र तक प्रत्येक वेतन पा सकता है । एक योजन चलने वाले मध्यम दूत को दस पण वार्षिक दिया जावे और दस योजन से सा योजन तक दस २ पर दुगुना वेतन कर दिया जावे । राजा राजसूय आदि यज्ञ करने के समय मन्त्री पुरोहित आदि को त्रिगुना वेतन देवे । राजा के सारथि को एक सहस्र पण दिया जावे । गांव के सेवक (नाई धोबी आदि) सन्त्री (गुप्तचर) घातक विष देने वाले और भिक्षुणियों को पाँच सौ प्रति वर्ष वेतन देता रहे । चरों को इधर उधर भेजने वाले अभ्यक्ष को ढाई सौ प्रति वर्ष दिया जावे । यदि इनको कभी अधिक परिश्रम करना पड़े तो सबका अधिक भी वेतन दिया जा सकता है ॥ १६-२६ ॥

शतवर्गसहस्रवर्गाणामध्यक्षा भक्तवेतनलाभमादेशं विक्षेपं च कुर्युः ॥ २७ ॥
 अविक्षेपो राजपरिग्रहदुर्गराष्ट्ररक्षावेक्षणेषु च नित्यमुख्याः स्युरनेकमुख्याश्च ॥ २८ ॥
 कर्मसु मृतानां पुत्रदारा भक्तवेतनं लभेरन् ॥ २९ ॥ बालवृद्धव्याधिताश्चैषामनुग्राह्याः
 ॥ ३० ॥ प्रेतव्याधितस्त्वतिकाकृत्येषु चैषामर्थमानकर्म कुर्यात् ॥ ३१ ॥ अल्पक्रोशः
 कुप्यपशुक्षेत्राणि दद्यात् ॥ ३२ ॥ अल्पं च हिरण्यम् ॥ ३३ ॥

जो इन के सौ पुरुष या सहस्र पुरुषों पर अभ्यक्ष हो-उसे भत्ता और वेतन अधिक मिलना चाहिए, इसका काम उनको आज्ञा देना और इधर उधर नौकरी पर लगाना है ।

राजा के रनिवास, दुर्ग और दण्ड दशा के निमित्त इनको बखेर कर नियुक्त न करे। इन में कोई न कोई अध्यक्ष अवश्य हो-इस से अनेक अध्यक्ष बनाने चाहिए। जो करम करके मर जावे-तो उसके वेतन और भत्ते को उसकी स्त्री या पुत्र प्राप्त करे। मृत नौकर के बालक वृद्ध और बीमारों पर राजा कृपा करके उतका कुछ वेतन नियत करे, इनके मौत रोगी या बच्चा उत्पन्न होने पर इनके द्रव्य की सहायता करके इनका राजा मान प्रदर्शित करे। राजा के देश में रुपया न हो तो तांबा आदि धातु के वर्तन, पशु, खेत आदि दे कर राजा उन की सहायता करे। इस समय नकद रुपया थोड़ा देवे ॥ २७-३३ ॥

शून्यं वा निवेशयितुमभ्युत्थितो हिरण्यमेव दद्यात् ॥ ३४ ॥ न ग्रामं ग्रामसजातव्यवहारस्थापनार्थम् ॥ ३५ ॥ एतेन भृतानामभृतानां च विद्याकर्मभ्यां भक्तवेतनविशेषं च कुर्वात् ॥ ३६ ॥ पण्डितेन स्यादकं कृत्वा हिरण्यानुरूपं भक्तं कुर्यात् ॥ ३७ ॥ पर्यश्वरथद्विपाः सूर्योदये वहिः संधिदिवसवर्जं शिल्पयोग्याः कुर्युः ॥ ३८ ॥ तेषु राजा नित्ययुक्तः स्यादभीक्षणं चैषां शिल्पदर्शनं कुर्यात् ॥ ३९ ॥

यदि राजा शून्य स्थानों को बसाना चाहे-तो नकद सुवर्ण मुद्रा देवे। गांव के बसाने में भूमि आदि देने से उसका मूल्य निश्चित नहीं होता-उसपर कर कितना बाँटा जावे-यह पता नहीं लगता है। इस तरह नौकर और मजदूर पुरुषों के काम और गुण को देख कर उनके वेतन और भत्ते [पेटिया] की कमती बढ़ती राजा व्यवस्था करे। जिसकी साठ पण वेतन हो, उसको एक आठक अन्न दिया जावे। इसी तरह जिसका जितना वेतन हो-उसी हिसाब से भत्ता भी कमती बढ़ती कर दिया जावे। पैदल, अश्व, रथ और हाथियों को सूर्योदय होते ही नगर के बाहर सेना में काम करने के योग्य बनाया जावे अर्थात् कवायद सिखाई जावे। संधिकाल और अमावस्या आदि में कवायद बन्द रहे। राजा सदा इनके साथ रहे और सदा इनकी कवायद आदि देखता रहे ॥ ३४-३९ ॥

कृतनरेन्द्राङ्गं शस्त्रावरणमायुधागारं प्रवेशयेत् ॥ ४० ॥ अशस्त्राश्वरेयुरन्वत्र मुद्रानुज्ञातात् ॥ ४१ ॥ नष्टं विनष्टं वा द्विगुणं दद्यात् ॥ ४२ ॥ विध्वस्तगणानां च कुर्यात् ॥ ४३ ॥ सार्थिकानां शस्त्रावरणमन्तपाला गृह्णीयुः समुद्रमवचारेयुर्वा ॥ ४४ ॥ यात्रामभ्युत्थितो वा सेनामुद्योजयेत् ॥ ४५ ॥

राजा के अङ्क से अङ्कित, कवच और शस्त्रों को शस्त्रागार में रखवा लिया जावे। राजा की चपरास के बिना ये सिपाही बिना शस्त्र के घूम सकते हैं। जो शस्त्र खो जाय या प्रमाद से टूट जाय-तो उसका दुगुना मूल्य दिया जावे। जितने हथियार टूट गए-उनकी

भी गणना रखे-व्यापारियों के गिरोह से शस्त्र और कवच अन्तपाल [अधिकारी] जमा करावे । यदि वे समुद्र में आगे जा रहे हों-तो उन को सशस्त्र चले जाने दे । जब राजा किसी यात्रा को जावे-तो सशस्त्र सेना साथ ले जावे ॥ ४०-४५ ॥

ततो वैदेहकव्यञ्जनाः सर्वपण्यान्यायुधीभ्यो यात्राकाले द्विगुणप्रत्यादेयानि दद्युः ॥ ४६ ॥ एवं राजपण्ययोगविक्रयो वेतनप्रत्यादानं च भवति ॥ ४७ ॥ एवमवेक्षितायव्ययः कोशदण्डव्यसनं नावाप्नोति ॥ ४८ ॥ इति भक्तवेतनविकल्पः ॥ ४९ ॥

राजा के गुप्तचर व्यापारी बने हुए राजकीय वस्तुओं को इन शस्त्रधारी सिपाहियों को यात्राकाल में दुगुना दाम पर बेचे । इस से राजा की वस्तु बिककर सेना को वेतन मिल जायगा । इस प्रकार जो अपनी आमदनी और व्यय की देख रेख करता रहता है । उसको कोश और दण्ड का व्यसन [बुराई] प्राप्त नहीं होता ॥ ४६-४९ ॥

सत्त्रिणश्चायुधीयानां वेश्याः कारुकुशीलवाः ।

दण्डवृद्धाश्च जानीयुः शौचाशौचमतिन्द्रिताः ॥ ५० ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमेऽधिकरणे भृत्यभरणीयं तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

आदितस्त्रिनवतिः ॥ ६३ ॥

शस्त्रधारी सेना के शुद्ध और अशुद्ध होने को सत्री [गुप्तचर] वेश्या, शिल्पी, नट और दण्डधारी वृद्ध सैनिक सावधानी के साथ जानते रहे ॥ ५० ॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तगत योग वृत्त अधिकरण में सेवकों के वेतन के निर्णय का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ।



चौथा अध्याय

६२ वां प्रकरण

अनुजीवि वृत्तम्

इस प्रकरण में राजा के अनुचर मन्त्री आदि का राजा के प्रति व्यवहार करने का धर्शन होगा ।

लोकयात्राविद्राजानमात्मद्रव्यप्रकृतिसंपन्नं प्रियहितद्वारेणाश्रयेत् ॥ १ ॥

यं वा मन्येत यथाहमाश्रयेप्सुरेवमसौ विनयेप्सुराभिगामिकगुणयुक्त इति ॥ २ ॥

द्रव्यप्रकृतिहीनमप्येनमाश्रयेत् ॥ ३ ॥ न त्वेवानात्मसंपन्नम् ॥ ४ ॥ अनात्म-
वान्हि नीतिशास्त्रद्वेपादानर्थ्यसंयोगाद्वा प्राप्यापि महदैश्वर्यं न भवति ॥ ५ ॥
आत्मवति लब्धावकाशः शास्त्रानुयोगं दद्यात् ॥ ६ ॥ अत्रिसंवादाद्धि स्थान-
स्थैर्यमवाप्नोति ॥ ७ ॥ मतिकर्मसु पृष्टः तदात्वे चायत्यां च धर्मार्थसंयुक्तं
समर्थं प्रवीणवद परिपङ्गीरुः कथयेत् ॥ ८ ॥

सांसारिक उन्नति के मार्ग जानने वाला कुशल पुरुष, महाकुलीन, द्रव्य और
अमात्यादि प्रकृति से सुसम्पन्न, राजा का-उसके प्रिय पुरुषों के द्वारा आश्रय ग्रहण करे।
जिस राजा को विद्वान् यह समझे, कि मैं जैसे आश्रय की अभिलाषा करता हूँ वैसा यह
है, और जैसे विनयी पुरुष की यह राजा इच्छा करता है, वैसा ही मैं हूँ-इस प्रकार
आश्रय लेने के गुणों से यह युक्त है-यह सोचकर किसी भी राजा का विद्वान् आश्रय लेवे।
यदि राजा उत्तम गुणों से सम्पन्न है और द्रव्य प्रकृति से हीन भी है, तो भी उसका
आश्रय ग्रहण कर लेना चाहिए, परन्तु जो आत्मगुण सम्पन्न नहीं है, उसका आश्रय कदापि
ग्रहण न करे, क्योंकि अनात्मज्ञ राजा, नीति शास्त्र के ज्ञान के अभाव के कारण अनर्थकारक
मृगया आदि दापों में फंसेगा और एक दिन उसका महान् ऐश्वर्य भी नष्ट हो जावेगा।
यदि राजा आत्मगुण सम्पन्न हो तो समय पर उसे नीति शास्त्र की शिक्षा देवे। जब राजा
और उस चतुर मन्त्री का एक मत हो जाता है, तो उसका स्थान स्थिर हो जाता है। जब
कभी राजा मन्त्रणा के योग्य कार्यों में इस मन्त्री की भी सम्मति लेवे, तो वह वर्तमान या
भविष्य में कल्याणकारी, धर्म अर्थ संयुक्त, सुख साधन में समर्थ वाक्य को चतुर पुरुष
की भांति सभा में निडर होकर कहे ॥१-८॥

ईप्सितः पणेत ॥ ९ ॥ धर्मार्थानुयोगमविशिष्टेषु बलवत्संयुक्तेषु दण्ड-
धारणं बलवत्संयोगे तदात्वे च दण्डधारणमिति न कुर्याः ॥ १० ॥ पक्षं वृत्तिं
गुह्यं च मे नोपहन्याः ॥ ११ ॥ संज्ञया च त्वां कामक्रोधदण्डनेषु वारधेयमिति
॥ १२ ॥ आदिष्टः प्रदिष्टायां भूमावनुज्ञातः प्रविशेत् ॥ १३ ॥ उपविशेच्च
पार्श्वतः संनिकृष्टः विप्रकृष्टः परासनम् ॥ १४ ॥ विगृह्य कथनमसम्यमप्रत्यक्ष-
मश्रद्धेयमनृतं च वाक्यमुच्चैरनर्मणि हासं वातप्लीवने च शब्दवती न कुर्यात्
॥ १५ ॥ मिथः कथनमन्येन जनवादे द्वन्द्वकथनं राज्ञो वेषमुद्धतकुहकानां च
रत्नातिशयप्रकाशाभ्यर्थनमेकाक्षयोष्ठनिर्भोगं अकुटीकर्म वाक्यापक्षेपणं च
ब्रुवति बलवत्संयुक्तविरोधं स्त्रीभिः स्त्री दर्शिभिः सामन्तदूतैर्द्वेष्यपक्षावक्षिप्तानर्थैश्च
प्रतिसंसर्गमेकार्थचर्या संघातं च वर्जयेत् ॥ १६ ॥

जब यह पुरुष-राजा का अभीष्ट हो जावे, तो राजा से यह निश्चित करले, कि तुम धर्म अर्थ के विषय में अयोग्य पुरुषों से विचार न करना, बलवानों से युद्ध न करना, जिस समय किसी के बलवान् सहायक हों तो उस समय उसपर चढ़ाई न करना-मेरे पक्ष, वृत्ति और गुप्त विचार को कभी नष्ट न करना और काम, क्रोध तथा दण्ड देने के समय मैं तुम्हें संकेतों से रोक्कूंगा-तो क्रुद्ध न होना-यदि ये सब स्वीकार करो-तो मैं तुम्हारा मन्त्री बन सकता हूँ। जब वह स्वीकार करले-तो जिस स्थान पर राजा नियुक्त करे वहीं चला जावे। समयानुसार राजा के इधर उधर आसने सामने उचित आसन पर बैठ जावे। चतुर पुरुष, राज सभा में कभी झगड़ कर बात न करे, असभ्य, नहीं देखे हुए अविश्वनीय, मिथ्या, वाक्य न बोले। उपहास के समय के न होने पर कभी जोर से न हंसे। अधोवायु (पाद) और खकार शब्द के साथ न छोड़े। राजा के स्थित होने पर किसी दूसरे से आपस में बात करना, जनों के विवाद किसी एक पक्ष को सत्य कहने की छाती ठोकना, राजा के या उद्धत पाखण्डियों के वेश को धारण करना, अच्छे २ रत्नों को सबके सम्मुख राजा से मांग बैठना, एक आंख और ओष्ठ को मोड़कर भौंहे चलाना, राजा के वाक्य में आक्षेप करना बलवान् से सम्बन्ध रखने वाले से विरोध करना, स्त्री, स्त्रियों के सेवक, सामन्तों के दूत, राजा के द्वेषी, तिरस्कृत या अनर्थ करने वालों से संसर्ग बनाना, एक ही बात को करते चले जाना और पार्टी बनाना, ये सब बातें राजदरबार में नहीं करने योग्य हैं ॥६-१६॥

अहीनकालं राजार्थं स्वार्थं प्रियहितैः सह ।

परार्थदेशकाले च ब्रूयाद्धर्मार्थसंहितम् ॥ १७ ॥

पृष्टः प्रियहितं ब्रूयान्न ब्रूयादहितं प्रियम् ।

अप्रियं वा हितं ब्रूयाच्छृण्वतोऽनुमतो मिथः ॥ १८ ॥

चतुर पुरुष, राजा के हित की बात को समय के ऊपर चटपट करदे, अपने स्वार्थ को राजा के प्रिय और हितकारी द्वारा कहावे तथा यदि दूसरे के हित की बात हो-तो देशकाल देखकर धर्म युक्त और नीति युक्त वचन बोल दे। यदि राजा पूछे-तो प्रिय और हितकारी बात कहदे, अहितकारी प्रिय बात कभी न कहे। यदि हितकारी अप्रिय भी है-तो भी कहदे-परन्तु यह सब बातें, राजा के ध्यान पूर्वक सुनने और अनुमति देने पर ही कहे ॥१७-१८॥

तूष्णीं वा प्रतिवाक्ये स्याद्द्वेष्ट्यादींश्च न वर्जयेत् ।

अप्रिया अपि दक्षाः स्युः तद्भावाद्ये वहिष्कृताः ॥ १९ ॥

अनर्थ्याश्च प्रिया दुष्टाश्चित्तज्ञानानुवर्तिनः ।

अभिहास्येष्वाभिहसेद्धोरहासांश्च वर्जयेत् ॥२०॥

विद्वान्, पुरुष राजा को उत्तर देने के समय चुप हो जावे । राजा के द्वेष पुरुषों को उत्तर देने में न हिचकिचावे । जो ऐसा नहीं करता-वह दक्ष होकर भी राजा का अप्रिय हो जाता है और इन बातों के कारण तिरस्कृत पुरुष भी आहत हो जाता है । राजा के चित्त की इच्छा के अनुसार चलने वाले अनर्थकारी दुष्ट भी राजा के प्रिय देखे गए हैं । जब राजा हंसे-तो हंसे, परन्तु तब भी जोर का अट्टहास न करे ॥१९-२०॥

परात्संक्रामयेद्धोरं न च घोरं परे वदेत् ।

तितिक्षेतात्मनश्चैव क्षमावान्पृथिवीसमः ॥२१॥

किसी घोर समाचार को दूसरे के द्वारा राजा तक पहुंचावे, परन्तु दूसरे से भी दक्ष पुरुष, स्वयं न कहे । यदि अपने ऊपर कोई घोर घटना आजावे, तो पृथिवी समान दृढ़ होकर उसका सहन करे ॥२१॥

आत्मरक्षा हि सततं पूर्वं कार्या विजानता ।

अग्नाविव हि संप्रोक्ता वृत्ती राजोपजीविनाम् ॥२२॥

विद्वान् पुरुष, सबसे प्रथम अपनी रक्षा करे, क्योंकि राजा के आश्रय रहने वालों की वृत्ति अग्नि से खेलने के सदृश, कठिन है ॥२२॥

एकदेशं दहेदग्निः शरीरं वा परं गतः ।

सपुत्रदारं राजा तु घातयेद्वर्धयेत वा ॥ २३ ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमेऽधिकरणे अनुजीविवृत्तं चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

आदिश्चतुर्नवतिः ॥ ६४ ॥

अग्नि तो शरीर के एक देश या सारे शरीर को जला सकती है, परन्तु राजा पुत्र, स्त्री सहित सबको नष्ट कर देता है और प्रसन्न होने पर सबकी उन्नति भी कर सकता है ॥२३॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत योगवृत्ताधिकरणे मन्त्री आदि नौकर चाकरों

के व्यवहार का वर्णन का चौथा अध्याय समाप्त हुआ ।



पांचवां अध्याय

६३वां प्रकरण

सामयाचारिकम्

इस प्रकरण में राजा के सन्मुख किस प्रकार समयानुकूल वर्ताव किया जावे-इसका वर्णन होगा ।

नियुक्तः कर्मसु व्ययविशुद्धमुदयं दर्शयेत् ॥ १ ॥ आभ्यन्तरं बाह्यं गुह्यं प्रकाशयमात्यायेकमुपेक्षितव्यं वा कार्यमिदमेवमिति विशेषयेच्च ॥ २ ॥ मृगयाद्य-
तमद्यस्त्रीषु प्रसक्तं चैवमनुवर्तेत ॥ ३ ॥ प्रशंसाभिरासन्नश्चास्य व्यसनोपघाते प्रयतेत
॥ ४ ॥ परोपजापातिसंधानोपाधिभ्यश्च रक्षेत् ॥ ५ ॥ इङ्गिताकारौ चास्य लक्ष-
येत् ॥ ६ ॥ कामद्वेषहर्षदैन्यव्यवसायभयद्वन्द्वविपर्यासमिङ्गिताकाराभ्यां हि मन्त्र-
संवरणार्थमाचरन्ति प्रज्ञाः ॥ ७ ॥

अपने कार्य पर नियुक्त समाहर्ता आदि सरकारी अफसर व्यय काट कर राजा को बचत दिखाते रहे । दुर्ग के भीतर दुर्ग से बाहर राष्ट्र में होने वाले कार्य, गुप्त, अगुप्त, हानिकारक और उपेक्षा योग्य, जैसे हों-उन सबको विशेषता के साथ राजा को बता दे । यदि राजा, मृगया, मद्य, द्यूत, और स्त्रियों में आसक्त हो, तब भी उसके अनुकूल ही वर्ताव करे, परन्तु सदा उसके समीप रहकर उसके व्यसनों के नाश करने की बराबर चेष्टा करता रहे । शत्रुओं द्वारा फूट डालने वाले या पार्टी बनाने वाले लोगों से राजा की सर्वदा रक्षा करे । राजा के सदा मन की चेष्टा और आकार की ओर दृष्टि रखे । काम, द्वेष, हर्ष, दीनता, उद्योग, भय और सुख दुःख के विपर्यास, इङ्गित (चेष्टा, या आकार से ही जाने जा सकते हैं) । राजा के मन्त्र की रक्षा के निमित्त बुद्धिमान् इनकी ओर विशेषता से दृष्टि रखे ॥१-७॥

दर्शने प्रसीदति ॥ ८ ॥ वाक्यं प्रतिगृह्णाति ॥ ९ ॥ आसनं ददाति
॥ १० ॥ विविक्तो दर्शयते ॥ ११ ॥ शङ्कास्थाने नातिशङ्कते ॥ १२ ॥ कथायां
रमते ॥ १३ ॥ परिज्ञाप्येष्वेक्षते ॥ १४ ॥ पथ्यमुक्तं सहते ॥ १५ ॥ समयमानो
नियुक्ते ॥ १६ ॥ हस्तेन स्पृशति ॥ १७ ॥ श्लाघ्ये नोपहसति ॥ १८ ॥ परोक्षं
गुणं ब्रवीत ॥ १९ ॥ भक्ष्येषु स्मरति ॥ २० ॥ सह विहारं याति ॥ २१ ॥
व्यसने ऽभ्यवपद्यते ॥ २२ ॥ तद्भक्तीन्पूजयति ॥ २३ ॥ गुह्यमाचष्टे ॥ २४ ॥
मानं वर्धयति ॥ २५ ॥ अर्थं करोति ॥ २६ ॥ अनर्थं प्रतिहन्ति ॥ २७ ॥
इति तुष्टज्ञानम् ॥ २८ ॥

जब राजा देखते ही प्रसन्न हो जावे, बात को ध्यान पूर्वक सुने, आसन देवे, एकान्त में मिले, शङ्का के स्थान में भी शंका न करे, उससे बातचीत में प्रेम दिखावे; जताने योग्य कार्यों में उसकी ओर देखे, हितकारी बात को मान जावे, मुसकुराकर प्रत्येक कार्य में लगावे, हाथ से छूवे, प्रशंसा के साथ हंसता रहे, परोक्ष में गुणों का करे, भोजन के समय याद करे-उसको साथ लेकर घूमने जावे. कठिनाई के समय उसकी सहायता करे, उसके साथियों का आदर करे, उससे गुप्त बात कहदे, मान बढ़ावे, उसके हितकारी कार्य करे अहितकारी कार्यों को नष्ट करदे-तो समझना चाहिए कि इस व्यक्ति पर राजा प्रसन्न है ॥८-२८॥

एतदेव विपरीतमनुष्ठस्य ॥२९॥ भूयश्च वृज्यामः ॥३०॥ संदर्शने क्रोधः ॥३१॥ वाक्यस्याश्रवणप्रतिषेधौ ॥३२॥ आसनचक्षुषोरदानम् ॥३३॥ वर्ण-स्वरभेदः ॥३४॥ एकाक्षिभ्रुकुटयोष्ठनिर्भेदः ॥३५॥ स्वेदश्वासस्मितानमस्थानो-त्पत्तिः ॥३६॥ परिमन्त्रणम् ॥३७॥ अकस्माद्भूजनम् ॥३८॥ वर्धनमन्यस्य ॥३९॥ भूमिगात्रविलेखनम् ॥४०॥ अन्यस्योपतोदनम् ॥४१॥ विद्यावर्णदेश-कुत्सा ॥४२॥ समदोषनिन्दा ॥४३॥ प्रतिदोषनिन्दा ॥४४॥ प्रतिलोमस्तवः ॥४५॥ सुकृतानपेक्षणम् ॥४६॥ दुष्कृतानुकीर्तनम् ॥४७॥ पृष्ठावधानम् ॥४८॥ अतित्यागः ॥४९॥ मिथ्याभिभाषणम् ॥५०॥ राजदर्शिनां च तद्वृत्ता-न्यत्वम् ॥५१॥

इनके विपरीत कार्य देखने पर समझना चाहिए कि राजा अप्रसन्न है; तो भी कुछ अप्रसन्नता के कार्य बताते हैं। जिसको देखते ही कुपित हो जावे, जब कुछ बात कहते हो सुने-नहीं या रोकदे, आसन न दे और आंख उठाकर भी उस ओर न देखे, बोलने में वर्ण और स्वर बदलले, कभी २ एक आंख और भ्रुकुटी मरोड़ ले, इसके देखते ही बिना मौके स्वेद, श्वास या मुसकुराहट होने लगे, दूसरे के साथ बात करने लगे, अचानक चलदे, अन्य की प्रशंसा करे, भूमि या शरीर खुजलाने लगे, दूसरे को फटकारने या मारने लग जावे ! उसकी विद्या वर्ण और देश की निन्दा करे उसके समान दोष रखने वाले की निन्दा या प्रत्येक दोष की निन्दा, करने लगे, इससे उल्टा कार्य करने वाले की स्तुति करे, इसके उत्तम कार्य की ओर भी न देखे, इसके विगड़े कार्य का वार २ कथन करे, इसकी ओर से पीठ करले, समीप आने पर उसे दूर बैठा दे, उससे मिथ्या बातचीत करे, अन्य राज सेवकों और उसके कामों में भेद बताने लगे-तो समझ लेना चाहिए कि इस व्यक्ति से राजा असन्तुष्ट है ॥२९-५१॥

आलस्य और योग क्षेम (कल्याण) की हानि द्वारा मन्त्री आदि का क्षय हो जाता है। वे लालची बन जाते हैं और उनको राजा से विरक्ति हो जाती है ॥३१-३८॥

क्षीणाः प्रकृतयो लोभं लुब्धा यान्ति विरागताम् ।

विरक्ता यान्त्यमित्रं वा भर्तारं घ्नन्ति वा स्वयम् ॥ ३६ ॥

क्षीण हुए अमात्य आदि प्रकृतिजन, लोभ करने लगते हैं। जब वे लालची हो जाते हैं, तब उनको राजा से विराग होने लगता है। जब विरक्त हो जाते हैं, तब वे या तो शत्रु से जा मिलते हैं या स्वयं अपने स्वामी को मार बैठते हैं ॥३६॥

तस्मात्प्रकृतीनां क्षयलोभविरागकारणानि नोत्पादयेत् ॥ ४० ॥ उत्पन्नानि वा सद्यः प्रतिकुर्वीत ॥ ४१ ॥ क्षीणा लुब्धा विरक्ता वा प्रकृतय इति ॥ ४२ ॥ क्षीणाः पीडनोच्छेदनभयात्सद्यः सन्धिं युद्धं निष्पतनं वा रोचयन्ते ॥ ४३ ॥ लुब्धा लोभेनासंतुष्टाः परोपजापं लिप्सन्ते ॥ ४४ ॥ विरक्ताः पराभियोगमभ्युत्तिष्ठन्ते ॥ ४५ ॥

इन सब बातों पर ध्यान देकर मन्त्री आदि प्रकृति को कभी क्षीण, लोभ युक्त या विरक्त न होने दे। यदि किसी मन्त्री में विकार उत्पन्न हो भी जावे-तो शीघ्र उनका प्रतीकार करना चाहिए। क्षीण, लुब्ध और विरक्त तीन प्रकार की प्रकृति होती हैं। दुर्भिक्ष आदि क्षीण हुए मन्त्री अमात्य आदि पीड़ा या विनाश के भय से शीघ्र सन्धि, युद्ध और भाग जाना स्वीकार कर लेते हैं। लोभी अमात्य लोभ के कारण अपने स्वामी से सन्तुष्ट नहीं रहते और वे सदा दूसरे राजा से मिल जाना चाहते रहते हैं। विरक्त मन्त्री, शत्रु की चढ़ाई में सम्मिलित हो जाते हैं ॥४०-४५॥

तासां हिरण्यधान्यक्षयः सर्वोपघाती कृच्छ्रप्रतीकारश्च ॥ ४६ ॥ युग्यपुरुषक्षयो हिरण्यधान्यसाध्यः ॥ ४७ ॥ लोभ ऐकदेशिको मुख्यायत्तः परार्थेषु शक्यः प्रतिहन्तुमादातुं वा ॥ ४८ ॥ विरागः प्रधानावग्रहसाध्यः ॥ ४९ ॥ निष्प्रधानाहि प्रकृतयो भोग्या भवन्त्यनुपजाप्याश्चान्येषामनापत्सहास्तु प्रकृतिमुख्यप्रग्रहस्तु बहुधा भिन्ना गुप्ता भवन्त्यापत्सहाश्च ॥ ५० ॥

यदि मन्त्री आदि का धान्य और सुवर्ण क्षय हो जावेगा, तो उनके अश्व आदि सारी वस्तुओं का क्षय समझो। इसका प्रतीकार भी बड़ा कठिन है। यदि वाहन और वीरों का क्षय भी हो जावे, तो भी वह सुवर्ण और धान्य से फिर पूरा किया जा सकता है। लोभ किसी २ मन्त्री में हो सकता है। मुख्य अमात्य उसको दूर कर सकता है। शत्रु के ऊपर चढ़ाई करने पर वह रोका जा सकता है या उसे पूरा किया जा

सकता है, परन्तु प्रकृति का विरक्त हो जाना, प्रधान नेता के वश में किये बिना दूर नहीं हो सकता है। यदि विरक्त प्रकृति का कोई नेता न हो-तो वह अपने राजा के वश में हो-जाती है। वे किसी दूसरे राजा से बहकायी भी नहीं जा सकती। जो मन्त्री, आपत्ति को नहीं सह सकते, वे भी मुख्य मन्त्री के आग्रह से असंगठित न होकर सुरक्षित बने रहते हैं और आपत्ति के सह लेने को उद्यत हो जाते हैं ॥४६-५०॥

समावायिकानामपि संधिविग्रहकारणान्यवेक्ष्य शक्तिशौचयुक्तौ संभूय यायात् ॥ ५१ ॥ शक्तिमान्हि पार्ष्णिग्रहणे यात्रासाहाय्यदाने वा शक्तः ॥ ५२ ॥ शुचिः सिद्धौ चासिद्धौ च यथास्थितकारीति ॥ ५३ ॥ तेषां ज्याय-सैकेन द्वाभ्यां समाभ्यां वा संभूय यातव्यमिति ॥ ५४ ॥ द्वाभ्यां समाभ्यां श्रेयः ॥ ५५ ॥

इसी तरह अपने साथियों के सन्धि और विग्रह के कारणों और उनकी शक्ति और पवित्रता को देखकर इकट्ठे ही आक्रमण करें। जो शक्तिशाली होता है, वही पीछे से आक्रमण करने के योग्य और चढ़ाई में सहायता देने के योग्य हो सकता है। जो साथी पवित्र आचरण वाला होता है, वह कार्य के सिद्ध होने या असिद्ध होने पर भी अपना ठीकरा कार्य करता रहता है। इनमें अत्यन्त शक्तिशाली एक या समान बल वाले दो को साथ लेकर चढ़ाई कर देनी चाहिए। बराबर शक्ति वाले दो के साथ चढ़ाई करना उत्तम है ॥५१-५५॥

ज्यायसा ह्यवगृहीतश्चरति समाभ्यामतिसंधानाधिक्ये वा ॥ ५६ ॥ तौ हि सुखौ भेदयितुम् ॥ ५७ ॥ दुष्टश्चैको द्वाभ्यां नियन्तुं भेदोपग्रहं चोपगन्तु-मिति ॥ ५८ ॥ समेनैकेन द्वाभ्यां हीनाभ्यां वेति ॥ ५९ ॥ द्वाभ्यां हीनाभ्यां श्रेयः ॥ ६० ॥ तौ हि द्विकार्यसाधकौ वेश्यौ च भवतः ॥ ६१ ॥

अपने से बड़े के साथ चढ़ाई करने पर विजयेच्छुक राजा दबकर चलता है, परन्तु समान शक्तिशाली के साथ अत्यन्त मेल जोल रहता है। यदि मौका पड़े-तो उन दोनों में फूट भी डलवाई जा सकती है। यदि उनमें एक विगड़ भी उठे-तो दोनों मिलकर उसे दबा सकते हैं या उसे डरा धमका कर वश में कर सकते हैं। एक समान शक्ति वाले और दो हीन बलवालों को लेकर चढ़ाई करे-ऐसा भी बहुतों का मत है। यदि दोनों ही हीन बल हों और सम बल वाला न हो-तो दो हीन बल वालों के साथ चढ़ाई कर देना तो और भी उत्तम है। वे दोनों पृथक् २ दो कार्य कर सकते हैं और वश में भी बने रह सकते हैं ॥५६-६१॥

कार्यसिद्धौ तु ॥ ६२ ॥

कृतार्थाज्ज्यायसो गूढः सापदेशमपमवेत् ।

अशुचेः शुचिवृत्तात् प्रतीक्षेताविसर्जनात् ॥ ६३ ॥

जब कार्य की सिद्धि हो जावे और देवात् कृतार्थ शक्तिशाली राजा के चित्त में विकार उत्पन्न हो जावे, तो वहां से वहाना बनाकर चला आवे, परन्तु शक्तिशाली का चित्त एक सा शुद्ध रहे, तो वह जब तक विदा न करे-तब तक उसके विचार जानने की प्रतीक्षा करता रहे ॥६२-६३॥

सत्रादपसरेद्यत्तः कलत्रमपनीय वा ।

समादपि हि लब्धार्थाद्विद्यस्तस्तस्य भयं भवेत् ॥ ६४ ॥

अग्ने स्त्री आदि परिवार को हटाकर राजा स्वयं भी अपने दुर्ग से सावधानी के साथ दूर चला जावे । यदि किसी समान शक्ति वाले की सहायता कर दी गई और वह भी कृतघ्न बन गया-तो बड़ी सावधानी से अपनी स्त्री आदि को अपने दुर्ग से हटाकर आप भी उस दुर्ग से खसक जावे, क्योंकि विश्वास में चुप रहने से भय खड़ा होना देखा गया है ॥६४॥

ज्यायस्त्वे चापि लब्धार्थः समो विपरिकल्पते ।

अभ्युच्चितश्चाविश्वास्यो वृद्धिश्चित्तविकारिणी ॥ ६५ ॥

बड़े शक्तिशाली की तो चर्चा ही क्या है, समान शक्ति वाला भी अपने कार्य के सिद्ध हो जाने पर विगड़ जाता है । जिसकी वृद्धि हो जाती है, उसका विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि वृद्धि चित्त को विगाड़ ही देती है ॥६५॥

विशिष्टादल्पमप्यंशं लब्ध्वा तुष्टमुखो ब्रजेत् ।

अनंशो वा ततो ऽस्याङ्के प्रहृत्य द्विगुणं हरेत् ॥ ६६ ॥

अधिक शक्तिशाली से थोड़ा अंश मिलने पर भी प्रसन्नता सा चला जावे । यदि वह कुछ भी न देवे-तो भी प्रसन्नता दिखावे । जब इस पर कोई विपत्ति आवे-तब प्रहार करके इससे दुगुना अंश वसूल करे ॥६६॥

कृतार्थस्तु स्वयं नेता विसृजेत्सामवायिकान् ।

अपि जीयेत न जयेन्मण्डलोष्टस्तथा भवेत् ॥ ६७ ॥

इति पाङ्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे यातव्यामित्रयोरभिग्रहचिन्ता क्षयलोभविराग-

हेतवः प्रकृतीनां सामवायिकविपरिमर्शः पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

आदितस्त्रिंशतः ॥ १०३ ॥

जब राजा का काम सिद्ध हो जावे, तो वह अपने साथी राजाओं को मान से विदा करे, इसमें चाहे-उसे कुछ जीत रहे या न रहे अर्थात् धन का अंश मिले या न मिले। ऐसा करने से ही वह राजा अपने राजमण्डल का प्रिय हो सकता है ॥६७॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत षाड्गुण्य अधिकरण में “मन्त्री आदि के साथ कैसे व्यवहार पर चढ़ाई करनी चाहिए” इस वर्णन का पांचवां अध्याय समाप्त हुआ।



छठा अध्याय

१११-११२वां प्रकरण

संहित प्रमाणिकं परिपणितपरिपणितापसृताश्च सन्धयः

इस प्रकरण में एक साथ मिलकर चढ़ाई करने और परिपणित, अपरिपणित और अपसृत सन्धि का वर्णन किया जावेगा।

विजिगीषुर्द्वितीयां प्रकृतिमेवमतिसंदध्यात् ॥ १ ॥ सामन्तं संहितप्रयाणे योजयेत् ॥ २ ॥ त्वमितो याहि ॥ ३ ॥ अहमितो यास्यामि ॥ ४ ॥ समानो लाभ इति ॥ ५ ॥ लाभसाम्ये संधिः ॥ ६ ॥ वैषम्ये विक्रमः ॥ ७ ॥

जो राजा अपना विजय चाहे, वह अपने साथी राजा से यह ढंग व्यवहार में लावे। युद्ध करने वाले साथी राजा को एकदम चढ़ाई के लिए नियुक्त करे-उससे कहे, कि तुम इधर से जाओ-मैं इधर होकर आता हूँ-जो लाभ होगा, उसमें बराबर का हिस्सा रहेगा। यदि दोनों को समान लाभ हो, तो परस्पर सन्धि रखे और लाभ में कुछ अधिकता न्यूनता रहे अर्थात् एक को अधिक लाभ और दूसरे को न्यून लाभ हो, तो उससे भी लड़ाई ठान बैठे ॥१-७॥

संधिः परिपणितश्चापरिपणितश्च ॥ ८ ॥ त्वमेतं देशं याह्यहमिमं देशं यास्यामीति परिपणितदेशः ॥ ९ ॥ त्वमेतावन्तं कालं चेष्टस्वाहमेतावन्तं कालं चेष्टिष्य इति परिपणितकालः ॥ १० ॥ त्वमेतावत्कार्यं साधयाहमिदं कार्यं साधयिष्यामीति परिपणितार्थः ॥ ११ ॥

परिपणित और अपरिपणित-इस प्रकार सन्धि दो प्रकार की मानी गई है। तुम इस देश पर चढ़ाई करो-मैं इस देश की ओर जाता हूँ, इस सन्धि को परिपणित देश सन्धि कहते हैं। तुम इतने समय तक विजय की चेष्टा करो, मैं इतने समय तक चेष्टा

करुंगा-यह परिपणित काल सन्धि कहाती है । जिसमें देश की शर्त हो-वह परिपणित देश और जिसमें काल का नियम हो-वह परिपणित काल सन्धि हुई । तुम इतना कार्य करो-मैं इस काम को पूरा कये देता हूँ, इसमें कार्य (अर्थ) सम्बन्धी पण (शर्त) है, इससे इसे परिपणितार्थ सन्धि कहते हैं ॥८-११॥

यदि वा मन्येत शैलवननदीदुर्गमटवीव्यवहितं छिन्नधान्यपुरुषवीवधासार-
मयवसेन्धनोदकमविज्ञातं प्रकृष्टमन्यभावदेशीयं वा सैन्यव्यायामानामलब्धभूमिं
वा देशं परो यास्यति विपरीतमहमित्येतस्मिन्विशेषे परिपणितदेशं संधिमुपे-
यात् ॥ १२ ॥

जब राजा यह देखे, कि मेरा साथी सामन्त, पर्वत, वन, नदी दुर्ग और वनों से व्याप्त, धान्य, सैनिक वीर पुरुष, तैल घृत आदि वस्तु समूह से रहित अन्न, दाना-घास से विहीन, अपरिचित, लम्बी यात्रा वाले, अन्य भाषा भाव से युक्त, सेना के व्यायाम (कवायद) के योग्य भूमि के अभाव वाले देश पर चढ़ाई कर लेगा और मुझे तो इससे विपरीत सुगम देश पर आक्रमण करना पड़ेगा, तो ऐसे समय न परिपणित देश सन्धि कर लेनी चाहिए ॥१२॥

यदि वा मन्येत प्रवर्षोष्णशीतमतिव्याधिप्रायमुपक्षीणाहारोपभोगं सैन्यव्या-
यामानां चौपरोधिकं कार्यसाधनानामूनमतिरिक्तं वा कालं परश्चेष्टिष्यते विपरीत-
महमित्येतस्मिन्विशेषे परिपणितकालं संधिमुपेयात् ॥ १३ ॥

वर्षा, गरमी और सरदी के कारण क्लेशजनक रोग प्रकोप से युक्त, आहार की प्राप्ति से रहित, सेना के व्यायाम (कवायद) की रुकावट करने वाले, कार्य साधन में दुर्बल, अधिक समय तक मेरे साथी सामन्त को काम करना होगा और मुझे तो इन सबसे अड़चनों से विहीन थोड़े समय तक ही लड़ना है, जब राजा यह देखे-तो अपने सामन्त के साथ परिपणित काल सन्धि कर ले ॥१३॥

यदि वा मन्येत प्रत्यादेयं प्रकृतिकोपकं दीर्घकालं महान्यव्ययमल्पमनर्था-
नुबन्धमकल्पमधर्म्यं मध्यमोदासीनविरुद्धं मित्रोपघातकं वा कार्यं परः साधयिष्य-
ष्यति विपरीतमहमित्येतस्मिन्विशेषे परिपणितार्थं संधिमुपेयात् ॥ १४ ॥

इस कार्य में शत्रु के मन्त्री आदि कुपित करने पड़ेंगे । बहुत धन के व्यय और मनुष्यों के नाश से बहुत काल में यह कार्य सिद्ध होगा, इसका फल थोड़ा और इसमें अनर्थ अधिक है । यह बहुत ही क्लेशदायक और अधर्म युक्त कार्य है । मध्यम और उदासीन राजाओं के यह विरुद्ध होगा । मित्रों को भी इसमें हानि पहुंच जाने की सम्भावना

है, परन्तु इन सब कामों को मेरा साथी सामन्त करने को उद्यत है-जब राजा ऐसी परिस्थिति देखे-तो परिपणितार्थ नामक सन्धि को बड़े आनन्द के साथ करे ॥१४॥

एवं देशकालयोः कालकार्ययोर्देशकार्ययोर्देशकालकार्याणां चावस्थापना-
त्सप्तविधः परिपणितः ॥ १५ ॥ तस्मिन्प्रागेवारभ्य प्रतिष्ठाय च स्वकर्माणि
परकर्मसु विक्रमेत ॥ १६ ॥

जब इन परिपणितार्थ सन्धियों में दोनों का मेल हो जावे-तो देशकाल, कालकार्य, देश-कार्य और देशकाल कार्य-ये इनके चार भेद और हो जाते हैं । तीन पहिली और चार ये-सब मिलकर परिपणित सन्धि सात प्रकार की मानी गई हैं ॥१५-१६॥

व्यसनत्वरारवमानालस्ययुक्तमज्ञं वा शत्रुमतिसंधातुकामो देशकालकार्या-
णामनवस्थापनात्संहितौ स्व इति संधिविश्वासेन परच्छिद्रमासाद्य प्रहरेदित्यपरि-
पणितः ॥ १७ ॥

मद्य, द्यूत, स्त्री आदि के व्यसन में फंसे हुए, झटपट घबरा जाने वाले, मन्त्री आदि से तिरस्कृत, आलसी, मूर्ख, शत्रु का विजय करने वाला राजा, देश काल कार्य की कुछ भी शर्त न लगाकर दूसरे सामन्त से जो सन्धि करता है और इसी सन्धि के आधार पर शत्रु के व्यसन युक्त होने पर उस पर आक्रमण कर देता है-यह अपरिपणित सन्धि कहाती है, क्योंकि इसमें किसी प्रकार का पण [शर्त] नहीं है ॥१७॥

तत्रैतद्भवति—॥ १८ ॥

सामन्तेनैव सामन्तं विद्वानायोज्य विग्रहे ।

ततो ऽन्यस्य हरेद्भूमिं छित्वा पक्षं समन्ततः ॥ १९ ॥

इस विषय में केवल इतना समझना है, कि बुद्धिमान राजा अपने सामन्त से शत्रु को युद्ध में फंसा देवे और आप दूसरी ओर इनमें शत्रु पक्ष के सारे अन्य राजाओं को मारकाट कर उसकी भूमि पर अधिकार कर ले ॥१८-१९॥

संधेरकृतचिकीर्षा कृतश्लेषणं कृतविदूषणमवशीर्णक्रिया च ॥ २० ॥

विक्रमस्य प्रकाशयुद्धं कूटयुद्धं तूष्णींयुद्धमिति संधिविक्रमौ ॥ २१ ॥

अकृत चिकीर्षा, कृतश्लेषण, कृतविदूषण और अवशीर्ण क्रिया-ये सन्धि के चार प्रकार [धर्म] माने गए हैं । प्रकाश युद्ध, कूट युद्ध, तूष्णीं युद्ध-ये तीन युद्ध के प्रकार या धर्म हैं ॥२०-२१॥

अपूर्वस्य संधेः सानुबन्धैः सामादिभिः पर्येषणं समहीनज्यायसां च यथा-
वलमवस्थापनमकृतचिकीर्षा ॥ २२ ॥ कृतस्य प्रियहिताभ्यामुभयतः परिपालनं

यथासंभाषितस्य च निबन्धनस्यानुवर्तनं रक्षणं च कथं परस्मान्न भिद्येत इति
कृतश्लेषणम् ॥२३॥ परस्यापसंधेयतां दूष्यातिसंधानेन स्थापयित्वा व्यतिक्रमः
कृतविदूषणम् ॥२४॥ भृत्येन मित्रेण वा दोषापसृतेन प्रतिसंधानमवशीर्णक्रिया ॥२५॥

जिस राजा से कभी पहिले सन्धि नहीं हुई हो, उससे अनुबन्धों (अङ्गों) के सहित
साम आदि उपायों द्वारा सन्धि करके समबल, हीनबल और अधिक बलशाली राजाओं की
यथायोग्य अवस्थापना करना अकृत-चिकीर्षा नामक सन्धि कहाती है अर्थात् प्रथम न की
हुई सन्धि के करने की इच्छा वाली सन्धि कहाती है। जो सन्धि की गई है, उसको प्रिय
और हितकारी कार्यों द्वारा दोनों ओर से ठीक २ पालने की जो प्रतिज्ञा की है, उनका यथा
नियम पूरा करना और उनकी रक्षा करना, शत्रुसे किसी प्रकार भेद को न प्राप्त होना, यह कृत-
श्लेषण सन्धि है अर्थात् इसमें की हुई सन्धि का श्लेषण (चिपटाव) रहता है-इससे इसे
कृतश्लेषण कहा गया है। दूसरे सामन्त ने दुष्ट, शत्रु राजा से सन्धि कर ली है, इससे
इसने संधि के नियम तोड़ दिए-ऐसा स्थापित करके जो सन्धि का तोड़ देना है, यह कृत-
विदूषण कहाता है, क्योंकि इसमें सन्धि को दूषित करके तोड़ दिया गया है। किसी
दोष के आधार पर किसी राजा के मित्र या भृत्य (मन्त्री) से जो सन्धि की जाती है,
वह अवशीर्ण क्रिया कहाती है ॥ २२-२५ ॥

तस्यां गतागतश्चतुर्विधः—॥ २६ ॥ कारणाद्गतागतो विपरीतः कारणा-
द्गतो ऽकारणादागतो विपरीतश्चेति ॥ २७ ॥ स्वामिनो दोषेण गतो गुणेनागतः
परस्य गुणेन गतो दोषेणागत इति कारणाद्गतागतः संधेयः ॥ २८ ॥ स्वदोषेण
गतागतो गुणमुभयोः परित्यज्याकारणाद्गतागतश्चलबुद्धिरसंधेयः ॥ २९ ॥

इस अवशीर्ण क्रिया में जाना आना चार प्रकार से होता है। [१] किसी कारण
विशेष से जाना और किसी कारण विशेष से ही आ जाना [२] बिना आकर पृथक् हो
जाना और बिना ही कारण आ मिलना [३] किसी कारण से पृथक् होने पर भी बिना
कारण आ मिलना [४] और बिना कारण पृथक् होकर कारण से आ मिलना-ये चार प्रकार
हैं। स्वामी के दोष से जाना और उसके गुण से आ जाना तथा शत्रु के गुण
से जाना और शत्रु के दोष से लौट आना-इन कारणों से जो आना जाना
हुआ-यह सन्धि के योग्य हैं। अपने ही दोष से जाना और अपने ही दोष से लौट आना,
स्वामी या शत्रु के गुण दोषों से कुछ भी प्रयोजन नहीं रखना-इस प्रकार बिना कारण
आना जाना चञ्चल बुद्धि का कार्य है। ऐसे चञ्चल मनुष्य से सन्धि नहीं करनी
चाहिए ॥२६-२९॥

स्वामिनो दोषेण गतः परस्मात्स्वदोषेणागत इति कारणाद्गतो ऽकारणादा-
गतस्तर्कयितव्यः ॥ ३० ॥ परप्रयुक्तः स्वेन वा दोषेणापकर्तुकामः परस्योच्छेत्तार-
ममित्रं मे ज्ञात्वा प्रतिघातभयादागतः परं वा मामुच्छेत्तुकामं परित्यज्यानुशंस्या-
दागत इति ज्ञात्वा कल्याणबुद्धिं पूजयेदन्यथाबुद्धिमपकृष्टं वासयेत् ॥ ३१ ॥

स्वामी के दोष से जाना और अपने दोष से लौट आना, इसे कारण से जाना और बिना कारण लौट आना समझना चाहिए। इसकी इस प्रकार परीक्षण करे। क्या यह शत्रु की प्रेरणा से मेरे अपकार के निमित्त आया है या अपना ही बदला चुकाने के निमित्त मेरा अपकार करना चाहता है। शत्रु के उच्छेद में परायण मेरे शत्रु को देखकर अपने वध की आशङ्का से आ गया है या शत्रु के नाश में तत्पर मेरे शत्रु को छोड़ कर मेरे पुराने स्नेह से मेरे पास आया है? इन सब बातों पर विचार करके यदि इसकी शुभ वासना हो-तो इसको अपने पास रख ले अन्यथा अपने समीप से दूर रखे ॥ ३०-३१ ॥

स्वदोषेण गतः परदोषेणागत इत्यकारणाद्गतः कारणादागतस्तर्कयितव्यः
॥३२॥ छिद्रं मे पूरयिष्यत्युचितो ऽयमस्य वासः परत्रास्य जनो न रमते ॥३३॥
मित्रैर्मे संहितः शत्रुभिर्विगृहीतो लुब्धकूरादाविग्रः शत्रुसंहिताद्वा परस्मादिति
ज्ञात्वा यथाबुद्ध्यवस्थापयितव्यः ॥ ३४ ॥

अपने दोष से जाना और शत्रु के दोष से आना-इसे अकारण जाना और कारण से आना कहते हैं : इसके विषय में यह सोचना चाहिए, कि क्या यह यहां आकर मेरे छिद्रों को रोक देगा? क्या इसका यहां रहना ठीक होगा? क्या अन्य देश में इसके परिवार का मन नहीं लगा? क्या इसकी मेरे मित्रों से सन्धि और मेरे शत्रुओं से इसका विग्रह है? क्या यह लोभी क्रूर इकट्ठे या अकेले शत्रु से घबरा गया है? यह सब कुछ जान कर उसके ठहरने की व्यवस्था करे ॥ ३२-३४ ॥

कृतप्रणाशः शक्तिहानिर्विघ्नापण्यत्प्रमाशानिर्वेदो देशलौल्यमविश्वासो
बलवद्विग्रहो वा परित्यागस्थानमित्याचार्याः ॥ ३५ ॥ भयमवृत्तिरमर्ष इति
कौटल्यः ॥ ३६ ॥ इहापकारी त्याज्यः परापकारी संधेयः ॥ ३७ ॥ उभयापकारी
तर्कयितव्य इति समानम् ॥ ३८ ॥ असंधेयत्वेन त्ववश्यं संघातव्ये यतः प्रभाव-
स्ततः प्रतिविदध्यात् ॥ ३९ ॥

कृतज्ञ, शक्तिहीन, विद्याविक्रयी, आशा भंग करने वाला, उपद्रवी देश से युक्त, बलवान् का शत्रु, राजा या सामन्त परित्याग के योग्य है-ऐसा आचार्यों का मत है, परन्तु कौटल्याचार्य कहते हैं, कि जिसमें भय हो, जो कार्य का आरम्भ न करता हो और जिस

में क्रोध भरा रहता हो, ऐसे स्वामी या सेवक को त्याग देना चाहिए। जो अपना अपकारी हो, उसे त्यागे और जो शत्रु का अपकार करके आवे-उसे रख ले। जो दोनों का अपकार करने वाला हो, उस पर उचित विचार करे अर्थात् उसका भाव शुद्ध हो गया हो-तो उसे रख लेवे। जिससे सन्धि नहीं करनी चाहिए और फिर उससे किन्हीं कारणों से सन्धि करनी पड़े-तो उस पर जो शत्रु का प्रभाव है, प्रथम उसे दूर करना चाहिए ॥३४-३६॥

सोपकारं व्यवहितं गुप्तमायुः क्षयादिति ।

वामयेदरिपक्षीयमवशीर्णक्रियाविधौ ॥ ४० ॥

यदि अवशीर्ण क्रिया नामक सन्धि द्वारा शत्रु पक्ष के किसी व्यक्ति से सन्धि की जावे, तो उसको एक स्थान पर आयु भर गुप्त रीति से किसी विश्वासी भृत्य की देख-रेख में रख देवे, परन्तु यह व्यक्ति उपकारी प्रमाणित होना चाहिए ॥ ४० ॥

विक्रामयेद्धर्तारि वा सिद्धं वा दण्डचारिणम् ।

कुर्यादमित्राटवीषु प्रत्यन्ते वान्यतः क्षिपेत् ॥ ४१ ॥

यदि इसका शुद्ध भाव प्रतीत हो जावे, तो उसे स्वामी के सन्मुख लाया जावे और फिर इसकी परीक्षा करके राजा इसे सेना में नियुक्त करे। इसको शत्रु, जँगली जाति, सीमा-प्रान्त या अन्य ऐसे ही स्थानों का अधिपति भी बनाया जा सकता है ॥ ४१ ॥

परयं कुर्यादसिद्धं वा सिद्धं वा तेन संवृतम् ।

तस्यैव दोषेणादूप्य परसंधेयकारणात् ॥ ४२ ॥

अथ वा शमयेदेनमायत्यर्थमुपाशुना ।

आयत्यां च वधप्रेप्सुं दृष्ट्वा हन्याद्गतागतम् ॥ ४३ ॥

यदि वह कार्य करने में कपट रखता हो, तो उसको शत्रु के देश में वस्तु बेचने के वहाने से भेज दिया जावे। फिर वहां शत्रु से मिल जाने के दोष से दूषित कर उसे निकाल दे या अपने भविष्य के उज्ज्वल बनाने के निमित्त उसे गुप्त रूप छल से मरवा देवे। जो आगे चलकर प्राण ले सकता है, ऐसे शत्रु के पास से आये हुए व्यक्ति को तो देखते ही मरवा डालना चाहिए ॥ ४२-४३ ॥

अरितो ऽभ्यागतो दोषः शत्रुसंवासकारितः ।

सर्पसंवासधर्मित्वान्नित्योद्वेगेन दूषितः ॥ ४४ ॥

जो व्यक्ति शत्रु के देश से आता है, उसमें शत्रु के संग के कारण दोष आते हैं। शत्रु का वास तो सर्प वास के तुल्य नित्य भयकारी जानना चाहिए ॥ ४४ ॥

जायते लक्ष्मीजाशात्कपोतादिव शान्मलेः ।

उद्वेगजननो नित्यं पश्चादपि भयावह ॥ ४५ ॥

पिलखन के बीज खाने वाले कवृतर से जैसे सैमल के फल को उद्वेग होता है अर्थात् वह उसमें चोंच मारकर उसकी रुई निकाल देता है, उसी प्रकार शत्रु पक्ष के व्यक्ति से सदा भय ही उत्पन्न होता है और परिणाम में भय निकल भी पड़ता है ॥४५॥

प्रकाशयुद्धं निर्दिष्टो देशे काले च विक्रमः ।

विभीषणमवस्कन्दः प्रमादव्यसनार्दनम् ॥ ४६ ॥

एकत्र त्यागघातौ च कूटयुद्धस्य मातृका ।

योगगूढोपजापार्थ तूष्णीयुद्धस्य लक्षणम् ।

इति पाङ्गुण्ये सप्तमे अधिकरणे संहितप्रयाणिकं परिपणितापरिपणितापसृताश्च

संघयः षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ आदितश्चतुःशतः ॥ १०४ ॥

इस समय इस देश में हमारा तुम्हारा युद्ध होगा, यह प्रकाशित करके जो युद्ध किया जावे, वह प्रकाश युद्ध कहाता है। थोड़ा धोखा देकर भय खड़ा करना, दुर्गों को घेरना, लूटना, आग लगाकर भय खड़ा करना प्रमाद और व्यसन के समय शत्रु पर आक्रमण करना, एक जगह युद्ध को बन्द करके दूसरी ओर धोखे से मार काट जा मचाना, ये कूट युद्ध के लक्षण हैं। विप. औपध प्रयोग या गुप्तचरों के द्वारा वध या भेद कर देना-तूष्णी युद्ध कहाता है ॥ ४६-४७ ॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत पाङ्गुण्य अधिकरण में संधियों के विषय के वर्णन.

का छठा अध्याय समाप्त हुआ ।



सातवां अध्याय

११३वां प्रकरण

द्वैधीभावकाः सन्धि विग्रहाः

इस प्रकरण में द्वैधी भाव से सम्बन्ध रखने वाले सन्धि और विग्रह की विवेचना की जावेगी ।

विजिगीषुर्द्वितीयां प्रकृतिर्मेवमुपगृह्णीयात् ॥ १ ॥ सामन्तं सामन्तेन संभूय यायात् ॥ २ ॥ यदि वा मन्येत-पार्ष्णि मे न ग्रहीष्यति ॥ ३ ॥ पार्ष्णिग्राहं वारयिष्यति ॥ ४ ॥ यातव्यं नाभिसरिष्यति ॥ ५ ॥ बलवद्वैगुण्यं

मे भविष्यति ॥ ६ ॥ जीवधासारौ मे प्रवर्तयिष्यति ॥ ७ ॥ परस्य वारयिष्यति ॥ ८ ॥ बह्वावाधे मे पथि कण्टकान्मर्दयिष्यति ॥ ९ ॥ दुर्गाटव्यपसारेषु दण्डेन चरिष्यति ॥ १० ॥ यातव्यमविषह्ये दोषे संघौ वा स्थापयिष्यति ॥ ११ ॥ लब्धलाभांशो वा शत्रूनन्यान्मे विश्वासयिष्यतीति ॥ १२ ॥

विजयाभिलाषी राजा दूसरे राजा से इस प्रकार मेल जोल बढ़ावे । एक सामन्त से मिलकर दूसरे सामन्त पर चढ़ाई करनी चाहिए । जब राजा को यह निश्चय हो जावे, कि यह सामन्त मेरे पाँछे, आक्रमण नहीं करेगा, प्रत्युत जो आक्रमण करेगा, उसे ही रोकेंगा । जिस पर मैं चढ़ाई कर रहा हूँ । उसका साथ नहीं देगा, मेरा बल बहुत बढ़ जावेगा । इसके साथ होने से धान्य और मित्र सेना की मेरे देश में आमद होती रहेगी तथा शत्रु के देश में ये वस्तु जाने से रोक देगा । जब मेरे मार्ग में बहुत सी बाधा खड़ी होगी-तो उन सारे कण्टकों को यह दूर कर देगा । दुर्गाध्यक्ष, वनचर जाति तथा अन्य के आक्रमण के समय सेना द्वारा सहायता करेगा । किसी बहुत बड़ी चुराई के खड़े हो जाने पर आक्रमण किये हुए राजा से सन्धि कराने में प्रवृत्त होगा । जब इसको अपना बँटवारा मिल जावेगा, तब यह अन्य शत्रुओं में भी मेरा विश्वास स्थापन कर देगा, तो उससे सन्धि कर लेनी चाहिए ॥१-१२॥

द्वैधीभूतो वा कोशेन दण्डं दण्डेन कोशं सामन्तानामन्यतमाल्लिप्सेत ॥ १३ ॥ तेषां ज्यायसो ऽधिकेनांशेन समात्समेन हीनाद्धीनेनेति समसंधिः ॥ १४ ॥ विपर्यये विषमसंधिः ॥ १५ ॥ तयोर्विशेषलाभादतिसंधिः ॥ १६ ॥

जब राजा एक से सन्धि और दूसरे से विग्रह छेड़ देवे-तो कोश से सेना और सेना से कोश किसी दूसरे सामन्त से ग्रहण कर ले । इनमें जो अधिक शक्तिशाली हो; उसको अधिक अंश, जिसमें समान शक्ति हो, उसको समभाग और जिसमें हीन शक्ति हो-उसको हीन भाग देकर सन्धि करे । ये तीनों सन्धियां-सम सन्धि कहाती हैं । अधिक शक्तिशाली को न्यून अंश, हीन शक्ति वाले को अधिक भाग, सम शक्तिशाली को हीन या अधिक भाग दे देना-विषम सन्धि कहाती है । इन दोनों सन्धियों में जब ठहरे हुए अंश से अधिक लाभ प्राप्ति हो-तो उसे अति सन्धि कहना चाहिए । ये सारी सन्धियां मिलकर अष्टारह प्रकार की मानी गई हैं ॥१३-१६॥

व्यसनिनमपायस्थाने सक्तमनर्थिनं वा ज्यायांसं हीनो बलसमेन लाभेन पणेत ॥ १७ ॥ पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत ॥ १८ ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ १९ ॥ एवं भूतो हीनशक्तिप्रतापपूरणार्थं संभाव्यार्थाभिसारी मूलपार्श्विना-

णार्थं वा ज्यायांसं हीनो बलसमाद्विशिष्टेन लाभेन पणेत ॥ २० ॥ पणितः
कल्याणवृद्धिमनुगृह्णीयादन्यथा विक्रमेत ॥ २१ ॥

व्यसन में फंसे हुए, नाशकारी कार्यों में आसक्त, अनर्थ में लिपटे हुए, अधिक शक्तिशाली सामन्त से हीन शक्ति राजा, सेना के समान लाभ से ही सन्धि करे। जब सन्धि हो जावे और अधिक शक्तिशाली के साथ युद्ध करने की शक्ति हो जावे-तो उससे युद्ध छेड़ दे अन्यथा सन्धि करके चुपचाप बैठा रहे। इसी तरह अपनी शक्ति की हीनता को पूरी करने के लिए प्रतिष्ठा के उत्पन्न करने का अभिलाषी, हीन शक्ति धारी राजा अपने मूल दुर्ग या पीछे से रक्षा के निमित्त अधिक शक्तिशाली से सेना की अपेक्षा अधिक लाभ देकर भी सन्धि कर ले। जब सन्धि करने पर अपनी शक्ति बढ़ जावे और द्वितीय सामन्त की शुद्ध वृद्धि देखे-तो उससे मेल बनाये रखे अन्यथा उस पर चढ़ाई कर दे ॥१७-२१॥

जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रमुपस्थितानर्थं वा ज्यायांसं हीनो दुर्गमित्रप्रतिस्तब्धो
वा ह्रस्वमध्वानं यातुकामः शत्रुसयुद्धमेकान्तसिद्धिं वा लाभमादातुकामो बलसमा-
द्वीनेन लाभेन पणेत पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत ॥ २२ ॥ अन्यथा
संदध्यात् ॥ २३ ॥

जिस राजा के मन्त्री आदि प्रकृतिजन, मृगया आदि व्यसनो में फंसे हुए हों, जिसके सन्मुख कोई विपत्ति खड़ी हो रही हो, ऐसे अधिक शक्तिशाली सामन्त पर भी हीन शक्ति धारी राजा, अपने हृद दुर्ग और मित्रों के कारण मदोन्मत्त हुआ युद्ध नहीं करने वाले शत्रु पर थोड़ी दूर चढ़ाई करके अवश्यम्भावी लाभ के ग्रहण करने के लिए सेना की अपेक्षा हीन लाभ से ही सन्धि कर ले। जब सन्धि हो जावे और आगे चलकर आप शत्रु के अपकार में समर्थ हो जावे; तो उस पर चढ़ाई कर दे अन्यथा चुपचाप सन्धि बनाये बैठा रहे ॥२२-२३॥

अरन्ध्रव्यसनो वा ज्यायान्दुरारब्धकर्माणं भूयः क्षयव्ययाभ्यां योक्तुकामो
दूष्यदण्डं प्रवासयितुकामो दूष्यदण्डमावाहयितुकामो वा पीडनीयमुच्छेदनीयं
वा हीनेन व्यथयितुकामः संधिप्रधानो वा कल्याणवृद्धिर्हीनः लाभं प्रतिगृह्णी-
यात् ॥ २४ ॥

जिस राजा को किसी विपत्ति या दोष ने नहीं घेर रखा है, ऐसा अधिक शक्तिशाली राजा, दुष्ट कार्य आरम्भ करने की इच्छा वाले शत्रु को फिर सेना के क्षय और धन के व्यय से युक्त करने के लिए तथा दूषित सेना के धीर पुरुष को निकालने के निमित्त, दूषित

सेना को फिर बुलाने के लिए एवं पीड़ा पहुंचाने योग्य या उच्छेद करने के योग्य, शत्रु को हीन बल वाले से क्षीण करवाने को बुद्धिमान् राजा सन्धि को प्रधान माने और इस समय थोड़े लाभ को भी स्वीकार कर ले ॥२४॥

कल्याणबुद्धिना संभूयार्थं लिप्सेत ॥ २५ ॥ अन्यथा विक्रमेत ॥ २६ ॥
एवं समः सममतिसंदध्यादनुगृहणीयाद्वा ॥ २७ ॥ परानीकस्य प्रत्यनीकं मित्रा-
टवीनां वा शत्रोर्विभूमीनां देशिकं मूलपार्ष्णित्राणार्थं वा समः समवलेन लाभेन
पणेत ॥२८॥ पणितः कल्याणबुद्धिमनुगृहणीयात् ॥२९॥ अन्यथा विक्रमेत ॥३०॥

थोड़ी शक्ति वाला सामन्त, उत्तम बुद्धि वाले राजा के साथ मिलकर अपने कार्य की सिद्धि की प्रतीक्षा करे। यदि विरोधी सामन्त की बुद्धि शुद्ध नहीं हुई हो-तो उससे युद्ध छेड़ देवे। इस प्रकार समशक्ति वाला सामन्त, सम शक्तिशाली सामन्त की कल्याण बुद्धि देखकर सन्धि या अनुग्रह करे। शत्रु की सेना तथा शत्रु के मित्र या आठविक लोगों की सेना के सामुख्य (मुकाबिले) में समर्थ, शत्रु की भूमि को नक्शों से जान लेने वाला, अपने मूल देश की पार्ष्णित्राहों द्वारा रक्षा का अभिलाषी होकर समान सेना धारी राजा भ्रमान लाभ के साथ सन्धि कर ले। यदि सन्धि के अनन्तर उत्तम व्यवहार देखे-तो उस पर अनुग्रह रखे अन्यथा चढ़ाई कर दे ॥२५-३०॥

जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रमनेकविरुद्धमन्यतो लभमानो वा समः समबलाद्धीनेन
लाभेन पणेत ॥ ३१ ॥ पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत ॥ ३२ ॥ अन्यथा
संध्यात् ॥ ३३ ॥

मन्त्री आदि प्रकृति के कोप या व्यसन में फंसे हुए, अनेक राजाओं के विरोधी समान व्यक्ति से किसी अन्य कारण से सिद्धि प्राप्त हुए, समान बलधारी राजा थोड़े से लाभ से भी सन्धि कर ले। जब सन्धि हो जावे और स्वयं शक्तिशाली होकर विरोधी राजा के अपकार में समर्थ हो सके-तो उस पर चढ़ाई करदे। यदि शक्तिशाली न हो सका हो, तो चुपचाप सन्धि करके बैठा रहे ॥३१-३३॥

एवंभूतो वा समः सामन्तायत्तकार्यः कर्तव्यबलो वा बलसमाद्विशिष्टेन
लाभेन पणेत ॥३४॥ पणितः कल्याणबुद्धिमनुगृहणीयात् ॥ ३५ ॥ अन्यथा
विक्रमेत ॥ ३६ ॥

इसी प्रकार की विपत्ति से युक्त समान शक्तिशाली, राजा अपने सामन्त के अधीन कार्य करके और अपने कर्तव्य में सेना को लगाकर समान बल वाले से अधिक की शर्त करके सन्धि करे। जब सन्धि हो चुकी और स्वयं अधिक बलशाली हो गया हो तथा

अपने विरोधी को शुद्ध वृद्धि देख रहा हो-तो उससे मेल रखे अन्यथा उससे युद्ध कर बैठे ॥३४-३६॥

जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रमभिहन्तुकामः स्वारवधमेकान्तसिद्धिं वास्य कर्मोप-
हन्तुकामो मूले यात्रायां वा ग्रहर्तुकामो यातव्याद्भूयो लभमानो वा ज्यायांसं
हीनं समं वा भूयो याचेत ॥ ३७ ॥

जिस राजा के मन्त्री आदि कुपित हो रहे हों या व्यसन में फंसे हो, उसको नष्ट करने के अभिलाषी तथा अच्छी तरह आरम्भ किये हुए कार्यों को अवश्य फलदायी देखकर उनके विगाड़ने के इच्छुक, चढ़ाई करने पर राजा पर पीछे से आक्रमण करने के अभिलाषी, जिस पर चढ़ाई की हो, उससे अधिक धन के पाने की आशा वाला राजा, अधिक बलशाली, हीनबल या समान बल वाले के साथ अधिक लाभ की शर्त से सन्धि करे ॥३७॥

भूयो वा याचितः स्वबलरक्षार्थं दुर्धर्मन्यदुर्गमासारमटवीं वा परदण्डेन
मर्दितुकामः प्रकृष्टेऽध्वनि काले वा परदण्डं क्षयव्ययाभ्यां योक्तुकामः परदण्डेन
वा विवृद्धस्तमेवोच्छेत्तुकामः परदण्डमादातुकामो वा भूयो दद्यात् ॥ ३८ ॥

अपनी सेना की रक्षा के लिए अथवा दुर्गम शत्रु के दुर्ग, मित्र बल और वनवासी जाति को सामन्त के बल पर कुचल देने का अभिलाषी, दूरगामी मार्ग या लम्बे समय में दूसरे सामन्त की सेना को क्षय और भय से युक्त करने का इच्छुक दूसरे की सेना से बड़ा हुआ, उसी के नष्ट करने की चाह वाला अथवा दूसरे सामन्त की सेना को अपनी ओर करने के दावपेंच में लगा हुआ राजा, अधिक लाभ देने की शर्त भी मान कर सन्धि कर ले ॥३८॥

ज्यायान् वा हीनं यातव्यापदेशेन हस्ते कर्तुकामः परमुच्छिद्य वा यमेवो-
च्छेत्तुकामस्त्यागं वा कृत्वा प्रत्यादातुकामो बलसमाद्विशिष्टेन लाभेन पणेत
॥ ३९ ॥ पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत ॥ ४० ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ ४१ ॥

हीन शक्तिशाली को चढ़ाई करने योग्य राजा पर भेजने के बहाने अपने बल में लाने का इच्छुक, उसी हीन बल के द्वारा शत्रु का उच्छेद करके फिर उसके भी उच्छेद में तत्पर तथा दिये हुए अंश के वापिस लेने को यत्नशील हुआ अधिक शक्तिशाली राजा समान शक्तिशाली से भी अधिक लाभ देने की प्रतिज्ञा करके सन्धि कर ले। जब सन्धि हो चुकी और अपना बल बढ़ गया-तो उस पर चढ़ाई कर दे अन्यथा चुपचाप सन्धि की शर्तों को निभाता रहे ॥३९-४१॥

यातव्यसंहितो वा तिष्ठेत् ॥ ४२ ॥ दूष्यामित्राटवीदण्डं वास्मै दद्यात्
॥ ४३ ॥ जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रो वा ज्यायान्हीनं बलसमेन लाभेन पणेत ॥ ४४ ॥
पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत ॥ ४५ ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ ४६ ॥

यदि चढ़ाई किये हुए राजा से सन्धि करने में कल्याण हो, तो उससे सन्धि करके स्थित हो जावे। यदि सेना देनी हो-तो अपने से घिगड़े हुए शत्रु या वनवासी भीलों की सेना उसे सौंप दे। यदि अधिक शक्तिशाली राजा के मंत्री आदि प्रकृति जन कुपित हों और उस किसी तरह का व्यसन उपस्थित हो गया हो-तो वह हीन बल वाले राजा से भी समान बल वाले के समान लाभ से सन्धि कर ले। जब सन्धि हो गई और अपनी विपत्ति टल गई-तो उस पर आक्रमण करे अन्यथा चुपचाप बैठा रहे ॥ ४२-४६ ॥

एवंभूतं वा हीनं ज्यायान्बलसमाद्वीनेन लाभेन पणेत ॥ ४७ ॥ पणितस्त-
स्यापकरणसमर्थो विक्रमेत ॥ ४८ ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ ४९ ॥

प्रकृति के कोप से संयुक्त तथा व्यसन वाले हीन शक्ति राजा से शक्तिशाली राजा उसकी सेना से न्यून लाभ देकर सन्धि करे। जब सन्धि हो गई और वह ठीक २ रहा-तो रहने दे-नहीं तो अपनी शक्ति देखकर उसपर चढ़ाई कर दे। यदि शक्ति अधिक न हो-तो चुप बैठा रहे ॥ ४७-४९ ॥

आदौ बुद्धयेत पणितः पणमानश्च कारणम् ।

ततो वितर्क्योभयतो यतः श्रेयस्ततो व्रजेत् ॥ ५० ॥

इति पाङ्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे संहित प्रयाणिकं द्वैधीभावकाः सधिविक्रमाः

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ आदितः पञ्चशतः ॥ १०५ ॥

जो सन्धि कर चुका और जो सन्धि करने वाला है, ये प्रथम संधि के कारणों पर विचार करें। इन दोनों के कारणों पर अच्छी तरह तर्क वितर्क करके जिसमें कल्याण दिखाई दे-उसी प्राचीन या नवीन संधि का आश्रय लेवे ॥ ५० ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत पाङ्गुण्य अधिकरण में एक साथ चढ़ाई करने तथा द्वैधी भाव और संधि विग्रह के नियमों के वर्णन का सातवां अध्याय समाप्त हुआ

आठवां अध्याय

११४-११५वां प्रकरण

यातव्य वृत्तिः अनुग्राह्य मित्रविशेषाः

इस प्रकरण में चढ़ाई की जाने वाले राजा के व्यवहार तथा अनुग्रह योग्य मित्रों के साथ विशेष व्यवहारों का वर्णन किया जावेगा।

यातव्योऽभियास्यमानः संधिकारणमादातुकामो विहन्तुकामो वा साम-
वायिकानामन्यतमं लाभद्वैगुण्येन पणेत ॥ १ ॥ प्रपणितः क्षयव्ययप्रवासप्रत्य-
वायपरोपकारशरीरावाधांश्चास्य वर्णयेत् ॥ २ ॥ प्रतिपन्नमर्थेन योजयेत् ॥ ३ ॥
वैरं वा परैर्ग्राहयित्वा विसंवादयेत् ॥ ४ ॥

जिस राजा पर कोई चढ़ाई करना चाहता है, वह राजा ही यदि चढ़ाई करे और सन्धि के कारणों को चाहे वह स्वीकार करना चाहे या भीतर से अस्वीकार करता हो, कुछ भी हो, परन्तु वह प्रथम इकट्ठे हुए विरोधी राजाओं में से किसी एक को दुगुना लाभ देने की प्रतिज्ञा करके सन्धि कर ले। जब सन्धि हो जावे, तो राजा उस सामन्त के सन्मुख सेना का नाश, धन का व्यय, प्रवास, मार्ग के विघ्न, परोपकार और शरीर की बाधा तक रख दे। जब वह सब कुछ स्वीकार करले-तो उसको स्वीकार किया हुआ धन दे देवे। यदि वह सन्धि करना स्वीकार न करें-तो अन्यो के साथ उसका झगड़ा कराकर उसे झंझट में डाल देवे ॥ १-४ ॥

दुरारब्धकर्माणां भूयः क्षयव्ययाभ्यां योक्तुकामः स्वारब्धां वा यात्रासिद्धि-
विधातयितुकामो मूले यात्रायां वा प्रतिहन्तुकामो यातव्यसंहितः पुनर्याचि-
तुकामः प्रत्युत्पन्नार्थकृच्छ्रस्तस्मिन्नविश्वस्तो वा तदात्वे लाभमल्पमिच्छेत् ॥ ५ ॥

दुष्ट कामों के आरम्भ करने वाले सामन्त को सेना नाश और अधिक व्यय की झंझट में डालने का अभिलाषी राजा, इस समय थोड़े से लाभ पर भी सन्धि कर सकता है। विरोधी ने अच्छे प्रकार से अपने काम को आरम्भ किया है, इस से अवश्य सिद्धि होगी, परन्तु जो राजा विरोधी की इस युद्ध यात्रा सिद्धि को नष्ट करना चाहता है, वह थोड़े लाभ से ही दूसरे सामन्त से सन्धि करने को तय्यार हो जावे। जब विरोधी ने युद्ध यात्रा कर दी और इसी समय उसके प्रधान दुर्ग पर राजा आक्रमण करना चाहता है, तो वह थोड़े लाभ पर ही सन्धि कर लेवे। जो आक्रमण करने के लक्ष्मी भूत राजा से वार २ धन मांगना चाहता है, वह प्रथम थोड़े

विश्वासघाती पुरुष का किसी तरह भी उद्धार नहीं हो सकता है, उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं है, जिसके उसका पाप नष्ट हो जावे । जो बात देव के अधीन है, उसकी चिन्ता न करे । अपने आश्रय में रहने वाले पुरुषों के दुःख को महात्मा अपना ही दुःख मानते हैं । अनार्य पुरुष, अपने हृदय के सत्य भाव को छिपाकर ऊपर से मीठी २ बातें बनाते हैं । बुद्धिहीन पुरुष को पिशाच समझना चाहिए । किसी को साथ लिए बिना मार्ग में न चले । अपने पुत्र की प्रशंसा न करे । सेवक लोग, अपने स्वामी के गुणों का सर्वदा अनुकीर्तन करते रहें । जो भी धर्म आचरण करें, उसे भी स्वामी की ही कृपा बतावें । राजा की आज्ञा का उलंघन न करे । वह जैसी आज्ञा करे उसका वैसा ही पालन करना उचित है । बुद्धिमानों का कोई शत्रु नहीं होता । अपने छिद्र को कभी प्रकाशित न करे । क्षमावान् पुरुष ही सब कुछ सिद्ध कर लेता है । आपत्ति से उद्धार पाने के लिए धन की रक्षा करे । जिनको साहस (हिम्मत) है-वे कर्तव्य करना अधिक पसन्द करते हैं । कल करने योग्य कार्य को आज ही कर डालना चाहिए । जो दोपहर दिन के अनन्तर करना है, उसे दोपहर से पूर्व ही कर डालो । व्यवहार के अनुसार ही धर्म हो सकता है अर्थात् जैसा कर्म करोगे-वैसा ही धर्म होगा । लोक का अनुभव ही सर्वज्ञता है अर्थात् जिसको लोक का अनुभव है, वही सर्वज्ञ है, कोरे शास्त्र पढ़ने से क्या है । जो शास्त्र जानता, वह मूर्ख तुल्य ही समझना चाहिए ॥५२२-५४२॥

शास्त्रप्रयोजनं तत्त्वदर्शनम् ॥ ५४३ ॥ तत्त्वज्ञानं कार्यमेव प्रकाशयति ॥ ५४४ ॥ व्यवहारे पक्षपातो न कार्यः ॥ ५४५ ॥ धर्मादपि व्यवहारो गरीयान् ॥ ५४६ ॥ आत्मा हि व्यवहारस्य साक्षी ॥ ५४७ ॥ सर्वसाक्षी ह्यात्मा ॥ ५४८ ॥ न स्यात्कूटसाक्षी ॥ ५४९ ॥ कूटसाक्षिणो नरके पतन्ति ॥ ५५० ॥ प्रच्छन्नपापानां साक्षिणो महाभूतानि ॥ ५५१ ॥ आत्मनः पापमात्मैव प्रकाशयति ॥ ५५२ ॥ व्यवहारेऽन्तर्गतमाकारस्त्वचयति ॥ ५५३ ॥ आकरसंवरणं देवानामशक्यम् ॥ ५५४ ॥ चोरराजपुरुषेभ्यो वित्तं रक्षेत् ॥ ५५५ ॥ दुर्दर्शना हि राजनः प्रजा नाशयन्ति ॥ ५५६ ॥ सुदर्शना हि राजानः प्रजा रक्षयन्ति ॥ ५५७ ॥ न्याययुक्तं राजनं मातरं मन्यन्ते प्रजाः ॥ ५५८ ॥ तादृशस्त राजा इह सुखं ततस्स्वर्गं प्राप्नोति ॥ ५५९ ॥

समस्त वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान कराना ही शास्त्र का प्रयोजन है । लोक-ज्ञान ही तत्त्व ज्ञान को उत्पन्न करता है । व्यवहार में कभी-पक्ष-पात नहीं करने चाहिए । परस्पर का व्यवहार धर्म से भी बढ़कर धर्म समझना चाहिए । आत्मा भी तो इस सारे लोक

व्यवहार का साक्षी है (द्रष्टा) है अर्थात् आत्मा को भी लोक व्यवहार देखना पड़ता है, क्योंकि आत्मा सबका साक्षी है। झूठे साक्षी, नरक में गिरते हैं। छुपकर पाप करने वाले पुरुषों के साक्षी महाभूत [पृथ्वी जल आदि] होते हैं। अपने पाप को मनुष्य, आपही प्रकट करता है। जब मनुष्य कोई कार्य करता है, तो उसकी आकृति, सारे हृद्गतभावों को प्रकट कर देती है। अपने हृदय के भावों को देवता भी छुपाने में समर्थ नहीं हो सकते। राजपुरुष और चोरों से अपने धन की सर्वदा रक्षा करता रहे। जो राजा कभी प्रजा को दशेन भी कठिनता से देते हैं। उनकी प्रजा नष्ट हो जाती है। जो राजा बार २ आकर प्रजा के सुख दुःख की पूछते हैं, उनसे प्रजा प्रसन्न रहती है। न्यायशील राजा को प्रजा अपनी माता के तुल्य पालक समझती है। माता के समान प्रजा पालक राजा इस लोक में सुख और अन्त में स्वर्ग प्राप्त करता है ॥५४३-५५६॥

अहिंसालक्षणो धर्मः ॥ ५६० ॥ स्वशरीरमपि परशरीरं मन्यते साधुः
॥ ५६१ ॥ मांसभक्षणमयुक्तं सर्वेषाम् ॥ ५६२ ॥ न संसारभयं ज्ञानवताम् ॥ ५६३ ॥
॥ ५६४ ॥ विज्ञानदीपेन संसारभयं निवर्तते ॥ ५६५ ॥ सर्वमनित्यं भवति
॥ ५६६ ॥ कृमिशकृन्मूत्रभाजनं शरीरं पुण्यपापजन्महेतु ॥ ५६७ ॥ जन्ममर-
णादिपुदुःखमेव ॥ ५६८ ॥ तपसा स्वर्गमाप्नोति ॥ ५६९ ॥ क्षमायुक्तस्य तपो
विवर्धते ॥ ५७० ॥ तस्मात्सर्वेषां कार्यसिद्धिर्भवति ॥ ५७१ ॥

॥ इति चाणक्यसूत्राणि ॥

अहिंसाही मुख्य धर्म है। महात्मा लोग, अपने शरीर को भी दूसरों के निमित्त समझते हैं। मांस खाना सबको अनुचित है। ज्ञानी लोगों को संसार का भय नहीं होता है। विज्ञान के दीपक से संसार का भय हटता है। यह सारा संसार अनित्य है। यह शरीर कीड़े, मलमूत्र आदि का पात्र है और इससे पुण्य पाप होते रहते हैं। जन्म मरण में तो दुःख ही दुःख है। तप से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। क्षमाशील पुरुष का तप बढ़ता रहता है। इससे सिद्ध है, कि तप से ही सारे कार्यों की सिद्धि होती है ॥५६०-५७१॥

इति श्री महामुनि चाणक्य प्रणीत नीति सूत्रों का भाषानुवाद समाप्त ॥



REFERENCE
BOOK.

भारतीय इतिहास का महान् ग्रन्थ



महाभारत



मूल संस्कृत और हिन्दी अनुवाद सहित सस्ता और सुन्दर प्रकाशन हो रहा है। यह महत्व-पूर्ण ग्रन्थ अनेक भारतीय नरेशों, रईसों, आचार्यों, प्रोफेसरों और प्रायः सभी विचारों के विद्वानों द्वारा प्रशंसित है। अब तक इसके

११ भाग छप चुके हैं, प्रत्येक भाग का

रियायती मूल्य २) है। लगभग

१८ भाग छपेंगे। प्रत्येक

भाग में लगभग

१००० पृष्ठ हैं।

आप भी अपनी लाइब्रेरी के लिये महाभारत के एक सेट का आर्डर भेजने की कृपा करें।

इन्हें पसन्द होने पर वापिस

भवदीय—

चतुरसेन गुप्त

प्रबन्धक

भारत कार्यालय दिल्ली।

